गरुड़ पुराण

(प्रथम खण्ड)

सम्पादक—

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य,

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट दर्शन,
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के,
प्रसिद्ध भाष्यकार।



प्रकाशक—

संस्कृति-संस्थान,

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर), बरेली (उ०प्र०)

द्वितीय संस्करण] १९७०

सात रुपये पचास पैसे

प्रकाशक :

डा० चमनलाल गौतम,

संस्कृति-संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली (उ० प्र०)



सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य





द्वितीय संस्करण

१९७०



मुद्रक :

पं० पुरुषोत्तमदास कटारे,

हरीहर इलैक्ट्रिक मशीन प्रेस,

मथुरा ।



सात रुपये पचास पैसे

NO 1 444

भूमिका

धार्मिक और विवेकवान् व्यक्तियों के सम्मुख मानव-जीवन की जो समस्याऐं प्राय: उपस्थितहुआ करतीहैं उनमें मरणोत्तर-जीवनकी समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है। संसार का कोई देश या जाति ऐसी नहीं, जहाँ इस सम्बन्धमें विचार न किया गया हो। जङ्गली कहलानेवाली जातियोंमें भी इस सम्बन्धमें कुछ धारणायें पाई जाती हैं,चाहे वे कैसी ही विचित्र अथवा असङ्गत क्यों न हों। इसके विपरीत ज्ञानी और अध्यात्म क्षेत्रके ज्ञाताओं की धारणायें बहुत कुछ बुद्धिऔर तर्क सङ्गत होतीहैं। कुछ भी हो, मरने के बाद हमारी स्थिति क्या होगी,यह प्रश्न प्रत्येक मानव-मस्तिष्क में कभी न कभी उत्पन्न होता ही है, और प्रत्येक व्यक्ति अपनी विद्या बुद्धि अथवा जानकारी के अनुसार उसका समाधान भी किया करता है।

यद्यपि ससार के अन्य धर्मों— जैसे पारसी, यहूदी, ईसाई, इस्लाम में भी मरणोत्तर-जीवनका उल्लेख पाया जाताहै,पर वह इतना संक्षिप्त और गौण रूप वर्णित है कि उससे उनके अनुयाइयों के आचार-विचारों तथा मनोभावों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत हिन्दू-धर्म में, विशेषत: उसके पौराणिक-साहित्य में इसका इतना अधिक विवेचन और विस्तार किया गया है कि भारतवासियों के प्रत्येक कार्य में इसका प्रभाव देखने में आताहै। यहाँ करोड़ों अनपढ़ और अशिक्षित व्यक्ति ऐसे हैं जोमृत्यु के उपरान्त पुनर्जन्म के होने और इस जन्म के प्रत्येक कार्य का फल पाने में अटल विश्वास रखते हैं। ऐसे लोग अपने सुख-दुख, हानि-लाभ, सफलता-असफलता, भलाई-बुराई आदि सब बातों का कारण पूर्व-चन्म के कर्मों को ही मानते हैं। इसके सिवाय धार्मिक ग्रन्थों के ऐसे वर्णनोंके परिणाम स्वरूप जन-साधारण में स्वर्ग और नर्क सम्बन्धी विश्वास भी इतना अधिक पाया जाता है कि वे हर समय उसका जिक्र करते रहते हैं और उनके दान, पुण्य, परोपकार, कर्मकाण्ड आदि का आधार इन्हीं विचारों पर रहता है।

मरणोत्तर—जीवन की इस विचार धारा का सबसे अधिक विस्तार 'गरुड़-पुराण'में किया गया है। यद्यपि इसमें औरभी अनेक जीवनोपयोगी विषयों का वर्णन पाया जाता है, पर यमलोक तथा नरकों का वर्णन और मृत्युके उपरान्त किये जाने वाले कर्मकाण्डोंका विधि-विधानही इसकी सबसे बड़ी विशेषता मानी गईहै। इस कारण अनेक हिन्दू घरोंमें किसी व्यक्ति का देहान्त होनेके अवसर पर इस पुराणका पारायण किया जाता है और इसके अनुसार न्यूनाधिक मात्रामें दान-दक्षिणाभी किसी पुरोहित या 'महाब्राह्मण' आदि को दी जाती है। इसमें यमपुर के मार्ग तथा नरकोंके कष्टों का वर्णन ऐसे भयङ्कर और वीभत्स रूपमें किया गया हैकि सुनने वालेका हृदय काँपने लगता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सब लोगों पर इसका प्रभाव स्थायी होता है, पर भारतीय-समाजमें नरक' का जिक्र होना एक सामान्य बात है और किसी के दुष्कर्म करने पर उसके'नरक-वास' की सम्भावना भी प्रकट कर दी जाती है। यह बात दूसरी है कि कहने और सुनने वालों को इस पर कितना विश्वास होता है।

'गरुड़-पुराण' की शिक्षायें—

'गरुड़-पुराण' के 'प्रेत खण्ड' में ३५ अध्याय हैं। इनमें दान का फल बतलाकर उसके द्वारा मृतात्मा की सद्गतिका वर्णनकिया गयाहै। यमलोक के भयंकर कष्टोंका वर्णनकरके यह बतलाया गयाहैकि संबंधियोंके दान आदि के द्वारा परलोकमें मृतात्माके कष्टोंमें किस प्रकार कमी हो सकती है। इसके लिये 'वृषोत्सर्ग'(बिजार या साँड़ छोड़ना)का बड़ा महत्त्व दर्शाया है। यम-राज के न्यायालय और उनके कार्याध्यक्ष चित्रगुप्तके स्थानोंका वर्णनभी कई जगह विस्तारपूर्वक किया गया है। इसका उद्देश्य यही हो सकता हैकि जन-साधारण उन पाप कर्मों से यथासम्भव बचकर रहें, जिनसे यमलोक में कष्ट पानेकी सम्भावनाहो। आगे चलकर अपमृत्यु मरनेवाले व्यक्तियोंके प्रेत होने का वर्णनऔर प्रेतयोनिमें जीव की घोर दुर्दशा वर्णनकिया गयाहै। क्योंकि इस बात का कोई निश्चय नहीं होताहैकि कौन व्यक्ति प्रेतयोनिको प्राप्तहुआ है और वह कब तक उसमें पड़ा रहेगा, इसलिये प्रत्येक जीवित व्यक्तिका यह

कर्तव्य बतलाया गया है कि अपने किसी सम्बन्धी की मृत्यु हो जाने पर किसी कर्म-काण्ड के ज्ञाता द्वारा उन क्रियाओं को करावे जिनसे मनुष्य प्रेतयोनि से छुटकारा पा सकता है।

प्रेत होने के कारण बतलाते हुए पुराणकारने अकालमृत्युके अतिरिक्त उन अनैतिक और चरित्र-हीनताकी बातोंका ही वर्णन कियाहै,जिनसे व्यक्ति और समाज का अनिष्ट और पतन होता है। उदाहरण के लिये 'संतप्तक' नामक तपस्वी ब्राह्मणसे अपनी दुर्दशा बतलाते हुये प्रेतों ने कहाकि "दूसरों की धरोहरका अपहरण करने वाला,अपने मित्रोंसे द्रोह करने वाला,विश्वास घात करनेवाला और कूट पुरुष प्रेतत्वको प्राप्तहोताहै। इसीप्रकार ब्राह्मण, देव-मन्दिर और गुरुकी सम्पत्ति हरण करने वाला कन्या विक्रय करनेवाला, अपनी माता, भगिनी,भार्या, पुत्र बधू तथा पुत्री को कोई दोष न होने पर त्याग देने वालाभी प्रेत हो जाता है। जो सदा मिथ्याकर्म और भाषणमें रुचि रखता है और दूसरोंकी भूमि तथा स्वर्ण को अपहरण करता है वह अवश्य ही प्रेत होता है।" इससे प्रकट होता है कि जो व्यक्ति ऊपरसे धर्म-कर्म का ढोंग करते हुये भो वास्तविक धर्म का पालन नहीं करते,जो स्वार्थ-साधन के लिये दूसरों को हानि पहुँचाने में संकोच नहीं करते। जो सत्य, न्याय, प्रतिज्ञापालन, आपत्तिग्रस्तोंकी सहायता आदि जैसे सत्कर्मोंसे विमुख रहते हैं वे मरणोपरान्त दुर्दशा को प्राप्त होते हैं और निकृष्ट प्रेत-योनि को प्राप्त होकर तरह-तरह के कष्ट सहन करते हैं।

इसी प्रकार राजा बभ्रुवाहन की कथा में बतलाया गया है कि "जो लोग देवोत्तर सम्पत्ति (सार्वजनिक हितके कार्यों का धन) स्त्रियों का धन, बालकों का धन हरण किया करते हैं वे प्रेत योनि को प्राप्त होते हैं। जो किसी तापसी नारी, सगोत्र स्त्री,गमन करने के अयोग्य नारीके साथ दुराचार करते हैं वे महाप्रेत हो जाते हैं। जो किये हुए उपकार के प्रति कृतघ्न हों,ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करें, रौद्र, दुस्साहसी,शठतापूर्ण स्वभावके हों वे भी प्रेत बना करते हैं।"निस्सन्देह अनुचित लालचके वशीभूत होकर किसी असहाय अथवा निर्बल का सम्बल छल-बलसे हड़प कर जाना संसार में बहुत बड़ा पाप है। यद्यपि इस समय धन की लालसा ने लोगों को इस

प्रकार वशीभूत कर लिया है कि प्रसिद्ध और प्रभावशाली माने जाने वाले व्यक्ति भी दूसरों के स्वत्व को बेईमानी और धोखे से अपहरण कर लेने में लोक और परलोक का डर नहीं करते, पर यह निश्चय है कि इस प्रकार के आचरण का परिणाम कभी शुभ नहीं हो सकता। ऐसे अर्थ-पिशाच इस जीवन में ही भीतर ही भीतर धन की लालसा से व्याकुल हुआ करते हैं और जितना अधिक धन पाते जाते हैं उतना ही तृष्णा के जाल में फँस कर अधःपतन की ओर अग्रसर होते जाते हैं। जो लोग इस संसार में जीवित अवस्था में ही धन की तृष्णा से दग्ध हुआ करते हैं वे यदि मरने के पश्चात् भी अशान्ति और अभाव का अनुभव करते रहें तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

अकाल मृत्यु का कारण--

इसमें एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया गया है कि जब भगवान् ने मनुष्य की स्वाभाविक आयु सौ वर्ष की नियत कर दी है तब वह अकाल मृत्यु का ग्रास बनकर प्रेत-योनि को क्यों प्राप्त होता है ? इसके उत्तर में भगवान् कृष्ण ने यह स्वीकार किया कि वास्तव में संसार में जन्म लेने वाले सभी मनुष्यों की उम्र सौ वर्ष की नियत होती है, पर मनुष्य अपने दुष्कर्मों दुराचरणों अथवा पूर्व जन्म के पापों से स्वयं ही अपनी आयु को क्षीण करने का कारण बनता है और समय से पूर्व ही इस लोक को छोड़ कर परलोक को प्रयाण करता है। इस प्रसङ्ग से इस बात का स्पष्ट रूप से खंडन हो जाता है कि 'ब्रह्मा ने मनुष्य की जो आयु नियत कर दी है उसमें एक क्षण का भी अन्तर नहीं हो सकता।' जो लोग भाग्यवाद के सिद्धान्त का वास्तविक तात्पर्य न समझ कर "राई घटे न तिल बढ़े रह रे जीव निशङ्क" की उक्ति को प्रमाण माना करते हैं वे विचार-शक्ति से शून्य ही होते हैं। गरुड़ की शङ्का का समाधान करते हुए कृष्ण भगवान् कहते हैं —

"हे पक्षीन्द्र ! मनुष्य वास्तव में सौ वर्ष जीवित रहने वाला प्राणी है, जैसा कि वेद-भगवान् ने 'जीवेन शरदाशतम' आदि वाक्योंसे सुस्पष्ट करदिया है। पर अपनेही अपकर्मों के प्रभावसे वह शीघ्र नष्ट होजाता है। यह मनुष्य वेदोंका अभ्यास नहीं करताऔर वंश परम्परासे चलेआये धर्मानुकूल कर्तव्यों

का भी पालन नहीं करता। इसमें बहुत अधिक आलस्य भर गया है जिससे यह श्रेष्ठ कर्मों से विमुख होकर नीच मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है। यह जहाँ-तहाँ खा लेता है और चाहे जहाँ रति करने लगता है। इस प्रकार भोजन और भोग में उच्छृङ्खल हो जाने और इसी प्रकार के अन्य खोटे कर्मों से यह अपनी आयु का क्षय करता रहता है।"

"जो ब्राह्मण श्रद्धा न रखने वाला, अपवित्र रहने वाला, जप-तप से परांमुख, मंगल कार्यों को त्याग देने वाला, मदिरापान आदि दुष्कर्मों में आसक्त होगा वह शीघ्र ही यमराज द्वारा क्यों न दण्डित किया जायगा? इसी प्रकार जो क्षत्रिय राजा प्रजा की रक्षा न करके उसका उत्पीड़न करता है और अपना सब समय तथा राज्य–कोष दुर्व्यसनों में खर्च करता रहता है, अथवा जो पापों के भय से युद्ध में कायरता दिखाता है, उसे यमराज की अदालत में क्यों न दोषी बनना पड़ेगा? वैश्य वर्ण का जो व्यक्ति समाजोपयोगी कार्यों को त्याग कर झूँटे व्यवहार से केवल मनुष्यों को ठगने और धन बटोरने में लगा रहेगा उसे भी दण्ड स्वरूप यम-यातना सहन करनी ही पड़ेगी। समाज-सेवा के कार्यों से विमुख होकर हानिकारक मार्ग पर चलने वाला शूद्र भी यमराज द्वारा दण्डनीय होता है। सब बातों का सार यही है कि जो मनुष्य नित्यप्रति स्नान, ध्यान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, ईश्वरोपासना आदि धर्मविहित कर्मों को त्याग कर आलस्य और प्रमाद में पड़ा रहता है उसका वह दिन व्यर्थ ही जाता है। इस प्रकार जो व्यक्ति अपने जीवन के उपयोगी दिनों को नष्ट करता रहता है उसकी आयु भी चाहे जब नष्ट हो जाती है, क्योंकि यह मानव-देह अध्रुव (अनिश्चित) है। जीव को यह देह इसलिये दी जाती है कि वह कर्म–बन्धनों को काट कर ऊँची गति को प्राप्त करे। पर जो इसके विपरीत इसको निकृष्ट भोग–विलास में ही लगा देता है तो दण्ड-स्वरूप उसे शीघ्र ही इस ईश्वरीय अनुग्रह से वञ्चित कर दिया जाता है।"

मानव-जीवन की श्रेष्ठता—

वास्तव में मानव–जीवन और मानव–देह का प्राप्त होना सृष्टि का सबसे बड़ा अनुदान है। चाहे हम धर्म की दृष्टि से देखें और चाहे विज्ञानकी

दृष्टि से, संसार में जितने भी चराचर प्राणी पाये जाते हैं मनुष्य उनमें सर्वोच्च है। उसे जो विवेक बुद्धि, सूक्ष्म विषयों को समझ सकने योग्य मस्तिष्क और आश्चर्यजनक क्षमता युक्त कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ प्रदान की गई हैं, उनकी तुलना और कहीं दिखाई नहीं पड़ती। मनुष्य को संसार में जो अपार सुविधायें और उपयोगी कर्म करने के अवसर प्राप्त हुए हैं वे ऐसे महान् और अलभ्य हैं; कि 'देवगण' भी सदैव उनकी अभिलाषा किया करते हैं। इसी तथ्य को समझ कर 'विष्णु-पुराण' में कहा गया है—

गायन्ति देवाः किलगीतिकानि धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषः सुरत्त्वात्॥

अर्थात् यह कर्मभूमि भारतवर्ष अत्यन्त धन्य है, जिसकी महिमा देवगण भी गाते रहते हैं। क्योंकि स्वर्ग और मोक्ष जैसी सर्वोच्च गतियों को यहाँ पर सत्कर्म करके ही प्राप्त किया जा सकता है। स्वर्ग कहे जाने वाले लोक में चाहे भोगों की कितनी भी अधिकता क्यों न हो, चाहे वहाँ के प्राणी बिना परिश्रम किये अपनी सब मनोभिलाषाओं की पूर्ति क्यों न कर लेते हों, पर उनको इस बात का अवसर कभी नहीं मिलता कि त्याग, तपस्या परोपकार के मार्ग पर चलकर दूषित कर्म-बन्धनों को काट सकें और आत्म-शक्ति की वृद्धि करते हुए स्वावलम्बन पूर्वक 'ब्रह्म-निर्वाण' की ओर अग्रसर हो सकें।

इस प्रकार 'गरुड़-पुराण' का मुख्य उद्देश्य मृतक कर्म-काण्ड के रूप में दान-दक्षिणा का विधि विधान बतलाना होने पर भी उसमें स्थान-स्थान पर यही कहा गया है कि परलोक में सद्गति प्राप्त करने के लिये मनुष्य को शुभकर्म करना अनिवार्य है। शास्त्रकारों ने जो 'कर्म' को प्रधानता दी है उसका आशय यही है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है उसका परिणाम अवश्य मिलता है, चाहे वह उसे समझे या न समझ पाये। बुरे काम करके सुफल की आशा करना बिलकुल मूर्खता है। आम का बीज बोने से मीठे फल मिलना और बबूल का बोने से तीक्ष्ण काँटों का सहन करना एक ऐसा प्राकृतिक सिद्धान्त है, जो पलट नहीं सकता। 'गरुड़ पुराण' में भी विभिन्न अध्यायों में सामान्य तथा विशेष नैतिक तथा धार्मिक नियमों के पालन करने के रूपमें यही उपदेश दिया गया है—

"किसी भी श्रेष्ठ उद्देश्य की पूर्ति के लिये सदा सत्पुरुषों का संग करना चाहिये। असत्पुरुषों की संगति से इस लोक और परलोक में कहीं भी हित नहीं हो सकता। पराया व्यक्ति भी हित-सम्पादन करने वाला होता है और अपना बन्धु भी परम शत्रु बन सकता है। इसलिये जो अपना सच्चा हित करे उसी को बन्धु समझना चाहिये। उसी मनुष्य को वास्तव में जीवित मानना चाहिये जिसमें अच्छे गुण और विचार पाये जायें और जो धर्म की भावना रखता है। गुण और धर्म रहित व्यक्ति का संसार में जन्म लेना निष्फल ही है। दुष्ट चरित्र वाले घर में रहने से तो नरक में निवास करना भी अच्छा है। क्योंकि नरक में रहने से तो क्रमशः पापों का क्षय होता है पर दुष्ट-गृह में रहने से पाप उल्टा बढ़ता जाता है। जिसका धन नष्ट हो जाता है वह घर-बार त्याग कर तीर्थ-सेवन के लिये चला जाता है, पर जो सत्य से भ्रष्ट हो जाता है उसे तो रौरव नरक में ही जाना पड़ता है। जो किसी को वचन देकर उसका पालन नहीं करते, जो चुगली किया करते हैं, झूँठी गवाही देते हैं, मद्य-पान करते हैं वे सब नरक की घोर कष्टदायक वैतरणी नदी में निवास करते हैं। किसी घर में अग्नि लगाने वाला, विष देने वाला, स्वयं दान करके फिर उसका अपहरण करने वाला, खेत, पुल आदि सार्वजनिक स्थानों को नष्ट करने वाला, पराई स्त्री से दुराचार करने वाला आदि व्यक्ति भी वैतरणी में महाकष्ट पाते हैं। जो कृपण हैं, नास्तिक हैं, क्षुद्र स्वभाव वाले हैं, सदा क्रोध करते रहते हैं, स्वयं अपनी ही बात को प्रमाण बतलाने वाले हैं, अत्यन्त अहङ्कारी हैं, कृतघ्नी, विश्वासघाती हैं वे सब वैतरणी नदी में दीर्घकाल तक नारकीय स्थिति में पड़े रहते हैं।"

जो लोग केवल शारीरिक या अर्थ सम्बन्धी दुष्कर्मों को ही नरकवास का कारण समझते हैं, वे वास्तविकता से परे ही समझे जायेगे। मानसिक दुर्भाव और अहङ्कार जनित दोष प्रत्यक्ष पापों से भी बढ़कर नरक वास के कारण होते हैं, क्योंकि भावना रूप पाप ही आगे चल कर स्थूल पापों के रूप में प्रकट होते हैं। जिस व्यक्ति की मनोभूमि शुद्ध है और विचार-धारा पवित्रता की ओर प्रेरित रहती है, उसकी अभिरुचि पापकर्मों की तरफ होगी ही नहीं। इस लिये यदि 'गरुड़ पुराण' के कर्ता ने अहङ्कार, नास्तिकता,

क्षुद्रता, कृपणता, क्रोध आदि को नरक का कारण लिखा है तो उसमें कोई भूल की बात नहीं है ।

प्रेतों का स्वरूप और कार्य–

यद्यपि इस पुराण में मृत्यु के उपरान्त प्रेत बनने वालों और यमपुरकी यात्रा करने वालों का जोवर्णन किया गयाहै उसके पढ़ने से यही प्रतीत होता है कि मरणोपरान्त मनुष्य का सूक्ष्म शरीर निस्सन्देह किसी दैवी प्रदेश की यात्रा करता है और वहाँ चित्रगुप्त नगर,यमपुरी आदिमें उसका विचार उसी प्रकार किया जाता है जैसा कि हम लौकिक न्यायालयों में होता देखते हैं । पर कई स्थानों पर प्रेतों के स्वरूप और कार्यों का जो वर्णन पाया जाता है उससे यह भी प्रकट होता है कि नरकों और यमपुरी का जो वर्णन किया गया है वह बहुत अंशों में अलङ्कारिक है और पाठकों के चित्त पर अनुकूल प्रभाव डालने के उद्देश्य से किया गया है । ऐसा न होता तो स्वयं पुराण-कार यह न लिखता कि प्रेतत्त्व को प्राप्त होना और प्रेतों द्वारा संसार के मनुष्यों को पीड़ा पहुँचाया जाना कलियुग में ही होता है सतयुग, त्रेता,द्वापर आदि में ऐसा नहीं होता था । वे लिखते हैं –

कलौ प्रेतत्वमाप्नोति ताक्ष्याशुद्ध क्रिया परः ।
कृतादौ द्वापरं यावन्न प्रेतो नैव पीडनम् ॥
(प्रेतकल्प १०—१७)

अर्थात् कलियुगमें मनुष्यों के रहन-सहन के अशुद्ध हो जाने से वे प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं । सतयुग,द्वापर आदि में न कोई प्रेत बनता था न किसी को प्रेत सम्बन्धी पीडा होती थी ।"

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि यमराज, उनकी यमपुरी, नरक आदि तो अनादि काल से हैं,तब क्या ये सब द्वापर तक निकम्मे बैठे रहते थे ? फिर मार्कण्डेय पुराण आदि विभिन्न ग्रन्थों में मृतात्माओं के आवागमन की जो कथायें दी गई हैं, उनमें नरकों का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है । धर्मराज युधिष्ठिर जब एक असत्य-भाषण के लिये थोड़ी देर के लिये नरक में ले जाये गये तो उन्होंने देखा कि नर्क पापियों से भरे हुये हैं । इससे हम

इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रेतत्त्व और नरकों का जो वर्णन पुराणों में लिखा गयाहै उसे अक्षरशः ज्योंका त्यों माननेके बजाय उसका अर्थ रूपक अलङ्कार की दृष्टि से ही समझना उचित है। उपनिषदों में महर्षियों ने इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक जो विवेचन कियाहै उससेभी पुनर्जन्म और नरकों का ऐसा ही स्वरूप सिद्ध होता है। 'कठोपनिषद' में जब नचिकेताने यमराज से यह प्रश्न किया कि मरने के बाद मनुष्य की क्या गति होती है तो उसने यही उत्तर दिया—

न प्राणेन न पानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेता वुपाश्रतौ॥

"कोई भी प्राणी प्राण अथवा अपान वायु के आधार पर ही जीवित नहीं रह रहता,वरन् प्राण और अपान जिस शक्तिके आश्रितहैं प्रत्येक प्राणी उसी के आधार पर जीवित रहता है।" मृतात्मा देहान्तके पश्चात् कैसे रहता है उसके सम्बन्ध में कहा गया है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्ये ऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

"जिसने श्रवण-मनन द्वारा जैसा मनोभाव प्राप्त किया है उसी के आधार पर अपने-अपने कर्मों के अनुसार कितने ही जीवात्मा देह धारणार्थ विभिन्न योनियों को प्राप्त होते हैं और अनेकों जीवात्मा अपने कर्मानुसार वृक्षलता, पर्वत आदि स्थानों पर पदार्थों के रूप को ग्रहण कर लेते हैं।"

इससे विदित होता है कि दुष्कर्मों के फल से मनुष्य जो पशु पक्षियों, कीड़े मकोड़ों की योनियों में जाते हैं अथवा वृक्ष, लता आदि स्थावर पदार्थों के रूप को प्राप्त हो जाते हैं वही उनके लिये एक तरह का नरकवास माना गया है। मनुष्य के मुकाबलेमें इन जीवोंको अनेक प्रकारकी असुविधायें और कष्ट सहन करने पड़तेहैं। 'गरुड पुराण'में नरकों की संख्या ८४लाख बतलाई गई है। अन्य स्थानों में योनियों की संख्या भी ८४ लाख मानी गई है। इससे यह अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि संभवतः 'गरुड़ पुराण' ने ८४ लाख योनियों में जीव के भ्रमण करने का ही ८४ लाख नरकों के रूप में वर्णन किया है।

गीता में 'नरक' का स्वरूप—

'भगवद्गीता' में दुष्कर्मों से जीव की अधोगति और शुभ कर्मों से उच्च गति पाने का वर्णन किया गया है, पर उसमें 'गरुड़-पुराण' की तरह किसी रहस्यपूर्ण यमराजपुरी और उसके महाभयङ्कर कारागारोंका वर्णन नहीं है। उसमें यही बताया गया है कि जो लोग पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोर वाणी, अज्ञान आदि आसुरी लक्षणों से युक्त होते हैं वे मृत्यु के बाद अवाँछनीय गति को प्राप्त होते हैं। 'गीता' में 'नरक' का शब्द भी आया है पर उसका आशय जीव की नीच और कष्ट पूर्ण स्थिति से ही जान पड़ता है। इस सम्बन्ध में १६ वे अध्याय में कहा गया है—

तानहं द्विषतः क्रूरान्ससारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रम शुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१६॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि ।
माम प्राप्यैव कौन्तेय ततोयान्त्य धमां गतिम् ॥२०॥
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥

अर्थात्—'इस प्रकार के इन द्वेष बुद्धि रखने वाले दुष्कर्मों में लिप्त और निर्दय स्वभाव के नीच व्यक्तियों को मैं संसार में बारम्बार आसुरी योनियों में ही गिराया करता हूँ ॥१६॥ हे अर्जुन ! वे मूढ़ पुरुष जन्म-जन्म में आसुरी योनियों को प्राप्त होकर मुझसे (परमात्मा से) दूर होते जाते हैं और पहले की अपेक्षा भी नीच गति को प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ काम, क्रोध, तथा लोभ—ये तीन प्रकार के नर्क के द्वार आत्मा का नाश करने वाले है, आत्म-कल्याण के इच्छुक को इन्हें त्याग देना चाहिये।"

गीताकार ने कुछ योनियाँ मनुष्यसे नीची और कुछ ऊँची बतलाई हैं और स्पष्ट कह दिया है कि आसुरी प्रकृति वाले लोग अधोगति को तथा दैवी प्रकृति वाले उच्च गतिको प्राप्त होतेहैं। यदि मनुष्य मृत्युके उपरान्त नीचयोनियोंमें जाकरकष्ट पाताहैतोउसका कारण अहङ्कार, पाखंड, क्रोध, पर-पीड़न आदि हीहै। आसुरी अथवा निन्दनीय प्रवृत्तियाँ होतीहैं जबतक मनुष्य

इनको त्याग कर अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दया, अद्रोह, क्षमा आदि दैवी अथवा सत् प्रवृत्तियों को नहीं अपनाता तब तक उसका आत्म-कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त हो सकना असम्भव होता है। 'गीता' में यह नहीं कहा है कि मरते समय 'गौदान' करने से मनुष्य नरक-प्रदेश की वैतरणी नदी से पार हो जायगा अथवा पुत्र या सम्बन्धियों द्वारा मासिक पिण्डदान करने से यमलोक के मार्ग में उसकी भूख शान्त होती रहेगी। वरन् महाभारत का ही यह आदेश है—

ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ता स्वरूपानुभवेन हि।
अतस्ते पुत्र दत्तानां पिण्डानां नैव कांक्षिणः॥

अर्थात् 'ज्ञानी मनुष्य तो अपने सच्चे स्वरूप को समझ कर और तदनुसार आचरण करके सदा ही मुक्त होते हैं। उनको पुत्रों द्वारा दिये गये पिण्डों की आकांक्षा कभी नहीं होती।"

'वृहदारण्यक उपनिषद्' की सम्मति से भी यही सिद्ध होता है कि आत्मा स्वभाव से ऊर्ध्व पथगामी है और जब तक मनुष्य आध्यात्मिक मार्ग पर चलता हुआ सत्कर्मों में संलग्न रहता है। तब तक वह उच्च गति को ही प्राप्त होता है—उसके चौथे ब्राह्मण में कहा गया है—

तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रा मादायन्यन् नवतरं कल्याणतरं रूपं तनुते एवमेवायमात्मेद शरीरं निहत्य विद्यांगमयित्वा अन्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गन्धर्वं वा देवं वा प्राजापत्य वा ब्राह्मं वा अन्येषां वा भूतानाम्।

अर्थात् "जैसे कोई स्वर्णकार (सुनार) थोड़े से पुराने सोने को लेकर उससे नया और सुन्दर आभूषण बना देता है उसी प्रकार आत्मा इस जीर्ण शरीर को नष्ट करके और अज्ञान से पार होकर दूसरे नये और कल्याणकारी (श्रेष्ठ) रूप को धारण करती है। वह रूप चाहे पितृलोक में हो, चाहे गन्धर्व लोक या देवलोक में, चाहे प्रजापति लोक अथवा ब्रह्मलोक में या किसी अन्य भौतिक लोक में।"

'ईशावास्योपनिषद्' में बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि जो लोग इस संसार में कुमार्ग पर चलते हैं और आत्मा को नीचे गिराने वाले कार्य करते हैं वे ही घोर दुर्गति को प्राप्त होते हैं—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
ताँ स्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महतो जनाः ।।

अर्थात्—"असुरों के जो लोक हैं वे अज्ञान और अन्धकार से ढके हुए हैं। जो मनुष्य आत्मा-हत्या करते हैं अथवा जो आत्मा के पतन कराने वाले कर्म किया करते हैं वे उन्हीं कष्टपूर्ण लोकों को प्राप्त होते हैं।"

ज्ञान का महत्त्व सर्वोपरि है—

'गरुड़-पुराण' में भी सिद्धान्त रूप से यही कहा गया है कि जो मनुष्य ज्ञानी और सदाचारी होता है उसकी सदैव सद्गति होती है और वह मरनके उपरान्त स्वय ही उत्तम लोकोंमें जाताहै। सांसारिक माया, मोह और स्वार्थ में फँसे हुए व्यक्तियों की दुर्दशा का वर्णन करने के साथ ही उसमें यह भी कहा गया है—

आहारो मैथुनं निद्रा भयं क्रोधस्तथैव च ।
सर्वेषामेव जन्तूनां विवेको दुर्लभः परः ।।
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठा प्राणिनां मति जीवनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ।।
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ।।

अर्थात्—"आहार करना, मैथुन, निद्रा, भय, क्रोध आदि प्रवृत्तियां तो सभी प्राणियों में पाई जाती हैं, पर विवेक (ज्ञान) का होना बड़ा दुर्लभ है। भौतिक जगत में प्राणी श्रेष्ठ माने गये हैं, प्राणियोंमें बुद्धियुक्त श्रेष्ठ होते हैं, बुद्धियुक्तों में मनुष्य को सबसे बड़ा कहा गया है, मनुष्यों में ब्राह्मण उत्तम होता है। ब्राह्मणों में भी विद्वान् प्रशंसा के योग्य होता है। विद्वानोंमें कृति-बुद्धि (व्यवहारिक बुद्धि वाला) और कृत बुद्धियों में भी तदनुसार आचरण करने वाला और उनमें भी ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं।"

इस प्रकार के ज्ञानी और श्रेष्ठ पुरुषों की गति सदा उत्तम होती है यह पहले ही कह दिया गया है—

नाभेस्तु मूर्द्ध पर्य्यन्तमूर्द्ध च्छिद्राणि चाष्ट वै ।
सन्ताः सुकृतिनो मर्त्या ऊर्ध्वच्छिद्रेण यान्ति ते ।
अधांश्छिद्रेण ये यन्ति ते यान्ति विगतिं नराः ॥

अर्थात्—"मानव देह में नाभि से ऊपर मस्तिष्क तक जो आठ छिद्र हैं, सन्त और पुण्यात्मा लोगों की आत्मा इन्ही मार्गों से निकल कर ऊर्द्धगति को प्राप्त करती है। पर जो लोग इसके विपरीत होते हैं उनके प्राण नाभि के नीचे के छिद्रों से निकला करते हैं और उनको निकृष्ट गति प्राप्त होती है।"

पर उपनिषदों तथा गीता आदि में जहाँ केवल ज्ञान-मार्ग की श्रेष्ठता का निरूपण करके मनुष्यों को कर्म करने के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिया गया है वहाँ 'गरुड़-पुराण' में लौकिक व्यवहार का भी विस्तारके साथ वर्णन किया गया है और लोग उन कर्मों के करने में लापरवाही न करें, इसलिये उनको यमपुरी तथा नरकों के कष्टों का हर तरह से भय दिखाया गया है। इसका निश्चय कर सकना कि नरक और स्वर्ग इस संसार में ही हैं या इसके बाहर किसी अन्य स्थानमें है बड़ा कठिन और सन्देहास्पद है। वेद और उपनिषदों आदि में मरणोपरान्त 'पितृयान' और 'देवयान' दो विभिन्न मार्गों की चर्चा की गई है और अध्यात्मवादियों ने भी मरने के बाद जीवात्मा के कुछ समय तक चन्द्रमा अथवा किसी सूक्ष्मलोक (ऐस्ट्रल वर्ल्ड) में रहने की सम्भावनाको स्वीकार किया है। इसलिये हम 'गरुड़-पुराण' के नरकों के वर्णनको सर्वथा अग्राह्य नहीं कह सकते।

कर्मकाण्ड का अत्यधिक विस्तार—

जीवात्मा के पुनर्जन्म और कर्मानुसार विभिन्न योनियों को प्राप्त कर सुख-दुःख भोगने के सिद्धान्त को स्वीकार करने पर भी अनेक विद्वान् 'गरुड़-पुराण में वर्णित पिण्डदान तथा मृतक सम्बन्धी अन्य कर्मकाण्डों के अति विस्तार को व्यक्ति तथा समाज के लिए उपयोगी नहीं मानते। उनके कथनानुसार जन-साधारणमें इस प्रकार की कथाओंने अनेक प्रकारके अन्ध-विश्वासों का रूप धारणकर लिया है और उनके कारण वे तरह-तरहके कष्ट उठाया करते हैं। उदाहरण के लिए वे कहते हैं कि यहाँकी अशिक्षित जनता

जोविभिन्न रोगों का कारण भूत-प्रेतोंका प्रभाव मानती है उसके फलस्वरूप वे अपना उचित इलाज करने के बजाय टोना-टटोका और स्याने (ओझा) लोगों के चक्कर में फँस जाते हैं। इससे उनका पैसा व्यर्थ में बर्बाद होता है और वे शारीरिक कष्ट भी उठाते हैं। इस धारणा का मूल 'गरुड़-पुराण' में पाया जाता है। उसके दसवें अध्याय में 'प्रेत-पीड़ा' का वर्णन करते हुए कहा है—

"ये पराये धन, परायी पत्नी और अपने ही सम्बन्धियों को कष्ट देने वाले महा पापिष्ठ प्रेतगण नरकवास के पश्चात् बिना शरीर के भूख-प्यास से पीड़ित होकर सर्वत्र विचरण किया करते हैं। वे अपने ही सहोदर को मार देते हैं और इस प्रकार पितृगण के मार्ग का रोध करने वाले बन जाते हैं। वे पित्रों के भाग को मार्ग के तस्करों की भाँति अपहरण कर लेतेहैं। अपने घर में फिर आकर वे मूत्रोत्सर्गमें प्रवेशकर जातेहैंऔर वहाँ स्थित होकर स्वजनों का रोग-शोक दिया करते हैं। वे ज्वर और इकतरा के रूपमें लोगों को कष्ट देते हैं। वे जीवित अवस्था में अपने कुल के जिन लोगों से स्नेह करते हैं प्रेत बनने पर उन्हींको पीडा देने लगतेहैं। जिसको प्रेत-पीड़ा होतीहै वह नित्य-कर्म, मन्त्र-जप, होम सब छोड़ देता है, तीर्थों में जाकर भी परम आसक्त हो जाता है। प्रेत के प्रभाव से मनुष्य का ऐसा नाश होता है कि सुभिक्ष में भी कृषि का नाशहो जाताहै और जितनाभी सद्व्यवहार होताहै वह सब विनष्ट हो जाता है। उसका दूसरों से कलह होने लगता है। अनेक बार मार्ग में गमन करते हुए ही पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। प्रेत के प्रभाव से मनुष्य हीन कर्म करने लगता है और उसका सम्पर्क हीन श्रेणी के व्यक्तियों से ही होने लगता है।"

"प्रेत के प्रभावसे ऐसे बहुतसे व्यसन लग जातेहैं जिनमें अपनी समस्त सम्पत्ति स्वाहा होजाती है। चोर,अग्नि, राजा द्वारा हानि होतीहै। किसी महान् रोग की उत्पत्ति, अपने शरीरमें पीड़ा होना, अपनी स्त्री का सताया जाना—ये सभी बातें प्रेत-पीड़ाके कारण होती हैं। स्त्रियोंके गर्भका विनाश हो जाता है,उनका रजोदर्शन नहीं होता, बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं–

ये सब उपद्रव प्रेत-पीड़ाके कारण होते हैं। जिसके यहाँ प्रेत पीड़ा देता है
वहाँ रात-दिन कलह रहता है, अथवा पुत्र ही शत्रु के समान घात करने
वाला हो जाता है। जिस घरमें दाँता-किटकिट हो, भोजन के समय कोप
का आवेश होता हो, सदा दूसरों के साथ द्रोह करने की बुद्धि रहे—तो ये
सभी दुष्परिणाम प्रेतके द्वारा दीगई पीड़ा के समझने चाहिये। जिस पर
प्रेतका असर होताहै वह अपने माता पिताके वचनोंका पालन नहीं करता,
अपनी स्त्री से प्रेम नहीं करता, वरन् पराई स्त्रियों पर कुदृष्टि किया करता
है। दुष्ट-मृत्यु के होने से भी प्रेत योनि मिलती है और मृत शरीर का
दाह-संस्कार न होने से भी प्रेतत्व प्राप्त होता है। खाट पर ही जिसकी
मृत्यु हो जाती है उसका प्रेत होना सुनिश्चित ही समझना चाहिये।"

इस अध्यायमें प्रेत-पीड़ाके जो लक्षण बतलाये गये हैं अगर विचार-
पूर्वक देखा जाय तो वे मनुष्यकी दुष्ट बुद्धि और विकृत मस्तिष्कके परिणाम
होते हैं। माता-पिता की आज्ञा न मानना आवारागर्दी का लक्षण है और
पराई स्त्रियों से दुराचार की भावना व्यभिचारी मनोवृत्ति का स्वाभाविक
परिणाम है। शास्त्रों में कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्य को विवेक बुद्धि
देकर कर्म करनेमें स्वतन्त्र बनाया है। इस सिद्धान्तके अनुसारही ज्ञानीजन
मनुष्य के प्रत्येक सुख-दुःख का कारण उसके कर्तव्य-कर्मों को मानते हैं।

इस लिये जब हम 'गरुड़ पुराण' के प्रेत-सम्बन्धी विधि-विधानों पर
गम्भीरतापूर्वक विचार करतेहैं तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैंकि इनका
कारण या तो अनार्य जातियोंमें प्रचलित अवैदिक प्रथाओं का परम्परागत
चला आया प्रभाव है अथवा कर्मकाण्डमें अनुरक्त किन्हीं व्यक्तियोंने इनका
अनावश्यक विस्तार कर दिया है। वैदिक अध्यात्मवाद के अनुसार
आत्मा की अमरता और मृत्यु के पश्चात् उसका अन्य शरीर में जाना तो
निश्चित ही है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(गीता २-२२)

"जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।"

भारतीय अध्यात्मवादी मनीषियों को पुनर्जन्म के विषय में कभी किसी तरह का सन्देह नहीं रहा, उनके विचार तर्क और विज्ञानके अनुकूल थे। आज वैज्ञानिक भी पुनर्जन्म के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल कर रहे हैं और आत्मा के स्थायी संस्कारों को कुछ-कुछ मानते जाते हैं। 'गीताकार' ने इन शब्दों में इसकी बहुत स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

इसी सिद्धान्त को 'गरुड़ पुराण' ने अविकसित और अल्प बुद्धिवालों को समझानेके उद्देश्यसे कथा का रूप देदिया है और जीवात्माकी सद्गति के लिये कर्म-काण्ड के विधि-विधानों को अनिवार्य बतला दिया है। ऐसी पौराणिक कथाओं का भी अशिक्षित जनताको समझाने के लिये उपयोग स्वीकार किया जा सकता है। इस दृष्टिसे 'गरुड़ पुराण' का अध्ययन करना और उसकी उपयोगी बातों को विवेक सम्मत रूप में जनता को समझाना लाभदायक हो सकता है।

× × ×

'गरुड़पुराण' की एक विशेषता यह है कि इसके प्रथम खण्ड में जिन जीवनोपयोगी विद्याओं की जानकारी संग्रह की गई है, उनको ऐसे साररूप में दिया गया है कि पाठक थोड़े समयमें ही अधिक लाभ उठा सकता है। इसमें विभिन्न देवताओं की उपासना तथा पूजाकी जो विधियाँ दीगई हैं वे निष्पक्ष भाव से एकत्रित की गई है और पूजा-पाठ करने वाले मनुष्यों के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसीप्रकार औषधियोंके विषयमें भी जोकुछ लिखा गयाहै वह प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधार पर और अनुभूत है। तीर्थ व्रत, दैनिक धर्म कृत्य आदि का वर्णन ऐसे ढङ्ग से किया गयाहै जिसे सामान्य पाठकभी सहजमें समझ सकता है। 'रामायण' 'महाभारत' 'हरिवंश' 'भगवद्गीता' 'यमगीता' आदि प्रसिद्ध धार्मिक रचनाओंका सारांश

भी दे दिया गया है। हीरा, मोती, पुखराज, नीलम आदि रत्नों का वर्णन और गुण-दोष बहुत विस्तार के साथ दिया गया है। ज्योतिष, सामुद्रिक, स्वरोदय, अष्टाङ्ग-योग की विधियोंका उत्तम रीति से संग्रह किया गया है। इस प्रकार यह प्रथम खण्ड 'अग्निपुराण' के नमूने पर भारतीय विद्याओं का 'सार संग्रह' या 'विश्वकोश' माना जा सकता है।

सर्व श्रेष्ठ योग-मार्ग--

विभिन्न देवताओंकी नाना प्रकारसे पूजा और उपासनाके विधान बतला कर अन्तमें यही बतलाया गया है कि मनुष्योंके कल्याणके लिए सबसे श्रेष्ठ साधन-विधि यही है सब प्रकारकी उपासनाओंके साथ परमात्मा का ध्यान अवश्य कर लिया जाय। "वह परमात्मा ही सब पापोंको नष्ट करने वाले, सबके रचयिता और सच्चे ईश्वर हैं। वेही वासुदेव, जगन्नाथ और ब्रह्मात्मा हैं जो सब देहधारियों की देह में सदैव रहते हैं पर उनके बंधन में कभी नहीं पड़ते। आत्मा रूपसे देहके भीतर रहनेवाला यह ईश्वरांश इन्द्रियोंकी पहुँच से परे है। वह मन का सञ्चालन करता है पर मनके धर्मों से रहित है। वे ही ज्ञान-विज्ञान स्वरूप वाले और सबके साक्षी हैं। वह बुद्धि से भी विवर्जित हैं अर्थात् बुद्धिके जो भी लक्षण हैं उनसे परे हैं। वे ही प्राणियोंके प्राण, महान् शान्त स्वरूप, भय से विवर्जित और अहङ्कार आदि से रहित हैं। वे सबके साक्षी, नियन्ता, परम आनन्द रूप वाले हैं। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति-तीनों दशाओंमें स्थित उसके साथी, पर उससे विवर्जित हैं। तुरीय (चतुर्थ स्थिति) परम धाता, द्रव्य के रूप वाले गुणोंसे रहित, मुक्त, बोधयुक्त, जरा से रहित, व्यापक, सत्य् और शिव आत्मा वे ही हैं। जो विज्ञ मानव इस प्रकार से परमब्रह्म का ध्यान किया करते हैं वे परम पद को और उसके रूप को प्राप्त किया करते हैं।"

संसारमें जितने प्रकारके ज्ञान हैं उनमें आत्मज्ञान का दर्जा सर्वोच्च है। जो व्यक्ति अपनी आत्मा और उसकी अपार शक्तियोंको नहीं जानता वह कभी मानवताके अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। न वह संसारमें पाईजाने

वाली आधि-व्याधि और जीवन-मरणके चक्रसे सर्वथा मुक्त होसकता है। इसीलिये पुराणकार की सम्मति है—

' जो आत्म-ज्ञान की इच्छा रखता है उसे देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार से रहित, भूत, तन्मात्रा, गुण, जन्म आदि से पृथक स्वयं प्रकाश, निराकार, सदानन्द स्वरूप, अनादि, नित्य, शुद्ध-बुद्ध, सत्य, अद्वय, तुरीय, अक्षर ब्रह्म का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये कि 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ।"

× × ×

इस प्रकार 'गरुड़-पुराण' में संग्रहीत सामग्री और उसकी वर्णन शैली में उसकी एक निजी विशेषताहै। उसने सामान्य जनताके एक विशेष वर्ग के उपयोगकी दृष्टिसे विविध प्रकारकी जानकारियों और आवश्यक विषयों का संक्षिप्त रूपमें संग्रह कियाहै। संभवत:प्राचीन समय प्रचलित बहुसंख्यक विभिन्न विषयक ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है। तो भी सबको अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक विशेष रूप दिया गया है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

'गरुड़ पुराण' का 'प्रेत खण्ड' ही जनता में अधिक प्रचलित है और सामान्य पाठक उतनेको ही 'गरुड़ पुराण' समझतेहैं। कितने ही प्रकाशकों ने उसी अंश को 'गरुड़-पुराण' के नाम से छापा भी है। पर इसके प्रथम खण्ड में जो विविध विषयक उपयोगी सामग्री एकत्रित की गई है वह भी कम आकर्षक नहीं है। जैसा हम लिख चुके हैं इसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग 'प्रेतखण्ड' में दिये गये 'यमराजपुरी' के वर्णन और नरकों की भयङ्करता को समझ कर पाप कर्मों से बचे रहने का प्रयत्न करना ही है। जो पाठक इसको ऐसी भावना से पढेंगे वे अवश्य इससे लाभान्वित होंगे।

—*—

गरुड़पुराण की विषय-सूची

[प्रथम खण्ड]

अध्याय | पृष्ठ संख्या

—-*-—

श्रीगरुड़ महापुराणम्

पूर्वार्द्धम्

—*—

१–नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों का प्रश्न

अजमजरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं शिवममलमनादिं भूतदेहादिहीनम्।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं हरिममलममायं सर्वगं वन्द एकम्॥१

नमस्यामि हरिं रुद्रं ब्रह्माणञ्च गणाधिपम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव मनोवाक्कर्मभिः सदा ॥२

सूतं पौराणिकं शान्तं सर्वशास्त्रविशारदम् ।
विष्णुभक्तं महात्मानं नैमिषारण्यमागतम् ॥३

तीर्थयात्राप्रसंगेन उपविष्टं शुभासने ।
ध्यायन्तं विष्णुमनघं तमभ्यर्च्यास्तुवन् कविम् ॥४

शौनकाद्या महाभागा नैमिषीयास्तपोधनाः ।
मुनयो रविसङ्काशाः शान्ता यज्ञपरायणाः ॥५

आरम्भ में मङ्गलाचरण रते हुए देव वन्दना की जाती है। मैं मल और मायासे रहित-सर्वत्र गमन करने वाले भगवान् हरिकी वन्दना करताहूं जो अजन्मा-अजर और अनन्त हैं, जो ज्ञान के स्वरूप वाले-महान्-अमल-अनादि-भूत देहादिसे हीनहैं। जो समस्त करणों से रहित और सम्पूर्ण भूतों में वर्त्तमान हैं॥१॥ मैं भगवान् हरि-रुद्र-ब्रह्मा-गणों के स्वामी (गणेश)

—देवी सरस्वती इन सब देवगणों को मन, वाणी और कर्म के द्वारा सदा नमन करता हूँ ॥ २ ॥ सम्पूर्ण शास्त्रों के महामनीषी-परमशान्त स्वरूप वाले, पुराणों के विद्वान् एवं प्रवक्ता, विष्णु के भक्त महान् आत्मा वाले और तीर्थों की यात्रा के प्रसङ्ग से नैमिषारण्य में आये हुए, शुभ आसन पर संस्थित भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाले और अघरहित सूत जी की अभ्यर्चना करके उन कवि का स्तवन किया था ॥ ३ ॥ ४ ॥ तपश्चर्या रूपी धन वाले, नैमिष नामक महारण्य के निवासी—महान् भाग्य से सम्पन्न—सूर्य के समान तेजस्वी—शान्त रूप और निरन्तर यज्ञादि में परायण रहने वाले शौनक आदि महर्षिगण थे ॥ ५ ॥

सूत जानासि सर्वं त्वं पृच्छामस्त्वामतो वयम् ।
देवतानां हि को देव ईश्वरः पूज्य एव कः ॥६
को ध्येयः को जगत्स्रष्टा जगत्पाति च हन्ति कः ।
कस्मात् प्रवर्त्तते धर्मो दुष्टहन्ता च कः स्मृतः ॥७
तस्य देवस्य किं रूपं जगत्सर्गः कथं मतः ।
कैर्व्रतैः स तु तुष्टः स्यात् केन योगेन वाप्यते ॥८
अवताराश्च के तस्य कथं वंशादिसम्भवः ।
वर्णाश्रमादिधर्माणां कः पाता कः प्रवर्त्तकः ॥९
एतत्सर्वं तथाऽन्यच्च ब्रूहि सूत महामते ।
नारायणकथाः सर्वाः कथयास्माकमुत्तमाः ॥१०

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप सभी कुछ जानते हैं । इसी कारण से हम लोग आपसे पूछतेहैं । आप हम लोगोंको यह बतलाइये कि देवों का देव तथा इनका स्वामी एवं पूज्य कौन है॥६॥ऐसा कौन-सा देव है जिसका ध्यान करना चाहिए? इस जगत्के सृजन करने वाला,विश्वका पालक और अन्त में संहार करने वाला कौन है? किसके द्वारा लोकमें धर्म प्रवृत्त हुआ करता है और संसार में उत्पन्न होने वाले दुष्ट पुरुषों का हनन कौन किया करता है ? ॥७॥ उस देव का कैसा स्वरूप है ? इस जगत् का सर्ग किस प्रकारसे माना गया है? वह सर्वोपरि विराजमान देवेश्वर किन व्रतोंके द्वारा

परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ करता है और किस योग से वह प्राप्त किया जाता है ? ।। ८ ।। उस सर्वेश्वर के कौन-से अवतार होते हैं और किस प्रकार से उनकी वंश आदि में समुत्पत्ति हुआ करती है ? लोक में जो ये वर्ण ब्राह्मण क्षत्रियादि हैं तथा ब्रह्मचर्यादि चार आश्रम हैं इन सबका पालन करने वाला और प्रवर्त्तक कौन है ? ।।९।। यह सब तथा इसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ भी बताने के योग्य हो उस सबको हे सूतजी ! आप हमको बताइये क्योंकि आप तो महान् मति वाले हैं। भगवान् नारायण से सम्बन्धित सभी उत्तम कथायें आप हम को बताइये ।।१०।।

पुराणं गारुड़ं वक्ष्ये सारं विष्णुकथाश्रयम् ।
गरुड़ोक्तं कश्यपाय पुरा व्यासाच्छ्रुतं मया ।।११
एको नारायणो देवो देवानामीश्वरेश्वरः ।
परमात्मा परं ब्रह्म जन्माद्यस्य यतो भवेत् ।।१२
जगतो रक्षणार्थाय वासुदेवोऽजरोमरः ।
स कुमारादिरूपेण अवतारान् करोत्यजः ।।१३
हरिः सः प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ।
चचार दुश्चरं ब्रह्मन् ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ।।१४
द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्ते यज्ञेशः शौकरं वपुः ।।१५
तृतीयमृषिसर्गं तु देवर्षित्वमुपेत्य सः ।
तन्त्रं सात्वतमाचष्टे नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ।।१६
नरनारायणो भूत्वा तुर्यं तेपे तपो हरिः ।
धर्मसंरक्षणार्थाय पूजितः स सुरासुरैः ।।१७

श्री सूतजी ने कहा—मैं अब आप लोगों के समक्ष में गरुड़ पुराण बताऊँगा जोकि परम सार स्वरूपहै और विष्णु भगवान्की कथाके आश्रय वाला है। यह महापुराण पहिले गरुड़ ने कश्यप मुनिसे कहाथा और मैंने व्यासमुनि से इसका श्रवण किया था।।११।।समस्त देवोंके और ईश्वरोंकेभी

ईश्वर भगवान् नारायणदेव परमात्मा एकही हैं। यहीं परब्रह्महैं और इनसे ही इस सम्पूर्ण विश्वका जन्मादि होताहै॥१२॥भगवान् वासुदेव वैसे स्वयं अजर एवं अमर है किन्तु इस जगत्की रक्षा के लिये वह कुमार आदि के स्वरूप से अजन्मा होकर भी अवतार धारण किया करते हैं॥१३॥उस देव हरिने सबसे प्रथम कौमार सर्गको ग्रहणकर हे ब्रह्मन् ! अति कठिन अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन किया था॥१४॥ दूसरा स्वरूप अर्थात् अवतार इन भगवान् का रसातलको प्राप्त हुई भूमिका उद्धार करते हुए हुआथा जिसमें यज्ञोंके स्वामीने वाराहका शरीर धारणकिया था।१५।तृतीय ऋषिका सर्ग हुआ था जिसमें उनने देवर्षित्व की प्राप्ति की थी अर्थात् नारद का शरीर धारण किया था और कर्मों की निष्कर्मता का सात्वत तन्त्र प्रचलित किया था ॥१६॥ चौथे अवतार में हरि ने नर-नारायण का स्वरूप धारण कर तपश्चर्या की थी। धर्म के संरक्षण करने के लिये देव और असुरों ने उनकी अर्चना की थी ॥ १७ ॥

पंचमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम्।
प्रोवाच सूरये सांख्यं तत्वग्रामविनिर्णयम् ॥१८
षष्ठमत्रेरपत्यत्वं दत्तः प्राप्तोऽनसूयया।
आवीक्षिकीमलर्कामलर्कायप्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥१९
ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत।
सत्यामात्यैः सुरगणैर्यष्ट्वा स्वायम्भुवान्तरे ॥२०
अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः।
दर्शयन्वर्त्म नारीणां सर्वाश्रमनस्कृतम् ॥२१
ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः।
दुग्धैर्महौषधैर्विप्रास्तेन संजीविताः प्रजाः ॥२२
रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषान्तरसंप्लवे।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥२३
सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम्।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥२४

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ।
आप्याययत् सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन्स्त्रिया ॥२५

पांचवां अवतार सिद्धेश कपिल का हुआ था जिसने अधिक काल से विलुप्तहुए सांख्य शास्त्रकी व्याख्या कर तत्त्वोंका विशेष निर्णय बताया था। ॥१८॥ छटा अवतार अत्रिका सन्ततिके स्वरूपमें अनसूयाके द्वारा प्राप्त हुआ जिसमें आन्विक्षिकी विद्याको प्रह्लादादिके लियेबताया था॥१९॥सप्तम सर्ग रुचिसे आकूति में यज्ञ स्वरूप हुआ था और स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सामान्य सुरगणोंके साथ यजन किया था॥२०॥आठवें अवतारमें नाभि से मेरु देवी में उरुक्रम हुएथे और सम्पूर्ण आश्रमोंका वन्द्यमान नारियोंका धर्म प्रदर्शित किया था ॥२१॥ ऋषियों के द्वारा याचना करने पर नवम पार्थिव शरीर धारण किया था। हेविप्रगण! इस अवतारमें दुग्ध एवं महौषधियोंके द्वारा प्रजाओं को संजीवित किया था॥२२॥ उसने चाक्षुषान्तर संप्लवमें मत्स्य का रूपधारण किया था और महीमयी नौकामें चढ़ाकर वैवस्वत मनुकी रक्षा की थी ॥२३॥ उस व्यापक प्रभुने समुद्र के मन्थन करने में प्रवृत्त होने वाले दैत्योंके मन्थन दण्डकी स्थितिमें रहनेवाले मन्दराचलको एकादशवें अवतार में कमठ के रूप में पीठ पर धारण किया था॥२४॥भगवान् धनवन्तरि का बारहवाँ अवतार हुआ है। तेरहवें अवतारमें परम सुन्दरी मोहिनी का स्वरूप धारण कर अपने रूप लावण्यातिरेक से सबको मोहित करते हुए देवों को सुधा का पान करा कर तृप्त किया था ॥२५॥

चतुर्दशे नारसिंहं चैत्य दैत्येन्द्रमूर्जितम् ।
ददार करजैरुग्रै रेरकां कटकृद्यथा ॥२६

पञ्चदशं वामनको भूत्वाऽगादध्वरं बलेः ।
पादत्रय याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥२७

अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिः सप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥२८

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे वेदतरोः शाखां दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥२९
नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे कार्याण्यतः परम् ॥३०
एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥३१
ततः कलेस्तु सन्ध्यान्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥३२
अथ सोऽष्टमसन्ध्यायां नष्टप्रायेषु राजषु ।
भविता विष्णुयशसो नाम्ना कल्की जगत्पतिः ॥३३
अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः ।
मनुवेदविदो ह्याद्याः सर्वे विष्णु लाः स्मृताः ॥३४
तस्मात्सर्गादयो जाताः संपूज्याश्च व्रतादिना ।
अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा चाष्टौ शतानि च ॥३५

चौदहवाँ अवतार भगवान् नृसिहका हुआ था जिसमें अत्यन्त बलवान् दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यपु को एरकाकटकृत की भांति अपने अत्युग्र नखों से ही विदीर्ण किया था॥२६॥ पन्द्रहवाँ अवतार वामन देव का हुआ था जिसमें बहुत ही छोटा बामन अंगुलका बौना रूपधारण कर भगवान् राजाबलीके यज्ञ में गये थे । वहाँ केवल तीन पैंड़ भूमिकी याचना करके तीन लोकों के त्रिविष्टप को ही नाप डाला था ॥२७॥ सोलहवें अबतार में परशुराम का स्वरूप धारणकिया था । जब यहदेखा थाकि राजालोग ब्रह्मद्रोही होगयेहैं तो क्रोधित होकर ऐसा सङ्कल्प किया था कि मैं भूमिको क्षत्रियोंसे रहित कर दूँगा और इक्कीस बार उसे क्षत्रिय विहीन कर दिया था ॥२८॥फिर सत्रहवें अवतारमें पराशर मुनिसे सत्यवती नामवाली धीवर कन्यामें व्यास के स्वरूपमें समुत्पन्न हुएथे और मनुष्योंको अल्प बुद्धिवाले देखकर वेदरूपी वृक्षकी विभिन्न शाखाओं की रचना करदी थी ॥२९॥इसके पश्चात् देवों के

कार्यों के सम्पादन करने की इच्छा से नरदेवत्व को प्राप्त होकर समुद्र का निग्रह आदि कर्म किये थे ।। ३० ।। उन्नीसवें और बीसवें अवतारों में वृष्णियों के वंश में जन्म ग्रहण करके बलराम और कृष्ण इन शुभ नामों वाले अवतार हुए थे और भगवान् ने इस वसुधा का भार हलका किया था ।।३१।। इसके अनन्तर कलियुग के सन्ध्यान्त में सुरद्विषों के सम्मोह के लिये कीटकों में जिनका पुत्र 'बुद्ध' इस नाम वाला अवतार होगा ।।३२।। इसके पश्चात् अष्टम सन्ध्या में जबकि सभी राज्य प्रायः नष्ट जैसे हो जायँगे तब विष्णुयश से कल्की नाम वाला इस जगत् के स्वामी का अवतार होगा ।।३३।। हे द्विजगण ! सत्त्वनिधि भगवान् के यों तो असंख्य अवतार हैं । मनु वेदों के ज्ञाता आदि सभी विष्णु के ही कलांशावतार कहे गये हैं । इसीलिये ये सर्ग आदि हुए हैं कि इनकी व्रतादि के द्वारा भली-भाँति पूजा करनी चाहिए । पहिले व्यास मुनि ने आठ हजार आठ सौ पद्यों से पूर्ण यह गरुड़-पुराण को मुझे सुनाया था ।।३४।।३५।।

२--गरुड़ पुराण की उत्पत्ति

कथं व्यासेन कथितं पुराणं गारुड़ं तव ।
एतत्सर्वं समाख्याहि परं विष्णुकथाश्रयम् ।।१
अहं हि मुनिभिः सार्द्धं गतो बदरिकाश्रमम् ।
तत्र दृष्टो मया व्यासो ध्यायमानः परमेश्वरम् ।।
तं प्रणम्योपविष्टोऽहं पृष्टवान्हि मुनीश्वरम् ।।२
व्यास ब्रूहि हरे रूपं जगत्सर्गादिकं ततः ।
मन्ये ध्यायसि तं यस्मात्तस्ताज्जनासि तं विभुम् ।।३
एवं पृष्टो यथा प्राह तथा विप्रा निबोधत ।।४
शृणु सूत प्रवक्ष्यामि पुराणं गारुड़ं तव ।
सह नारददक्षाद्यैर्ब्रह्मा मामुक्तवान्यथा ।।५
दक्षनारदमुख्यैस्तु युक्तः त्वां कथमुक्तवान् ।
ब्रह्मा श्रीगारुड़ं पुण्यं पुराणं सारवाचकम् ।।६

अहं हि नारदो दक्षो भृग्वाद्याः प्रणिपत्य तम् ।
सारं ब्रूहीति पप्रच्छुर्ब्रह्माणं ब्रह्मलोकगम् ॥७
पुराणं गारुडं सारं पुरा रुद्रञ्च मां यथा ।
सुरैः सहाब्रवीद्विष्णुस्तथाऽहं व्यास वच्मि ते ॥८

ऋषियोंने कहा–महामुनि व्यास ने आपको यह गरुड़ महापुराण कैसे सुनाया था–भगवान् विष्णुके आश्रय युक्त इसे सबको हमें श्रवण कराइये । ॥१॥ सूतजी ने कहा–एक समय मैं मुनियों के साथ बदरिकाश्रम को गया थाऔर वहाँ मैंने परमात्माके ध्यानमें समास्थित व्यास मुनिका दर्शन किया था । उस वक्त मैं उनको प्रणामकरके उनके समीपमें बैठगया थाऔर फिर मैंने उस महामुनि से पूछा था–हे महामुनीश्वर व्यास देव ! भगवान् हरिके स्वरूप और फिर उनके द्वारा इस जगत्के सर्गादिक का वर्णन कीजिये । मैं यह समझताहूँ कि आप सर्वदा उनकाही ध्यानकिया करतेहैं अतएव व्यापक भगवान्के स्वरूप आदिको भली-भाँति जानते होंगे हे विप्रगण ! इस प्रकार से जब मैंने उनसे पूछा था तो जिस प्रकारसे उन्होंने मुझसे कहा था उसी तरह मैं तुमको बताता हूँ उसे तुम लोग मुझसे समझलो ॥२॥३॥व्यासजी ने मुझसे कहा था–हे सूत मैं अब तुमको गरुड़ पुराणको सुनाता हूँ जो कि नारद दक्ष आदि तथा ब्रह्माने मुझे कहा था । सूतजीने कहा मैंने व्यासजीसे भी इसी तरह पूछा था कि दक्ष नारद आदि प्रमुख देवोंने तथा ब्रह्माजीने यह परम सार वाचक गरुड़-पुराण अत्यन्त योग्य आपको क्यों सुनाया था? व्यासजीने इसके उत्तरमें मुझसे कहा थाकि एकबार मैं,नारद,दक्ष तथा भृगु प्रभृति सबने ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे पूछा थाकि आप परम सार वस्तु हमको बताइये तब ब्रह्माजी ने कहा था–हे व्यास! पहिले समयमें भगवान् विष्णु ने देवों के सहित रुद्र को और मुझको जो यह सारभूत गरुड़ पुराण कहा था वही अब मैं तुमको बताता हूँ ॥४॥५॥६॥७॥८॥

कथं रुद्रं सुरैः सार्द्धमब्रवीद्वा हरिः पुरा ॥
पुराणं गारुडं सारं ब्रूहि ब्रह्मन् महार्थकम् ॥९

अहं गतोऽद्रिकैलासमिन्द्राद्यैर्देवतैः सह ।
तत्र दृष्टो मया रुद्रो ध्यायमानः परं पदम् ॥१०
पृष्टो नमस्कृतः क त्वं देवं ध्यायसि शङ्कर ।
त्वत्तो नान्यं परं देवं जानामि ब्रूहि मां ततः ॥
सारात् सारतरं तत्त्वं श्रोतुकामः सुरैः सह ॥११
अहं ध्यायामि तं विष्णुं परमात्मानमीश्वरम् ।
सर्वदं सर्वगं सर्वं सर्वप्राणिहृदि स्थितम् ॥१२
भस्मोद्धूलितदेहस्तु जटामण्डलमण्डितः ।
विष्णोराराधनार्थं मे व्रतचर्या पितामह ॥१३
तमेव गत्वा पृच्छामः सारं यं चिन्तयाम्यहम् ।
विष्णुं जिष्णुं पद्मनाभं हरिं देहविवर्जितम् ॥१४
शुचिं शुचिपदं हंसं तत्पदं परमेश्वरम् ।
युक्त्वा सर्वात्मनात्मानं तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥१५

व्यास ने ब्रह्माजी से कहा था-हे ब्रह्मन् ! पहिले हरि भगवान् ने इस महान् से भी महान् अर्थ वाले गरुड़ पुराणको देवोंके साथ रुद्र देवको क्यों बताया था । तब ब्रह्माजी ने व्यास से कहा-एक बार मैं समस्त देवों को साथमें लेकर कैलास पर्वत पर गया था । वहाँ पर मैंने परम पद के ध्यान में स्थित भगवान् रुद्रदेव का दर्शनकिया था।।९।।१०।। हम लोगों ने उनको नमस्कार करके उनसे पूछा था—हे भगवन् शङ्कर! आप किस देवका ध्यान कर रहेहैं क्योंकि आपसे पर तो अन्य कोईभी देव नहींहै । हम इस बातको अच्छी तरह से समझते हैं । वह देव कौन है? आप ठीक प्रकार से मुझको बताइये । मैंइन सब देवोंके साथ यहाँ सार से भी सार स्वरूप जोदेव हो–उसे सुनना चाहता हूँ।।११।।मेरे इस प्रश्न का उत्तर रुद्रदेव ने देते हुए कहा था मैं उस परमात्मा ईश्वर भगवान् विष्णुका ध्यानकिया करताहूँ जोसभी कुछ प्रदान करने वाले-सर्वत्र गमन करने वाले-समस्त प्राणियों के हृदयमें स्थित और सर्व स्वरूप हैं । हेपितामह ! भस्मसे सम्पूर्ण शरीरको उद्धूलित

करके शिर पर जटाजूट धारण करने वाले मेरी उसी भगवान् विष्णु के आराधना करने की व्रतचर्या है ॥१२॥१३॥ जिसका में अहर्निश चिन्तन किया करता हूँ उन्हीं के समीप में चलो चलकर सार को पूछें। वे विष्णु हरि विष्णु पद्मनाभ और देह से रहित हैं। वे स्वयं शुचि हैं-उनका पद (स्थान) परम शुचि (पवित्र) है। वे ब्रह्म स्वरूप हैं-परम ईश्वर हैं। वे सर्वात्माओं से युक्त होकर विराजमान हैं उन्हीं परात्पर परम देव का मैं ध्यान किया करता हूँ ॥१४॥१५॥

यस्मिन्विश्वानि भूतानि तिष्ठन्ति च विशन्ति च।
गुणभूतानि भूतेशे सूत्रे मणिगणा इव ॥१६
सहस्राक्षं सहस्राङ्घ्रिं सहस्रोरुं वराननम्।
अणीयसमाणीयांसं स्थविष्ठञ्च स्थवीयसाम् ॥
गरीयसां गरिष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च श्रेयसामपि ॥१७
यं वाक्येष्वनुवाक्येषु निषत्सूपनिषत्सु च।
गृणन्ति सत्यकर्माणं सत्यं सत्येषु सामसु ॥१८
पुराणपुरुषः प्रोक्तो ब्रह्मा प्रोक्तो द्विजातिषु।
क्षये सङ्कर्षणः प्रोक्तस्तमुपास्यमुपास्महे ॥१९
यस्मिन्लोकाः स्फुरन्तीमे जलेषु शकुलो यथा।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म यत्तत्सदसतः परम् ॥
अर्चयन्ति च य देवा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥२०
यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्द्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः।
चन्द्रादित्यौ च नयने तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२१
यस्य त्रिलोकी जठरे यस्य काष्ठाश्च बाहवः।
यस्योच्छ्वासश्चपवनः तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२२
यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२३

समस्त भूनों के ईश उनमें सूत्रमें मणियोंकी भाँति इस सम्पूर्ण विश्वमें स्थित रहा करतेहैं और गुरुभूत होकर प्रवेशकिया करतेहैं।।१६।।वे भगवान् विष्णु सहस्र नेत्रों वाले हैं -सहस्रों चरणों से युक्त हैं उनके सहस्रों ऊरु हैं–श्रेष्ठ मुख वाले–सूक्ष्मों में भी परम सूक्ष्म स्थूलों से भी अति स्थूल–गुरुओं में सबसे अधिक गुरु और श्रेयों में सर्वश्रेष्ठ हैं । जिनको वाक्यों–अनुवादोंमें, उपनिषदों में सत्य कर्म करने वाला ग्रहण किया जाता है और सत्य सामोंमें उनका सत्य स्वरूप बताया जाता है ।।१७।।१८।। उन्हें ही पुराण पुरुषऔर द्विजातियोंमें ब्रह्म कहा गया है और उनको ही इस सृष्टिके क्षय कालमें सङ्कर्षण नाम से पुकारा गया है । उसी उपासना करने के योग्य भगवान्की हम उपासना किया करते हैं।।१९।। जिसमें यह समस्त लोकों का समुदाय जलमें शकुल की भाँति स्फुरित हुआ करता है । वह ऋत–एकाक्षर ब्रह्म और सत् अथवा असत्से भी पर है । जिसकी अर्चना ये सभी यक्ष-राक्षस और पन्नग किया करते हैं।।२०।। अग्नि जिसका मुख है-दिवलोक जिसका मूर्द्धा है—आकाश नाभि-चरण क्षिति तल और चन्द्र एवं सूर्य जिस परमात्माके दोनों नेत्र हैं मैं उसी देव का निरन्तर ध्यान एवं चिन्तन किया करता हूँ।।२१।।यह त्रैलोक्य अर्थात् तीनों लोक जिसके उदरमें हैं समस्त दिशाएँ जिसकी बाहु हैं-पवन जिसका उच्छ्वास है उसी परम देव का मैंचिन्तन किया करता हूँ। ।।२२।। जिसके केशों में मेघ है और नदियाँ समस्त अङ्गों की संधियों में हैं तथा जिसकी कुक्षि में चारों समुद्र स्थित रहा करते हैं उसी देव का मैं ध्यान करता हूँ ।। २३ ।।

पर: कालात्परो यज्ञात्पर: सदसतश्च य: ।
अनादिरादिर्विश्वस्य तं देवं चिन्तयाम्यहम् ।।२४

मनसश्चन्द्रमा यस्य चक्षुषोश्च दिवाकर: ।
मुखादग्निश्च संजज्ञे तं देवं चिन्तयाम्यहम् ।।२५

पद्भ्यां यस्य क्षितिर्जाता श्रोत्राभ्यां च तथा दिश: ।
मूर्द्धभागाद्दिवं यस्य तं देवं चिन्तयाम्यहम् ।।२६

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वशानुचरितं यस्मात्तं देव चिन्तयाम्यहम् ॥२७
य ध्यायाम्यहमेतस्माद् व्रजामः सारमीक्षितुम् ॥२८
इत्युक्तोऽहं पुरा रुद्र श्वेतद्वीपनिवासिनम् ।
स्तुत्वा प्रणम्य तं विष्णुं श्रोतुकामाः किल स्थिराः ॥२९
अस्माकं मध्यतो रुद्र उवाच परमेश्वरम् ।
सारात्सारतर विष्णुं पृष्टवांस्तं प्रणम्य वै ॥३०
यथा पृच्छसि मां व्यासस्तथासौ भगवान्भवः ।
पप्रच्छ विष्णुं देवाद्यैः शृण्वतो मम वै सह ॥३१

जो परमेश काल से भी पर हैं—यज्ञ से और सत् तथा असत् से भी पर है-जिसका कोई आदि काल नहीं है ऐसे इस विश्वके आदि स्वरूप उस देवेश्वर का मैं चिन्तन करता हूँ॥२४॥जिसके मनसे चन्द्रमा-नेत्रों से दिवाकर (सूर्य)-मुख से अग्नि—की उत्पत्ति होती है उस देव की मैं आराधना करता हूँ॥२५॥जिसके चरणोंसे भूमि समुन्नत हुई है तथा श्रोत्रोंसे सम्पूर्ण दिशाओंकी उत्पत्ति हुई है और जिसके मूर्द्धाके भागसे दिवलोक पैदा हुआ है मैं उसी देव का ध्यान करता हूँ॥२६॥ सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर और वंशानुचरित जिससे ये सभी हुए है मैं उस देव का चिन्तन किया करताहूँ। ॥२७॥ मैं जिसका ध्यान करता हूँ उसीसे इसका सार जानने को हम सब चलते हैं॥२८॥इस प्रकारसे कहे जाने पर मैं और रुद्र श्वेत द्वीपमें निवास करनेवाले भगवान्विष्णुके पास जाकर सबने उन्हें प्रणामकिया और श्रवण करने की इच्छा वाले वहाँ स्थिर होकर बैठ गये थे ॥२९॥ हम सबमें से रुद्रदेव परमेश्वर से बोले और सार से भी जो सार है उसे विष्णु से उन्होंने पूछा था और उनको प्रणाम किया था ॥३०॥ ब्रह्मा ने कहा—जैसे व्यास मुझसे पूछते हैं वैसे ही भगवान् भव ने विष्णु से पूछा था। वहाँ उस समय समस्त देवों के सहित मैं भी श्रवण कर रहा था ॥३१॥

हरे कथय देवेश देवदेवः क ईश्वरः ।
को ध्येयः कश्च वै पूज्यः कैर्व्रतैस्तुष्यते परः ।।३२
कैर्धर्मैः कैश्च नियमैः कया वा धर्मपूजया ।
केनाचारेण तुष्टः स्यात्किं तद्रूपश्च तस्य वै ।।३३
कस्माद्देवाज्जगज्जातं जगत्पालयते च कः ।
कीदृशैरवातारैश्च कस्मिन्याति लयं जगत् ।।३४
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
कस्माद्देवात्प्रवर्त्तन्ते कस्मिन्नेतत्प्रतिष्ठितम् ।।
एतत्सर्वं हरे ब्रूहि यच्चान्यदपि किञ्चन ।।३५
परमेश्वरमाहात्म्यं युक्तयोगादिकं तथा ।
तथाऽष्टादशविद्याश्च हरी रुद्रं ततोऽब्रवीत् ।।३६
शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा च सुरैः सह ।
अहं हि देवो देवानां सर्वलोकेश्वरेश्वरः ।।३७

भगवान् रुद्र ने कहा—हे देवों के स्वामिन् ! हे हरे ! आप कृपा कर हमको यह बताइये कि देवों का भी देव ईश्वर कौन है? कौन ध्यान करने योग्य है और किसकी पूजा करनी चाहिए ? वह परदेव जो भी कोई हो, किन व्रतों से तुष्ट हो जाता है ? ।।३२।। किन धर्मों के द्वारा तथा कौन-से नियमों की उपासना करने से अथवा किस धर्म की अर्चना से और किस प्रकार के कौन-से आचार से वह सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होता है ? यह भी बताइये उनका स्वरूप क्या है ? ।।३३।। किस देव से यह जगत् समुत्पन्न हुआ है और इसका कौन पालन किया करता है ? वे किस प्रकार के अवतार हुआ करते हैं ? अन्त में यह जगत् किस में विलीन हो जाया करता है ।।३४।। सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर और वंशानुचरित किस देव से प्रवृत्त हुआ करते हैं और किस में जाकर प्रतिष्ठित हुआ करते हैं ? हे हरे! यह सब बताइये । इसके अतिरिक्त अन्य भी कुछ बताने के योग्य हो वह भी बता दीजिये ।।३५।। इसके अनन्तर भगवान् हरि ने रुद्र देव को परमेश्वर का माहात्म्य-युक्त का योगादिक तथा अठारह विद्यायें बताई थीं ।

॥३६॥ हरि ने कहा - हे रुद्र ! ब्रह्मा और समस्त देवों के सहित आप श्रवण करो, मैं अब तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। मैं ही सम्पूर्ण देवों का देव तथा समस्त लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर हूँ ॥ ३७ ॥

अहं ध्येयश्च पूज्यश्च स्तुत्योऽहं स्तुतिभिः सुरैः ।
अहं हि पूजितो रुद्र ददामि परमां गतिम् ॥३८
नियमैश्च व्रतैस्तुष्ट आचारेण च मानवैः ।
जगत्स्थितेरहं बीजं जगत्कर्त्ता त्वहं शिव ॥३९
दुरनिग्रहकर्त्ता हि धर्मगोप्ता त्वहं हर ।
अवतारैश्च मत्स्याद्यैः पालयाम्यखिलं जगत् ॥४०
अहं मन्त्राश्च मन्त्रार्थः पूजाध्यानपरो ह्यहम् ।
स्वर्गादीनांच कर्त्ताऽहं स्वर्गादीन्यहमेव च ॥४१
ज्ञाता श्रोता तथा मन्ता वक्ता वक्तव्यमेव च ।
सर्वः सर्वात्मको देवो भुक्तिमुक्तिकरः परः ॥४२
ध्यानं पूजोपहारोऽहं मण्डलान्यहमेव च ।
इतिहासान्यहं रुद्र सर्वदेवो ह्यहं शिव ॥४३
सर्वज्ञानान्यहं शम्भो ब्रह्मात्माहमहं शिवः ।
अहं ब्रह्मा सर्वलोकः सर्वदेवात्मको ह्यहम् ॥४४
अहं साक्षात्सदाचारो धर्मोऽहं पुरातनः ॥४५
यमोऽहं नियमो रुद्र व्रतानि विविधानि च ।
अहं सूर्यस्तथा चन्द्रो मङ्गलादीन्यहं तथा ॥४६

मैं ही ध्यान करने के योग्य हूँ—पूजा करने के योग्य हूँ। हे रुद्र ! मैं ही पूजित होकर परम प्रसन्न होते हुए परम गति प्रदान किया करता हूँ ॥ ३८ ॥ मानवों के शुद्ध आचार-व्रत और नियमों से मैं अधिक सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुआ करता हूँ। इस जगत् की स्थिति का मैं ही बीज हूँ और हे शिव ! मैं ही इस जगत् की रचना करने वाला हूँ ॥ ३९ ॥ हे हर ! दुष्टजनों के निग्रह को करने वाला और धर्म की रक्षा करने वाला भी मैं हूँ। मत्स्य आदि अनेक अवतारों

के द्वारा मैं इस समस्त जगत् का पालन करता हूँ ।। ४० ।। मैं ही स्वयं मन्त्र हूँ तथा मैं ही अर्थ भी हूँ और पूजा एवं ध्यान में तत्पर रहने वाला मैं ही हूँ । स्वर्ग आदि का करने वाला और स्वर्गादि भी मैं ही हूँ ।।४१।। ज्ञाता अर्थात् ज्ञान रखने वाला -श्रवण करने वाला--मन्ता--वक्ता और वक्तव्य भी यह सब कुछ सर्वात्मक अर्थात् सबके स्वरूप वाला देव--भुक्ति तथा मुक्ति का करने वाला परम मैं ही हूं ।।४२।। ध्यान--पूजा का उपहार अर्थात् वे सभी पदार्थ जो अर्चा में समर्पित किये जाते हैं मैं हूँ । समस्तमण्डल मैं हूँ—इतिहास भी मैं ही हूँ । हे रुद्र ! समस्त देवों का स्वरूप भी मेरा ही स्वरूप है—मैं ही शिव हूँ । ।।४३।। हे शम्भो ! मैं ब्रह्मा की आत्मा हूँ-मैं ही ब्रह्मा समस्त लोक और सर्व देवात्मक मैं ही हूँ ।। ४४ ।। साक्षात् सदाचार-धर्म और वैष्णव तथा वर्ण एवं सम्पूर्ण सदाचार उनके धर्म और पुरातन मैं ही हूँ अर्थात् यह सब भी मेरा ही स्वरूप है ।। ४५ ।। हे रुद्र ! यम–नियम-विविध भाँति के व्रत सूर्य–चन्द्र तथा मङ्गल आदि अन्य ग्रह ये सब मेरा ही स्वरूप है ।। ४६ ।।

पुरा मां गरुडः पक्षो तपसाऽऽराधयद् भुवि ।
तुष्ट ऊचे वरं ब्रूहि मत्तो वव्रे वरं स च ।।४७
मम माता च विनता नागैर्दासीकृता हरे ।
यथाहं देवताञ्जित्वा चामृतं ह्यानयामि तत् ।।४८
दास्याद्विमोक्षयिष्यामि यथाहं वाहनस्तव ।
महाबलो महावीर्यः सर्वज्ञो नागदारणः ।।
पुराणसंहिताकर्त्ता यथाऽहं स्यां तथा कुरु ।।४९
यथा त्वयोक्तं गरुड़ तथा सर्वं भविष्यति ।
नागदास्यान्मातरं त्वं विनतां मोक्षयिष्यसि ।।५०
देवादीन्सकलाञ्जित्वा चामृतं ह्यानयिष्यति ।
महाबलो वाहनस्त्वं भविष्यसि विषार्दनः ।५१
पुराणं मत्प्रसादाच्च मम माहात्म्यवाचकम् ।
यदुक्तं मत्स्वरूपंच तव चाविर्भविष्यति ।।५२

गारुड़ं तव नाम्ना तल्लोके ख्यातिं गमिष्यति ।
यथाऽहं देवदेवानां श्रीः ख्याता विनतासुत ॥
तथा ख्यातिं पुराणेषु गारुडं गरुड़ेष्यति ॥५३

पहिले गरुड़ पक्षी ने भूतल में तपश्चर्या के द्वारा मेरी समाराधना की थी। मैं उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उससे बोला था कि तू अपना अभीष्ट वरदान माँगले। उसने मुझसे कहा था-हे हरे ! मेरी विनता को नागों ने दासी बना रखा है। ऐसा कृपया वर दीजिये कि मैं देवों को जीत कर अमृत को ले आऊँ और माता को दासीपन से छुटकारा दे सकूँ और मैं आपका वाहन बन जाऊँ-सर्वज्ञाता और नागों को विदीर्ण करने वाला तथा समस्त पुराण एवं संहिताओं की रचना का विधायक हो जाऊँ ॥४८॥४९॥ तब विष्णुने कहा था-हे गरुड़! जो कुछ तुमने मुझसे याचना करके कहा है वह सभी कुछ होजायगा। तू अपनी माता विनता को नागोंके दास्य भावसे भी अवश्य विमुक्त कर देगा॥५०॥तुम सब देवताओंपर विजय करके अमृत लें आओगे और महान् बलशाली विषका मर्दन करने वाला मेरा वाहन भी बन जाओगे॥५१॥मेरी कृपासे मेरे माहात्म्यको बताने वाले पुराणकी रचना के विषयमें जोतुमने चाहा है वह मेरा स्वरूपभी तुमको आविर्भूत होजायगा। ॥५२॥ हे विनता के पुत्र ! जिस प्रकार से देवदेवों की श्री मैं विख्यातहूँ उसी भाँति वह पुराण तुम्हारे नाम से गारुड़ यह लोकमें ख्यातिको प्राप्त होगा। पुराणों में वह गारुड़ की ख्याति गरुड़ की तीव्र गति के समान ही प्रसृत हो जायगी ॥५३॥

यथाहं कीर्त्तनीयोऽथ तथा त्वं गरुड़ात्मना ।
मां ध्यात्वा पक्षिमुख्येदं पुराणं गद गारुड़म् ॥५४
इत्युक्तो गरुड़ो रुद्र कश्यपायाह पृच्छते ।
कश्यपो गारुड़े श्रुत्वा वृक्षं दग्धमजीवयत् ॥५५
स्वयञ्चान्यमना भूत्वा विद्ययाऽन्यान्यजीवयत् ।
यक्षि ॐ उं स्वाहा जापो विद्येय गारुड़ो परा ।
गरुड़ोक्तं गारुड़ं हि शृणु रुद्र महात्मकम् ॥५६

जिस प्रकार से मैं कीर्त्तन करने के योग्य हूँ वैसे ही तुम भी गरुड़ात्मा के द्वारा कीर्त्तनके योग्य हो । मेरा ध्यान करके पक्षि मुख्य का यह गारुड़-पुराण कहो ।।५४।। हे रुद्र! इस रीति से कहे हुए गरुड़ने पूछने वाले कश्यप से कहा था । कश्यप ने गारुड़पुराण का श्रद्धा से श्रवण कर दग्ध हुए वृक्ष को सजीव कर दिया था ।।५५।।और स्वयं अन्य मन वाला होकर विद्या से अन्यों को जीवित कर दिया था । "यक्षि ॐ ह्रूं स्वाहा"-इसका जाप करने वाला हुआ । यह परा गारुड़ी विद्या है । हे रुद्र ! गरुड़ के द्वारा कहा गया गारुड़ माहात्म्य का आप श्रवण करो ।। ५६ ।।

३--पुराण कीर्तन का उपक्रम

इति रुद्राब्जजो विष्णोः शुश्राव ब्रह्मणो मुनिः ।
व्यासो व्यासादहं वक्ष्येऽहं ते शौनक नैमिषे ।।१
मुनीनां शृण्वतां मध्ये सर्गाद्यं देवपूजनम् ।
तीर्थं भुवनकोषञ्च मन्वन्तरमिहोच्यते ॥२

वर्णाश्रमादिधर्मांश्च दानराज्यादिधर्मकाः ।
व्यवहारो व्रतं वशा वैद्यकं सनिदाकम् ॥३

अङ्गानि प्रलयो धर्मकामार्थज्ञानमुत्तमम् ।
सप्रपञ्चं निष्प्रपंचं कृत विष्णोर्निगद्यते ॥
पुराणे गारुड़े सर्वं गरुड़ो भगवानथ ।।४

वासुदेवप्रसादेन सामर्थ्यातिशयैर्युतः ।
भूत्वा हरेर्वाहनञ्च सर्गादीनांच कारणम् ।।
देवान् विजित्य गरुड़ो ह्यमृताहरणं तथा ।।५

चक्रे क्षुधाहतं यस्य ब्रह्माण्डमुदरे हरेः ।
यं दृष्ट्वा स्मृतमात्रेण नागदीनांच संक्षयम् ।।६

कश्यपो गारुड़ाद् वृक्षं दग्धं चाजीवयद्यतः ।
गरुड़ः स हरिस्तेन प्रोक्तं श्रीकश्यपाय च ।।७

तत् श्रीमद्गारुड़ं पुण्यं सर्वदं पठितं तव ।
हरिरित्थं च रुद्राय शृणु शौनक तद्यथा ॥८

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! यह व्यास मुनि ने रुद्र और ब्रह्मा से परम ब्रह्म भगवान् विष्णु ने कहा था । फिर व्यास मुनि से मैंने सुना था । उसे तुमसे कहता हूँ । नैमिषारण्य में समस्त श्रवण करने वाले मुनियों के मध्य में यहाँ पर सर्ग का आस्त्र–देवपूजन–तीर्थ–भुवन कोष और मन्वन्तर कहा जाता है ॥१॥२॥ वर्णों का तथा आश्रमों आदि के धर्म, दान और राज्य प्रभृति के धर्म व्यवहार, व्रत, वंश, निदान के सहित वैद्यक, अङ्ग, प्रलय तथा धर्म, काम और अर्थ का उत्तम ज्ञान विष्णु का किया हुआ है प्रपञ्च सहित एवं निष्प्रपञ्च सब कहा जाता है । यह सभी कुछ भगवान् गरुड़ ने अपने गारुड़ पुराण में कहा है ॥३॥४॥ भगवान् वासुदेव के प्रसाद से अतिशयित सामर्थ्य से युक्त होकर गरुड़ हरि भगवान् का वाहन हुआ और सर्गादि का कारण बना था । तथा समस्त देव आदि के ऊपर विजय प्राप्त कर गरुड़ ने अमृत का अपहरण किया था ॥५॥ जिस भगवान् हरि के उदर में क्षुधा से आहत ब्रह्माण्ड किया था, जिसको देखकर स्मरण मात्र से ही नाग आदि का संक्षय किया था ॥६॥ कश्यप ने गारुड़ से ही वृक्ष को दग्ध कर दिया था । भगवान् हरि ने गरुड़ से कहा था और गरुड़ ने इस विद्या को कश्यप को बताया था ॥७॥ वह श्रीमत् गारुड़ पुराण पढ़ने पर तुमको सब प्रदान करने वाला होगा । इस प्रकार से भगवान् हरि ने रुद्र देव से कहा था । हे शौनक ! अब आप लोग मुझसे यह सब उसी प्रकार से श्रवण करो ॥ ८ ॥

४–सृष्टिकथन, (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि की उत्पत्ति)

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव एतद् ब्रूहि जनार्दन ॥१
शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि सर्गादीन् पापनाशनान् ।
सर्गस्थितिप्रलयान्तां विष्णोः क्रीड़ां पुरातनीम् ॥२

नरनारायणो देवो वासुदेवो निरञ्जनः ।
परमात्मा परं ब्रह्म जगज्जनिलयादिकृत् ॥३
तदेतत् सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत् ।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥४
व्यक्तं विष्णुस्तथाऽव्यक्तं पुरुषः काल एव च ।
क्रीड़तो बालकस्येव चेष्टास्तस्य निशामय ॥५
अनादिनिधनो धाता त्वनन्तः पुरुषोत्तमः ।
तस्माद्भवति चाव्यक्तं तस्मादात्मापि जायते ॥६
तस्माद् बुद्धिर्मनस्तस्मात्ततः खं पवनस्ततः ।
तस्मात्तेजस्ततस्त्वापस्ततो भूमिस्ततोऽसृजत् ॥७

श्री रुद्रदेव ने कहा–हे जनार्दन ! अब आप कृपा करके सर्ग-प्रतिसर्ग–वंश–मन्वन्तर और वंशानुचरित वर्णन कीजिये । अब भगवान् श्री हरि ने कहा – हे रुद्र ! तुम श्रवण करो, अब मैं पापों के नाश करने वाले सर्ग आदि का वर्णन करता हूँ जो कि भगवान् विष्णु की सर्ग-स्थिति और प्रलय के अन्त तक बहुत पुरातम क्रीड़ा होती है ॥१॥२॥ देव-नारायण, वासुदेव, निरञ्जन, परमात्मा परब्रह्म और इस जगत् के जन्म और निलय आदि के करने वाले हैं । वही यह सब व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाला है तथा वह ही पुरुष के रूप से और काल के स्वरूप में अब स्थित रहता है ॥ ४ ॥ विष्णु व्यक्त स्वरूप वाले हैं और उसी का अव्यक्त स्वरूप पुरुष तथा काल होता । एक बालक की भाँति क्रीड़ा करने वाले उस परम पुरुष की समस्त चेष्टाओं का श्रवण करो ॥ ५ ॥ धाता पुरुषोत्तम भगवान् आदि और अन्त से रहित एवं अनन्त स्वरूप वाले हैं । उनसे अव्यक्त और उससे आत्मा भी उत्पन्न होता है ॥६॥ उस से बुद्धि मन होता है । फिर उससे आकाश, उससे पवन, फिर उससे तेज, उससे जल और उससे भूमि का सृजन किया था ॥ ७ ॥

अण्डो हिरण्मयो रुद्र तस्यान्तः स्वयमेव हि ।
शरीरग्रहणं पूर्वं सृष्टयर्थं कुरुते प्रभुः ॥८

ब्रह्मा चतुर्मुखो भूत्वा रजोमात्राधिकः सदा ।
शरीरग्रहणं कृत्वाऽसृजदेतच्चराचरम् ॥९

अण्डस्यान्तर्जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च ॥
उपसंहरते चान्ते संहर्त्ता च स्वयं हरिः ॥१०

ब्रह्माभूत्वासृजद्विष्णुर्जगत् पाति हरिः स्वयम् ।
रुद्ररूपी च कल्पान्ते जगत् संहरते प्रभुः ॥११

ब्रह्मातु सृष्टिकालेऽस्मिन् जलमध्यगतां महीम् ।
दंष्ट्रयोद्धरति ज्ञात्वा वाराहीमास्थितस्तनुम् ॥१२

देवादिसर्गाद्वक्ष्येऽहं संक्षेपाच्छृणु शङ्कर ।
प्रथमो महतः सर्गो विरूपो ब्रह्मणस्तु सः ॥१३
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः ।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चेन्द्रियकः स्मृतः ॥१४

इत्येषः प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥१५

हे रुद्र ! हिरण्य अण्ड और उसके मध्य में स्वयं ही विराजमान रहते हैं । प्रभु पहिले ऋषि के लिये शरीर का ग्रहण किया करते हैं ॥८॥ चार मुखों वाला ब्रह्मा सदा रजोगुण की अधिक मात्रा वाला होकर शरीर ग्रहण करते हैं और फिर उन्होंने इस सम्पूर्ण चर एवं अचर जगत् का सृजन किया था॥९॥ स्रष्टा अण्ड के समस्त अन्तर्जगत् को जिसमें देव-असुर मनुष्य सभी हैं रचते हैंऔर विष्णु आत्मा को तथा पालन करने के योग्य का पालन एवं रक्षण करते हैं । फिर अन्तमें स्वयं ही हरि ही संहर्त्ता होकर इस जगत् का उप संहरण किया करते हैं।।१०।।प्रभु ब्रह्मा का स्वरूप धारण करके सृजन करते हैं-हरि स्वयं ही विष्णु के रूपमें फिर इस जगत् का पालन करते हैं और कल्पके अन्तमें वही प्रभु रुद्रके रूप वाले होकर सम्पूर्ण जगत् का सहार किया करते है ॥११॥ ब्रह्मा सृष्टि के समय में इस मही को जल के मध्य में

गई हुई जानकर वाराहके शरीर को धारण कर अपनी दाढ़ से इसका उद्धार किया है।।१२।। हे शङ्कर ! अब हम देवादि के सर्ग से संक्षेप में कहेंगे। तुम इसको सुनो। सबसे प्रथम महत्तत्त्व का सर्ग है जो ब्रह्म का विरूप होता है। ।।१३।। दूसरा पञ्चतन्मात्राओं का सर्ग होता है जोकि भूत सर्ग इस नाम से कहा गया है। तीसरा ऐन्द्रियक सर्ग होता है और वैकारिक सर्ग कहा जाता है। इस प्रकार से बुद्धि पूर्वक यह प्राकृत सर्ग सम्भूत हुआ है। फिर चतुर्थ मुख्य सर्ग होता है और मुख्य स्थावर कहे गये हैं ।।१४।।१५।।

तिर्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स उच्यते ।
तदूर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।।१६
ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसस्तु सः ।।१७
पंचैते वैकृताः सर्गा प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ।
प्राकृतो वैकृतश्चापि कौमारो नवमः स्मृतः ॥१८
स्थावरान्ताः सुराद्यास्तु प्रजा रुद्र चतुर्विधाः ।
ब्रह्मणः कुर्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसाः सुताः ।।१६
ततो देवासुरपितॄन् मानुषांश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमपूजयत् ।।२०
मुक्तात्मनस्तु मात्रायामुद्रिक्ताभूत् प्रजापतेः ।
सिसृक्षोर्जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः ।।२१
उत्ससर्ज ततस्तां तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् ।
तमोमात्रा तनुस्त्यक्ता शङ्कराऽभूद्विभावरी ॥२२

तिर्यक् स्रोत जो बताया गया है वह तिर्यग् योन्य सर्ग कहा जाता है। उससे ऊर्ध्व स्रोतों में छटवाँ सर्ग नाम से पुकारा जाता है।।१६।।उससे अर्वाक् स्रोतों में सातवाँ मानुष सर्ग होता है। आठवाँ अनुग्रह सर्ग है। वह सात्विक और तामस होता है ।।१७।। इस तरह ये पाँच वैकृत सर्ग होते हैं और तीन प्राकृत सर्ग कहे गये हैं। कौमार नवम सर्ग है जो प्राकृत और वैकृत दोनों

प्रकार का होता है ॥१८॥ हे रुद्र ! सुरों से आदि लेकर स्थावरों पर्यन्त चार प्रकार की प्रजा होती है। सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा के मानस पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥१९॥ इसके पश्चात् देव, असुर, पितृगण और मानुष इन चारों के सृजन की इच्छा रखने वाले ब्रह्मा ने इन जलों में अपनी आत्मा का अर्चन किया था ॥ २० ॥ मुक्तात्मा प्रजापति की मात्रा में उद्रिक्ता हुई थी। सृजनेच्छुक के जाँघ से पहिले असुर उत्पन्न हुए थे ॥ २१ ॥ फिर उस तमोमात्रात्मक शरीर का त्याग कर दिया था और तमोमात्रा त्यक्त वह तनुशङ्करा विभावरी (अँधेरी रात्रि) हो गई थी ॥ २२ ॥

सिसृक्षुरन्यदेहस्थः प्रीतिमाप ततः सुराः ।
सत्वोद्रिक्तास्तु मुखतः संभूता ब्रह्मणो हर ॥२३
सत्वप्राया तनुस्तेन संत्यक्ता साऽभवद् दिनम् ।
ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा ॥२४
सत्वमात्रान्तरं गृह्य परतश्च ततोऽभवन् ।
सा चोत्सृष्टाऽभवत् सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता ॥२५
रजोमात्रान्तरं गृह्य मनुष्यास्त्वभवंस्ततः ।
सा त्यक्ता चाभवज्ज्योत्स्ना प्राक्सन्ध्या याभिधीयते ॥२६
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या शरीराणि तु तस्य वै ।
रजोमात्रान्तरं गृह्य क्षुदभूत् कोप एव च ॥२७
क्षुत्क्षामानसृजत् ब्रह्मा राक्षसान् रक्षणाच्च सः ।
यक्षाख्या यक्षणाज्ज्ञेयाः सर्पा वै केशसर्पणात् ॥२८

हे हर ! जब अन्य देहमें स्थित होकर सृष्टिके सृजन की इच्छा करने वाले हुए तो बहुत प्रीति को प्राप्त हुए और ब्रह्मा के मुख से सत्त्व गुण के उद्रेक वाले सुर समुत्पन्न हुएथे॥२३॥वह सत्त्वोद्रिक्त शरीरभी उसने त्यक्त कर दिया था जो कि दिन होगया था। तभी से असुर लोग रात्रि में बल सम्पन्न हुए थे और देवगण दिन में बली हुए थे॥२४॥ सत्त्वमात्रा के और अन्य के अन्तर के उत्सर्ग से दिन तथा रात्रिके मध्य में स्थित रहने वाली

सन्ध्या समुत्पन्न हुई थी ।।२५।। रजोमात्रान्तर का ग्रहण करके फिर उस शरीर से मनुष्य उत्पन्न हुए थे । वह शरीर भी परित्यक्त कर दिया तो ज्योत्स्ना हुई जो प्राक्सन्ध्या कही जाती है ।।२६।। ये ज्योत्स्ना-रात्रि-दिन और सन्ध्या उसके शरीर ही हैं । रजो तन्मात्रा का ग्रहण करके क्षुधा और कोप हुए थे ।।२७।। उस ब्रह्मा ने क्षुधा से क्षाम और रक्षण से राक्षसों का सृजन किया था । यक्षण और केश सर्पण से सर्प जानना चाहिए ।। २८ ।।

जाताः कोपेन भूताद्या गन्धर्वा जज्ञिरे ततः ।
गायन्तो जज्ञिरे वाचं गन्धर्वास्तेन तेऽनघ ।।२९
अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोऽजाः स सृष्टवान् ।
सृष्ट्वानुदराद्गाश्च पार्श्वाभ्यां च प्रजापतिः ।।३०
पद्भ्याश्चाश्वान् समातङ्गान् गर्दभोष्ट्रादिकांस्तथा ।
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।।३१
गौरजः पुरुषो मेषः अश्वाश्वतरगर्दभाः ।
एतान् ग्राम्यान् पशून् प्राहुरारण्यांश्च निबोध मे ।।३२
श्वापदं द्विखुरं हस्तिवानराः पक्षिपञ्चमाः ।
औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमाश्च सरीसृपाः ।।३३
पूर्वादिभ्यो मुखेभ्यस्तु ऋग्वेदाद्याः प्रजज्ञिरे ।
आस्याद्वै ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियाः स्मृताः ॥
ऊरुभ्यां तु विशः सृष्टाः शूद्रः पद्भ्यामजायत ।।३४
ब्राह्मो लोको ब्राह्मणानां शाक्रः क्षत्रियजन्मनाम् ।
मारुतश्च विशां स्थानं गान्धर्वं शूद्रजन्मनाम् ॥३५
ब्रह्मचारिव्रतस्थानां ब्रह्मलोकः प्रजायते ।
प्राजापत्यं गृहस्थानां यथाविहितकारिणाम् ।।३६
स्थानं सप्त ऋषीणां च तथैव वनवासिनाम् ।
यतीनामक्षयं स्थानं यदृच्छागामिनां सदा ।।३७

कोप से भूतादि की समुत्पत्ति हुई थी। फिर गन्धर्व उत्पन्न हुए थे। हे अनघ! वे गायन करते हुए ही उत्पन्न हुए थे इसीलिये उनको गन्धर्व इस नाम से कहा गया है।।२९।।उस प्रजापति ने अवियों (भेड़ों को अपने वक्षःस्थल से और मुखसे बकरियों को उत्पन्न किया था। प्रजापति ने अपने उदर और पार्श्व भागों से गायों का सृजन किया था।।३०।। ब्रह्मा ने अपने पैरों से अश्व, हाथी, गर्दभ, उष्ट्र आदि को उत्पन्न किया था उनके रोमों से सम्पूर्ण औषधियाँ,फल और मूल उत्पन्न हुए थे।।३१।। गौ, अज, पुरुष, मेष, अश्व अश्वतर और गर्दभ इन सबको ग्राम्य पशु कहा जाताहै। अबजो अरण्य में होने वाले पशु होते हैं उनको भी मुझसे समझलो। श्वापद,दो खुरों वाले, हाथी, वानर और पाँचवें पक्षी, छटवें जल में रहने वाले पशु होते हैं तथा सातवें सरीसृप अर्थात् रैंग कर चलने वाले होते हैं।।३२।।३३।। पूर्व आदि ब्रह्माके मुखों से ऋग्वेद आदि की समुत्पत्ति हुई थी। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण और बाहुओं से क्षत्रिय समुत्पन्न हुए हैं। ऊरुओं से वैश्य तथा चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए थे।।३४।। ब्राह्मणोंका ब्रह्मलोक है,क्षत्रियों का शाक्रलोक, वैश्यों का स्थान मारुत लोक और शूद्रों का गान्धर्व स्थान है।।३५।।जो ब्रह्मचारियों के व्रतमें स्थित हैं उनका ब्रह्मलोक होता है, गृहस्थों का प्राजापत्य है जोकि यथोक्त आश्रम के पालन करने वाले हैं।।३६।। सात ऋषियों का वनवासियों का, यतियों का और यदृच्छागामियों का स्थान सदा अक्षय होता है।।३७।।

५—सृष्टिविवरण (१)

कृत्वेहामुत्र संस्थानं प्रजासर्गं तु मानसम्।
अथासृजत् प्रजाकर्त्तॄन् मानसांस्तनयान् प्रभुः।।१
धर्मं रुद्रं मनुञ्चैव सनकं ससनातनम्।
भृगुं सनत्कुमारं च रुचिं शुद्धं तथैव च।।२
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्य पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं नारदञ्चैव पितॄन् वर्हिषदस्तथा।।३

अग्निष्वात्तांश्च कव्यादानाज्यपांश्च सुकालिनः ।
उपहूतांस्तथा दीप्यांस्त्रींश्च मूर्तिविवर्जितान् ॥४
चतुरो मूर्त्तियुक्तांश्च दक्षं चक्रेऽस्य दक्षिणात् ।
वामांगुष्ठात्तस्य भार्य्यामसृजत् पद्मसम्भवः ॥५
तस्यां तु जनयामास दक्षो दुहितरः शुभाः ।
ददौ ता ब्रह्मपुत्रेभ्यः सतीं रुद्राय दत्तवान् ॥
रुद्रपुत्रा बभूवुर्हि असंख्याता महाबलाः ॥६
भृगवे च ददौ ख्यातिं रूपेणाप्रतिमां शुभाम् ।
भृतोर्धाताविधातारौ जनयामास स शुभा ॥७
श्रियं च जनयामास पत्नी नारायणस्य या ।
तस्यां वै जनयामास बलोन्मादौ हरिः स्वयम् ॥८

हरि ने कहा—यहाँ पर संस्थान रच कर फिर मानस प्रजा सर्ग किया था ॥ १ ॥ धर्म, रुद्र, मनु, सनक, सनातन, भृगु, सनत्कुमार रुचि, शुद्ध, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, नारद, वर्हिषद पितृगण अग्निष्वात्त, कव्याद, आज्यप, सुकाली, उपहूत, दीप्य, तीन मूर्त्तियों से रहित और चार मूर्त्ति युक्तों का सृजन किया था। इसके अनन्तर दक्षिण से दक्ष को बनाया और वामांगुष्ठ से उसकी भार्या का पद्म सम्भव व सृजन किया था ॥२॥३॥४॥५॥ दक्ष ने अपनी उस पत्नी में परम शुभ दुहिताओं को जन्म दिया था। उन सब अपनी कन्याओं को दक्ष ने ब्राह्मण के पुत्रों को दे दिया था और सती को रुद्र के लिये दिया था। रुद्र के महान् बलशाली अगणित पुत्र हुए थे ॥६॥ दक्ष ने भृगु को ख्याति नामक कन्या दी थी जो रूप और लावण्य में अद्वितीय और अत्यन्त शुभ थी। उस शुभा ने भृगु से धाता और विधाता को समुत्पन्न किया था ॥७॥ और श्री को जन्म ग्रहण कराया था जो भगवान् नारायण की पत्नी हुई थी। उस श्री में हरि ने स्वयं बल और उन्माद को उत्पन्न किया था ॥ ८ ॥

आयतिर्नियतिश्चैव मनोः कन्ये महात्मनः ।
धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥९

प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुत: ।।
पत्नी मरीचे: सम्भूति: पौर्णमासमसूयत ।
विरज: सर्वगश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मन: ।।१०

स्मृतेश्चाङ्गिरस पुत्रा: प्रसूता: कन्यकास्तथा ।
सिनीबाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ।।११

अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ।
सोमं दुर्वाससं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् ।।१२

प्रीत्यां पुलस्त्यभार्य्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत् ।
कर्म्मशश्चार्थवीरश्च सहिष्णुश्च सुतत्रयम् ।।
क्षमा सुषुवे भार्य्या पुलहस्य प्रजापते: ।।१३

क्रतोतुश्च सुमतिर्भार्य्या बालखिल्यानसूयत ।
षष्टि बालसहस्राणि सूषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।।
अंगुष्ठपर्वमात्राणां ज्वलद्भास्करवर्चसाम् ।।१४

ऊर्ज्जायां तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुता: ।
रजागात्राध्वबाहुश्च शरणश्चानघस्तथा ।।
सुतपा: शुक्र इत्येते सर्वे सप्तर्षयो मता: ।।१५

महान् आत्मा वाले मनु की आयति और नियति नाम वाली दो कन्याएें थीं। वे दोनों धाता तथा विधाता की भार्यायें हुई थीं। उनमें दो सुत उत्पन्न हुएथे। उनके नाम प्राण और मृकण्डु थे। मृकण्डु से मार्कण्डेय उत्पन्न हुए।।९।। मरीचि नाम वाले ब्रह्मा के मानस पुत्रकी पत्नी सम्भूति ने पौर्णमास को प्रसूत किया था। उस महात्मा के विरज और सर्वग नामधारी दो पुत्र हुए थे ।।१०।। स्मृति से अङ्गिरा ने पुत्र तथा कन्याऐं समुत्पन्न की थीं, जिनके नाम सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति ये थे ।।११।।अनसूया ने अत्रि मुनि से कल्मष रहित पुत्रोंको जन्म दिया था,जिनके नाम सोम,दुर्वासा, और महायोगी दत्तात्रेय थे ।।१२।। पुलस्त्य की परम प्रिय भार्या प्रीति में दत्तोलि नामधारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था। उसके अर्थात् क्षमा के कर्म्मश,

अर्थवीर तथा सहिष्णु येतीन आत्मज उत्पन्न हुए थे जोकि प्रजापति पुलह की भार्या थी ।।१३।।क्रतु की भार्या सुमति नामधारिणी हुई थी उसने बाल खिल्य नाम वालों को जन्म दिया था जोकि ऊर्ध्व रेतस बाल खिल्य ऋषिगण संख्यामें साठ सहस्र हुए थे। वे भास्कर के समान जाज्वल्य मान वर्चस वाले थे और अंगुष्ठ के पर्व के तुल्य परिमाण वाले ही समुत्पन्न हुए थे।।१४।।ऊर्जा में वसिष्ठ मुनि के सात पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था। रज, गात्र, ऊर्ध्ववाहु, शरण, अनघ, सुतपा और शुक्र ये सब सप्तर्षि माने गये थे ।। १५ ।।

स्वाहा प्रादात् स दक्षोऽपि सशरीराय वह्नये ।
तस्मात् स्वाहा सुतान् लेभे त्रीनुदारौजसो हर ।।
पावकं पवमानं च शुचिश्चापि जलाशिनः ।।१६
पितृभ्यश्च स्वधा जज्ञे मेनां वैतरणीं तथा ।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ मेनाऽगात्तु हिमाचलम् ।।१७
ततो ब्रह्माऽऽत्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः ।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापाल्ये मनुं हर ।।१८
शतरूपां च तां नारीं तपोनिहतकल्मषाम् ।
स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे ततः ।।१९
तस्माच्च पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतिसंज्ञिते ।।२०
देवहूतिं मनुस्तासु आकूतिं रुचये ददौ ।
प्रसूतिञ्चैव दक्षाय देवहूतिञ्च कर्दमे ।।२१
रुचेर्यज्ञो दक्षिणाऽभूद्दक्षिणायां च यज्ञतः ।
अभवन् द्वादश सुता यमो नाम महाबलः ।।२२
चतुर्विंशति कन्याश्च सृष्टवान् दक्ष उत्तमः ।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।। २
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिर्ऋद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी ।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणः प्रभुः ।।२४

उस दक्ष प्रजापति ने अपनी कन्या स्वाहा को शरीरधारी अग्निदेव को प्रदान किया था । हे हर ! उस अग्निदेव से स्वाहा ने परम उदार ओज वाले तीन पुत्रों की प्राप्ति की थी जिनके नाम पावप, पवमान और शुचि थे जो जलाशी थे ॥१६॥ स्वधा नाम वाली दक्ष की कन्या ने पितृ-गण से मेना तथा वैतरणी को उत्पन्न किया था । वे दोनों ही ब्रह्म वादिनी थीं । मेना तो हिमवान् की पत्नी हुई थी ॥१७॥ इसके अनन्तर हे हर ! प्रभू ब्रह्मा ने आत्मा से सम्भूत स्वायम्भुव को सबसे पूर्व प्रजा के पालन में आत्मा को ही मनु किया था ॥ १८ ॥ फिर स्वायम्भुव मनु देव ने तपश्चर्या से समस्त कल्मषों को ध्वस्त कर देने वाली शतरूपा नाम धारिणी नारी को अपनी पत्नी के स्वरूप में स्वीकार किया था ॥१६॥ शतरूपा देवी ने उस स्वायम्भुव महा पुरुष से प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम वाले दो पुत्र तथा प्रसूति एवं आकूति संज्ञावाली दो कन्याऐं प्राप्त की थीं ॥२०॥ तीसरी एक देवहुति नाम वाली कन्या भी उत्पन्न की थी उन तीनों पुत्रियों में मनु ने आकूति को तो रुचि के लिये प्रदान किया था—प्रसूति को प्रजापति दक्ष के लिये दिया था और देवहूति नाम धारिणी कन्या को कर्दम मुनि को प्रदान किया था ॥२१॥ रुचि से यज्ञ उत्पन्न हुआ । यज्ञ से दक्षिणा में बारह पुत्र समुत्पन्न हुए जिनमें यम नाम वाला महान् बलवान् था ॥२२॥ दक्ष ने चौबीस कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था । जिनके शुभ नाम श्रद्धा, लक्ष्मी, घृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, ऋद्धि, कीर्त्ति इन तेरहों का दाक्षायण प्रभु धर्म ने अपनी पत्नियाँ बनाने के लिये ग्रहण किया था ॥ २४ ॥

ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ।
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥२५
भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः ।
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्चर्षिवरस्तथा ॥२६
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम् ।
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः ॥२७

श्रद्धा कामं चला दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् ।
सन्तोषं च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरसूयत ॥२८
मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं लयं विनयमेव च ।
बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम् ॥२९
व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत ।
सुखमृद्धिर्यशः कीर्तिरित्येते धर्मसूनवः ॥
कामस्य च रतिर्भार्या तत्पुत्रो हर्ष उच्यते ॥३०
ईजे कदाचिद् यज्ञेन हयमेधेन दक्षकः ।
तस्य जामातरः सर्वे यज्ञं जग्मुर्निमन्त्रिताः ॥३१
भार्याभिः सहिताः सर्वे रुद्रं देवीं सतीं विना ।
अनाहूता सती प्राप्ता दक्षेणैवावमानिता ॥३२
त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता मेनायान्तु हिमालयात् ।
शम्भोर्भार्याऽभवद् गौरी तस्यां जज्ञे विनायकः ॥३३
कुमारश्चैव भृङ्गीशः क्रुद्धो रुद्रः प्रतापवान् ।
विध्वंस्य यज्ञं दक्षं तु शशाप पिनाकधृक् ॥
ध्रुवस्यान्वयसम्भूतो मनुष्यस्त्वं भविष्यसि ॥३४

ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा स्वाहा, स्वधा इनको क्रम से भृगु,भव,मरीचि,अङ्गिरा,पुलस्त्य, पुलह,क्रतु, अत्रि,वसिष्ठ, वह्नि और पितरों ने ग्रहण किया था। मुनियों में परम श्रेष्ठ मुनियों ने ख्याति आदि कन्याओं को पाणिग्रहण किया था ॥२५।२६।२७॥ श्रद्धाने काम को,चला ने दर्प को, धृति ने नियम आत्मा को,तुष्टि ने सन्तोष और पुष्टिने लोभ पुत्रको प्रसूत किया था ।२८। मेधा ने श्रुत,क्रिया ने दण्ड लय और विनय, बुद्धि ने बोध तथा लज्जाने विनय वपु आत्मज को उत्पन्न किया था। व्यवसायको उत्पन्न किया तथा शान्तिने क्षेमको जन्म दिया था। ऋद्धि ने सुख को,कीर्त्ति ने यश को प्रसूत किया, इस तरह से ये सब धर्म के पुत्र हुए थे ॥२९।३०॥ काम की भार्या रति हुई थी और उसका पुत्र हर्ष

उत्पन्न हुआ था ॥३०॥ प्रजापति दक्ष ने किसी समय हयमेध यज्ञ का यजन किया था। उस समय उसके जमाई सभी निमन्त्रित होकर उस शुभ उत्सवमें गये थे॥३१॥ सभी के साथ उनकी पत्नियाँ भी वहाँ पहुँची थीं किन्तु केवल रुद्र देव और सती नहीं थीं। बिना बुलाई हुई सती वहाँ बादमें अपने आपही पहुँची तो उसके पिता दक्ष के द्वारा ही उसे अपमानित किया गया था॥३२॥ उसी समय में सती ने देह का त्याग कर दिया था और फिर वह हिमालय से मेना में उत्पन्न हुई थी। वही सती पार्वती गौरी भगवान् शम्भु की भार्या हुई औरउसके विनायक गणेश समुत्पन्न हुएथे। गौरीके स्वामी कार्त्तिकेय कुमार की भी उत्पत्ति हुईथी। भृङ्गीश क्रुद्ध हुए और प्रतापी रुद्रने यज्ञ का विध्वंस करके पिनाक धारी ने दक्ष को शाप दे दिया था कि ध्रुवके अन्वय में उत्पन्न होने वाला तू मनुष्य होगा ॥ ३३ ॥

६—सृष्टिनिवारण (२)

उत्तानपादादभवत् सुरुच्यामुत्तमः सुतः ।
सुनीत्याँ तु ध्रुवः पुत्रः लेभे स्थानमुत्तमम् ॥१
मुनिप्रासादादाराध्य देवदेवं जनार्दनम् ।
ध्रुवस्य तनयः श्रिष्टिर्महाबलपराक्रमः ॥२
तस्य प्राचीनबर्हिस्तु पुत्रस्तस्याप्युदारधीः ।
दिवञ्जयस्तस्य सुतस्तस्य पुत्रो रिपः स्मृतः ॥३
रिपोः पुत्रस्ततः श्रीमांश्चाक्षुषः कीर्त्तितो मनुः ।
रुरुस्तस्य सुतः श्रीमानङ्गस्तस्य तथात्मजः ॥४
अङ्गस्य वेणः पुत्रस्तु नास्तिको धर्मवर्जितः ।
अधर्मकारी वेणश्च मुनिभिश्च कुशैर्हतः ॥५
ऊरुं ममन्थुः पुत्रार्थे ततोऽस्य तनयोऽभवत् ।
ह्रस्वोऽतिमात्रः कृष्णाङ्गो निषीदेति ततोऽब्रुवन् ।
निषादस्तेन वै जातो विन्ध्यशलनिवासकः ॥६

ततोऽस्य दक्षिणं पाणिं ममन्थुः सहसा द्विजाः ।
तस्मात्तस्य सुतो जातो विष्णोर्मानसरूपधृक् ॥७

हरि ने कहा—राजा उत्तान पाद से सुरुचि नाम वाली भार्या में उत्तम नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था। दूसरी रानी सुनीति नाम वाली से ध्रुव पुत्र पैदा हुआ था जिसने उत्तम स्थान प्राप्त किया था ॥१॥ ध्रुव ने नारद मुनि के प्रसाद से देवों के देव भगवान् जनार्दन की आराधना करके उत्तम पद प्राप्त किया था। ध्रुव का पुत्र श्रिष्टि नाम वाला परम भक्त हुआ था। जो महान् बल और पराक्रम वाला था ॥२॥ उसका पुत्र प्राचीन वर्हि हुआ और उसका आत्मज अत्यन्त उदार बुद्धि वाला दिवञ्जय नाम वाला हुआ था इस दिवञ्जय का पुत्र रिपु हुआ और इसका सुत चाक्षुष मनु इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। इस चाक्षुष का आत्मज रुरुका तनय श्रीमान् अङ्ग हुआ ॥३।४॥ अङ्ग का वेण हुआ जो बड़ा नास्तिक और धर्म से रहित था। इस अधर्म के आचरण करने वाले वेण का हनन मुनियों ने कुशाओं के द्वारा कर दिया था ॥५॥ फिर मुनियों ने इसके ऊरुओं का मन्थन किया था। उस मन्थन से इसका पुत्र हुआ था जो अत्यन्त छोटा कृष्ण अङ्ग वाला था। उसके 'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ और ऐसा बोले थे। इसलिये वह निषाद हो गया जो कि विन्ध्य पर्वत का निवास करने वाला था ॥६॥ इसके पश्चात् ब्राह्मणों ने उस वेण का दक्षिण हाथ सहसा मन्थन किया था। उससे एक सुत उत्पन्न हुआ था जो भगवान् विष्णुके मानस स्वरूप का धारण करने वाला था ॥७॥

पृथुरित्येव नामा स वेणः पुत्राद्दिवं ययौ ।
दुदोह पृथिवीं राजा प्रजानां जीवनाय हि ॥८
अन्तर्धानः पृथोः पुत्रो हविर्धानस्तदात्मजः ।
प्राचीन बर्हिस्तत्पुत्रः पृथिव्यामेकराड् बभौ ॥९
उपयेमे समुद्रस्य लवणस्य स वै सुताम् ।
तस्मात् सुषाव सामुद्रो दश प्राचीनबर्हिषः ॥१०

सर्वे प्राचेतसो नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगाः ।
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ॥११

दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ।
प्रजापतित्वं संप्राप्ता भार्य्या तेषां च मारिषा ॥१२

अभवद् भवशापेन तस्यां दक्षोऽभवत्ततः ।
असृजन्मनसा दक्षः प्रजाः पूर्वंचतुर्विधाः ॥१३

नावर्द्धन्त च तास्तस्य अपध्याता हरेण तु ।
मैथुनेन ततः सृष्टिं कर्त्तुमैच्छत् प्रजापतिः ॥१४

असिक्नीमावहद्भार्यां वीरणस्य प्रजापतेः ।
तस्य पुत्रसहस्रं तु वैरण्यां समपद्यत ॥१५

इसका नाम पृथु था और इस पुत्रके प्रभाव से वह वेण स्वर्गलोक को चला गया था। इस राजा प्रथु ने प्रजाओंके जीवन के लिये पृथिवी का दोहन किया था।८।पृथु का पुत्र अन्तर्धान हुआ और इसका आत्मज हविर्धान हुआ था। इसका तनय प्राचीन वर्हि था जो इस भू मण्डलमें एक ही राजा प्रसिद्ध हुआ था ॥९॥इस राजाने लवण सागर की पुत्रीके साथ विवाह किया था। उससे दस समुद्री प्राचीन वर्हिष समुत्पन्न हुए थे। १०।।ये सब प्राचीतम नाम वाले थे और सभी धनुर्विद्या के बड़े पारगामी विद्वान् हुए थे।ये अपृथक् धर्म के आचरण करने वालेथे। इनने महान् तपको किया था ॥११॥दस हजार वर्ष पर्यन्त ये समुद्रके ही जलमें शयन करने वाले हुए थे। इन्होंने प्रजापति के पद को प्राप्त किया था। इनकी भार्या मारिषा हुईथी।१२। भव के शाप उसमें दक्ष समुत्पन्न हुआ था। उस दक्षने मन से ही पहिले चार प्रकारकी प्रजा का सृजन किया था।१३।वे प्रजा उसकी वृद्धिशीलता कोप्राप्त नहीं हुईं और भगवान् हर के द्वारा अपध्यात होगई थीं। इसके अनन्तर उसने मैथुन के द्वारा सृष्टि करने की इच्छा की थी।।१४।।फिर उस प्रजापतिने प्रजापति वीरण की भार्या असिक्नी के साथ विवाह किया था और उस वैरिणी में एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १५ ॥

नारदोक्ता भुवश्चान्तं गता ज्ञातुञ्च नागताः ।
दक्षः पुत्रसहस्रञ्च तेषु नष्टेषु सृष्टवान् ।।१६
शबलाश्वास्तेऽपि गता भ्रातृणां पदवीं हर ।
दक्षः क्रुद्धः शशापाथ नारदं जन्म चाप्स्यसि ।।१७
नारदो ह्यभवत् पुत्रः कश्यपस्य मुनेः पुनः ।
यज्ञे ध्वस्तेऽथ दक्षोऽपि शशापोग्रं महेश्वरम् ।।१८
यष्ट्वा त्वामुपचारैश्च अपस्रक्ष्यन्ति हि द्विजाः ।
जन्मान्तरेऽपि वैराणि न विनश्यन्ति शङ्कर ।।१९
असिक्न्यां जनयामास दक्षो दुहितरं ह्यथ ।
षष्टिं कन्यां रूपयुतां द्वे चैवाङ्गिरसे ददौ ।।२०
द्वे प्रादात् स कृशाश्वाय दश धर्माय चाप्यथ ।
त्रयोदश कश्यपाय सप्तविंश तथेन्दवे ।।२१
प्रददौ बहुपुत्राय सुप्रभां भामिनीं तथा ।
मनोरमां भानुमतीं विशालां बहुदामथ ।।२२
दक्षः प्रादान्महादेव चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
स कृशाश्वाय च प्रादात् सुप्रजाञ्च तथा जयाम् ।।२३

ये सब नारदके द्वारा कहे हुए भूमण्डल के अन्त तक गये थेकि इसका ज्ञान प्राप्त करें किन्तु फिर वापिस नहीं हुए थे । उन सबके नष्ट होजाने पर प्रजापति दक्षने पुनः एक सहस्र पुत्रों का सृजन किया था ।१६। हे हर ! ये शवलाश्व भी अपने भाइयों की ही पदवीको प्राप्त होगये थे । फिर दक्ष ने अत्यन्त क्रोधित होकर नारदको शाप देदिया था कि तू जन्मग्रहण करेगा। ।१७।इसके अनन्तर नारदने कश्यप मुनिके यहाँ पुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण किया था । यज्ञ के ध्वस्त हो जाने पर दक्षने महेश्वर को भी पहिले शाप दिया था ।।१८। हे महेश्वर! ब्राह्मण लोग तुम्हारा यजन करकेभी तुम्हारे पूजोपचारों को त्याग दिया करेंगे और जन्मान्तरमें ये वैर नष्ट न होंगे।१९। फिर इस दक्षने असिक्नीमें पुत्री समुत्पन्नकी थी । ये अत्यन्त रूप लावण्य से समन्वित साठ कन्याथीं । इनमें से दो तो अङ्गिराको दी थीं ।।२०।। दो

कृशाश्व को दीं–दश धर्म को दी थीं और तेरह कश्यप मुनि को प्रदान की थीं तथा सत्ताईस चन्द्रमा को दी थीं ॥२१॥ फिर सुप्रभा भामिनी बहु पुत्रको दी थी। मनोरमा, भानुममी, विशाला और बहुदा इन चार कन्याओंको दक्ष ने हे महादेव ! अरिष्ट भेमि को दिया था। उसने सुप्रजा और जया को कृशाश्व के लिए प्रदान किया था ॥२२।२३॥

अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुद्वती ।
सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च ता दश ॥२४
धर्मपत्न्यः समाख्याताः कश्यपस्य वदाम्यहम् ।
अदितिर्दितिर्दनुः काला ह्यनायुः सिंहिका मुनिः ।
कद्रूः प्राधा इरा क्रोधा विनता सुरभिः खगा ॥२५
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत ।
मरुद्वत्यां मरुद्वन्तो बसोस्तु वसवस्तथा ॥२६
भानोस्तु भानवो रुद्र मुहूर्त्ताच्च मुहुर्त्तजाः ।
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथिस्तु यामितः ॥२७
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत ।
सङ्कल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ॥२८
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥२९
आपस्य पुत्रो वैतुण्ड्यः श्रमः श्रान्तो ध्वनिस्तथा ।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकस्य कालनः ।
सोमस्य भगवान् वर्च्चा वर्च्चस्वी येन जायते ॥३०
धवस्य पुत्रो द्रुहिणो हुतहव्यवहस्तथा ।
मनोहरायां शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥३१

अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुद्वती, संकल्पा, मुहूर्त्ता, साध्या और विश्वा ये दश धर्म की पत्नियां कही गईथीं। अब कश्यप की पत्नियों को बतलाते हैं–अदिति, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंहिका, कद्रू, प्राधा, इरा, क्रोधा, विनता, सुरभि और खगा ये तेरह कश्यप की पत्नियाँ हुई थीं।२४।२५।

विश्वा के विश्वेदेवा समुत्पन्न हुए थे और साध्या के साध्यगण प्रसूत हुए। मरुद्वती में मरुद्वान् तथा वसु से वसुगण उत्पन्न हुए थे।।२६।।भानु नाम वाली से भानु गण-हे रुद्र ! मुहूर्त्ता से मुहुर्त्तज पैदा हुए थे। लम्बा से घोष उत्पन्न हुआ था और यामि से नागवीथि की उत्पत्ति हुई।।२७।।सम्पूर्ण पृथिवी विषय अरुन्धती में उत्पन्न हुआ था। सङ्कल्पा से सर्वात्मा सङ्कल्प समुत्पन्न हुआ था ।।२८।। आप, ध्रुव, सोम, धव, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास ये आठ नामों से वसुगण कहे गये हैं।।२६।। आपके पुत्र वैतुंड्य,श्रम, श्रान्त, तथा ध्वनि हुए थे। ध्रुव का पुत्र भगवान् काल हुए जो समस्त लोक का कालन करने वाले हैं। सोम का पुत्र भगवान् वर्चा हुए जिससे वर्चस्वी उत्पन्न होता है ।।३०।। धव का पुत्र द्रुहिण तथा हुत हव्यवह हुए थे। मनोहरा में शिशिर, प्राण तथा रमण हुए थे ।। ३१ ।।

अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रः पुलोमजः।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥३२
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः।
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ।।३३
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्ना तु देवलम्।
विश्वकर्मा प्रभासस्य विख्यातो देववर्द्धकिः ॥३४
अजैकपादहिर्ब्रध्नस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान्।
त्वष्टुश्चाप्यात्मजः पुत्रो विश्वरूपो महातपाः।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ।।३५
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा।
मृगव्याधश्च शर्वश्च कपाली च महामुने।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ।।३६
सप्तविंशति सोमस्य पत्न्यो नक्षत्रसंज्ञिताः।
अदित्यां कश्यपाच्चैव सूर्या द्वादश जज्ञिरे।
विष्णुः शक्रोऽर्यमा धाता त्वष्टा पूषा तथैव च ।।३७

विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च।
अंशुमांश्च भगश्चैव आदित्या द्वादश स्मृताः ॥३८
हिरण्यकशिपुर्दित्यां हिरण्याक्षोऽभवत्तदा।
सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तिपरिग्रहा ॥३९
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः पृथुलौजसः।
अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान्।
संह्लादश्चाभवत्तेषां प्रह्लादो विष्णुतत्परः ॥४०
संह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्बाष्कल एव च।
विरोचनश्च प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात्।
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं वृषध्वज ॥४१

अनिल की भार्या शिवा थी। उसका पुत्र पुलोमज और अविज्ञात गति थे। ये दो अनिल के पुत्र हुए थे ॥३२॥ अग्नि का पुत्र कुमार शरसम्ब में समुत्पन्न हुआ था। उसके पीछे से शाख, विशाख और नैगमेय हुए थे। कृत्तिकाओं की सन्तति कार्त्तिकेय इस नाम से कही गई है ॥३३॥ प्रत्यूष का पुत्र देवल ऋषि के नाम से विख्यात हुए थे। प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा हुआ जो देववर्द्धकि नाम से विख्यात हुआ था ॥३४॥ अजैकपाद, अहिर्बुध्न, त्वष्टा और वीर्यवान् रुद्र उत्पन्नहुए। त्वष्टा का पुत्र महातपा विश्वरूप हुआ। हे महामुने! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि,शम्भु, कपर्दी, रैवत,मृगव्याध, शर्व, कपाली ये एकादश रुद्र हुए थे जो इस सम्पूर्ण त्रिभुवनके स्वामी हैं। ॥३५।३६॥सोम की सत्ताईस पत्नियाँ थीं जो नक्षत्र नामसे प्रसिद्धथीं। उनके अश्विनी,भरणी आदि नाम थे। अदितिमें कश्यपमुनि से द्वादश सूर्य समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम विष्णु,शक्र,अर्यमा, धात्रा,त्वष्टा, पूषा,विवस्वान्,सविता मित्र, वरुण, अंशुमान्, भग ये बारह हैं ॥३७।३८॥ कश्यप की दिति नाम वाली पत्नीमें हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष पुत्र हुए थे। सिंहिका नाम वाला एक कन्या हुई थी जिसका परिग्रह विप्रचित्ति ने किया था ॥३९॥ हिरण्यकशिपु के अधिक ओज वाले चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनके नाम ये हैं–अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद और सह्लाद थे। इन चारोंमें प्रह्लाद विष्णु भगवान्

का परम भक्त हुआ था ॥४०॥ संह्लाद के पुत्र आयुष्मान्, शिवि, वाष्कल और विरोचन हुए थे। विरोचन से प्राह्लादि बलि उत्पन्न हुए थे। हे वृषध्वज ! बलि के सौ पुत्र हुए उनमें वाण सबसे ज्येष्ठ था ॥ ४१ ॥

हिरण्याक्षसुताश्चासन् सर्व एव महाबलाः ।
उत्कर: शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥
महानाभो महाबाहुः कालनाभस्तथापरः ॥४२
अभवन् दनुपुत्राश्च द्विमूर्धा शङ्करस्तथा ।
अयोमुखः शंकुशिराः कपिल: शम्बरस्तथा ॥४३
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च पुलोमा च महासुरः ॥
एते दनोः सुताः ख्याता विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥४४
स्वर्भानोः सुप्रभा कन्या शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी ।
औपदानवी हयशिराः प्रख्याता वरकन्यकाः ॥४५
वैश्वानरसुते चोभे पुलोमा कालका तथा ।
उभे ते तु महाभागे मारीचेस्तु परिग्रहः ॥४६
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवसत्तमाः ।
पौलोमाः कालकञ्जाश्च मारीचतनयाः स्मृताः ॥४७
सिंहिकायां समुत्पन्ना विप्रचितिसुतास्तथा ।
व्यंशः शल्यश्च बलवान् नभश्चैव महाबलः ॥४८
वातापिनमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा ।
अञ्जकी नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥
निवातकवचा दैत्याः प्रह्लादस्य कुलेऽभवन् ॥४९

हिरण्याक्ष के सभी पुत्र महान् बलवान् थे उनके नाम उत्कट, शकुनि, भूतसन्तापन महानाभ,महाबाहु और काल नाम थे।।४२।।दनु के पुत्र द्विमूर्धा, शङ्कर,अयोमुख, शंकुशिरा, कपिल, शम्बर, एक चक्र,महावाहु, तारक,महाबल, स्वर्भानु वृषपर्वा, पुलोमा, महा सुर हुए थे। ये सब दनु के सुत ख्यात थे

और विप्रचित्ति वीर्यवान् थे।।४३।४४।। स्वर्भानु की सुप्रभा कन्या, शर्मिष्ठा, वार्षपार्वणी, और दानवी, हयशिरा ये वर कन्यका प्रख्यात थीं ।। ४५ ।। वैश्वानर के दो सुता थीं । उनके नाम पुलोमा तथा कालका थे । ये दोनों महान् भाग्य वाली थीं और मारीचि के परिग्रह हुई थीं ।। ४६ ।। उन दोनों से दानवों में पर श्रेष्ठ साठ हजार पुत्र हुए थे । ये पौलोम, कालकञ्ज और मारीचि तनय के नाम से प्रसिद्ध हुए थे ।। ४७ ।। सिंहिका में विप्रचिति के पुत्र समुत्पन्न हुए थे । उनके नाम व्यंस, शल्य, बलवान्, नभ, महाबल, वातापि, नमुचि, इल्वल, खसृप अञ्जक, नरक और काल नाभ थे । प्रह्लाद के कुल में निबात कवच दैत्य हुए थे ।।४८।४९।।

षट्सुताश्चमहासत्वास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिताः ।
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका ।।५०
शुकी शुकानजनयदुलूका प्रत्युलूककान् ।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्रांश्च गृध्यपि ।।५१
शुच्यौदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु व्यजायत ।
अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्त्तितः ।।५२
विनतायास्तु पुत्रौ द्वौ विख्यातौ गरुड़ारुणौ ।
सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितोजसाम् ।।५३
काद्रवेयाश्च फणिनः सहस्रममितौजसः ।
तेषां प्रधानो भूतेश शेषवासुकितक्षकाः ।।५४
शङ्खः श्वेतो महापद्मः कम्बलाश्वतरौ तथा ।
एलापवस्तथा नागः कर्कोटकधनञ्जयौ ।।
गणं क्रोधवशं विद्धि ते च सर्वे च दंष्ट्रिणः ।।५५
क्रोधा तु जनयामास पिशाचांश्च महाबलान् ।
गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा ।।५६

ताम्रा की छै सुता महान् सत्व वाली बतलाई गई हैं । उनके नाम शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका थे । शुकी ने शुकों (तोतों)

को जन्म दिया था। उलूकी ने उलूकों पैदा किया था श्येनी ने श्येनों को प्रसूत किया, भासी ने भासों को गृध्री ने गिद्धों को समुत्पन्न किया था ॥५०।५१॥ शुचि ने उदक में रहने वालों की तथा सुग्रीवी ने पक्षीगणों को उत्पन्न किया था। अश्वों को, उष्ट्रों को और गर्दभों (गधों को समुत्पन्न किया था। यह ताम्र वंश कीर्त्तित हुआ था ॥५२॥ विनता के दो पुत्र हुए जो कि बहुत विख्यात हैं। उनके नाम गरुड़ और अरुण थे। सुरसा के अमित ओज वाले एक सहस्र सर्प हुए थे। अमित ओज से समन्वित काद्रवेय (कद्रू के पुत्र) फणी अर्थात् सर्प एक सहस्र थे। हे भूतेश ! उन सबमें शेष वासुकि और तक्षक ये प्रधान हुए थे ॥५३।५४॥ सर्पों के अनेक भेद हैं जैसे-शङ्ख, श्वेत, महापद्म, कम्बल अश्वतर, एलापत्र, नाग, कर्कोटक, धनञ्जय, । इनके गण को महाक्रोधी समझो और ये सभी दंष्ट्री थे ॥५५॥ क्रोधा ने महान् बल वाले पिशाचों को जन्म दिया था। सुरभि ने गौ तथा महिषों को उत्पन्न किया था ॥ ५६ ॥

इरा वृक्षलता वल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः।
खगा च यक्षरक्षांसि मुनिरप्सुरसस्तथा ॥
अरिष्टा तु महासत्वान् गन्धर्वान्समजीजनत् ॥५७
देवा एकोनपञ्चाशन्मरुतो ह्यभवन्निति ।
एकज्योतिर्द्विज्योतिश्च त्रिचतुर्ज्योतिरेव च ॥५८
एकशुक्रो द्विशुक्रश्च त्रिशुक्रश्च महाबलः ।
ईदृक्चान्यादृक्सदृक्च ततः प्रतिसदृक्तथा ॥५९
मितश्च समितश्चैव सुमितश्च महाबलः ।
ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा ॥६०
अतिमित्रोऽप्यमित्रश्च दूरमित्रोऽजितस्तथा ।
ऋतश्च ऋतधर्म्मा च विहर्त्ता वरुणो ध्रुवः ॥६१
विधारणश्चतुर्थोऽयं गृहमेकगणः स्मृतः ।
ईदृक्षश्च सदृक्षश्च एतादृक्षो मिताशनः ॥६२

एतनः प्रसदृक्षश्च सुरतश्च महातपाः ।
तादृगुग्रो ध्वनिर्भासो विमुक्तो विक्षिपः सहः ॥६३
द्युतिर्वसुर्बलाधृष्यो लाभः कामो जयो विराट् ।
उद्वेषणो गणो नाम वायुस्कन्धे तु सप्तमे ॥६४
एतत्सर्वं हरे रूपं राजानो दानवाः सुराः ।
सूर्यादिपरिवारेण मन्वाद्या ईजिरे हरिम् ॥६५

इराने वृक्ष, लता, बल्ली और सभी प्रकार की तृण जातियोंको उत्पन्न किया था । खगा ने यक्ष और राक्षसों को प्रसूत किया था तथा मुनिने अप्सराओं को जन्म दिया था । अरिष्टाने महान् सत्व वाले गन्धर्वोंको उत्पन्नकिया था ॥५७॥ उनचास मरुत देव हुए थे । उनके नाम–एकज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति चतुर्ज्योति, एक शुक्र, द्वि शुक्र, त्रिशुक्र,महाबल, ईदृक्, अवादृक्, सदृक् प्रति सदृक्, मित, सभित, सुमित, महाबलवान्, ऋतजित्,सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, अमिमित्र, अमित्र, दूरमित्र, अजित ऋत, ऋतधर्मा,विहर्त्ता, वरुण, ध्रुव, विधारण यह चतुर्थ एक गण कथित है, ईदृक्ष, सदृक्ष,एतादृक्ष, मिताशन, एतन, प्रसदृक्ष सुरत, महातपा, तादृगुग्र, ध्वनि, भास, वियुक्त, विक्षिप, सह, द्यु ति, वसु, बलाधृष्य, लाभ, काम जपी, विराट्, उद्वेषण,गण नाम सप्तप वायुस्कन्ध ये है । ये सब दानव और सुर हरि का रूप राजा थे । सूर्यादि परिवार के द्वारा मनु आदि ने हरि का यजन किया था ॥५७से६५॥

७—सूर्यादिपूजा-विधान

सूर्य्यादिपूजनं ब्रूहि स्वायम्भुवादिभिः कृतम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रद सार व्यास सक्षेपतः शृणु ॥१
सूर्य्यादिपूजां वक्ष्यामि धर्म्मकामादिकारिकाम् ॥२
ॐ सूर्य्यासनाय नमः ॐ नमः सूर्य्यमूर्त्तये ।
ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्य्याय नमः । ॐ सोमाय नमः ।
ॐ मङ्गलाय नमः । ॐ बुधाय नमः ।

ॐ बृहस्पतये नमः । ॐ शुक्राय नमः ।
ॐ शनैश्चराय नमः । ॐ राहवे नमः ।
ॐ केतवे नमः । ॐ तेजश्चण्डाय नमः ॥३
आसनावाहनं पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा ।
स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च गन्धं पुष्पं च धूपकम् ॥४
दीपकञ्च नमस्कारं प्रदक्षिणविसर्जने ।
सूर्यादीनां सदा कुर्य्यादिति मन्त्रैर्वृषध्वज ॥५

रुद्र देव ने कहा– सूर्य आदि का पूजन बतलाइये जो कि स्वायम्भुव आदि मनु ने किया था । यह पूजन सम्पूर्ण सांसारिक सुखों को मुक्ति एवं अन्त समय में परम पुरुषार्थ मुक्ति का प्रदान करने वाला है । हे व्यास !अब तुम इसका संक्षिप्त रूप से श्रवण करो। श्रीहरि भगवान् ने कहा-मैं सूर्य्य आदि की पूजा को बतलाता हूँ जो कि धर्म अर्थ और काम आदि के कराने वाली होती है ॥१.२॥ हे वृषध्वज ! लिखित मन्त्रों के द्वारा सर्वदा सूर्यादि देवों का पूजन करना चाहिए जिसमें उक्त देवों का आवाहन, आसन,पाद्य अर्घ्य आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, पुष्प,धूप, दीपक, नमस्कार,प्रदक्षिणा और विसर्जन आदि सभी अर्चनाके कृत्य सम्पादित करने चाहिए। इस प्रकार की पूजा के मन्त्र ये होते हैं-ॐ सूर्यासनाय नमः-ॐ नमः सूर्य मूर्त्तये -ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः-ॐ सोमाय नमः-ॐ मङ्गलाय नमः – ॐ बुधाय नमः-बृहस्पतये नमः–ॐ शुक्राय नमः ॐ शनैश्चराय नमः–ॐराहवे नमः–ॐ केतवे नमः-ॐ तेजश्चण्डाय नमः॥३।४॥ यह समस्त देवों का पूजन होता है अतएव सभी देवों के नामों के मन्त्र हैं जिनका अर्थ सबके लिये नमस्कारात्मक होता है ॥ ५ ॥

ॐ ह्रां शिवासनाय नमः । ॐ ह्रां शिवमूर्त्तये नमः । ॐ ह्रां हृदयाय नमः ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा । ॐहूँ शिखायै वषट् । ॐ ह्रैं कवचाय हुँ ।ॐ नेत्रत्रयाय वौषट् ।ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ।ॐह्रां सद्योजाताय नमः । ॐ ह्रीं वामदेवाय नमः।ॐह्रैं अघोराय नमः । ॐ ह्रैं

तत्पुरुषाय नमः।ॐ हौं ईशानाय नमः । ॐहां गौर्य्यै नमः ।ॐ हां गुरुभ्यो नमः।ॐ हां इन्द्राय नमः।ॐ हां चण्डाय नमः।ॐहां अघो-राय नमः । ॐ वासुदेवासनाय नमः ॐवासुदेवमूर्त्तये नमः ॐअं ॐनमो भगवते वासुदेवाय नमः ॐआं ॐनमो भगवते सङ्कर्षणाय नमः। ॐ अं ॐ नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः।ॐअः ॐनमो भग-वते अनिरुद्धाय नमः । ॐनारायणाय नमः। ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः। ॐहूँ विष्णवे नमः । ॐ क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय नमः।ॐभूःॐ नमो भगवते वराहाय नमः।ॐकं टं पं शं वैनतेयाय नमः ॐ जं खं वं सुदर्शनाय नमः ॐ खं ठं फं ष गदायै नमः।ॐ वं लं मं क्षं पांच-जन्याय नमः।ॐ घं ढं भं हं श्रियैनमः ॐगं डं वं सं पुष्ट्यै नमः। ॐधं षं वं सं वनमालायै नमः। ॐसं दं लं श्रीवत्साय नमः। ॐ ठ चं भं यं कौस्तुभाय नमः ॐ गुरुभ्यो नमः।ॐइन्द्रादिभ्यो नमः ॐ विष्वक्सेनाय नमः ॥६

इसमें न्यास आदि भी होते हैं। इन अन्य मन्त्रों को भी बताया जाता है—ॐ हां हृदयाय नमः, ॐ हीं शिरसे स्वाहा, ॐहूं शिखायै वषट्, ॐ हैं कवचाय हुम्, ॐ हौं नेत्र त्रयाय वौषट् ॐ हः अस्त्राय फट् ।

अन्य देवों के नाम नीचे दिये जाते हैं—ॐ हां सद्योजाताय नमः—ॐ हीं वाम देवाय नमः-ॐहूं अघोराम नमः-ॐहैं तत्पुरुषाय नमः-ह्यौंईशा-नाय नमः-ॐ हाँ गौर्य्यै नमः ॐ गुरुभ्यो नमः—ॐहाँ इन्द्राय नमः—ॐहाँ चण्डाय नमः—ॐ हाँ अघोराम नमः—ॐवासुदेवासनाय नमः—ॐ वासुदेव मूर्त्तये नमः-ॐअ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः—ॐआँ ॐनमोभगवते सङ्कर्षणाय नमः ॐ अं ॐ नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः ।ॐअँ ॐ नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः- ॐ नारायणाय नमः-ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः ॐ हूं विष्णवे नमः-ॐक्षौं नमो भगवते नरसिंहाय नमः-ॐ भूः ॐनमोभगवते वराहाय नमः-ॐ कं टं पं श बैनतेयाय नमः-ॐजं खं वं सुदर्शनाय नमः -ओम् खं ठं फ ष गदायै नमः-ओम् वं लं मं क्षंपाञ्चजन्याय नमः-ओम् घं ढं

भं हं श्रियै नमः—ॐ गं डं वं सं पुष्ट्यै नमः—ॐ धं पं वं सं वनमालायै नमः—ॐ सं दं लं श्रीवत्साय नमः—ॐ ठं चं भं यं कौस्तुभाय नमः ॐ गुरुभ्यो नमः—ॐ इन्द्रादिभ्यो नमः—ॐ विष्वक्सेनाय नमः ॥ ६ ॥

आसनादीन् हरेरेतैर्मन्त्रैर्दद्याद् वृषध्वज ।
विष्णुशक्त्याः सरस्वत्याः पूजां शृणु शुभप्रदाम् ॥७
ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः । ॐ ह्रां हृदयाय नमः ॐ ह्रीं शिरसे नमः । ॐ ह्रूं शिखायै नमः । ॐ ह्रैं कवचाय नमः । ॐ ह्रौं नेत्रत्रयायनमः । ॐ ह्रः अस्त्राय नमः ॥८
श्रद्धा ऋद्धिः कला मेधा तुष्टिः पुष्टिः प्रभा मतिः ।
ओंकराद्या नमोऽन्ताश्च सरस्वत्याश्च शक्तयः ॥९
ॐ क्षेत्रपालाय नमः । ॐ गुरुभ्यो नमः । ॐ परमगुरुभ्यो नमः॥१०
पद्मस्थायाः सरस्वत्या आसनाद्यं प्रकल्पयेत् ।
सूर्यादीनां स्वकैर्मन्त्रैः पवित्रारोहणं तथा ॥११

हे वृषध्वज ! इन उपर्युक्त मन्त्रों के द्वारा भगवान् हरि के लिये आसन आदि उपचारों को समर्पित करना चाहिए। अब भगवान् विष्णु की शक्ति सरस्वती देवी की पूजा का श्रवण करो जो कि सम्पूर्ण शुभों के प्रदान करने वाली है।।७।। सरस्वती की समर्चनाके निम्नलिखित मन्त्र हैं-ॐह्रां सरस्वत्यै नमः—ॐ ह्रीं शिरसे नमः-ॐ ह्रूं शिखायै नमः—ॐ ह्रैं कवचाय नमः— ॐ ह्रौं नेत्र त्रयाय नमः—ॐ अस्त्राय नमः॥८॥ इन पूजन के मंत्रों में ओङ्कार आदि में और अन्त में नम'—यह जोड़कर सरस्वती देवी की और श्रद्धा, ऋद्धि, कला,मेधा, तुष्टि,पुष्टि, प्रभा, मति इन शक्तियों का भी पूजन करना चाहिए । 'ॐ श्रद्धायै नमः'—इत्यादि विधि से सभी शक्तियों के मन्त्रों की रचना कर पूजन करे । इसके पश्चात् ॐक्षेत्रपालाय नमः-ॐगुरुभ्योनमः-ॐ परम गुरुभ्यो नमः- इन मन्त्रों से अर्चना करे।।९।१०।। पद्मासन पर संस्थित सरस्वती देवीके आसन आदि की कल्पना करनी चाहिए। तथा सूर्यादि देवों के लिये उनके अपने-अपने नामों के मन्त्रों के द्वारा पवित्रारोहण करे ।।११।।

८—विष्णुपूजा विधि

भूमिष्ठे मण्डपे स्नात्वा मण्डले विष्णुमर्चयेत् ।
पञ्चरङ्गिकचूर्णेन पञ्चनाभ तु मण्डलम् ॥१
षोडशैः कोष्ठकैस्तत्र सम्मितं रुद्र कारयेत् ।
चतुर्थपञ्चकोणेषु सूत्रपातं तु कारयेत् ॥२
कोणसूत्रादुभयतः कोणा ये तत्र संस्थिताः ।
तेषु चैव प्रकुर्वीत सूत्रपातं विचक्षणः ॥३
तदनन्तरकोणेषु एवमेव हि कारयेत् ।
प्रथमा नाभिरुद्दिष्टा मध्ये रेखाप्रसङ्गमे ॥४
अन्तरेषु च सर्वेषु अष्टौ चैव तु नाभयः ।
पूर्वमध्यमनाभिभ्यामथ सूत्रं तु भ्रामयेत् ॥५
अन्तरेषु द्विजश्रेष्ठः पादोनं भ्रामयेद्धर ।
अनेन नाभिसूत्रस्य कर्णिकां भ्रामयेच्छिव ॥६
कर्णिकाया द्विभागेन केशराशि विचक्षणः ।
तदग्रेण सदा विद्वान्दलान्येव समालिखेत् ॥७

श्री हरि ने कहा-स्नान करके पवित्र होकर भूमि में स्थित मण्डप में विरचित मण्डल में भगवान् विष्णु का अर्चन करना चाहिए। पांच रङ्ग के चूर्ण के द्वारा पञ्चनाभ मण्डल की रचना करे॥१॥ हे रुद्र! वह मण्डल सोलह कोष्ठकों से सम्मित होना चाहिए । चतुर्थ पञ्च कोनों में सूत्रपात कराना चाहिए ॥२॥ कोण सूत्र से दोनों ओर जो कोण वहां संस्थित होते हैं उनमें ही विचक्षण पुरुष को सूत्रपात करना चाहिए ॥३॥उसके अन्तर कोणोंमें भी इसी भाँति करावे । मध्य येखा प्रसङ्गम में प्रथमा नाभि उद्दिष्ट होती है । अन्तर सभी में आठ नाभियाँ होती हैं । पूर्व और मध्यम नाभियों से सूत्र को घुमाना चाहिए ॥४।५॥ हे हर! अन्तर कोणों में श्रेष्ठ द्विजको एक पाद न्यून घुमाना चाहिए । हे शिव ! इसके द्वारा नाभि सूत्र की कर्णिका को भ्रामित करे॥४।५।६॥ मण्डल की रचना की विधि में बताया जाता है कि विचक्षण

पुरुष को कर्णिका के दो भागों के द्वारा केसरों की रचना करनी चाहिए और विद्वान् उसके अग्रभाग से दलों का लेखन करे ॥ ७ ॥

सर्वेषु नाभिक्षेत्रेषु मानेनानेन सुव्रत ।
पद्मानि तानि कुर्वीत देशिकः परमार्थवित् ॥८
आदिसूत्रविभागेन द्वाराणि परिकल्पयेत् ।
द्वारशोभां तथा तत्र तदर्द्धेन तु कल्पयेत् ॥९
कर्णिकां पीतवर्णेन सितरक्तादिकेशरान् ।
अन्तरं नीलवर्णेन दलानि ह्यसितेन च ॥१०
कृष्णवर्णेन रजसा चतुरस्रं प्रपूरयेत् ।
द्वाराणि शुक्लवर्णेन रेखाः पञ्च च मण्डले ॥११
सिता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम् ।
कृत्वैव मण्डलञ्चादौ न्यासं तत्रार्चयेद्धरिम् ॥१२
हृन्मध्ये तु न्यसेद्विष्णुं मध्ये सङ्कर्षणं तथा ।
प्रद्युम्नं शिरसि न्यस्य शिखायामनिरुद्धकम् ॥१३
ब्रह्माणं सर्वगात्रेषु करयोः श्रीधरं तथा ।
अहं विष्णुरिति ध्यात्वा कर्णिकायां न्यसेद्धरिम् ॥१४
न्यस्येत्सङ्कर्षणं पूर्वे प्रद्युम्नञ्चैव दक्षिणे ।
अनिरुद्धं पश्चिमे च ब्रह्माणञ्चोत्तरे न्यसेत् ॥१५
श्रीधरं रुद्रकोणेषु इन्द्रादीन्दिक्षु विन्यसेत् ।
ततोऽभ्यर्च्य च गन्धाद्यैः प्राप्नुयात्परमं पदम् ॥१६

हे सुव्रत ! इसी मान से सब नाभि क्षेत्रों में परमार्थ के ज्ञाता आचार्य को उन पद्मोंकी रचना करनी चाहिए ॥८॥आदि सूत्र के विभाग के द्वारा ही द्वारों की कल्पना करे और उसके अर्ध भाग से वहाँ पर द्वार शोभा की परिकल्पना करनी चाहिए॥९॥ कर्णिका की रचना पीत वर्ण से करे और सित तथा रक्त आदि वर्णोंसे केसरोंकी रचना करनी चाहिए। अन्तर भागको नील वर्ण से तथा दलों को असित वर्ण से करे॥१०॥कृष्ण वर्ण की रज से चारों

ओर प्रपूरित करना चाहिए और उसके जो द्वार हों उन्हें शुक्ल वर्णके चूर्ण से पूरित करे तथा मण्डल में पाँच रेखाएँ बनावे ।।११।।उन रेखाओं के रङ्ग क्रम से सित, रक्त, पीत तथा कृष्ण होने चाहिए । इस प्रकार से मण्डल की रचना करके आदि में न्यास करके फिर वहाँ पर हरि की अर्चना करे ।।१२।। हृदय के मध्य में विष्णु का न्यास करे—मध्य में सङ्कर्षण का करे, शिर में प्रद्युम्न का न्यास करके शिखामें अनिरुद्ध का न्यास करे।।१३।।सम्पूर्ण अङ्गों में ब्रह्मा का-हाथों में श्रीधर का न्यास करके मैं विष्णु हूँ ऐसा ध्यान करके वर्णिका में हरि का न्यास करे।।१४।।सङ्कर्षण को पूर्व में, प्रद्युम्न को दक्षिण में, अनिरुद्ध को पश्चिम में और ब्रह्मा को उत्तर में न्यस्त करे ।।१५।। श्रीधर को रुद्र कोणों में और इन्द्रादि को दिशाओं में विन्यस्त करना चाहिए । इसके अनन्तर सबका गन्धाक्षत पुष्पादि उपचारों के द्वारा अभ्यर्चन करके परम पद की प्राप्ति करे ।। १६ ।।

६—वैष्णव पञ्जर

प्रवक्ष्याम्यधुना ह्येतद्वैष्णवं पञ्जरं शुभम् ।
नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम् ।।
प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ।।१
गदां कौमोदकीं गृह्ण पद्मनाभ नमोस्तु ते ।
याम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ।।२
हलमादाय सौनन्दं नमस्ते पुरुषोत्तम ।
प्रतीच्यां रक्ष मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ।।३
मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम् ।
उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः ।।४
खड्गमादाय चर्माथ अस्त्रशस्त्रादिकं हरे ।
नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्यां शरणं गतः ।।५
पाञ्चजन्यं महाशंखमनुद्बोधञ्च पङ्कजम् ।
प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां रक्ष शूकर ।।६

चन्द्रसूर्य्यं समागृह्य खड्गं चान्द्रमसं तथा ।
नैर्ऋत्यां माञ्च रक्षस्व दिव्यमूर्त्ते नृकेशरिन् ॥७

हरि ने कहा--अब मैं यह परम शुभ वैष्णव पञ्जर बतलाता हूँ--हे गोविन्द ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है । आप अपने सुदर्शन चक्रको ग्रहण करके हे विष्णो ! मेरी पूर्व दिशामें रक्षा कीजिए । मैं आपकी शरणागति में आ गया हूँ॥१॥हे पद्मनाभ ! आप अपनी कौमोदकी नाम वाली गदा को ग्रहण करके दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें । मेरा आपको नमस्कार है और हे विष्णुदेव ! मैं आपके शरण में उपस्थित होगया हूँ॥२॥ हे विष्णो ! आप सौनन्द हल को लेकर हे पुरुषोंमें उत्तम ! प्रतीची (पश्चिम)में मेरी रक्षा करें । मैं आपके शरण में आया हूँ ॥३॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! शातन मुसल का ग्रहण करें और हे जगतों के स्वामिन् ! आप मेरी उत्तर दिशा में रक्षा करें। मैं आपके चरणों की शरण में आ गया हूँ ॥४॥ हे हरे ! आप खड्गचर्म तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रादि को ग्रहण करें। मेरी आपको नमस्कार है । हे राक्षसों के हनन करने वाले! ऐशानी दिशामें आप मेरी रक्षा करिये । मैं आपकी शरण में हूँ॥५॥हे विष्णुदेव!अब अपने महान् शङ्ख पाञ्चजन्य और अनुद्बोध पङ्कज का ग्रहण कर हे शूकरदेव ! मेरी आग्नेयी दिशा में रक्षा कीजिये ॥६॥ हे दिव्य मूर्ति वाले ! हे नृकेशरी ! आप चन्द्र और सूर्य को लेकर तथा चन्द्रमस खड्ग का ग्रहण कर मेरी नैऋत्य दिशा में रक्षा करें ॥ ७ ॥

वैजयन्तीं सम्प्रगृह्य श्रीवत्सं कण्ठभूषणम् ।
वायव्यां रक्ष मां देव हयग्रीव नमोऽस्तु ते ॥८
वैनतेयं समारुह्य त्वन्तरिक्षे जनार्द्दन ।
माञ्च रक्षाजित सदा नमस्तेऽस्त्वपराजित ॥९
विशालाक्ष समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले ।
अकूपार नमस्तुभ्यं महामीन नमोऽस्तु ते ॥१०
करशीर्षाद्यङ्गुलेषु सत्य त्वं बाहुपञ्जरम् ।
कृत्वा रक्षस्व मां विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥११

एवमुक्तं शङ्कराय वैष्णवं पञ्जरं महत् ।
पुरा रक्षार्थमीशान्याः कात्यायन्या वृषध्वज ॥१२
नाशयामास सा येन चामरं महिषासुरम् ।
दानवं रक्तबीजञ्च अन्यांश्च सुरकण्टकान् ।
एतज्जपन्नरो भक्त्या शत्रून्विजयते सदा ॥१३

हे देव ! हे हयग्रीव ! आप अपनी वैजयन्ती माला कण्ठ के भूषण और श्री वत्स का ग्रहण करके मेरी वायव्य दिशा में रक्षा करें । मेरा आपको नमस्कार है॥८॥ हे जनार्दन! आप अपने वाहन वैनतेय (गरुड़) पर समारूढ़ हो जाइये और आकाशमें मेरी रक्षा कीजिये । आप सर्वदा अजित हैं । हे अपराजित देव ! मेरा आपको प्रणाम है ॥९॥ विशाल नेत्रों वाले पर समारोहण करके आप मेरी रसातलमें रक्षा करिये । हे अकूपार ! हे महाभीन! आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥१०॥ हे सत्य स्वरूप ! आप मेरे कर-शीर्ष और अङ्गुलि आदि में अपना बाहु-पञ्जर करके हे विष्णो ! हे पुरुषों में उत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये॥११॥हे वृषध्वज ! इस प्रकार से यह महान् वैष्णव पञ्जर शङ्कर के लिए कहा गया था। पहिले कात्यायनी ने ईशानी की रक्षा के लिए कहा था । जिसके द्वारा उसने अमर महिषासुर और दानव रक्तबीज तथा अन्य सुरों को कष्ट देने वालों का नाश किया था । इस वैष्णव पञ्जर का मनुष्य सर्वदा भक्ति-भाव के साथ जाप करता हुआ अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ॥१२।१३॥

१०—योग वर्णन

अथ योगं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ।
ध्यायिभिः प्रोच्यते ध्येयो ध्यानेन हरिरीश्वरः ॥१
तच्छृणुष्व महेशान सर्वपापविनाशनः ।
विष्णुः सर्वेश्वरोऽनन्तः षड्भूमिपरिवर्जितः ॥२
वासुदेवो जगन्नाथो ब्रह्म तमाऽस्म्यहमेव हि ।
देहिदेहे स्थितो नित्यः सर्वदेहविवर्जितः ॥३

देहधर्म्मविहीनश्च क्षराक्षरविवर्जितः ।
षड्विधेषु स्थितो द्रष्टा श्रोता घ्राता ह्यतीन्द्रियः ॥४
तद्धर्म्मरहितः स्रष्टा नामगोत्रविवर्जितः ।
मन्ता मनःस्थितो देवो मनसा परिवर्जितः ॥५
मनोधर्म्मविहीनश्च विज्ञानं ज्ञानमेव च ।
बोद्धा बुद्धिस्थिमः साक्षी सर्वज्ञो बुद्धिवर्जितः ॥६

श्री हरि ने कहा–इसके अनन्तर अब मैं उस परम योग को तुमको बतलाता हूँ जो सांसारिक सुखोंका भोग और अन्तमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है। ध्यान करने वालोंके द्वारा यह कहा जाता है कि ध्यानके साथ ईश्वर हरि का ध्यान करना चाहिए ॥१॥ हे महेशान ! उस योग का अब तुम श्रवण करो। भगवान् विष्णु सम्पूर्ण प्रकार के पापों के विनाश करने वाले, सबके ईश्वर, अनन्त और षड्भूमि से रहित हैं ॥२॥ मैं ही वासुदेव, जगन्नाथ और ब्रह्मात्मा हूँ जो कि देहधारियों के देहोंमें स्थित रहता हुआ नित्य हूँ तथा सब प्रकार के देहों से विवर्जित हूँ ॥३॥ वह मैं देह के सभी तरह के धर्मों से रहित एवं क्षर तथा अक्षर से विहीनहूँ। छ प्रकारों में स्थित रहने वाला द्रष्टा, श्रोता घ्राता, इन्द्रियों की पहुँच से पर हैं ॥४॥ उनके धर्मों से रहित होकर सृजन करने वाला तथा नाम एवं गोत्रसे रहित हूँ। मनमें स्थित रहने वाला मन्ता-देव हूँ किन्तु स्वय मन से परिवर्जित रहने वाला हूँ ॥५॥ मन के जो भी कुछ धर्म होते हैं उन सबसे रहित हूँ और मैं विज्ञान तथा ज्ञान का स्वरूप वाला हूँ वह सभी कुछ के बोध रखने वाला-बुद्धि में स्थित-सबका साक्षी अर्थात् देखने वाला होते हुए भी स्वयं बुद्धि से रहित है ॥ ६ ॥

बुद्धिधर्म्मविहीनश्च सर्वः सर्वगतो मतः ।
सर्वप्राणिविनिर्मुक्तः प्राणधर्म्मविवर्जितः ॥७
प्राणिप्राणो महाशान्तो भयेन परिवर्जितः ।
अहङ्कारादिहीनश्च तद्धर्म्मपरिवर्जितः ॥८

तत्साक्षी तन्नियन्ता च परमानन्दरूपकः ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिस्थस्तत्साक्षी तद्विवर्जितः ॥६
तुरीयः परमो धाता दृग्रूपो गुणवर्जितः ।
मुक्तो बुद्धोऽजरो व्यापी सत्य आत्मास्म्यहं शिवः ॥१०
एवं ये मानवा विज्ञा ध्यायन्तीशं परं पदम् ।
प्राप्नुयुस्ते च तद्रूपं नात्र कार्य्या विचारणा ॥११
इति ध्यानं समाख्यातं तव शङ्कर सुव्रत ।
पठेद् य एतत् सततं विष्णुलोकं स गच्छति ॥१२

बुद्धि विवर्जित होने का अर्थ है कि बुद्धि के जो भी धर्म हैं उन सब से रहित है । वह सर्व स्वरूप तथा सब में रहने वाला है । समस्त प्राणियोंसे विनिर्मुक्त तथा प्राण के धर्मों से रहित होता है ।।७।। प्राणियों का प्राण, महान् शान्त स्वरूप और भयसे विवर्जित तथा अहङ्कार आदि से रहित और तद्धर्म से विहीन है ।।८।।उसका साक्षी और उसका नियन्ता परम आनन्दरूप वाला है । जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों दशाओं में स्थित,उसका साक्षी और उससे विवर्जित होता है।।६।। तुरीय (चतुर्थ), परम धाता, दृग् के रूप वाला,गुणों से रहित, मुक्त बुद्ध (बोधयुक्त), जरा से रहित, व्यापक, सत्य और शिव आत्मा मैं हूँ ।।१०।। इस प्रकार से जो विज्ञ मानव ईश का ध्यान किया करते हैं वे परम पदको और उसके रूपको प्राप्त किया करते हैं । इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए।।११।। हे शङ्कर ! हे सुव्रत ! इस प्रकार का ध्यान हमने तुमको बता दिया है । जोइसको निरन्तर पढ़ता है वह विष्णु लोक को प्राप्त होता है।। १२ ।।

११--विष्णुध्यान और सूर्यार्चन

पुनर्ध्यानं समाचक्ष्व शङ्खचक्रगदाधर ।
विष्णोरीशस्य देवस्य शुद्धस्य परमात्मनः ।।१
शृणु रुद्र हरेर्ध्यानं संसारतरुनाशनम् ।
अदृष्टरूपञ्चान्तञ्च सर्वव्याप्यजमव्ययम् ॥२

अक्षय सर्वगं नित्यं महद्ब्रह्मास्ति केवलम् ।
सर्वस्य जगतो मूलं सर्वेशं परमेश्वरम् ।।३
सर्वभूतहृदिस्थं वै सर्वभूतमहेश्वरम् ।
सर्वाधारं निराधारं सर्वकारणकारणम् ॥४
अलेपकं तथा मुक्तं मुक्तयोगिविचिन्तितम् ।
स्थूलदेहविहीनञ्च चक्षुषा परिवर्जितम् ।।५
प्राणेन्द्रियविहीनञ्च प्राणिधर्मविवर्जितम् ।
पायूपस्थविहीनञ्च सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।।६
मनोविरहितं तद्वन्मनोधर्म्मविवर्जितम् ।
बुद्धया विहीनं देवेशं चेतसा परिवर्जितम् ।।७
अहङ्कारविहीनं वै बुद्धिधर्म्मविवर्जितम् ।
प्राणेन रहितञ्चैव ह्यपानेन विवर्जितम् ।।
प्राणाख्यवायुहीनं वै प्राणधर्मविवर्जितम् ।।८

रुद्र देव ने कहा हे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले ! शुद्ध, देव, ईश, परमात्मा भगवान् विष्णु के ध्यान को पुनः करना चाहिए।।१।।हरि ने कहा हे रुद्र ! सुनो, हरि का ध्यान इस संसार रूपी तरु के नाश करने वाला है । उसका रूप तथा अन्त दृष्ट नहीं हैं वह सर्वव्यापी-अज और अव्यय है ।।२।। वह अक्षय, सर्वत्र गमन करने वाला, नित्य और केवल महान् ब्रह्म है। वह इस सम्पूर्ण जगत् का मूल, सभी का ईश और परमेश्वर है ।।३।। समस्त भूतों के हृदयमें स्थित रहने वाला तथा समस्त प्राणियों का महान् ईश्वर है । वह सभी का आधार भी है और स्वयं बिना आधार वालाहै । वह सबके जो कारण हैं उसका भी कारण है॥४।। वह लेप से रहित है अर्थात् किसी की भी लिप्तता का प्रभाव उस पर नहीं होता है । वह मुक्त तथा मुक्त हुए योगी जनों के द्वारा विशेष रूप से चिन्तन किया हुआ है । वह स्थूल देहसे रहित है और समस्त इन्द्रियों से भी विहीन होता है । मन इन्द्रिय से रहित और मन के जो धर्म होते हैं उन सबसे भी शून्य होता है । बुद्धि तथा चित्त से विहीन

एवं अहङ्कार से रहित तथा बुद्धि आदि के धर्मों से ही देवेश होता है। प्राण एवं अपान से रहित तथा प्राणाख्य की आयु से शून्य वह परम देव होते हैं ॥ ५ से ८ ॥

पुनः सूर्यार्चनं वक्ष्ये यदुक्तं धनदाय हि।
अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं शुचौ देशे सकर्णिकम् ॥९
आवाहनीं ततो बद्ध्वा मुद्रामावाहयेद्धरिम्।
खखोल्कं स्थापयेन्मध्ये स्नापयेद् यन्त्ररूपिणम् ॥१०
आग्नेय्यां दिशि देवस्य हृदयं स्थापयेच्छिव।
एशान्यां तु शिरः स्थाप्यं नैर्ऋत्यां विन्यसेच्छिखाम् ॥११
पौरन्दर्यां न्यसेद्धर्ममेकाग्रस्थितमानसः।
वायव्यांश्चैव नेत्रन्तु वारुण्यामस्त्रमेव च ॥१२
ऐशान्यां स्थापयेत् सोमं पौरन्दर्यान्तु लौहितम्।
आग्नेय्यां सोमतनयं याम्यांश्चैव बृहस्पतिम् ॥१३
नैर्ऋत्यां दानवगुरुं वारुण्यां शनैश्चरम्।
वायव्यांश्च तथा केतुं कौवेर्यां राहुमेव च ॥१४
द्वितीयायान्तु कक्षायां सूर्यान् द्वादश पूजयेत्।
भगः सूर्योऽर्यमा चैव मित्रो वै वरुणस्तथा ॥१५
सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महाबलः।
त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥१६
पूर्वादावर्चयेद्देवानिन्द्रादीन् श्रद्धया नरः।
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता ॥
शेशश्च वासुकिश्चैव नागानित्यादि पूजयेत् ॥१७

श्रीहरि ने कहा—अब मैं पुनः सूर्यदेव के अर्चन के विषय में बतलाता हूँ जोकि धनदके लिये कहा गया था। आठ दलोंसे युक्त एक पद्मकालेखन करे जो कि किसी अति पवित्र देशमें होना चाहिए। उस पद्मकी कर्णिका को भी लिखना चाहिए।।९।।इस लेखन करने के अनन्तर आवाहन करने की मुद्रा

प्रदर्शित कर वहाँ पर हरि का आवाहन करे। मध्य में खखोल्क की स्थापना करे और यन्त्र के स्वरूप वाले देव का स्नपन करावे ॥१०॥ हे शिव ! आग्नेयी दिशा में देव के हृदय को स्थापित करे। ऐशानी दिशामें शिर की स्थापना करनी चाहिए तथा नैर्ऋत्य दिशामें शिखा का विन्यास करे ॥११॥ ऐन्द्री दिशा में एकाग्र मनकी स्थिति रखने वाले धर्म को न्यस्त करना चाहिए। वायव्य दिशा में नेत्र तथा वारुणी दिशा में अस्त्र का विन्यास करे ॥१२॥ ऐशानी दिशा में सोम की स्थापना करे–पौरन्दरी में लौहित (मङ्गल)-आग्नेयी में सोमतनय (बुध)-और यामी दिशा में बृहस्पति को विन्यस्त करे ॥१३॥ नैर्ऋत्य में दानव गुरु (शुक्र)–वारुणी में शनैश्चर–वायव्य में केतु तथा कौवेरी दिशा में राहु का विन्यास करना चाहिए ॥१४॥ द्वितीय कक्षा में बारह सूर्यों का पूजन करना चाहिए। उन बारह सूर्यों के नाम ये हैं–भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, महाबलवाला विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवां विष्णु कहा जाता है ॥१५।१६॥ मनुष्य को पूर्वादि दिशाओं में इन्दु आदि का बड़ी ही श्रद्धा के साथ अर्चन करना चाहिए। जय-विजय जयन्ती और अपराजित, शेष वासुकि तथा नागों का पूजन करे॥ १७ ॥

१२—मृत्युञ्जयार्चन

गरुड़ोक्तं कश्यपाय वक्ष्ये मृत्युञ्जयार्चनम् ।
उद्धारपूर्वकं पुण्यं सर्वदेवमयं मतम् ॥१
ओङ्कारं पूर्वमुद्धृत्य जुङ्कारं तदनन्तरम् ।
सविसर्गं तृतीयं स्यात्मृत्युदारिद्र्यमर्दनम् ॥२
अमृतेशं महामन्त्रं त्र्यक्षरं पूजनं समम् ।
जपनात् मृत्युहीनाः स्युः सर्वपापविवर्जिताः ॥३
शतजप्याद् वेदफलं यज्ञतीर्थवलन् लभेत् ।
अष्टोत्तरशतं जप्यं त्रिसन्ध्यं मृत्युशत्रुजित् ॥४

ध्यायेच्च सितपद्मस्थं वरदञ्चाभयं करे ।
द्वाभ्याञ्चामृतकुम्भं तु चिन्तयेदमृतेश्वरम् ॥५
तस्यैवाङ्गगता देवीममृतामृतभाषिणीम् ।
कलशं दक्षिणे हस्ते वामहस्ते सरोरुहम् ॥६
जपेदष्टसहस्रं वै त्रिसन्ध्यं मासमेकतः ।
जरामृत्युमहाव्याधिशत्रुजिज्जीवशान्तिदः ॥७

श्री सूतजी ने कहा- कश्यप मुनि के लिये गरुड़के द्वारा कथित मृत्युञ्जय का अर्चन मैं बताता हूँ । यह उद्धार के साथ परम पुण्य तथा समस्त देवों से परिपूर्ण माना गया है ॥१॥ सबसे पूर्व में ओङ्कार का अर्थात् 'ॐ' इसका उद्धार करे इसके अनन्तर "जुं" का और फिर विसर्ग से युक्त "सः"–यह तृतीय होना चाहिए । "ॐ जुं सः"–यह मन्त्र मृत्यु और दारिद्र्य के मर्दन करने वालाहै । यह अमृतेश का महामन्त्र तीन अक्षर वालाहै । इसका आराधन पूजन के ही समान होता है । इस तीन अक्षर वाले महामन्त्र के जप से मानव मृत्यु से रहित हो जाते हैं तथा सब प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाया करते हैं ॥२।३॥ इस महामन्त्र के एकसौ बार जाप करने से वेद तथा यज्ञ और तीर्थ करने का फल प्राप्त होता है । इस महामन्त्र का अष्टोत्तर शत अर्थात् एक माला तीनों सन्ध्याओं में करे तो मनुष्य मृत्यु और शत्रुको जीतने वाला होता है ॥४॥ और भगवान् अमृतेश्वर का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए कि श्वेत कमल पर वे विराजमान हैं तथा उनके हाथ में वरदान एवं अभय दोनों ही प्रदान करने के लिये विद्यमान हैं और दोनों हाथों में अमृतके कुम्भ हैं ऐसा चिन्तन करना चाहिए ॥५॥ उन्हीं अमृतेश्वर के अङ्ग के साथ सङ्कलन देवी भी हैं जोकि अमृत तथा ऋतभाषण करने वालीहैं इनके दाहिने हाथमें कलशहै और बांये हाथमें कमल पुष्प है ॥६॥ ऐसा ध्यान करते हुए उक्त तीन अक्षर वाले महामन्त्र का आठ हजार जाप तीनों सन्ध्याओंमें एक मास पर्यन्त नित्य करे तो मनुष्यकी जरा (वृद्धता), मृत्यु, महाव्याधि और

शत्रु इन सब पर विजय हो जाती है तथा जीवात्मा को बहुत ही अधिक शांति का लाभ होता है ॥ ७ ॥

आस्थानं स्थापनं रोधं सन्निधानं निवेशनम् ।
पाद्यमाचमनं स्नानमर्घ्यं चागुरुलेपनम् ॥
दीपाम्बरं भूषणञ्च नैवेद्यं पानजीवनम् ॥८
मात्रा मुद्रा जपं ध्यानं दक्षिणाञ्चाहुतिः स्तुतिः ।
वाद्यं गीतञ्च नृत्यञ्च न्यासं योगं प्रदक्षिणम् ॥
प्रणतिं मन्त्र इज्या च वन्दनञ्च विसर्जनम् ॥९
षड़ङ्गादिप्रकारेण पूजनन्तु क्रमोदितम् ।
परमेशमुखोद्‌गीर्णं यो जानाति स पूजकः ॥१०
अर्घ्यंषाशोर्च ।न्वादौ वस्त्रेणात्र तु ताड़नम् ।
शोधनं कवचेनैव अमृतीकरणं ततः ॥११
पूजा चाधारशक्त्यादेः प्राणायामं तथासने ।
पिण्डशुद्धिं ततः कुर्य्याच्छोषण।द्यैस्ततः स्मरेत् ॥१२
आत्मान देवरूपञ्च कराङ्गन्यासकञ्चरेत् ।
आत्मानं पूजयेत्पश्चाज्ज्योतीरूपं हृदब्जतः ॥१३

अमृतेश्वर भगवान् के आराधन का साङ्गोपाङ्ग क्रम करना चाहिए। सर्वप्रथम उनका आवाहन करे–फिर स्थापन करे–संरोधन करे एवं सन्निधान तथा सम्मुखीकरण निवेशम करना चाहिए । इसके अनन्तर पूजन का क्रम आरम्भ करे । अर्घ्य, पाद्य, आचमन और स्नान के लिये जल का समर्पण करना चाहिए । इसके पश्चात् अगुरुलेपन, दीप, वस्त्र, अभूषण, नैवेद्य, पुनराचमनीय, गन्धाक्षत पुष्प और मुखशुद्ध्‌यर्थ ताम्बूल, द्रव्यदक्षिणा, प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करे । मात्रा, मुद्रा, जप, ध्यान, दक्षिणा, आहुति तथा स्तुति करे । फिर वाद्य गीत, नृत्य, न्यास, योग, प्रदक्षिणा, प्रणति, मन्त्र, यजन, वन्दना आदि करके अन्त में देव का विसर्जन करना चाहिए ॥८।९॥ इस प्रकार से यह षडङ्ग पूजन का क्रम बताया गया है जो कि स्वयं परमेश के मुखारविन्द से उद्‌गीर्ण हुआ

है। इस समग्र क्रम को जो भली भाँति से जानता है वही यथार्थ पूजा करने वाला होता है ॥१०॥ आदि में अर्घ्य, पाद्य, अर्चन और अस्त्र के द्वारा ही ताड़न करे। फिर कवच के द्वारा शोधन तथा इसके अनन्तर अमृतीकरण करे। ।११। आधार शक्ति आदि की पूजा–प्राणायाम तथा आसन और इसके अनन्तर शोषणादि के द्वारा पिण्ड शुद्धि करे और इस के उपरान्त स्मरण करना चाहिए ॥१२॥ आत्माको देवरूप करके कराङ्गन्यासादि करे। अपने आप में अन्तः स्थित हृदय कमल पर विराजमान ज्योति रूप का सृजन करे ॥ १३ ॥

मूर्त्तौ वा स्थण्डिलेवापि क्षिपेत्पुष्पं तु भास्वरम् ।
आत्मानं द्वारपूजार्थं पूजा चाधारशक्तिजा ॥१४
सान्निध्यकरणं देवे परिवारस्य पूजनम् ।
अङ्गषट्कस्यपूजार्थं कर्त्तव्या दिग्विभागतः ॥ ५
धर्मादयश्च शक्राद्याः सायुधाः परिवारकाः ।
युगवेदमुहूर्त्ताश्च पूजेयं भुक्तिमुक्तिकृत् ॥१६
मातृकाया गणश्चादौ नन्दिगङ्गे च पूजयेत् ।
महाकालञ्च यमुनां देहल्यां पूजयेत् पुरा ॥१७
ॐ अमृतेश्वरभैरवाय नमः ।
एवं ॐ जुं सः सूर्याय नमः ।
एवं शिवाय कृष्णाय ब्रह्मणे च गणाय च ।
चण्डिकायै सरस्वत्यै महालक्ष्म्यादि पूजयेत् ॥१८

मूर्त्ति पर अथवा स्थण्डिल पर पुष्पों का क्षेपण करे। भास्वर आत्मा को पूजा तथा द्वार पूजाके लिये आधार शक्ति की पूजा करनी चाहिए। देव में सन्निधीकरण, परिवार का पूजन तथा दिशाओं के विधान से षडङ्ग पूजा करनी चाहिए ॥ ४। अपने-अपने आयुधों से समन्वित धर्म आदि एवं शक्र प्रभृति परिवार वाले होते हैं युगवेद और मुहूर्त्त होते हैं। इनकी यह पूजा भुक्ति अर्थात् समस्त प्रकारके सांसारिक सुलोपभोगोके रसास्वादनकाआनंद और मुक्ति अर्थात् बारम्बार विभिन्न योनिमें जन्म-मरणके बन्धन कष्टों से

छुटकारा दोनों ही की प्राप्त कराने वाली होती है ।।१५ से १७ तक।।आदिमें मातृका, गण नन्दी, गङ्गाका पूजन करना चाहिए । पहिले देहलीमें महाकाल और यमुना का अर्चन करे ।'ओंम् असृनेश्वर भैरवायनम.'—इस मन्त्र से एवं 'ओंम् जुं सः सूर्याय नमः' इस मन्त्र के द्वारा पूजन करना चाहिये।इसीप्रकार से 'शिवाय', 'कृष्णाय','ब्रह्मणे', 'गणाय','चाण्डिकायै','सरस्वत्यै', 'महालक्ष्म्यै' इत्यादि क्रम से इनके आगे प्रणव तथा अन्त में 'नमः' यह लगाकर सबका यजन करना चाहिए ।। १८ ।।

१३—शिवर्चन और पंचतत्वदीक्षा

शिवार्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ।
शान्तं सर्वगतं शून्यं मात्रा द्वादशके स्थितम् ॥
पञ्चवक्त्राणि ह्रस्वानि दीर्घाण्यङ्गानि बिन्दुना ।।१
सविसर्गं वदेदस्त्रं शिव ऊर्ध्वं तथा पुनः ।
षष्ठेनाधो महामन्त्रो हौमित्येवाखिलार्थदः ।।२
हस्ताभ्यां संस्पृशेत् पादावूर्ध्वं पादान्तमस्तकम् ।
महामुद्रा हि सर्वेषां कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥३
तालहस्तेन पृष्ठञ्च अस्त्रमन्त्रेण शोधयेत् ।
कनिष्ठामादितः कृत्वा तर्जन्यङ्गानि विन्यसेत् ।।४
पूजनं संप्रवक्ष्यामि कर्णिकायां हृदम्बुजे ।
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यादि हृदाऽर्चयेत् ।।५
आवाहनं स्थापनञ्च पाद्यमर्घ्यं हृदार्पयेत् ।
आचामं स्नपनं पूजामेकाधारणतुल्यकाम् ।।६
अग्निकार्यविधि वक्ष्ये शस्त्रेणोल्लेखनं चरेत् ।
वर्मणाभ्युक्षणं कार्यं शक्तिन्यासं हृदाचरेत् ।।७

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं शिव के अर्चन को बताऊँगा जो कि परम भुक्ति तथा मुक्ति का करने वाला है । वह शान्त, सर्वगम अर्थात् सभी में

व्याप्त रहने वाला और शून्य है। वह द्वादश मात्रा में स्थित रहता है। पाँच वक्त्र ह्रस्व हैं और अन्य अङ्ग बिन्दु से दीर्घ हैं ॥ १ ॥ विसर्ग के सहित अस्त्र को बोले 'शिव'–यह ऊर्ध्व में है तथा पुनः षष्ठ से महामन्त्र "हौम्" इतना ही समस्त प्रकार के अर्थों का प्रदान करने वाला होता है ॥२॥ दोनों हाथों से दोनों पादों को पादान्त मस्तक ऊर्ध्व का स्पर्श करे। सबकी महामुद्रा है–कर न्यास तथा अङ्ग न्यास करना चाहिए ॥ ३ ॥ और ताल हस्त से पृष्ठ को अस्त्र मन्त्र के द्वारा शोधन करे। कनिष्ठा को आदि में करके तर्जनी से अङ्गों का विन्यास करे ॥ ४ ॥ अब मैं हृदय कमल में कर्णिका में पूजन को बतलाता हूँ। हृदय से धर्म्म-ज्ञान-वैराग्य और ऐश्वर्य आदि की अर्चना करे ॥५॥ हृदय के द्वारा ही आवाहन और स्थापना, सम्मुखीकरण, संरोधन आदि पाद्य एवं अर्घ्य समर्पित करना चाहिए। आचमन, स्नपन एक ही आधार के तुल्य पूजा करनी चाहिए ॥६॥ अब अग्नि कार्य की विधि को बतलाऊँगा। शास्त्र के द्वारा उल्लेखन करे–वर्म्म के द्वारा अभ्युक्षण और हृदय से शक्ति का न्यास करना चाहिए ॥७॥

हृदि वा शक्तिगर्त्ते च प्रक्षिपेज्जातवेदसम् ।
गर्भाधानादिकं कृत्वा निष्कृतिश्चास्य पश्चिमाम् ॥८
हृदा कृत्वा सर्वकर्म शिवं साङ्गं तु होमयेत् ।
पूजयेन्मण्डले शम्भुं पद्मगर्भे गवाङ्कितम् ॥९
चतुःशष्ट्यन्तमष्टादि स्वाक्षिस्वाध्यादिमण्डलम् ।
खाक्षीन्द्रसूर्यगं सर्वं खादिवेदेन्दुवर्त्तनात् ॥१०
आग्नेय्यां कारयेत् कुण्डमर्द्धचन्द्रनिभं शुभम् ।
अग्निशास्त्रपरा शस्त्रहृदयादिगणोच्यते ॥
अस्त्रं दिशामुपान्तेषु कर्णिकायां सदाशिवम् ॥११
दीक्षां वक्ष्ये पञ्चतत्त्वे स्थितां भूम्यादिकां परे ।
निवृत्तिर्भूः प्रतिष्ठा च विद्याग्निः शान्तिरश्मिनः ॥१२
शान्त्यतीतं भवेद्धोमे तत्परं शान्तमव्ययम् ।

एकैकस्य शतं होममित्येवं पञ्च होमयेत् ।।
पश्चात् पूर्णाहुतिं दत्त्वा प्रसादेन शिव स्मरेत् ।।१३
प्रायश्चित्तविशुद्धयर्थमेकैकमाहुतिं क्रमात् ।
होमयेदस्त्रबीजेन एवं दीक्षा समाप्यते ।।१४
यजनव्यतिरेकेण गोप्यं संस्कारमुत्तमम् ।
एवं संस्कार शुद्धस्य शिवत्वं जायते ध्रुवम् ।।१५

हृदय से अथवा शक्तिगर्त्त में अग्नि का प्रक्षेपण करे। गर्भाधानादि करके इसकी पश्चिम निष्कृति करनी चाहिए। हृदय के द्वारा समस्त कर्म करके फिर साङ्ग शिव का होम करे। मण्डल में पद्मगभ में गवाङ्कित शम्भु का पूजन करना चाहिए।।८।९।। अष्ट आदि चौंसठ के अन्त तक अक्षियों में स्वाध्यादि मण्डल को, अन्तरिक्ष के अक्षीन्द्र सूर्य में गमन करने वाले को, सबको आकाश की भाँति इन्दुवर्त्तन से आग्नेय दिशा में अर्ध-चन्द्र के सदृश परम शुभ कुण्ड की रचना करानी चाहिए। अग्नि शास्त्र में परायण शास्त्र हृदयादि गण कही जाती है। दिशाओं के उपान्तों में अस्त्र को और कर्णिका में सदाशिव का अर्चन करे ।।१०।११।। अब पर पश्चात्त्व में स्थित भूम्यादिकी दीक्षा को बतलाता हूँ। निवृत्ति, भू प्रतिष्ठा, विद्याग्नि और अशिप की शान्ति तथा शांति के पश्चात् होम में तरार अव्यय शान्त होता है। एक एक की सौ आहुतियों का होम होता है। इस प्रकार से पाँच होम करने चाहिए। इसके अनन्तर पूर्णाहुति देकर प्रसाद के द्वारा भगवान् शिव का स्मरण करना चाहिए ।।१२।। १३।। प्रायश्चित की विशुद्धि के लिये क्रम से एक-एक आहुति अस्त्र बीज से होम करनी चाहिए। इस प्रकार से दीक्षा की समाप्ति की जाती है ।।१४।। यजन के व्यतिरेक से उत्तम संस्कार को गुप्त रखना चाहिए। इस प्रकार से संस्कारों से शुद्ध को शिवत्व निश्चित ही प्राप्त हो जाता है।। १५ ।।

१४—श्रीकृष्ण पूजन वर्णन

गोपालपूजां वक्ष्यामि भुक्तिमुक्ति प्रदायिनीम् ।
द्वारे धाता विधाता च्च गङ्गा यमुनया सह ।।१

शङ्खपद्मनिधी चैव शारङ्गः शरभः श्रिया ।
पूर्वे भद्रः सुभद्रो द्वौ दक्षौ चण्डप्रचण्डकौ ।।२
पश्चिमे बलप्रबलौ जयश्च विजयो यजेत् ।
उत्तरे श्रीश्चतुर्द्वारे गणो दुर्गा सरस्वती ।।३
क्षेत्रस्याग्न्यादिकोणेषु दिक्षु नारदपूर्वकम् ।
सिद्धो गुरुर्नलकूबरं कोणे भागवत यजेत् ।।४
पूर्वे विष्णु विष्णुतपो विष्णुशक्ति समर्चयेत् ।
ततो विष्णुपरावारं मध्ये शक्तिञ्च कूर्मकम् ।।५
अनन्तं पृथिवीधर्मं ज्ञानं वैराग्यमग्नितः ।
ऐश्वर्य्यं वायुपूर्वञ्च प्रकाशात्मानमुत्तरे ।।६
सत्वाय प्रकृतात्मने रजसे मोहरूपिणे ।
तमसे पद्माय यजेदहङ्कारकतत्वकम् ।।७
विद्यातत्वं परं तत्वं सूर्य्येन्दुवह्निमण्डलम् ।
विमलाद्या आसनञ्च प्राच्यां श्रीं ह्रीं संपूजयेत् ।।
गोपीजवल्लभाय स्वाहान्तो मनुरुच्यते ।।८

सूतजी ने कहा–अब मैं आप लोगों को गोपाल की भोग तथा मोक्ष प्रदान कराने वाली पूजा के विषय बतलाता हूँ द्वार में धाता, विधाता और यमुना के साथ गङ्गा का यजन करना चाहिए।।१।। शङ्ख और पद्म निधियों को तथा शारङ्ग एवं श्री के सहित शरभ का यजन करे। पूर्व दिशा में भद्र, सुभद्र दो दक्ष चण्ड और प्रचण्डक, पश्चिम दिशामें बल, प्रबल जय और विजय, उत्तर में श्री, चतुर्द्वार में गण दुर्गा और सरस्वती, क्षेत्र के अग्नि आदि कोणों में दिशाओं में नारद के साथ सिद्ध, गुरु एवं कोण में परम भागवत नल कूवर का यजन करना चाहिए।।२।३।४।।पूर्व में विष्णु विष्णुतप और विष्णु शक्ति की समर्चना करनी चाहिए। इसके अनन्तर विष्णुके परिवार की अर्चना करे और मध्य में शक्ति और कूर्म का पूजन करना चाहिए।।५।।आग्नेयी दिशामें अनन्त पृथ्वी-धर्म ज्ञान और वैराग्य का यजन करे तथा वायुपूर्व ऐश्वर्य का

एवं उत्तर में प्रकाशात्मा का पूजन करे ॥६॥ प्रकृतात्मा सत्त्व के लिये-मोह रूपी रजोगुण के लिये और तमोगुण पद्म के लिये अहङ्कार तत्त्व का यजन करना चाहिए ॥७॥ विद्या तत्त्व, पर तत्त्व, सूर्य, इन्दु, वह्नि मण्डल, विमला आदि और आसन को प्राची (पूर्व दिशा में) में श्रीं ह्रीं से पूजित करे। 'गोपीजन वल्लभाय स्वाहा'-यह जिसके अन्त में है, ऐसा उसका मन्त्र कहा जाता है ॥८॥

आचक्रञ्च सुचक्रञ्च विचक्रञ्च तथैव च ।
त्रैलोक्यरक्षणं चक्रमसुरारिसुदर्शनम् ॥६
हृदादिपूर्वकोणेषु अस्त्रं शक्तिश्च पूर्वतः ।
रुक्मिणी सत्यभामा च सुनन्दा नाग्नजित्यपि ॥१०
लक्ष्मणा मित्रवृन्दा च जाम्बवत्या सुशीलया ।
शङ्खचक्रगदापद्मं मुसलं शार्ङ्गमर्चयेत् ॥११
खड्गं पाशांकुशं प्राच्यां श्रीबत्सं कौस्तुभं यजेत् ।
मुकुटं वनमालाञ्च इन्द्राद्यान् ध्वजमुख्यकान् ॥१२
कुमुदाद्यान्विष्वक्सेनं कृष्णं श्रिया महार्चयेत् ।
जप्याद्ध्यानात्पूजनाच्च सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१३

अब अङ्गों को बतलाया जाता है-आचक्र, सुचक्र, विचक्र तथा त्रैलोक्य की रक्षा करने वाला असुरों के अरि भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र का यजन करे ॥६॥ हृदादि पूर्व कोणों में शक्ति का पूजन करे। पूर्व में रुक्मिणी, सत्यभामा, सुनन्दा, नाग्नाजिती, लक्ष्मणा, मित्र वृन्दा और सुशीला जाम्बवती इन आठ महा महिषियों के सहित शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुसल और शार्ङ्ग धनु, इन भगवान् के आयुधों का सतर्चन करना चाहिए ॥१०।११॥ प्राची दिशा में खड्ग, पाश, अंकुश श्रीवत्स, कौस्तुभ मुकुट, वनमाला और इन्द्रादि ध्वज मुख्यों का यजन करे। कुमुदादि, विष्वक्सेन तथा श्री के सहित कृष्ण का अर्चन करना चाहिए। इस प्रकार से जाप से, ध्यान से पूजन से मानव अपने समस्त कामनाओं की प्राप्ति किया करता है ॥१२।१३॥

१५—गायत्री-न्यास

न्यासादिकं प्रवक्ष्यामि गायत्र्याश्छन्द एव च ।
विश्वामित्र ऋषिश्चैव सविता चाथ देवता । १
ब्रह्मशीर्षा रुद्रशिखा विष्णोर्हृदयसंश्रिता ।
विनियोगैकनयना कात्यायनसगोत्रजा ।।२
त्रैलोक्यचरणा ज्ञेया पृथिवीकुक्षिसंस्थिता ।
एवं ज्ञात्वा तु गायत्रीं जपेद् द्वादशलक्षकम् ।।३
त्रिपदाऽष्टाऽक्षरा ज्ञेया चतुष्पादा षडक्षरा ।
जपेच्च त्रिपदा प्रोक्ता अर्चने च चतुष्पदा ।।४
न्यासे जपे तथा ध्याने अग्निकार्ये तथार्चने ।
गायत्रीं विन्यसेन्नित्यं सर्वपापप्रणाशिनीम् ।।५

श्री हरि ने कहा—अब हम गायत्री के न्यास आदि को बतलाते हैं । पर गायत्री के छन्द भी बतलायेंगे । गायत्री के विश्वामित्र ऋषि हैं और इसके देवता सविता हैं । ब्रह्म के शीर्ष वाली यह रुद्र की शिखा वाली है । यह गायत्री विष्णु के हृदय में संश्रित रहती है । इसका विनियोग एक नेत्र है तथा कात्यायन की सगोत्रजा है ।।१।२।। गायत्री को त्रैलोक्य के चरण वाली और पृथिवी की कुक्षि में संस्थित रहने वाली समझना चाहिए । गायत्री का इस प्रकार का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके तथा स्वरूप को जानकर ही इसका वारह लक्ष जप करना चाहिए ।। ३ ।। इसे तीन पदों वाली, आठ अक्षरों वाली चार पादों से युक्त तथा षडक्षरा जानना चाहिए । त्रिपदा का जप करना चाहिए और अर्चन में चतुष्पदा यह बताई गई है ।।४।। न्यास में, जप में, ध्यान में, अग्नि कार्य में अर्थात् हवन में तथा अर्चन में इस समस्त पापों के प्रकृष्ट रूप से नाश कर देने वाली गायत्री का नित्य ही विन्यास करना चाहिए ।।५।।

पादांगुष्ठे गुल्फमध्ये जंघयोर्विद्धि जानुनोः ।
ऊर्वोर्गुह्ये च वृषणे नाड्यां नाभौ तनूदरे ।।६

स्तनयोर्हृदि कण्ठौष्ठमुखे तालुनि वांशयोः ।
नेत्रे भ्रुवोर्ललाटे च पूर्वस्यां दक्षिणोत्तरे ॥
पश्चिमे मूर्घ्नि चाकारं न्यसेद्वर्णान् वदाम्यहम् ॥७
इन्द्रनीलश्च वह्निश्च पीतं श्यामश्च कापिलम् ।
श्वेतं विद्युत्प्रभं तारं कृष्णं रक्तं क्रमेण तत् ॥८
श्याम शुक्लं तथा पीतं श्वेतं वै पद्मरागवत् ।
शङ्खवर्णं पाण्डरञ्च रक्तश्चासवसन्निभम् ॥
अर्कवर्णं समं सौम्यं शंखभं श्वेतमेव च ॥६
यद्यत्स्पृशति हस्तेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
पूतं भवति तत् सर्वं गायत्र्या न परं विदुः ॥१०

इस गायत्री के न्यास करने के स्थानों को बताते हुए कहते हैं कि पैरों के अँगूठे गुल्फ के मध्य में, दोनों जंघाओं में, जानुओं में, ऊरुओं में, गुह्य में वृषण में, नाड़ी में, नाभि में, शरीर के उदर में, स्तनों में, हृदय में, कण्ठमें ओष्ठ, मुख, तालु में, दोनों कंधों में, नेत्र में, भौंहोंमें और ललाट में न्यास करे। पूर्व, दक्षिण, उत्तर, पश्चिम तथा मूर्धा में आकार का न्यास करना चाहिए अब न्यास के वर्णों को मैं बताता हूँ ॥६।७॥ इसका वर्ण इन्द्र नील और वह्नि के समान है—पीत, श्याम, कपिल, श्वेत, विद्युत् की प्रभा के तुल्य तार, कृष्ण और क्रम से रक्त वर्ण है ॥८॥ श्याम, शुक्ल, पीत, श्वेत पद्मराग मणि के समान है। शंख वर्ण और पाण्डर वर्ण हैं तथा रक्त वर्ण आसव के तुल्य है। अर्क (सूर्य) के वर्ण के सम वर्ण है और शंख की आभा के तुल्य सौम्य एवं श्वेत वर्ण होता है ॥६॥ जिस जिसका हाथ स्पर्श करता है और जो-जो नेत्र से देखता वह सभी पूत हो जाता है। गायत्री से पर अन्य कुछ भी नहीं है। यह गायत्री सर्वोपरि शिरोमणि मन्त्र है ॥१०॥

१६—सन्ध्याविधि

सन्ध्याविधिं प्रवक्ष्यामि शृणु रुद्राघनाशनम् ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा सन्ध्यास्नानमुपक्रमेत्

सप्रणवां सव्याहृतिं गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥२
मनोवाक्कायजं दोष प्राणायामैर्दहेद् द्विजः ।
तस्मात् सर्वेषु कालेषु प्राणायामपरो भवेत् ॥३
सायमग्निश्च मेत्युक्त्वा प्रातः सूर्यत्यपः पिबेत् ।
आपः पुनन्तु मध्याह्ने उपस्पृश्य यथाविधि ॥४
आपोहिष्ठेत्यृचा कुर्यान्मार्जनं तु कुशोदकैः ।
प्रणवेन तु संयुक्तं क्षिपेद्वारि पदे पदे ॥५
रजस्तमः स्वमोहोत्थान् जागृत्स्वप्नसुषुप्तिजान् ।
वाङ्मनः कर्मजान् दोषान् नवैतान्नवभिर्दहेत् ॥६
समुद्धृत्योदकं पाणौ जप्त्वा च द्रुपदा क्षिपेत् ।
त्रिषडष्टौ द्वादशधा वर्त्तयेदघमर्षणम् ॥७
उदुत्यं चित्रमित्याभ्यामुपतिष्ठेद् दिवाकरम् ।
दिवारात्रौ च यत् पापं सर्वं नश्यति तत्क्षणात् ॥८

श्री हरि ने कहा- हे रुद्र ! अब मैं तुमको सन्ध्या की विधि बतलाता हूँ जो कि अघों का नाश करने वाली होती है। तीन वार प्राणायाम करके फिर सन्ध्या के स्नान का उपक्रम करना चाहिए ॥१॥ आयत प्राण वायु वाला होते हुए तीन बार प्रणव व्याहृतियाँ और शिर के सहित गायत्री का जप करे, इसी को प्राणायाम कहा जाता है ॥ २ ॥ ब्राह्मण को प्राणायामों के द्वारा मनवाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाले दोषों का दाह कर देना चाहिए। इसलिये ब्राह्मण को सब कालों में प्राणायाम परायण होना चाहिए ॥ ३ ॥ सन्ध्या के समय में "अग्निश्च मे"— इस मन्त्र का उच्चारण करके, प्रातःकाल में "सूर्यश्च" - इत्यादि मन्त्र को कह कर और मध्याह्न में 'आप पुनन्तु"— इत्यादि मन्त्र को बोल कर यथाविधि उपस्पर्शन करना चाहिए ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर 'आपोहिष्ठा मयोभुवः" इत्यादि ऋचा से कुशोदक से मार्जन करना चाहिए। प्रणव से संयुक्त वारि को पद-पद में प्रक्षिप्त करे ॥ ५ ॥ रजोगुण, तमोगुण से

होने वाले अपने मोह के कारण उठे हुए—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति काल में उत्पन्न होने वाले तथा वाणी,मन और कर्म से समुत्पन्न हुए दोषों को जो नौ प्रकार के होते हैं उनको इन 'आपोहिष्ठा'—इत्यादि नौ मन्त्रों के द्वारा दग्ध कर देना चाहिए ।।६।। फिर हाथ में जल को लेकर 'द्रुपदादिव"–इत्यादि मन्त्र का उच्चारण एवं जाप करके उस जल को प्रक्षिप्त करना चाहिए । तीन वार, छै वार, आठ वार और बारह वार अघमर्षण करना चाहिए ।। ७ ।। 'उदुत्यं', 'चित्रम्'—इत्यादि मन्त्रों के द्वारा सूर्यदेव का उपस्थान करना चाहिए । इस प्रकार से दिन और रात्रि के समय में जो भी कुछ पाप किया है वह सभी उसी क्षण में नष्ट हो जाया करता है ।। ८ ।।

पूर्वं संध्यां जपंस्तिष्ठेत् पश्चिमामुपविश्य च ।
महाव्याहृतिसंयुक्तां गायत्रीं प्रणवान्विताम् ॥६
दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम् ।
त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति दुष्कृतम् ॥१०
रक्ता भवति गायत्री सावित्री शुक्लवर्णिका ।
कृष्णा सरस्वती ज्ञेया सन्ध्यात्रयमुदाहृतम् ॥११
ओंम् भूर्विन्यस्य हृदये ओंम् भुवः शिरसि न्यसेत् ।
ओंम् स्वरिति शिखायाञ्च गायत्र्याः प्रथमं पदम् ॥१२
विन्यसेत्कवचे विद्वान् द्वितीयं नेत्रयोर्न्यसेत् ।
तृतीयेनाङ्गविन्यासं चतुर्थं सर्वतो न्यसेत् ॥१३
सन्ध्याकाले तु विन्यस्य जपेद्वै वेदमातरम् ।
शिवस्तस्यास्तु सर्वाङ्गे प्राणायामपरं न्यसेत् ॥१४

इस विधि से पूर्व अर्थात् प्रातःकाल की सन्ध्याको जप करते हुए खड़ा होकर पूर्ण करे और पश्चिम सन्ध्याको भी बैठकर करे । महाव्याहृतियोंसे युक्त तथा प्रणव से समन्वित गायत्री मन्त्र का एकसौ वार जाप से पहिला किया हुआ दस जन्मोंका समुत्पन्न पाप नष्ट होजाता है । एक सहस्रके जाप करने पर सावित्री त्रियुग के दुष्कृत का नाश कर दिया करती है॥६।१०॥

गायत्री का रक्तवर्ण होता है–सावित्री का शुक्ल वर्ण होता है तथा सरस्वती का कृष्ण वर्ण माना जाताहै। ये तीनों काल की सन्ध्याओंका विवरण बता दिया गया है। अब न्यास का प्रकार बताया जाता है–ॐभूः-इसका विन्यास हृदय में करे अर्थात् 'ॐ भूर्हृदयाय नमः-यह उच्चारण करके हृदयका स्पर्श करना चाहिए। इसी विधि से 'ॐभुवः'–इसका शिर में न्यास करे-'ॐस्वः' इसका शिखा में विन्यास करना चाहिए। इस प्रकार से गायत्री के प्रथम पद का विन्यास करे। प्रथम हृदय के न्यास में–'नमः' का प्रयोग, द्वितीय में 'स्वाहा' का और तृतीय में 'वषट्'–का प्रयोग करे। इसके पश्चात् विद्वान् को कवच में न्यास करना चाहिए और द्वितीय विन्यास नेत्रों में करे तथा तृतीय से अङ्ग का विन्यास करे और चतुर्थका सब ओर करे॥११।१२।१३॥ सन्ध्या की वेला में इस तरह से विन्यास करके फिर वेदमाता का विशेष रूप से जप करना चाहिए। उसके समस्त अङ्क में शिव होवे। प्राणायाम पर न्यास करे॥१४॥

त्रिपदा या तु गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी।
विनियोगमृषिच्छन्दो ज्ञात्वा तु जपमारभेत्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥१५
परोरजसि सारं तं तुरीयपदमीरितम्।
तं हन्ति सूर्य्यः सन्ध्यायां नोपास्ति कुरुते तु यः॥१६
तुरीयस्य पदस्यापि ऋषिर्निर्मल एव च।
छन्दस्तु देवी गायत्री परमात्मा च देवता॥१७

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के स्वरूप वाली जो त्रिपदा गायत्री है उसका विनियोग,ऋषि और छन्द का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करकेही जप का आरम्भ करना चाहिए गायत्री का इस प्रकार से विधि पूर्वक जप करने वाला व्यक्ति सब तरह के पापों से छुटकारा पाकर अन्तमें ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है॥१५॥जो तुरीय पद कहा गया है उसको परोरज में सार बताया गया है। सन्ध्यामें सूर्य उसका हनन कर देता है जो कि सन्ध्या समयमें उपासना नहीं

किया करता है । अतः सन्ध्योपासना करना नितान्त आवश्यक है । तुरीय पद का भी ऋषि निर्मल होता है । उसका छन्द गायत्री होता है और परमात्मा देवता है ॥१६॥१७॥

१७--गायत्री माहात्म्य

गायत्री परमा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदा च ताम् ।
यो जपेत्तस्य पापानि विनश्यन्ति महान्त्यपि ॥१
गायत्रीकल्पमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदश्च तत् ।
अष्टोत्तरं सहस्रं वा अथवाऽष्टशतं जपेत् ।
त्रिसन्ध्यं ब्रह्मलोकी स्याच्छतजप्तं जले पिबेत् ॥२
सन्ध्यायां सर्वपापघ्नीं देवीमावाह्य पूजयेत् ।
भूर्भुवः स्वः स्वमन्त्रेण युतां द्वादशनामभिः ॥३
गायत्र्यै नमः सावित्र्यै सरस्वत्यै नमो नमः ।
वेदमात्रे च सांकृत्यै ब्रह्माणी कौशिकी क्रमात् ॥४
साध्व्यै सर्वार्थसाधिन्यै सहस्राक्ष्यै च भूर्भुवः ।
स्वरेव जुहुयादग्नौ समिधाऽऽज्यं हविष्यकम् ॥५
अष्टोत्तरसहस्रं वाप्यथवाष्टशतं धृनम् ।
धर्मकामादिसिद्ध्यर्थं जुहुयात् सर्वकर्मसु ॥६
प्रतिमां चन्दनस्वर्णनिर्मितां प्रतिपूज्य च ।
यथा लक्षं तु जप्तव्यं पयोमूलफलाशनैः ।
अयुतद्वयहोमेन सर्वान् कामनावाप्नुयात् ॥७
उत्तरे शिखरे जाता भूम्यां पर्वतवासिनी ।
ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥८

श्री हरि ने कहा—गायत्री परमा अर्थात् सर्वोच्च देवी है । यह सांसारिक समस्त भोग और अन्त में मोक्ष प्रदान करने वालीहैं । जोमनुष्य उसका जपकरताहै उसके चाहे बड़े-से-बड़े पाप क्यों न होंसभी समूल विनष्ट होजाया

करते हैं ॥१॥ अब मैं गायत्री के कल्प को बताऊँगा वह कल्प भुक्ति तथा मुक्ति दोनों को देने वाला होता है। गायत्री को एक सौ आठ सहस्र बार अथवा आठ सौ जपना चाहिए। तीन काल की सन्ध्या में गायत्री का जाप करने से ब्रह्मलोक के प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। सौ बार जप किया हुआ जल पीना चाहिए ॥२॥ सन्ध्या में समस्त पापों का नाश करने वाली देवी का आवाहन करके उसका पूजन करना चाहिए। "ओम् भूर्भुवः स्वः" इस स्वमन्त्र से उसके द्वादश नामों से गायत्री का यजन करना चाहिए। गायत्री के लिये नमस्कार है। सावित्री के लिये नमस्कार है-सरस्वती के लिये बारम्बार नमस्कार है। वेदों की माता के लिये नमस्कार है। सांकृति के लिये नमस्कार है। ब्रह्माणी के लिये नमस्कार है। कौशिकी के लिये नमस्कार है। इस क्रम से साध्वी के लिये नमस्कार है। सर्व अर्थों के साधन करने वाली के लिये नमस्कार है और सहस्र नेत्रों वाली के लिये नमस्कार है। फिर भूर्भुवः स्वः-इससे ही अग्नि में समिधा आज्य (घृत) और हवि का हवन करना चाहिए ॥३।४।५॥ अष्टोत्तर शत अथवा आठ सौ की आहुतियाँ समस्त कर्मों में धर्म आदि कामादि की सिद्धि के लिये अग्नि में देनी चाहिए ॥ ६ ॥ गायत्री की प्रतिमा चन्दन अथवा सुवर्ण की बनवा कर उसका पूजन करे। गायत्री का एक लाख जप करना चाहिए। फल-मूल और पय के द्वारा दो अयुत अर्थात् बीस बार होम करने पर मानव सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है ॥७॥ उत्तर शिखर में समुत्पन्न हुई भूमि में हे पर्वत पर निवास करने वाली ! ब्राह्मणों के द्वारा समनुज्ञात होती हुई हे देवी ! अब आप सुखपूर्वक पधारिये-इस प्रकार से गायत्री का विसर्जन अन्त में करना चाहिए ॥ ८ ॥

१८--ब्रह्म-ध्यान

पूजयित्वा पवित्राद्यैर्ब्रह्म ध्यात्वा हरिर्भवेत् ।
ब्रह्मध्यानं प्रवक्ष्यामि मायायन्त्रप्रमर्दकम् ॥१
यच्छेद्वाङ्मनसा प्राज्ञस्तं यजेद् ज्ञानमात्मनः ।
ज्ञानं महति संयच्छेद्य इच्छेज्ज्ञानमात्मनि ॥२

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ।
वर्जितं भूततन्मात्रैर्गुणजन्माशनादिभिः ॥३
स्वप्रकाशं निराकारं सदानन्दमनादि यत् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमृद्धं सत्यमानन्दमद्वयम् ॥४
तुरीयमक्षरं ब्रह्म अहमस्मि परं पदम् ।
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिरपि गीयते ॥५
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचराः ॥६
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।
यस्तु विज्ञानवाह्येन युक्तेन मनसा सदा ।
स तु तत्पदमाप्नोति स हि भूयो न जायते ॥७

श्री हरि ने कहा–पवित्रादि के द्वारा पूजन करके और ब्रह्म का ध्यान करके हरि होजाता है । अब ब्रह्मके ध्यानको बतलाता हूँ जोकि इस माया के यन्त्र का प्रमर्दन करदेने वालाहै । प्राज्ञ पुरुषको वाणी और मनके द्वारा उसका यजन करना चाहिये । आत्मामें ज्ञानका उपयोग करे। जो आत्मामें ज्ञानकी इच्छा रखता है उसे महान् में ज्ञानको लगा देना चाहिये ॥१।२॥ देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार से रहित, भूत,तन्मात्रा, गुण जन्म और अशन आदिसे हीन,अपने आपसे प्रकाश वाला,आकारसे शून्य,सदा आनन्द स्वरूप, अनादि, नित्य, शुद्ध बुद्ध, ऋद्ध,सत्य, आनन्दमय, अद्वय तुरीयऔर अक्षर ब्रह्म-परं यह मैं ही हूँ । मैंब्रह्महूँ-यह अवस्थान तथा समाधि यह भी गाया जाता है॥३।४।५॥ इस आत्माको रथमें स्थित रथी तथा इस शरीर को रथ समझना चाहिये । इस शरीरमें जोइन्द्रियाँहैं वे इस शरीर रूपीरथ को चलाने वाले अश्वहैं और समस्त इन्द्रियोंके विषय गोचर पदार्थ होतेहैं। ॥६॥ विद्वान् पुरुष मन, इन्द्रियों से युक्त आत्मा ही भोक्ता होता है–ऐसा कहते हैं । जो सदा विज्ञान–वाह्य मन से युक्त होता है वही उस पद को प्राप्त होता है और फिर वह जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ॥७॥

विज्ञानसारथिर्यस्य मनः प्रग्रहवान्नरः।
स्वह्निन्याः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥८
अहिंसादि यमः प्रोक्तः शौचादि नियमः स्मृतः।
पद्म युक्तं आसनञ्च प्राणायामो मरुज्जयः ॥९
प्रत्याहारो जयः प्रोक्तो ध्यानमीश्वरचिन्तनम्।
मनोधृतिर्धारणास्यात्समाधिर्ब्रह्मणि स्थितिः ॥१०
अमूर्त्तौ चेट्टणो स्यातु ततो मूर्त्ति विचिन्तयेत्।
हृत्पद्म कर्णिकामध्ये शंखचक्रगदाधरः ॥११
श्रीवत्सकौस्तुभयुतो वनमालाश्रिया युतः।
नित्यः शुद्धो बुद्धियुक्तः सत्यानन्दाह्वयः परः ॥१२
आत्माऽहं परमं ब्रह्म परमज्योतिरेव तु।
चतुर्विंशतिमूर्त्तिः स शालग्रामशिलास्थितः ॥१३
द्वारकादिशिलासंस्थो ध्येयः पूज्योऽपि वा हरिः।
मनसोऽभीप्सितं प्राप्य देवो वैमानिको भवेत् ॥
निष्कामो मुक्तिमाप्नोति मूर्त्ति ध्यायन्स्तुवन् जपन् ॥१४

जिसका सारथी अर्थात् इस शरीर रूपी रथ के इन्द्रिय स्वरूपी अश्वों का चलाने वाला ड्राइवर विज्ञान होताहै वह मनुष्य मनरूपी प्रग्रह(बागडोर) को हाथ रखने वाला होकर इस स्वह्निनी के पार लग जाया करता है अर्थात् इस संसार से पार हो जाया करता है और वह ही विष्णुका परम पद होता है ॥८॥ अहिंसा आदि को यम कहा जाता है और शोच आदि नियम कहे जाया करते हैं। पद्म आदि को आसन कहते हैं तथा वायु पर विजय प्राप्त करने को ही प्राणायाम कहा जाता है। इस प्रक्रिया पर जय प्राप्त कर लेने की स्थिति को ही 'प्रत्याहार'-इस नाम से योग के एक अङ्गको पुकारा जाता है। इस प्रकार से ईश्वर के चिन्तन करने को ध्यान कहते हैं। मन की धृति का अर्थात् मन को केन्द्रित कर लेने का नाम ही धारणा कही जाती है। इस तरह से मन को एकाग्र करके जो ब्रह्म में स्थिति कर ली जाती हैं वह ही समाधि कही जाया करती है ॥९।१०॥ यदि निराकार ब्रह्म का ध्यान नहीं

बन पावे तो साकार ब्रह्म का ही चिन्तन करना चाहिये । ध्यान करने वाले पुरुष को ऐसा ध्यान करना चाहिए कि उसके हृदय रूपी कमलमें जो उसके मध्य भाग में कर्णिकाहै वहाँ पर शङ्ख,चक्र,गदा एवं पद्म इन चारों आयुधों के धारण करने वाले प्रभु हैं जो श्रीवत्स एवं कौस्तुभ को धारण किये हुए हैं तथा वनमाला पहिने हुए हैं । उनका स्वरूप नित्य, शुद्ध,बुद्धियुक्त, सत्य,पर एवं आनन्दमय है ॥११।१२॥ मैं आत्मा ही परमब्रह्म एवं परम ज्योति हूँ । चौबीस मूर्तियों वाला मैं ही शालग्रामकी शिला में भी स्थित रहता हूँ॥१३॥ द्वारका आदि की शिलामें स्थित रहने वाला भी हरिध्यान करनेके तथा पूजा के योग्य है,जो भी मेरी मूर्त्ति ध्यान करने वाले को अभीष्ट हो उसीका ध्यान करके वह अभीप्सित की प्राप्ति कर लेता है और वैमानिक देव हो जाता है । तात्पर्य यह है कि स्वर्गादि का अधिकारी देव बन जाता है । जो कामनाओंसे रहित होकर मेरी मूर्त्ति का ध्यान किया करताहै वह परम पद मुक्तिको प्राप्त करता है चाहे मेरा ध्यान करे, स्तवन करे या मेरा जाप करे ॥ १४ ॥

१६—शालग्राम लक्षण

प्रसङ्गात्कथयिष्यामि शालग्रामस्य लक्षणम् ।
शालग्रामशिलास्पर्शात्कोटिजन्माघनाशनम् ॥१
शंखचक्रगदापद्मी केशवाख्यो गदाधरः ।
साब्जकौमोदकीचक्रशंखी नारायणो विभुः ॥२
सचक्रशंखाब्जगदो माधवः श्रीगदाधरः ।
गदाब्जशंखचक्री वा गोविन्दोऽर्च्यो गदाधरः ॥३
पद्मशंखारिगदिने विष्णुरूपाय ते नमः ।
सशंखाब्जगदाचक्रमधुसूदनमूर्त्तये ॥४
नमो गदारिशंखाब्जमूर्त्तित्रै विक्रमाय च ।
सारिकौमोदकीपद्मशखवामनमूर्त्तये ॥५
चक्राब्जशंखगदिने नमः श्रीधरमूर्त्तये ।
हृषीकेशायाब्जगदाशंखिने चक्रिणे नमः ॥६

साब्जचक्रगदाशंखपद्मनाभस्वरूपिणे ।
दामोदरशंखचक्रगदापद्मिन्नमोनमः ॥७
सारिशखगदाब्जाय वासुदेवाय वै नमः ।
शंखाब्जचक्रादिने नमः सङ्कर्षणाय च ॥८

श्री हरि ने कहा- अब मैं प्रसङ्गवश शालग्राम के लक्षण बतलाता हूँ। शालग्राम की शिला का बहुत ही अधिक महत्त्व है। शालग्राम की शिला के स्पर्श करने से करोड़ों जन्मों के अघों का नाश हो जाता है ॥ १ ॥ शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा के धारण करने वाले भगवान् का नाम केशव है। कमल, कौमोदकी, चक्र, और शङ्ख धारी विभु का नाम नारायण है ॥२॥ चक्र, शङ्ख, पद्म और गदा वाले श्रीगदाधर का नाम माधव है। गदा, अब्ज, शङ्ख और चक्र के धारण करने वाले गदाधर गोविन्द अर्चना के योग्य है ॥३॥ पद्म, शङ्ख और शत्रु की नाशक गदा के धारण करने वाले विष्णु के स्वरूप आपके लिये नमस्कार है। शंख, चक्र, अब्ज, गदा के सहित मधु दैत्य के सूदन करने वाली मूर्त्ति के लिये नमस्कार है ॥४॥ गदादि, शंख, अब्ज की मूर्त्ति त्रैविक्रम के लिये प्रणाम है। सारि, कौमोदकी अर्थात् आपके सहित कौमोदकी गदा, पद्म और शंख वाले वामन मूर्त्ति वाले आपको नमस्कार है। चक्र अब्ज, शंख और गदा वाले श्रीधर मूर्त्ति को नमस्कार है। हृषीकेश अर्थात् विषयेन्द्रियों के स्वामी, अब्ज, गदा और शंखधारी चक्री के लिए नमस्कार है ॥५।६॥ अब्ज, चक्र, गदा और शंख के सहित पद्मनाभ के स्वरूप वाले–हे दामोदर ! हे शंख, चक्र, गदा और पद्म धारिन् ! आपके लिए बारम्बार नमस्कार है ॥७॥ सारि, शंख, गदा और अब्ज के सहित वासुदेव के लिए प्रणाम है। शंख, अब्ज, चक्र और गदा के धारण करने वाले सङ्कर्षण के लिए प्रणाम है ॥ ८ ॥

सुशंखसुगदाब्जारिधृते प्रद्युम्नमूर्त्तये ।
नमोऽनिरुद्धाय गदाशंखाब्जारिविधारिणे ॥९
साब्जशंखगदाचक्रपुरुषोत्तममूर्त्तये ।
नमोऽधोऽक्षजरूपाय गदाशंखारिपद्मिने ॥१०

नृसिंहमूर्त्तये पद्मगदाशंखारिधारिणे ।
पद्मारिशंखगदिने नमोऽस्त्वच्युतमूर्त्तये ॥११
सशङ्खचक्राब्जगदं जनार्दनमिहानये ।
उपेन्द्रं सगद सारिं पद्मशङ्खिन्नमो नमः ॥१२
सुचक्राब्जगदाशङ्खयुक्ताय हरिमूर्त्तये ।
सगदाब्जारिशङ्खाय नमः श्रीकृष्णमूर्त्तये ॥१३
शालग्रामशिलाद्वारगतलग्नद्विचक्रधृक् ।
शुक्लाभो वासुदेवाख्यः सोऽव्याद्वः श्रीगदाधरः ॥१४
लग्नद्विचक्रो रक्ताभः पूर्वभागन्तु पद्मभृत् ।
सङ्कर्षणोऽथ प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः ॥१५
सदीर्घः सशिरश्छिद्रो योऽनिरुद्धस्तु वर्तुलः ।
नीलो द्वारि त्रिरेखश्च अथ नारायणोऽसितः ॥१६

सुन्दर शङ्ख, सुन्दर गदा, अब्ज और अरि के धारण करने वाले प्रद्युम्न की मूर्त्ति आपके लिए नमस्कार है तथा गदा, शंख, अब्ज और अरि के विधारी अनिरुद्ध के लिए नमस्कार है।।९।। अब्ज, शंख, गदा, चक्र के सहित पुरुषोत्तम मर्त्ति वाले के लिए प्रणाम है । गदा, अरि, शंख और पद्म वाले अधोक्षज रूप वाले के लिए प्रणाम है ।।१०।। पद्म, गदा, शंख और अरि के धारण करने वाले नृसिंह मूर्त्ति के लिये नमस्कार है । पद्म, अरि, शंख तथा गदा वाले अच्युत मूर्त्ति भगवान् को नमस्कार है।।११।। शंख, चक्र, अब्ज, गदा से समन्वित भगवान् जनार्दन को यहाँ लाता हूँ । गदा और अरि के सहित उपेन्द्र को हे पद्म और शख के धारी ! बारम्वार नमस्कार है।।१२।। सुन्दर चक्र अब्ज, गदा और शंख से युक्त हरि की मूर्त्ति के लिये प्रणाम है । गदा, अब्ज, अरि और शख से संयुत भगवान् श्रीकृष्ण मूर्त्ति के लिए नमस्कार है।।१३।। शालग्राम शिला के द्वार पर गत एवं लग्न दो चक्र के धारण करने वाले, शुक्ल आभा से युक्त वासुदेव नाम वाले श्रीगदाधर हैं वह भगवान् हमारी रक्षा करें। ।।१४।। संलग्न दो चक्र वाले, रक्त आभा से युक्त, पूर्व भाग में पद्मभृत् सङ्कर्षण तथा सूक्ष्म चक्र वाले, पीत वर्णसे युक्त प्रद्युम्न, सदीर्घ तथा शिरश्छिद्र से सम-

न्वित जो वर्त्तुल अनिरुद्ध, द्वार पर नील, तीन रेखा वाले अमित वर्ण से युक्त नारायण रक्षा करे ।।१५।१६।।

मध्ये गदाकृती रेखा नाभिचक्रो महोन्नतः ।
पृथुवक्षो नृसिंहो वः कपिलोऽव्यात्त्रिबिन्दुकः । ७
अथवा पञ्चबिन्दुस्त पूजनं ब्रह्मचारिणः ।
वराहशक्तिलिङ्गोऽव्याद्विषमद्वयचक्रकः ।।१८
नीलस्त्रिरेखः स्थूलोऽथकूर्ममूर्त्तिः स विन्दुमान् ।
कृष्णः स वर्त्तुलावर्त्तः पातु वो नतपृष्टकः ।। ९
श्रीधरः पञ्चरेखोऽव्याद्वनमाली गदाङ्कितः ।
वामनो वर्त्तुलो ह्रस्वो वामचक्रः सुरेश्वरः ।।२०
नानावर्णोऽनेकमूर्त्तिर्नागभोगी त्वनन्तकः ।
स्थूलो दामोदरो नीलो मध्ये चक्रः सुनीलकः ।।२१
सङ्कीर्णद्वारको वाव्यादथ ब्रह्मा सुलोहितः ।
सदीर्घरेखः शुषिर एकचक्राम्बुजः पृथुः ।।२२
पृथुच्छिद्रः स्थूलचक्रः कृष्णो बिन्दुश्च बिन्दुमत् ।
हयग्रीवोऽङ्कुशाकारः पञ्चरेखः सकौस्तुभः ।।२३
वैकुण्ठो मणिरत्नाभ एकचक्राम्बुजोऽसितः ।
मत्स्यो दीर्घोऽम्बुजाकारो द्वाररेखश्च पातु वः ।।२४
रामचक्रो दक्षरेखः श्यामो वोऽव्यात्त्रिविक्रमः ।
शालग्रामे द्वारकायां स्थिताय गदिने नमः ॥२५
एकद्वारे चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम् ।
स्वर्ण रेखासमायुक्तं गोष्पदेन विराजितम् ।
कदम्बकुसुमाकारं लक्ष्मीनारायणोऽवतु ।।२६

मध्य में गदा की आकृति वाली रेखा, नाभिचक्र, महान् उन्नत, पृथु वक्ष वाले नृसिंह, त्रिविन्दुक कपिल हमारी रक्षा करें।।१७।।अथवा पञ्च विन्दु ब्रह्मचारीका वह पूजन, वराह शक्ति लिङ्ग विषमद्वय चक्रक रक्षा करें॥१८।। नील-तीन रेखासे युक्त, स्थूल, कूर्म मूर्त्ति, विन्दुमान्, वर्त्तुलावर्त्तक नत पृष्ठ

वाले वह कृष्ण हमारी रक्षा करें ।।१९।। श्रीधर, पाँच रेखा वाले, वनमाली, गदा से अङ्कित, वर्त्तुल, वामनह्रस्व, वामचक्र, सुरेश्वर, नाना वर्णों से युक्त, अनेक मूर्त्ति वाले, नाग भोगी, अनन्तक, स्थूल, दामोदर, नील-मध्य में सुनीलक चक्र तथा सङ्कीर्ण द्वार वाला रक्षा करे। इसके अनन्तर सुलोहित ब्रह्मा, दीर्घरेखा से युक्त, सुषिर, एक चक्र और अम्बुज वाले पृथु पृथु छिद्र वाले, स्थूल चक्र, कृष्ण, विन्दु, विन्दुमत् हयग्रीव, अंकुशाकार, पञ्चरेख, कौस्तुभ से युक्त, वैकुण्ठ, मणिरत्नाभ, एक चक्र, अम्बुज असित मत्स्य, दीर्घ, अम्बुजाकार और द्वार रेख हमारी रक्षा करें ।।२० से २४।। रामचक्र, दक्षरेख, श्याम और त्रिविक्रम हमारी रक्षा करें। शालग्राम में, द्वारका में स्थित गदा वाले के लिये नमस्कार है। एक द्वार में चार चक्र वाले, वनमाला से विशेष रूप से भूषित स्वर्ण रेखा से समायुक्त, गोष्पद से विराजित और कदम्ब के कुसुम के आकार वाले की भगवान् लक्ष्मीनारायण रक्षा करें ।।२५।२६।।

एकेन लक्षितो योऽव्याद् गदाधारी सुदर्शनः।
लक्ष्मीनारायणो द्वाभ्यां त्रिभिर्मूर्त्तेस्त्रिविक्रमः ।।२७
चतुर्भिश्च चतुर्व्यूहो वासुदेवश्च पञ्चभिः।
प्रद्युम्नः षड्भिरेव स्यात्सङ्कर्षण इतस्ततः ।।२८
पुरुषोत्तमोऽष्टाभिः स्यान्नवव्यूहो नवाङ्कितः।
दशावतारो दशभिरनिरुद्धोऽवतादथ ।।२९
द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्ध्वमनन्तकः।
विष्णोर्मूर्त्तिमयं स्तोत्रं यः पठेत्स दिवं व्रजेत् ॥३०
ब्रह्मा चतुर्मुखो दण्डी कमण्डलुयुगान्वितः।
महेश्वरः पञ्चवक्त्रो दशबाहुर्वृषध्वजः ।।३१
यथायुधस्तथा गौरी चण्डिका च सरस्वती।
महालक्ष्मीर्मातृञ्च पद्महस्तो दिवाकरः ।।३२
गजास्यश्च गणः स्कन्दः षण्मुखोऽनेकधा गुणाः।
एतेऽर्चिताः स्थापिताश्च प्रासादे वास्तुपूजिते ।।
धर्मार्थकाममोक्षाद्याः प्राप्यन्ते पुरुषेण च ।।३३

एक से लक्षित जो गदाधारी सुदर्शन भगवान् हैं वह आपकी रक्षा करे। दो से लक्ष्मीनारायण, तीन मूर्त्तियों से युक्त त्रिविक्रम भगवान् रक्षा करे। चार से चतुर्व्यूह, पाँच से भगवान् वासुदेव, छः से प्रद्युम्न और इधर-उधर भगवान् सङ्कर्षण रक्षा करें। आठ से भगवान् पुरुषोत्तम आपकी रक्षा करें। इस प्रकार से नवाङ्कित नव व्यूह होते हैं। दश से दशावतार वाले भगवान् अनिरुद्ध रक्षा करें। द्वादश आत्मा वाले जो बारह से युक्त हैं रक्षा करें। अनन्तक भगवान् ऊपर में रक्षा करें। इस भगवान् के मूर्त्ति स्वरूप इस स्तोत्र का जो पाठ किया करता है वह दिव लोक को प्राप्त होता है ॥२९ से ३०॥ ब्रह्मा चार मुख वाले दण्डी और दो कमण्डलुओं से युक्त हैं। महेश्वर पाँच मुख वाले हैं और वृषध्वज दश बाहुओं से युक्त हैं ॥३१॥ जिस प्रकार से यह आयुधों से युक्त हैं वैसे ही गौरी, चण्डिका और सरस्वती देवी तथा महालक्ष्मी माताएँ हैं। दिवाकर पद्म हाथ में धारण करने वाले हैं। गज के समान मुख वाले गण अर्थात् गणेश हैं छः मुखों से युक्त स्कन्द हैं। ये इस तरह अनेक प्रकार के गुण हैं ये सब स्थापित एवं समर्चित होते हैं और प्रासाद-में वास्तु का पूजन किये जाने पर पुरुष के द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि सब प्राप्त किये जाया करते हैं ॥३२॥३३॥

२०—वास्तुयाग-विधि

वास्तुं संक्षेपतो वक्ष्ये गृहादौ विघ्ननाशनम्।
ईशानकोणादारभ्य ह्येकाशीतिपदे यजेत् ॥१
ईशाने च शिरः पादौ नैर्ऋतेऽग्न्यानिले करौ।
आवासवासवेश्मादौ पुरे ग्रामे वणिक्पथे ॥२
प्रासादारामदुर्गेषु देवालयमठेषु च।
द्वाविंशत्तु सुरान्वाह्ये तदन्तश्च त्रयोदश ॥३
ईशश्चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः।
सूर्य्यः सत्यो भृगुश्चैव आकाशा वायुरेव च ॥४
पूषा च वितथश्चैव ग्रहक्षेत्रयमावुभौ।
गन्धर्वो भृगुराजस्तु मृग पितृगणास्तथा ॥५

द्वौच रिक्तोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो गणाधिपः ।
असुरः शेषपादौ च रोगोऽह्निमुख्य एवं च ॥६
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा ।
वह्निर्द्वात्रिंशद्देवे तु तदन्तश्चतुरः शृणु ॥७
ईशानादि चतुष्कोण संस्थितान्पूजयेद् बुधः ।
आपश्चवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च ॥८
मध्ये नवपदे ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगान् ।
देवानेकोत्तरानेतान्पूर्वादौ नामतः शृणु ॥९

श्री हरि भगवान् ने कहा—अब मैं संक्षेप से वास्तु के विषय में बतलाता हूँ जोकि गृह आदि में विघ्नों का नाश करने वाला है । ईशान कोण से आरम्भ करके इक्यासी पद तक यजन करना चाहिए।।१।।ईशान उपदिशा में शिर का यजन करना चाहिए—नैर्ऋत दिशा में पादों का अर्चन करे तथा अग्नि एवं वायव्यमें दोनों करों का यजन करना चाहिए । आवास,वास,वेश्म आदिमें पुर,ग्राम वणिक्पथ में, प्रासाद, आराम, दुर्ग में और देवालय तथा मठोंमें बत्तीस देवोंका आवाहन करना चाहिए । उनकेअन्दर तेरहका आवाहन करे।।२। ।। ईश, पर्जन्य, जयन्त, कुलिश के आयुध वाला अर्थात् इन्द्र-सूर्य्य, सत्य, भृगु, आकाश, वायु पूषा, वितथ, दोनों ग्रहक्षेत्र यम,गन्धर्व,भृगुराज, मृग तथा पितृगण । द्वारपाल सुग्रीव पुष्पदन्त, गणाधिप,असुर, शेष, पाद,रोग, अहिमुख्य,भल्लाट, सोम, सर्प,अदिति,दिति ये बाहिर बत्तीस देवगण हैं । इसके अन्दर चार हैं । उनका श्रवण करो ।।४।५।६।७।। बुध पुरुष को ईशान आदि चार कोणों में संस्थित देवोंका पूजन करना चाहिए । आप, सावित्री, जय,रुद्र,मध्य नवपद में ब्रह्मा और उसके समीपमें रहने वाले आठ पूर्वादि में एकोत्तर देवों का यजन करे । उनके नाम श्रवण करो ।।८।९।।

अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः ।
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ।।
अष्टमश्चापवत्सश्च परितो ब्रह्मणः स्मृता। ।।१०

ईशानकोणादारभ्य दुर्गे च वंश उच्यते ।
आग्नेयकोणादारभ्य वशो भवति दुर्द्धरः ।।११
अदितिं हिमवन्तश्च जयन्तञ्च इदं त्रयम् !
नायिका कलिका नाम शक्राद् गन्धर्वगाः पुनः ।।
वास्तुदेवान्पूजयित्वा गृहप्रासादकृद्भवेत् ।।१२
सुरेज्यः पुरतः कार्यो दिश्याग्नेय्यां महानसम् ।
कपिनिर्गमने येन पूवतः सत्रमण्डपम् ।।१३
गन्धपुष्पगृहं कार्यमैशान्यां पट्टसंयुतम् ।
भाण्डागारश्च कौवेर्यां गोष्ठागारञ्च वायवे ।।१४

अयमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर और आठवाँ आप वत्स है जो ब्रह्म के चारों ओर कहे गये हैं।।१०।। और दुर्ग में ईशान कोण से आरम्भ करके वंश कहा जाता है । आग्नेय कोण से आरम्भ करके वंश दुर्धर होता है।।११।। अदिति, हिमवन्त और जयन्त ये तीनों,कलिका नाम वाली नायिका शक्र (इन्द्र) से गन्धर्व को जाने वाली इन समस्त वास्तु देवों का पूजन करके गृह प्रासाद का कर्त्ता होना चाहिए । ।।१२।। आगे सुरेज्य करना चाहिए, आग्नेयी दिशा में महानस (रसोईघर) रखना चाहिए । पूर्व में कपि निर्गमन में सत्र मण्डप रक्खे । ऐशानी दिशा में पद से संयुक्त गन्ध एवं पुष्पों का गृह रखना चाहिए । कौवेरी दिशा में भाण्डों (वर्तनों) का आगार रखे । वायव्य दिशा गोष्ठागार रखना चाहिए।।१३।१४।।

उदगाश्रयं वारुण्यां वातायनसमन्वितम् ।
समित्कुशेन्धनस्थानमायुधानां च नैर्ऋते ।।१५
अभ्यागतालयं रम्यं सशय्यासनपादुकम् ।
तोयाग्निदीपसद्भृत्यैर्युक्तं दक्षिणतो भवेत् ।।१६
गृहान्तराणि सर्वाणि सजलैः कदलीगृहैः ।
पंचवर्णैश्च कुसुमैः शोभितानि प्रकल्पयेत् ।।१७

प्राकारं तद्बहिर्दद्यात् पंचहस्तप्रमाणतः ।
एवं विष्णवाश्रमं कुर्याद्वनैश्चोपवनैर्युतम् ॥१८

जल के आश्रय का स्थान वारुणी दिशा में नियत करे जो कि वायुके आने जाने वाले वातायनों से संयुत हो । समिधा, कुशा, इंधन और आयुधों के रखने का स्थान नैर्ऋत्य दिशामें होना चाहिए । अभ्यागत पुरुषों के रहने का स्थान परम सुन्दर होना चाहिए जो शय्या, आसन और पादुका आदि से समन्वित होवे और वहाँ पर जल, अग्नि, दीपक तथा समुचित भृत्य भी रहने चाहिए । यह स्थान दक्षिण दिशा में होना चाहिए ॥१५।१६॥ समस्त गृहों के अन्तर्भाग सजल कदलीगृह और पाँच वर्ण वाले कुसुमों से सुशोभित कल्पित करने चाहिए ॥१७॥उसके बाहिर पांच हाथ के परिमाण वाला प्राकार रखना चाहिए । इस प्रकार से वन तथा उपवनों से समन्वित भगवान् विष्णुका आश्रम बनाना चाहिए ।१८॥

चतुःषष्टिपदो वास्तुः प्रासादादौ प्रपूजितः ।
मध्ये चतुष्पदो ब्रह्म द्विपदास्त्वर्यमादयः ॥१९
वर्णे चैवाथ शिख्याद्यास्तथा देवाः प्रकीर्त्तिताः ।
तेभ्यो ह्युभयतः सार्द्धादन्येऽपि द्विपदाः सुराः ।
चतुःषष्टिपदा देवा इत्येव परिकीर्त्तिताः ॥२०
चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी ।
ईशानाद्यास्ततो बाह्ये देवाद्या हेतुकादयः ॥२१
हेतुकस्त्रिपुरान्तश्च अग्निवेतालको यमः ।
अग्निजिह्वः कालकश्च करालो ह्येकपादकः ॥२२
ऐशान्यां भीमरूपस्तु पाताले प्रेतनायकः ।
आकाशे गन्धमाली स्यात्क्षेत्रपालास्ततो यजेत् ॥२३
विस्ताराभिहतं दैर्घ्यं राशि वास्तोस्तु कारयेत् ।
कृत्वा च वसुभिर्भागं शेषं चैवायमादिशेत् ॥२४

पुनर्गु णितमष्टाभिर्ऋक्षभागन्तु भाजयेत् ।
यच्छेषं तद्भवेदृक्ष भागैर्हृत्वा व्ययं भवेत् ॥२५
ऋक्षं चतुर्गुणं कृत्वा नवभिर्भागहारितम् ।
शेषमंशं विजानीयाद्देवलस्य मत यथः ॥२६
अष्टाभिर्गु णित पिण्डं षष्टिभिर्भागहारितम् ।
यच्छेष तद्भवेज्जीवं मरणं भूतहारितम् ॥
वास्तुक्रोडे गृहं कुर्यान्न पृष्ठे मानवः सदा ।
वामपार्श्वेन स्वपिति नात्रकार्या विचारणा ॥२८

चौंसठ पदों वाला वास्तु प्रासाद के आदि में प्रपूजित होवे । मध्य में चतुष्पद ब्रह्मा और द्विपद अर्यमा आदिक पूजित होवें । कर्ण में शिखी आदि देव कहे गये हैं । उनके दोनों ओर अन्य भी द्विपद सुर होते हैं । ये सभी चतुःषष्टि पदों वाले देव परिकीर्त्तित किये गये हैं ॥१६।२०॥ चरकी, विदारी, पूतना पाप राक्षसी ईशानाद्य हैं । इसके अनन्तर बाह्य में हेतुकादि देवाद्य हैं । हेतुक त्रिपुरान्त, अग्नि, वेतालक, यम, अग्निजिह्व, कालका, कराल, एक पादक ॥ ऐशानी दिशा में भीमरूप, पाताल में प्रेतनायक, आकाश में गन्धमाली इसके अनन्तर क्षेत्रपालों का यजन करे। दैर्घ्यराशि को विस्तार से अभिहत करे । इस तरह से वास्तु का करावे और आठ से भाग करके शेष को अरिष्ट करना चाहिए ॥२१ से २४तक। फिर आठ से गुणित कर ऋक्षभाग को भाजित करे । जो शेष हो वह ऋण होता है । भागों से हरण करके व्यय होता है ॥ २५ ॥ ऋक्ष को चतुर्गुण करके नौ से भाग हरित करे । जो शेष रहता है वह जीव होता है और भूत हारित मरण हैं ॥२६।२७॥ वास्तु के क्रोड़ गोद मे मानव को गृह करना चाहिए सदा पृष्ठ में न करे । वाम पार्श्व से सोता है— इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिए ॥२८॥

सिंहकन्यातुलायाश्च द्वारं शुद्धं दथोत्तमम् ।
एवं च वृश्चिकादौ स्यात्पूर्वदक्षिणपश्चिमम् ॥२९
द्वारं दीर्घार्द्ध विस्तार द्वाराण्यष्टौ स्मृतानि च ॥३०

स्वतल्पे प्लवनीचत्वं सर्पेण सूत्रभाजनम् ।
पुत्रहीनन्तु रौद्रेण वीर्यघ्नं दक्षिणे तथा ॥३१
वह्नौ बन्धश्च वायौ च पुत्रलाभः सुतृप्तिदः ।
धनदे नृपपीडादं बन्धनं रोगदं जले ॥३२
नृपभीतिर्मृतापत्यं ह्यनपत्यञ्च वैरिदम् ।
अर्थदे चार्थहानिश्च दोषदं पुत्रमृत्युदम् ।
द्वाराण्युत्तरसंज्ञानि पूर्वद्वाराणि वच्म्यहम् ॥३३
अग्निभीतिर्बहुकन्या धनसम्मानकं पदम् ।
राजघ्नं रोगदं पूर्वे फलतो द्वारमीरितम् ॥३४
ईशानादौ भवेत्पूर्वमाग्नेयादौ तु दक्षिणम् ।
नैर्ऋत्यादौ पश्चिमं स्याद्वायव्यादौ तु चोत्तरम् ॥
अष्टभागे कृते भागे द्वाराणां च फलाफलम् ॥३५
अश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधाः पूर्वादौ स्यादुदुम्बरः ।
गृहस्य शोभनः प्रोक्त ईशाने चैव शाल्मलिः ॥
पूजितो विघ्नहारी स्यात्प्रासादस्य गृहस्य च ॥३६

सिंह, कन्या और तुला में द्वार शुद्ध करे। इसके अनन्तर उत्तर में इसी प्रकार से वृश्चिकादि में पूर्व-दक्षिण और पश्चिम होवे। दीर्घ के आधे विस्तार वाला द्वार होना चाहिए। आठ द्वार कहे गये हैं ॥२६॥ ॥३०॥ स्वतल्प में प्लव नीचत्व है–सर्प से सूत्र भाजन है–रौद्र में पुत्र-हीनता होती है–दक्षिण में वीर्य का हनन करने वाला है ॥ ३१ ॥ वह्नि दिशा में बाध होता है–वायु दिशा में पुत्र का लाभ एवं सुतृप्तिप्रद है। धनद दिशा में नृप को पीड़ा देने वाला–जल में बन्धन और रोगप्रद होता है ॥३२॥ नृप से भय–मृतापत्यता (सन्तान का मृत हो जाना–सन्तति का अभाव तथा वैरियों को देने वाला होता है। अर्थद में अर्थ की हानि–दोषप्रद और पुत्र की मृत्यु देने वाला है। अब मैं पूर्वद्वार उत्तर संज्ञा वाले द्वारों को बतलाता हूँ ॥ ३३ ॥ अग्नि का भय बहुत कन्याओं का होना–धन तथा सम्मान प्रदान करने वाले पद का पाना–राजा का

हनन-रोगप्रद पूर्व में फल से द्वार अभीष्ट होता है ॥३४॥ ईशान आदि में पूर्व होता है-आग्नेय आदि में दक्षिण-नैऋत्य आदिमें पश्चिम और वायव्य आदि में उत्तर होता है । भाग के अष्टभाग करने पर द्वारों का फलाफल होता है॥३५॥ पूर्वादि में अश्वत्थ (पीपल)-प्लव (पाखर)-न्यग्रोध बड़) और उदुम्बर (गूलर) गृह का शोभन कहा गया है । ईशान में शालमलि प्रासाद तथा गृह का पूजित होता हुआ विघ्नों का हरण करने वाला होता है ॥३६॥

२१--प्रासादलक्षण

प्रासादानां लक्षणञ्च वक्ष्ये शौनक तच्छृणु ।
चतु:षष्टिपदं कृत्वा दिग्विदिक्षूपलक्षितम् ॥१
चतुष्कोणं चतुभिश्च द्वाराणि सूर्य्यसंख्यया ।
चत्वारिंशाष्टभिश्चैव भित्तीनां कल्पना भवेत् ॥२
ऊर्ध्वक्षेत्रसमा जङ्घा तदूर्ध्वे द्विगुणं भवेत् ।
गर्भविस्तार विस्तीर्णा शुकाङ्घ्रिश्च विधीयते ॥३
तत्त्रिभागेन कर्त्तव्यः पञ्चभागेन वा पुनः ।
निर्गमस्तु शुकाङ्घ्रेश्च उच्छ्रायः शिखरार्द्धगः ॥४
चतुर्द्धा शिखरं कृत्वा त्रिभागे वेदिबन्धनम् ।
चतुर्थे पुनरस्यैव कण्ठमामूलसाधनम् ॥५
अथवापि समं वास्तु कृत्वा षोडशभागिकम् ।
तस्य मध्ये चतुर्भागमादौ गर्भन्तु कारयेत् ॥६
भागद्वादशिकां भित्तिं ततश्च परिकल्पयेत् ।
चतुर्भागेन भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात्प्रमाणतः ॥७
द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायाच्च मानतः ।
शिखरार्द्धस्य चार्द्धेन विधेयास्तु प्रदक्षिणाः ॥८

चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयो निर्गमस्तु तथा बुधैः ।
पञ्चभागेन संभज्य गर्भमानं विचक्षणः ॥९
भागमेकं गृहीत्वा तु निर्गमं कल्पयेत् पुनः ।
गर्भसूत्रसमो भागादग्रतो मुखमण्डपः ॥
एतत्सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्य हि लक्षणम् ॥१०

सूतजी ने कहा-हे शौनक ! अब प्रासादों का लक्षण बताऊँगा, उसे तुम सुनो । दिशा और विदिशाओंमें उपलक्षित उपर्युक्त चौंसठ पदोंवाला करके चारों ओर चौकोर और सूर्य संख्या से अर्थात् बारह द्वार करे और अड़तालीस भित्तियों की कल्पना होनी चाहिए । ऊर्ध्व क्षेत्रके समान जंघा उसके ऊर्ध्वमें द्विगुण होवे । गर्भके विस्तारसे विस्तीर्ण शुकांघ्रि की जाती है।। ।२।३।। वह त्रिभाग से अथवा पञ्च भाग से करे । निर्गय और शुकांघ्रिका शिखर का अर्धगामी उच्छ्राय (ऊँचाई) होवे ।।४।। चार प्रकार से शिखर करके त्रिभाग में वेदी बन्धन करे फिर इसके ही चतुर्थ में आमूल साधन कण्ठ करे।।५।।अथवा वास्तुको षोड़श भाग वाला समान करकेउसके मध्य में आदि में चार भाग को गर्भ करावे ।।६।। इसके अनन्तर द्वादश भाग की भित्ति को कल्पना करनी चाहिए । प्रमाणसे चतुर्भागसे भित्तियों की ऊँचाई के मान से होवे । भित्ति की ऊँचाईसे शिखरकी ऊँचाई दूनी होनी चाहिए । शिखरार्ध के अर्धभाग से प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करनी चाहिए ।।७।८।९।। बुध पुरुषों के द्वारा चारों दिशाओं में निर्गम (निकास मार्ग)जानना चाहिए । विचक्षण पुरुषको पाँचवाँ भाग गर्भका मान संभाजित करके उसमें से फिर एक भाग ग्रहण करके निगम की कल्पना करनी चाहिए । गर्भ सूत्र के समान भाग से आगे मुख मण्डप करे । यह साधारण प्रासाद का लक्षण उद्दिष्ट किया गया है ।।१०।।

लिङ्गमानमथो वक्ष्ये पीठो लिङ्गसमो भवेत् ।
द्विगुणेन भवेद् गर्भः समन्ताच्छौनक ध्रुवम् ।
तद्विधा च भवेद् भित्तिर्जङ्घा तद्विस्तरार्धगा ।।११
द्विगुणं शिखरं प्रोक्तं जङ्घायाश्चैव शौनक ।
पीठगर्भावरं कर्म तन्मानेन शुकाङ्घ्रिकाम् ।।१२

निर्गमस्तु समाख्यातः शेषं पूर्ववदेव तु ।
लिङ्गमानः स्मृतो ह्येष द्वारमानथोच्यते ॥१३
कराग्रं वेदवत्कृत्वा द्वारं भागाष्टमं भवेत् ।
विस्तरेण समाख्यातं द्विगुणं स्वेच्छया भवेत् ॥१४
द्वारवत्पीठमध्ये तु शेषं शुषिरकं भवेत् ।
पादिकं शेषिकं भित्तिद्वारार्द्धेन परिग्रहात् ॥१५
तद्विस्तारसमा जङ्घा शिखरं द्विगुणं भवेत् ॥
उक्तं मण्डपमानन्तु स्वरूपं चापरं वद ॥१६
त्रैवेद कारयेत् क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः ।
इत्थं कृतेन मानेन बाह्यभागविनिर्गतम् ॥१७
नेमिः पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः ।
गर्भन्तु द्विगुणं कुर्य्यान्नेम्या मानं भवेदिह ॥
स एव भित्तेरुत्सेधो शिखरो द्विगुणो मतः ॥१८

इसके अनन्तर लिङ्ग मान कहता हूँ। पीठ लिङ्ग के समान होना चाहिए। हे शौनक ! चारों ओर निश्चय ही द्विगुण भाग से गर्भ होना चाहिए। इस प्रकार की भित्ति हो और जंघा उसके विस्तार से अर्ध भाग वाली होनी चाहिए॥ ११ ॥ हे शौनक ! दुगुना शिखर कहा गया है जो कि जघा से होना चाहिए। पीठ गर्भ से अवर कर्म उसके मान शुकाङ्घ्रिका होवे ॥१२॥ निर्गम तो कह दिया गया है। शेष सब पूर्व की भाँति ही होवे। यह लिङ्ग का मान कहा गया है। अब यह द्वार का मान कहा जाता है॥ १३ ॥ वेद की भाँति कराग्र करके आठवाँ भाग द्वार होना चाहिए। विस्तार से यह बताया गया है स्वेच्छा से दुगुना हो जाता है ॥१४॥ द्वार की भाँति पीठ के मध्य में शेष शुषिरक होता है। द्वारार्ध के भाग से परिग्रह से शेषिक पादिक भित्ति होती है ॥१५॥ उसके विस्तारके समान जंघा और दुगुना शिखर होता है। शुकाङ्घ्रि पूर्व की भाँति ही जान लेना चाहिए और निर्गम की ऊँचाई होती है। यह मण्डप का मान कहा गयाहै अब दूसरा स्वरूप बतलाओ ।१६। त्रैवेद क्षेत्र करना चाहिए जहाँ

पर देवता स्थित रहा करते हैं। इस प्रकार मान के करने से इसका बाह्य भाग विनिर्गत हो जाता है ॥१७॥ प्रासाद के चारों ओर पाद से विस्तीर्ण नेमि होती है और गर्भ द्विगुण नेमि के मान से करना चाहिए जो कि यहां होता है। वह ही भित्ति का उत्सेध दुगुना शिखर माना गया है ॥ १८ ॥

प्रासादानाञ्च वक्ष्यामि मानं योनिञ्च मानतः ।
वैराजः पुष्पकाख्यश्च कैलासो मालिकाह्वयः ॥
त्रिपिष्टपञ्च पञ्चैते प्रासादाः सर्वयोनयः ॥१९
प्रथमश्चतुरस्रो हि द्वितीयस्तु तदायतः ।
वृत्तो वृत्तायतश्चान्योऽष्टास्रश्चेह च पञ्चमः ॥२०
एतेभ्य एव सम्भूताः प्रासादाः सुमनोहराः ।
सर्वप्रकृतिभूतेभ्यश्चत्वारिंशच्च एव च ॥२१
मेरुश्च मन्दरश्चैव विमानश्च तथापरः ।
भद्रकः सर्वतोभद्रो रुचको नन्दनस्तथा ॥२२
नन्दिवर्द्धनसंज्ञश्च श्रीवत्सश्च नवेत्यमी ।
चतुरस्राः समुद्भूता वैराजादिति गम्यताम् ॥२३
वलभी गृहराजश्च शालागृहञ्च मन्दिरम् ।
विमानञ्च तथा ब्रह्म मन्दिरं भवनं तथा ॥
उत्तम्भं शिविकावेश्म नवैते पुष्पकोद्भवाः ॥२४
वलयो दुन्दुभिः पद्मो महापद्मस्तथापरः ।
मुकुली चास्य उष्णीषी शङ्खश्च कलशस्तथा ॥
गुवावृक्षस्तथान्यश्च वृत्ताः कैलाससम्भवाः ॥२५
गजोऽथ वृषभो हसो गरुड़ः सिंहनामकः ।
भूमुखो भूधरश्चैव श्रीजयः पृथिवीधरः ॥
वृत्तायताः समुद्भूता नवैते मालकाह्वयात् ॥२६
वज्रं चक्रं तथान्यच्च मुष्टिकं बभ्रुसंज्ञितम् ।

वक्रः स्वस्तिक भङ्गौ च गदा श्रीवृक्ष एव च ॥
विजयो नामतः श्वेतस्त्रिपिष्टिपसमुद्भवाः ॥२७

अब प्रासादों का मान और मान से योनि बतलाऊँगा। वैराज, पुष्पकाख्य, कैलास, मालिकाह्वय और त्रिपिष्टप ये पांच प्रासाद सर्व योनि वाले होते हैं ॥१९॥ प्रथम प्रासाद जो वैराज नाम वाला होता है वह चतुरस्र होता है। द्वितीय उसके आयत वाला है। तीसरा वृत्त होता है तथा चतुर्थ वृत्तायत होता और पाँचवाँ अष्टास्र होता है ॥ २० ॥ सर्व प्रकृतिभूत इन्हीं से सुमनोहर प्रासाद सम्भूत होते हैं जो कि चालीस होते हैं ॥२१॥ मेरु, मन्दर, विमान तथा अपर भद्रक, सर्वतो भद्र, रुचक, नन्दन, नन्दि बर्धन, श्री वत्स ये नौ हैं जो वैराज से चतुरस्र सम्भूत होते हैं ऐसा जान लो ॥२२।२३॥ बल्लभी, गृह राज, शालागृह, मन्दिर, विमान, ब्रह्म मन्दिर, भवन, उत्तम्भ, शिविका वेश्म, ये नौ पुष्पक से उद्भव होने वाले हैं। वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, मुकुली, उष्णीषी, शङ्ख कलश, गुवावृक्ष ये वृत्त प्रासाद कैलास संज्ञक से सम्भूत होने वाले हैं ॥२४।२५॥ गल, वृषभ, हंस, गरुड़, सिंह, भूमुख, भूधर, श्रीजय, पृथिवीधर ये वृत्तायत्त नौ मालक संज्ञा वाले से उद्भव प्राप्त करने वाले होते हैं। वज्र, चक्र, मुष्टिक, वभ्रु, वक्र, स्वस्तिक, भङ्ग, गदा, श्री वृक्ष, विजय और श्वेत ये त्रिपिष्टिका से समुद्भव प्राप्त करने वाले हैं ॥२६।२७॥

त्रिकोणं पद्ममर्द्धेन्दुश्चतुष्कोणं द्विरष्टकम् ।
यत्र यत्र विधातव्यं संस्थानं मण्डपस्य तु ॥२८
राज्यञ्च विभश्चव ह्यायुवर्द्धनमेव च ।
पुत्रलाभः स्त्रियः पुष्टिस्त्रिकाणादिक्रमाद् भवेत् ॥२९
कुर्याद् ध्वजादिक ख्याता द्वारि गर्भगृह तथा ।
मण्डपः समसंख्याभिर्गुणितः सूत्रतस्तथा ॥३०
मण्डपस्य चतुर्थांशाद् भद्रः कार्यो विजानता ।
सार्द्ध गवाक्षकोपेतो निर्गवाक्षोऽथवा भवेत् ॥३१

सार्द्ध भित्तिप्रमाणेन भित्तिमानेन वा पुनः ।
भित्तेर्द्विगुणयतो वापि कर्त्तव्या मण्डपाः क्वचित् ३२
प्रासादे मञ्जरी कार्या चित्रा विषमभूमिका ।
परिमाणविरोधेन रेखा वैषम्यभूषिता ॥३३
आधारस्तु चतुर्द्वारश्चतुर्मण्डपशोभितः ।
शतश्रृङ्गसमायुक्तो मेरुः प्रासाद उत्तमः ॥३४
मण्डपास्तस्य कर्त्तव्या भद्रैस्त्रिभिरलंकृताः ।
गठनाकारमानानां भिन्नाद्भिन्ना भवन्ति ते ॥३५
कियन्तो येषु चाधारा निराधाराश्च केचन ।
प्रतिच्छन्दकभेदेन प्रासादाः सम्भवन्ति ते ॥३६

त्रिकोण-पद्म-अर्धेन्दु-चतुष्कोण और द्विरष्टक जहाँ-जहाँ मण्डप का संस्थान हो करना चाहिए ॥२८॥ राज्य–वैभव–आयु की वृद्धि–पुत्रलाभ-स्त्री की पुष्टि ये फल त्रिकोणादि के क्रम से होते हैं।।२९।। ध्वजादिक करे जो कि द्वार पर ख्यात हैं तथा गर्भगृह करे। सम संख्याओंसे गुणित, मण्डप करे। तथा ज्ञात। पुरुष को सूत्र से मण्डप के चतुर्थ अंश से भद्र करना चाहिए। वह सार्ध गवाक्ष से युक्त अथवा बिना गवाक्ष वाला होवे॥३०।३१।।सार्ध भित्तिके प्रमाण से अथवा फिर भित्ति के मान से या भित्ति की द्विगुणता से कहीं पर मण्डप बनाने चाहिए। प्रासाद में विषम भूमिका वाली चित्र मञ्जरी करनी चाहिए। परिमाण के विरोधसे भूषित रेखाकरे। चार द्वार वाला और चार मण्डपी से शोभित आधार जो शतश्रृङ्गो (शिखरों) से समायुक्त हो वह मेरु प्रासाद उत्तम होता है ॥३२।३३।३४।। उसके मण्डप तीन भद्रों से अलंकृत करने चाहिए। गठनाकार मान वालों के वे भिन्न से भिन्न होते हैं।३५।जिनमें कुछ आधार होते हैं और कुछ निराधार ही होते हैं। वे प्रासाद प्रतिच्छन्दक भेद से सम्भूत हुआ करते हैं ॥३६॥

अन्यान्य संस्कारात्तेषां गठनानामभेदतः ।
देवतानां विशेषाय प्रासादा बहवः स्मृताः ॥३७

प्रासादे नियमो नास्ति देवतानां स्वयम्भुवाम् ।
तानेव देवतानाञ्च पूर्वमानेन कारयेत् ॥३८
चतुरस्रायतास्तत्र चतुष्कोणसमन्विताः ।
चन्द्रशालान्विताः कार्या भेरी शिखर संयुताः ॥३६
पुरतो वाहनानाञ्च कर्त्तव्या लघुमण्डपाः ।
नाट्यशाला च कर्त्तव्य द्वारदेशसमाश्रया ॥४०
प्रासादे देवतानाञ्च कार्या दिक्षु विदिक्ष्वपि ।
द्वारपालाश्च कर्त्तव्या मुख्या गत्वा पृथक्-पृथक् ॥४१
किञ्चिद् दूरतः कार्या मठस्तत्रापजाविनाम् ।
प्रावृता जगती कार्या फलपुष्पजलान्विता ॥४२
प्रासादेषु सुरान् स्थाप्यान् पूजाभिः पूजयेन्नरः ।
वासुदेवः सर्वदेवः सवंभाक् तद्गृहादिकृत् ॥४३

अन्य-अन्य संस्कार से गठन वाले उनके अभेद से देवताओं के विशेष के लिये बहुत-से प्रासाद कहे गये हैं।।३७।।स्वयम्भू देवताओं का प्रासादमें नियम नहीं होता है । उनको देवताओंके पूर्व मान से कराना चाहिए।।३८।।वहाँ चतुरस्रायता चतुष्कोण समन्वित, चन्द्रशालान्वित और भेरीशिखर सयुत करने चाहिए । आगे के भाग में वाहनों के छोटे मण्डप बनाने चाहिए । द्वारदेश में समाश्रय रखने वाली नाट्यशाला भी करनी चाहिए।।३८।३६।४०।।प्रासादमें देवताओंके दिशा-विदिशाओंमें भी पृथक् पृथक् मुख्य द्वारपाल करने चाहिए। ।।४१।। कुछ दूर चलकर वहाँ पर मठोपजीवियोंके भी मठ बनाने चाहिए । फल,पुष्प और जल से युक्त प्रावृता जगती करनी चाहिए । मानव प्रासादों में स्थाप्य सुरों का पूजनोपचारों से यजन करना चाहिए । उन गृहादि का करने वाला सर्व सेवनकारी सबके देव भगवान् वासुदेव ही हैं ।।४२।४३।।

२२—सर्वदेव प्रतिष्ठा वर्णन

प्रतिष्ठां सर्वदेवानां सक्षेपेण वदाम्यहम् ।
सुतिथ्यादौ सुरम्यञ्च प्रतिष्ठां कारयेद् गुरुः ॥१

ऋत्विग्भिः सह चाचार्यं वरयेन्मध्यदेशगम् ।
स्वशाखोक्तविधानेन अथवा प्रणवेन तु ॥२
पञ्चभिर्बहुभिर्वाथ कुर्यात् पाद्यार्घमेव च ।
मुद्रिकाभिस्तथा वस्त्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥
मन्त्रन्यासं गुरुः कृत्वा ततः कर्म समारभेत् ॥३
प्रासादस्याग्रतः कुर्यान्मण्डपं दशहस्तकम् ।
कुर्याद् द्वादशहस्तं वा स्तम्भैः षोडशभिर्युतम् ॥
ध्वजाष्टकैश्चतुर्हस्तां मध्ये वेदीञ्च कारयेत् ॥४
नदीसङ्गमतीरोत्थां बालुकां तत्र दापयेत् ।
चतुरस्रं कार्मुकाभं वर्त्तुलं कमलाकृति ॥५
पूर्वादितः समारभ्य कर्त्तव्यं कुण्डपञ्चकम् ।
अथवा चतुरस्राणि सर्वाण्येतानि कारचेत् ॥६
शान्तिकर्मविधानेन सर्वकामार्थसिद्धये ।
शिरःस्थाने तु देवस्य आचार्यो होममाचरेत् ॥
ऐशान्यां केचिदिच्छन्ति उपलिप्यावनिं शुभाम् ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—अब मैं समस्त देवों की प्रतिष्ठा को संक्षेप से बतलाता हूँ। गुरु को सुशोभन किसी तिथि में सुरम्य प्रतिष्ठा करानी चाहिए। ऋत्विजों के साथ आचार्य का जो कि मध्यदेशज हो वरण करना चाहिए। अपनी शाखा में उक्त विधान के द्वारा अथवा प्रणव से करे ॥१।२॥ पाँच अथवा बहुत मुद्रिकाओं से पाद्य-अर्घ्य आदि करे तथा मन्त्र न्यास वस्त्र एवं गन्ध-माल्य और अनुलेपनों द्वारा करके फिर गुरु को कर्म का आरम्भ करना चाहिए ॥३॥ प्रासाद के आगे के भाग में दश हाथ प्रमाण वाले एक मण्डप की रचना करनी चाहिए। अथवा बारह हाथ के प्रमाण वाले मण्डप करे जिसमें सोलह स्तम्भ निर्मित किये गये हों। आठ ध्वजाओं से युक्त चार हाथ प्रमाण वाली मध्य में एक वेदी का निर्माण कराना चाहिए॥४॥ नदी के सङ्गम के तट पर रहने वाली बालुका को वहाँ डलवाना चाहिए। चतुरस्र (चौकोर) कार्मुक (धनुष) की आभाके तुल्य वर्त्तुल (गोलाकार) अथवा कमल के पुष्प की आकृति वाले

पूर्व आदि दिशाओंसे आरम्भ करके पाँच कुण्डों की रचना करे । अथवा ये कुण्ड सभी चतुरस्र ही निर्मित करा लेवे ।।५।६।। समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिए शान्ति कर्म के विधान से आचार्य को शिर:स्थान में देवता का होम करना चाहिए । कुछ मनीषी गण इसे शुभ भूमि का लेपन कराकर ऐशानी दिशा में करने का मत रखते हैं ।।७।।

द्वाराणि चैव चत्वारि कृत्वा वै तोरणान्तिके ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थबैल्वपालाशखादिराः ।।८
तोरणाः पञ्चहस्ताश्च वस्त्रपुष्पाद्यलंकृताः ।
निखनेद्धस्तमेकैकं चत्वारश्चतुरो दिशः ।।६
पूर्वद्वारे मृगेन्द्रन्तु हयराजन्तु दक्षिणे ।
पश्चिमे गोपतिर्नाम सुरशार्दूलमुत्तरे ॥१०
अग्निमीलेति मन्त्रेण प्रथमं पूर्वतो न्यसेत् ।
ईषेत्वेति च मन्त्रेण दक्षिणस्यां द्वितीयकम् ॥११
अग्नआयाहि मन्त्रेण पश्चिमस्यां तृतीयकम् ।
शन्नोदेवीति मन्त्रेण उत्तरस्यां चतुर्थकम् ।।१२
पूर्वे अम्बुदवत् कार्या आग्नेय्यां धूमरूपिणी ।
याम्यां वै कृष्णरूपा तु नैर्ऋत्यां श्यामला भवेत् ।।१३
वारुण्यां पाण्डरा ज्ञेया वायव्यां पीतवर्णिका ।
उत्तरे रक्तवर्णा तु शुक्लैशी च पताकिका ।।
बहुरूपा तथा मध्ये इन्द्रविद्येति पूर्विका ॥१४
अग्निं संसुप्तिमन्त्रेण यमोनागेति दक्षिणे ।
पूज्या रक्षोहनावेति पश्चिमे उत्तरेऽपि च ।।१५
वात इत्यभिषिच्याथ आप्यायस्वेति चोत्तरे ।
तमीशानमतश्चैव विष्णुर्लोकेति मध्यमे ॥१६

तोरण के समीप में चार द्वार करके न्यग्रोध (वट), उदुम्बर (गूलर) अश्वत्थ (पीपल),पलाश और खदिर के पाँच हाथ प्रमाण वाले तोरण करे, जो कि वस्त्र तथा पुष्पोंसे सुविभूषित हों । चारों दिशाओंमें चार गर्त्त एक-

एक हाथ के खोदे ।।८।६।। पूर्व दिशा के द्वार में मृगेन्द्र, दक्षिणमें हयराज, पश्चिम में गोपति और उत्तर दिशा के द्वार पर सुर शार्दूल रक्खे ।'अग्निमीले'–इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पहिले पूर्व दिशा में न्यास करना चाहिए । "ईषेत्वेति"–इस मन्त्र से दक्षिण में दूसरा न्यास करे।।१०।११।। "अग्न आयाहि"–इस मन्त्र के द्वारा पश्चिम में तृतीय रक्खे । "शन्नो देवी"–इस मन्त्र से उत्तर दिशा में चतुर्थ को न्यस्त करे ।।१२।।पूर्व दिशामें पताका मेघ के समान वर्ण वाली लगावे । आग्नेयी दिशा में धूम्र वर्ण वाली–याम्य दिशा में कृष्ण वर्ण वाली–नैऋत्य में श्यामल वर्ण से युक्त-वारुणी दिशा में पाण्डर-वायव्य में पीत वर्ण की, उत्तर में रक्त वर्ण वाली और ईशान दिशा में शुक्लवर्ण वाली पताका होनी चाहिए । एवं मध्य भागमें बहुतसे रूपऔर वर्णों वाली पताकाएँ होनी चाहिए । पूर्व में इन्द्र विद्या-अग्नि संसुप्ति मन्त्र केद्वारा'यमो नागा'-इससे दक्षिणमें,पश्चिम और उत्तरमें 'रक्षो हनावा'इससे पूजा करे, वात–इससे अभिषेक करके 'आप्यायस्व'–इससे उत्तर में । तमीशान–विष्णुलोक–इससे मध्य में यजन करे ।।१२ से १६।।

कलशौ तु ततो द्वौ द्वौ निवेश्यौ तोरणान्तिके ।
वस्त्रयुग्मसमायुक्ताश्चन्दनाद्यैः स्वलंकृताः ।।१७
पुष्पैर्वितानैर्बहुलैरादिवर्गाभिमन्त्रिताः ।
दिक्पालाश्च ततः पूज्याः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।।१८
त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अग्निर्मूर्द्धेति चापरे ।
अस्मिन् वृक्ष इतश्चैव प्रचारीति परा स्मृता ।।१६
किञ्चेदधातु आचात्वा भिन्नादेवीति सप्तमी ।
इमारुद्रेति दिक्पालान्पूजयित्वा विचक्षणः ।
होमद्रव्याणि वायव्ये कुर्य्यात्सोपस्कराणि च ॥२०
शङ्खान्शास्त्रोदितान्श्वेतान्नेत्राभ्यां विन्यसेद् गुरुः ।
आलोकनेन द्रव्याणि शुद्धिं यान्ति न संशयः ॥२१
हृदयादीनि चाङ्गानि व्याहृतिप्रणवेन च ।
अस्त्रञ्चैव समस्तानां न्यासोऽयं सार्वकामिकः ।।२२

अक्षतान्विष्टरञ्चैव अस्त्रेणैवाभिमन्त्रितान् ।
विष्टरेण स्पृशेद् द्रव्यान्यागमण्डपसंयुतान् ।
अक्षतान्विकिरेत्पश्चादस्त्रपूतान्समन्ततः ॥२३

इसके अनन्तर दो दो कलश तोरण के समीप में निवेशित करने चाहिएँ । वस्त्र युग्म अर्थात् दो वस्त्रों से युक्त एवं चन्दन आदि से समलङ्कृत हुए बहुत से पुष्पों तथा वितानों से समन्वित और आदि वर्ण से अभिमन्त्रित दिशाओं के पालक देव शास्त्र में दृष्ट कर्म के द्वारा पूजित होने चाहिए ॥१७।१८॥ 'त्रातारम्'-इन्द्र मन्त्र से और दूसरे 'अग्नि मूर्धा'-इस मन्त्र से, इस वृक्ष में दूसरी ऋचा इतश्चैव प्रचारी-यह कही गई है । किञ्चेद धातु आचात्वा भिन्ना देवी-इस सप्तमी से-इमा रुद्र-इससे विचक्षण पुरुष को दिक्पालों का पूजन करना चाहिए । वायव्य दिशा में उपस्कर के सहित होम के द्रव्य रक्खे ॥१९।२०॥ शास्त्र में कथित श्वेत शङ्खों को नेत्रों के हेतु विन्यस्त करे । आलोकन के द्वारा समस्त द्रव्य शुद्धि को प्राप्त हो जाते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२१॥ हृदय आदि अङ्गों का व्याहृति प्रणव के द्वारा न्यास करे और समस्तों का न्यास अस्त्र के द्वारा करे । यह न्यास समस्त कामनाओं के लिये होता है ॥ २२ ॥ अक्षतों को और विष्टर को अस्त्र मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित करे । याग मण्डप से संयुत द्रव्यों का विष्टर से स्पर्श करे । फिर अस्त्र द्वारा पूत किये हुए अक्षतों को चारों ओर फैलादे ॥२३॥

शाक्रीं दिशमथारभ्य यावदीशानगोचरम् ।
अवकीर्य्याक्षतान्सर्वान्लिपयेन्मण्डपं ततः ॥२४
गन्धाद्यैरर्घ्यपात्रे च मन्त्रग्रामं न्यसेद् गुरुः ।
तेनार्घ्यपात्रतोयेन प्रोक्षयेद् यागमण्डपम् ॥२५
प्रतिष्ठा यस्य देस्य तदाख्यं कलशं न्यसेत् ।
ऐशान्यां पूजयेद् याम्ये अस्त्रेणैव च वर्द्धनीम् ॥
कलशं वर्द्धनीञ्चैव ग्रहान्वास्तोष्पतिं तथा ॥२६
आसने तानि सर्वाणि प्रणवाख्यं जपेद् गुरुः ।
सूत्रग्रीवं रत्नगर्भं वस्त्रमुख्येन वेष्टितम् ॥

सर्वौषधि गन्धलिप्तं पूजयेत्कलशं गुरुः ॥२७
देवस्तु कलशे पूज्यो बर्द्धन्या वस्त्रमुत्तमम् ।
वर्द्धन्या तु समायुक्तं कलशं भ्रामयेदनु ॥२८
वर्द्धनीधारया सिञ्चन्नग्रतो धारयेत्ततः ।
अभ्यर्च्य वर्द्धनीं कुम्भं स्थण्डिले देवमर्चयेत् ॥२९
घटश्चावाह्य वायव्यां गणानान्त्वेति सद्गणम् ।
देवमीशानकोणे तु जपेद्वास्तुपतिं बुधः ॥
वास्तोष्पतीति मन्त्रेण वास्तुदोषोपशान्तये ॥३०
कुम्भस्य पूर्वतो भूतं गणदेवं बलिं हरेत् ।
पठेदिति च विद्याश्च कुर्य्यादालम्भनं बुधः ॥३१
योगे योगेति मन्त्रेण संस्तरन् ज्वलनैः कुशैः ।
आचार्य्य ऋत्विजैः सार्द्धं स्नानपीठे हरस्तथा ॥३२

ऐन्द्री दिशा से आरम्भ करके ईशान दिशा पर्यन्त अक्षतों का अव किरण कर इसके अनन्तर मण्डप का लेपन करावे । फिर गुरु को गन्धादि से युक्त अर्घ्य पात्र में मन्त्र ग्राम का न्यास करना चाहिए । उस अर्घ्यपात्र के जल से सम्पूर्ण याग मण्डप का प्रोक्षण करे ॥२४।२५॥ जिस देवता की प्रतिष्ठा करनी हो उसके नाम का एक कलश न्यस्त करे । ऐशानी दिशा में उसका यजन करे और याम्य दिशा में अस्त्र मन्त्र के द्वारा ही वर्द्धनी का यजन करे । कलश वर्द्धनी, ग्रह तथा बास्तोष्पति इन सबका आसन पर गुरु प्रणव नाम का जाप करे । गुरु को चाहिए कि इस कलश के ग्रीवा में सूत्र—मध्य में रत्न रख कर मुख्य वस्त्र से वेष्टित करे तथा सर्वौषधि एवं गन्ध से प्रलिप्त कर कलश का पूजन करे ॥२६।२७॥ देव का कलश में ही यजन करना चाहिए । कलश का पूजन कर बर्द्धनी से युक्त कलश को पीछे भ्रमित करे ॥२८॥ इसके पश्चात् बर्द्धनी की धारा से सिञ्चन करता हुआ आगे धारण करे । फिर बर्द्धनी और कुम्भ का अभ्यर्चन करके स्थण्डिल में देव का समर्चन करे ॥ २९ ॥ वायव्य में घट का आवाहन करके "गणानांत्वा"—इस मन्त्र से सद्गण देव को ईशान

कोण में जाप करे। बुध याजक को "वास्तोष्पति"—इस मन्त्र के द्वारा वास्तु दोषों के उपशमनार्थ वास्तु पतिका जाप करना चाहिए ॥ ३० ॥ कुम्भ के पूर्व भाग में भूत गणदेव के लिये वलि का आहरण करे। "पठेत्"–इससे विद्याओं का बुध को आलम्भन करना चाहिए ॥ ३१ ॥ "योगे-योग"–इस मन्त्र के द्वारा ज्वलन कुशों से संस्तरण करते हुए फिर ऋत्विजों के साथ आचार्य्य को स्नान पीठ पर हरण करना चाहिए॥३२॥

विविधैर्ब्रह्मघोषैश्च पुण्याहजयमङ्गलैः।
कृत्वा ब्रह्मरथे देवं प्रतिष्ठन्ति ततो द्विजाः ॥३३
ऐशान्यामानयेत्पीठं मण्डपे विन्यसेद् गुरुः।
भद्रं कर्णोत्यथ स्नात्वा सूत्रबन्धनजेन तु ॥
संस्नाप्य लक्षणे द्वारं कुर्य्याद् दूगभिवादनैः ॥३४
मधुसर्पिःसमायुक्तं कांस्ये वा ताम्रभाजने।
अक्षिणी चाञ्जयेच्चास्य सुवर्णस्य शलाकया ॥३५
अग्निर्ज्योतीति मन्त्रेण नेत्रोद्धाटन्तु कारयेत्।
लक्षणे क्रियमाणे तु नाम्नैकं स्थापको वदेत् ॥३६
इमस्मे गाङ्गमन्त्रेण नेत्रयोः शीतलक्रिया।
अग्निमूर्द्धेति मन्त्रेण दद्याद्वल्मीकमृत्तिकाम् ॥३७
बिल्वोदुम्बरमश्वत्थं वट पालाशमेव च।
यज्ञायज्ञति मन्त्रेण दद्यात्पञ्चकषायकम् ॥३८
पञ्चगव्यैः स्नापयेच्च सहदेव्यादिभिस्ततः।
सहदेवो बला चव शतमूलो शतावरी ॥३९
कुमारो च गुडूची च सिंही व्याघ्री तथैव च।
याओषधीति मन्त्रेण स्नानमोषधिमज्जलैः॥
याः फलिनीति मन्त्रेण फलस्नानं विधीयते ॥४०

अनेक भाँति के ब्रह्म घोषों के द्वारा तथा पुण्याह और जय मङ्गल ध्वनियोंके द्वारा देवताको ब्रह्मरथमें स्थित करके फिर द्विजगण प्रतिष्ठा करते

हैं ।।३३।। उस पीठ को गुरु को चाहिए कि ऐशानी दिशा में ले आवे और फिर मण्डप में उसका न्यास करे। "भद्रं कर्णं"—इससे स्नान करा-के इसके अनन्तर सूत्रबन्धनज से सस्नपन कराकर दूराभि वाहनों से लक्षण में द्वार करे ।।३४।। कांस्य पात्र में अथवा ताम्र पात्र में मधु, घृत से युक्त करके सुवर्ण शलाका से देवता के नेत्रों को अञ्जित करे ।। ३५ ।। "अग्नि-ज्योतिः'—इस मन्त्र का उच्चारण करके देव के नेत्रों को उद्घा-टित करना चाहिए। लक्षण के किये जाने पर स्थापक एक को नाम द्वारा बोले ।। ३६ ।। "इमम्मे गाङ्ग" इत्यादि मन्त्र से नेत्रों की शीतल क्रिया करे। फिर "अग्निमूर्धा"—इस मन्त्र से वाँवी की मृत्तिका को अर्पित करे ।।३७।। "यज्ञायज्ञ"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा बिल्व—उदुम्बर—अश्वत्थ—वट और पलाश इनके पञ्च कषाय को समर्पित करे ।।३८।।पहिले पञ्च गव्य से स्नान करावे। पञ्चगव्य में गौ की पाँच वस्तुऐं होती हैं जिन में दूध- दधि, घृत, गोमूत्र और गोमय ये हैं। इनके अनन्तर सहदेवी आदि से स्नान करावे जिनमें सहदेवी—बला—शतमूली—शतावरी—कुमारी—गिलोय-सिंही—व्याघ्री ये सब हैं। इन समस्त ओषधियों वाले जल से 'या ओषधीति'—इत्यादि मन्त्र से स्नान कराना चाहिए। "याः फलानि"-इत्यादि मन्त्र के द्वारा, फलों द्वारा स्नान का विधान होता है ।।३९।४०।।

द्रुपदादिवेति मन्त्रेण कार्य्यमुद्वर्त्तनं बुधैः।
कलशेषु च विन्यस्य उत्तरादिष्वनुक्रमात् ॥
रत्नानि चव धान्यानि ओषधि शतपुष्पिकाम् ।।४१
समुद्रांश्चैव विन्यस्य चतुरश्चतुरो दिशः।
क्षीरं दधि क्षीरोदस्य घृतोदस्येति वा पुनः ।।४२
आप्यायस्व दधिक्राब्नो या ओषधीरितीति च।
तेजोऽसीति च मन्त्रश्च कुम्भश्चैवाभिमन्त्रयेत् ।।
समुद्राख्यैश्चतुर्भिश्च स्नापयेत् कलशैः पुनः ।।४३
स्नातश्चैव सुवेशश्च धूपो देयश्च गुग्गुलुः।
अभिषेकाय कुम्भेषु तत्तत्तीर्थानि विन्यसेत् ।।४४

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरास्तथा ।
या औषधीति मन्त्रेण कुम्भाश्चैवाभिमन्त्रयेत् ॥
तेन तोयेन यः स्नायात् स मुच्येत् सर्वपातकैः ॥४५
अभिषिच्य समुद्रैश्च चार्घ्यं दद्यात्ततः पुनः ।
गन्धद्वारेति गन्धश्च न्यासं वै वेदमन्त्रकैः ॥४६
स्वशास्त्रविहितैः प्राप्तैरिमं मन्त्रेति वस्त्रकम् ।
कविहाविति मन्त्रेण आनयेन्मण्डपं शुभम् ॥४७

बुध पुरुषों के द्वारा "द्रुपदा दिव"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा उद्वर्त्तन करना चाहिए। कलशों में विन्यास करके उत्तरादि में अनुक्रम से करे। रत्न, धान्य, औषधि, शतपुष्पिका, चार समुद्र, चार दिशाऐं, क्षीर, दधि जो कि क्षीरोद और घृतोद का है। इन सबका विन्यास कर "आप्यायस्व दधिक्रान्तो" "या औषधीरिति"-'तेजोसीति'-इन मन्त्रों से कुम्भ को अभिमन्त्रित करे। फिर चार समुद्र संज्ञक कलशों से स्नपन कराना चाहिए ॥४१।४२।४३॥ स्नान कराये हुए और सुन्दर पोशाक धारण कराये जाने पर गूगल की धूप देनी चाहिए। कुम्भो में अभिषेक कराने के लिये उन उन तीर्थों को विन्यस्त करना चाहिए ॥४४॥ पृथ्वी मण्डल में जितने जो-जो भी तीर्थ, नदियाँ तथा सागर हैं और जो-जो भी औष-धियाँ हैं उनकी "या ओषधि"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा कुम्भ में अभि-मन्त्रित करे। उस अभिमन्त्रित किये हुए जल से जो स्नान करे वह समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है ॥४५॥ समुद्रों से अभिषेक करके फिर अर्घ्य देना चाहिए। "गन्ध द्वारा दुराधर्षा" इत्यादि मन्त्र के द्वारा गन्ध का न्यास करे और वेदोक्त मन्त्रों के द्वारा तथा स्वशास्त्र में विहित मन्त्रों के द्वारा "इमं मन्त्र"—इससे वस्त्र देवे तथा 'कविहौ'-इस मन्त्र से फिर शुभ मण्डप में ले आवे ॥४६।४७॥

शम्भवायेति मन्त्रेण शय्यायां विनिवेशयेत् ।
विश्वतश्चक्षुमन्त्रेण कुर्य्यात् सकलनिष्कलम् ॥४८

स्थित्वा चैत्र परे तत्त्वे मन्त्रन्यासन्तु कारयेत् ।
स्वशास्त्रविहितो मन्त्री न्यासस्तस्मिस्तथोदितः ॥४९

वस्त्रेणाच्छादयित्वा तु पूजनीयः स्वभावतः ।
यथाशास्त्रं निवेद्यानि पादमूले तु दापयेत् ॥५०

अथ प्रणवसंयुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ।
कलशं सहिरण्यञ्च शिरःस्थाने निवेदयेत् ॥५१

स्थित्वा कुण्डसमीपेऽथ अग्नेः स्थापनमाचरेत् ।
स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रैर्वेदोक्तैर्वायवा गुरुः ॥५२

श्रीसूक्तं पावमानञ्च वासं दास्यं सहाजिनम् ।
वृषाकपिञ्च मित्रञ्च बह्वृचः पूर्वतो जपेत् ॥५३

रुद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायञ्च सुक्रियः ।
ब्राह्मणं पितृमंत्रञ्च अध्वर्युर्दक्षिणे जपेत् ॥५४

फिर "शम्भवाय" – इत्यादि मन्त्र से शय्या में निवेशित करावे। "विश्वतश्चक्षु"-इत्यादि मन्त्र से सकल निष्कल करे ॥४८॥ परतत्त्व में स्थिर होकर मन्त्र का न्यास करावे, अपने शास्त्र से विहित मन्त्री का न्यास उस प्रकार से कहा गया है ॥४९॥ वस्त्र से आच्छादित करके स्वभाव से पूजन करना चाहिए। शास्त्र के अनुसार जो निवेदन करने के योग्य नैवेद्य हैं उन्हें पाद के मूल में समर्पित करे ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर प्रणव से संयुक्त वस्त्रों के युग्म से वेष्टित किये हुए और हिरण्य से संयुत कलश को शिर के स्थान में निवेदन करे ॥५१॥ फिर कुण्ड के समीप में स्थित होकर अग्नि की स्थापना करे। अग्नि की स्थापना वेद में कथित यन्त्रों के द्वारा गुरु को करना चाहिए ॥ ५२ ॥ श्री सूक्त पवमान–वासं दास्यं सहाजिनं–वृषाकपि और मित्र इन बहुत ऋचाओं को पूर्व की ओर जपे अर्थात् जाप करे या पढ़े ॥ ५३ ॥ रुद्र पुरुष सूक्त और श्लोकाध्याय, ब्राह्मण और पितृ मैत्र को सुन्दर क्रिया करने वाला अध्वर्यु दक्षिण दिशा में जप करे ॥५४॥

वेदव्रतं वामदेव्यं ज्येष्ठसामरथन्तरम् ।
भेरुण्डानि च सामानि छन्दोगः पश्चिमे जपेत् ॥५५
अथर्वशिरसश्चैव कुम्भसूक्तमथर्वणः ।
नीलरुद्रांश्च मैत्रञ्च अथर्वश्चोत्तरे जपेत् ॥५६
कुण्डं चास्त्रेण संप्रोक्ष्य आचार्य्यस्य विशेषतः ।
ताम्रपात्रे शरावे वा यथाविभवतोऽपि वा ॥
जाततेदं समानीय अग्रतस्तन्निवेशयेत् ॥५७
अस्त्रेण ज्वालयेद्वह्निं कवचेन तु वेष्टयेत् ।
अमृतीकृत्य त पश्चान्मन्त्रैः सर्वैश्च देशिकः ॥५८
पात्रं गृह्य कराभ्याञ्च कुण्डं भ्राम्य ततः पुनः ।
वैष्णवेन तु योगेन परं तेजस्तु निक्षिपेत् ॥५९
दक्षिणे स्थापयेद् ब्रह्म प्रणीताञ्चोत्तरेण तु ।
साधारणेन मन्त्रेण स्वशास्त्रविहितेन वा ॥
दिक्षु दिक्षु ततो दद्यात्परिधिं विष्टरैः सह ॥६०
ब्रह्मविष्णुहरेशानाः पूज्याः साधारणेन तु ।
दर्भेषु स्थापयेद्वह्निं दर्भैश्च परिवेष्टितम् ॥
दर्भतोयेन संस्पृष्टो मन्त्रहीनोऽपि शुद्ध्यति ॥६१

वेद व्रत, वामदेव्य, ज्येष्ठ साम रथन्तर, मेरुदण्ड, सामों को छन्दोग पश्चिम दिशामें जप करे ॥५५॥अथर्व शिर, कुम्भ सूक्त जो कि अथर्वोक्त है- नील रुद्रों को और मैत्र को अथर्व ज्ञाता उत्तर दिशा में जपे ॥५६॥अस्त्र मंत्र के द्वारा कुण्ड भली-भाँति प्रोक्षण करकेतथा विशेष रूपसे आचार्य का सम्प्रोक्षण करके ताम्र के पात्र में अथवा शराब (सकोरा) में अथवा विभव के अनुसार जो भी हो अग्नि को लाकर आगे की ओर सन्निवेशित करे ॥५७॥ अस्त्र मन्त्रसे अग्निको जलावे और कवचसे वेष्टन करे । इसके पश्चात् आचार्य समस्त मन्त्रों के द्वारा अमृतीकरण करे॥५८॥दोनों हाथों से पात्र को ग्रहण कर फिर कुण्ड के सब ओर भ्रमण करावे और वैष्णव योग के द्वारा परतेज

का निक्षेप करना चाहिए ।।५९।। साधारण मन्त्र के द्वारा या अपने शास्त्र में विहित के द्वारा दक्षिण में ब्रह्मको और उत्तर में प्रणीता को स्थापित करे। इसके अनन्तर दिशाओंमें विष्टरों सहित परिधि देनी चाहिए ।।६०।।साधारण तथा ब्रह्मा, विष्णु, हर और ईशान का पूजन करना चाहिए । फिर दर्भों के द्वारा परिवेष्टित वह्नि को दर्भों में स्थापित करना चाहिए । दर्भ के जल से संस्पर्श किया हुआ चाहे मन्त्र से हीन भी हो तो वह विशुद्ध हो जाता है । ।।६१।।

प्रागग्रैरुदगग्रैश्च प्रत्यगग्रैरखण्डितैः ।
विततैर्वेष्टितो वह्निः स्वयं सान्निध्यतां व्रजेत् ।।६२
अग्नेस्तु रक्षणार्थाय यदुक्तं कर्म मन्त्रवित् ।
आचार्याः केचिदिच्छन्ति जातकर्मादनन्तरम् ।।६३
पवित्रन्तु ततः कृत्वा कुर्यादाज्यस्य संस्कृतिम् ।
आचार्योऽथ निरीक्ष्यापि नीराजमभिमन्त्रितम् ।।६४
आज्यभागावभिघारान्तमवेक्षेताज्यसिद्धये ।
पञ्च पञ्चाहुतीर्हुत्वा आज्येन तदनन्तरम् ।।६५
गर्भाधानादितस्तावद्यावद् गोदानिकं भवेत् ।
स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रैः प्रणवेनाथ होमयेत् ।।६६
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा पूर्णात्पूर्णमनोरथः ।
एवमुत्पादितो वह्निः सर्वकर्मसु सिद्धिदः ।।६७
पूजयित्वा ततो वह्नि कुण्डेषु विहरेत्तथा ।
इन्द्रादीनां स्वमन्त्रैश्च तथाहुतिशतं शतम् ।।६८

प्रत्यगग्र, प्रागग्र, उदगग्र, अखण्डित और विततदर्भों से वेष्टित वह्नि स्वयं ही सान्निध्य को प्राप्त हो जाता है।६२। मन्त्रके ज्ञाता ने अग्निकी रक्षा के लिये जो भी कर्म कहा है उसे कुछ आचार्य जातकर्मा के अनन्तर चाहा करते हैं ।।६३।। इसके पश्चात् पवित्र करके घृत का संस्कार करना चाहिए। इसके अनन्तर आचार्य देखकरभी नीराज को अभिमन्त्रित करे। आज्य(घृत)

की सिद्धि के लिये आज्य के आदि भाग से अभिधारा के अन्त पर्यन्त अवेक्षण करे और फिर उस आज्यसे पाँच-पाँच आहुतियों द्वारा हवन करे॥६४।६५॥ गर्भाधान से आदि लेकर जब तक गोदानिक होवे अपने शास्त्रमें विहित मन्त्रों के द्वारा या प्रणव से होम करना चाहिए।।६६।।इसके पश्चात् पूर्णाहुति देकर पूर्णात्पूर्ण मनोरथ होवे। इस प्रकार से उत्पादित वह्नि सम्पूर्ण कर्मोंमें 'सिद्धि का प्रदान करने वाला होता है ।।६७।। इसके पश्चात् अग्नि का पूजन करके कुण्डों में विहृत करे। इन्द्र आदि देवों को अपने अपने मन्त्रों के द्वारा सौ सौ आहुतियाँ देवे ।।६८।।

पूर्णाहुति शतस्यान्ते सर्वेषाञ्चैव होमयेत् ।
स्वामाहुतिमथाज्येषु होता तत्कलशे न्यसेत् ।।६९
देवताश्चैव मन्त्रांश्च तथैब जातवेदसम् ।
आत्मानमेकतः कृत्वा ततः पूर्णां प्रदापयेत् ।।७०
निष्कृष्य वहिराचार्य्यो दिक्पालानां बलिं हरेत् ।
भूतानाञ्चैव देवानां नागानाञ्च प्रयोगतः ।।७१
तिलाश्च समिधश्चैच होमद्रव्यं द्वयं स्मृतम् ।
आज्यं तयोः सहकारि तत्प्रदानं यदङ्कयोः ।।७२
पुरुषसूक्तं पूर्वेणैव रुद्रञ्चैव तु दक्षिणे ।
ज्येष्ठसाम च भीरुण्डं तन्नयामीति पश्चिमे ॥७३
नीलरुद्रो महामन्त्रः कुम्भसूक्तमथर्वणः ।
हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं शिरसि कल्पयेत् ।।७४
एवं मध्ये तथा पादे पूर्णाहुत्या तथा पुनः ।
शिरःस्थानेषु जुहुयादविशेच्च अनुक्रमात् ।।७५
देवानामादिमन्त्रैर्वा मन्त्रैर्वा अथवा पुनः ।
स्वशास्त्रविहितैर्वापि गायत्र्या वाथ ते द्विजाः ।।
गायत्र्या वाथवाऽऽचार्य्यो व्याहृतिप्रणवेन तु ।।७६

एवं होमविधिं कृत्वा न्यसेन्मन्त्रांस्तु देशिकः ।
चरणावग्निमीले तु ईषेत्वो गुल्फयोः स्थिताः ॥७७

सौ आहुतियों के अन्त में सबके लिये पूर्णाहुति का होम करना चाहिये । इसके अनन्तर अपनी आहुति को होता आज्यों में उस कलश में न्यास करे ॥६९॥ देवता, मन्त्र और जातवेद तथा आत्मा को एकतः करके फिर पूर्णाहुति देनी चाहिए ॥ ७० ॥ आचार्य को बाहिर निकाल कर दिक्पालों के निमित्त वलि का हरण करना चाहिए । भूतों को–देवों तथा नागों को सबको बलि देवे ॥७१॥ तिल और समिधा ये दो होम के द्रव्य हैं । इन दोनों द्रव्यों का घृत सहकारी पदार्थ होता है । जिनके अङ्कों में उसका प्रदान होता है ॥७२॥ पूर्व में पुरुष सूक्त और दक्षिण में रुद्र सूक्त, ज्येष्ठसाम और भीरुण्डं तन्नयामि, यह पश्चिम में नील रुद्र महामन्त्र कुम्भसूक्त और अथर्वण इन सब एक-एक को सहस्र बार हवन कर शिर में देव को कल्पित करे ॥७३।७४॥ इस प्रकार से मध्य में तथा पाद में फिर उसी प्रकार से पूर्णाहुति द्वारा शिर स्थानों में हवन करना चाहिए और अनुक्रम से आविष्ट करे ॥ ७५ ॥ देवों का आदि मन्त्रों के द्वारा अथवा स्वशास्त्र में विहित मन्त्रों के द्वारा या गायत्री के द्वारा अथवा द्विज एवं आचार्य प्रणव एवं व्याहृति के द्वारा इस प्रकार से होम की विधि को सुसम्पन्न करके फिर आचार्य्य मन्त्रों का न्यास करे । चरणों में "अग्नि मीले"–इस मन्त्र का न्यास करे गुल्फों में 'ईषेत्वो"—इसका न्यास करे ॥७६।७७॥

अग्नआयाहि जंघे द्वे शन्नोदेवीति जानुनी ।
बृहद्रथन्तरे ऊरू उदरेष्वातिलो न्यसेत् ॥७८
दीर्घायुष्टाय हृदये श्रीश्च ते गलके न्यसेत् ।
त्रातारामिन्द्रं वक्षे च नेत्राभ्यान्तु त्रियुग्मकम् ॥
मूर्द्धा भव तथा मूध्नि ह्यालग्नाद्धोममाचरेत् ॥७९
उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणः पते ।
वेदपुण्याहशब्देन प्रासादानां प्रदक्षिणम् ॥८०
पिण्डकालभनं कृत्वा देवस्यत्वेति मन्त्रवित् ।
दिक्पालान्सह रत्नैश्च धातूनौषधयस्तथा ॥

लौहबीजानि सिद्धानि पश्चाद्देवन्तु विन्यसेत् ॥८१
न गर्भे स्थापयेद्देवं न गर्भन्तु परित्यजेत् ।
ईषन्मध्य परित्यज्य ततो दोषापनं तु तत् ॥८२
तिलस्य तु समात्रन्तु उत्तरं किञ्चिदानयेत् ।
ॐ स्थिरो भव शिवो भव प्रजाभ्यश्च नमो नमः ॥८३
देवस्यं त्वा सवितुर्वः षड्भ्यो वै विन्यसेद् गुरुः ।
तत्त्ववर्णकलामात्रं प्रजानि भुवनात्मजे ॥८४
षड्भ्यो विन्यस्य सिद्धार्थं ध्रुवार्थैरभिमन्त्रयेत् ।
सम्पातकलशेनैव स्नापयेत्सुप्रष्टितम् ॥८५

दोनों जाँघों में "अग्न आयाहि"—इसका जानुओं में "शन्नो देवी"- इस मन्त्र का और उदरों में 'आतिल'-इसका न्यास करे ।७८। हृदय में 'दीर्घायुष्ट्वाय'-इस मन्त्र का और गले में 'श्रीश्चते'—इसका न्यास करे । वक्षःस्थल में 'त्रातारमिन्द्रम्' इसका एवं दोनों नेत्रों में 'त्रियुग्मकार—इसका न्यास करना चाहिए। मूर्द्धाभव'-इससे मूर्द्धा में न्यास करे और आलग्न होम करे ॥७९॥ इसके अनन्तर देव का उत्थापन करे तथा 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणः पते' —इस मन्त्रसे करना चाहिए । वेद पुण्याह शब्दके द्वारा प्रासादोंकी प्रदक्षिणा करे ।८०॥ मन्त्रों के वेत्ता को 'देवस्यत्व'-इससे पिण्डिकालभन करके रत्नों के सहित दिक्पालों को—धातुओं को-औषधियों को और सिद्ध लौह बीजों को विन्यस्त करके पीछे देव का विन्यास करना चाहिए ।८१। गर्भ में देवको स्थापित न करे और गर्भ का परित्याग भी नहीं करना चाहिए । थोड़ा सा मध्य का परित्याग करके इसके अनन्तर दोषापन करे ।८२। तिल का कुछ समात्र उत्तर लावे । गुरु को 'ॐ स्थिरोभव शिवोभव प्रजाभ्यश्च नमो नमः । देवस्य त्वा सवितुर्यः षड्भ्यो वै'—इससे विन्यास करना चाहिए । भुवनात्मज में तत्त्व वर्ण कलामात्र प्रजनों का षड्भ्यो इससे विन्यास करे। ध्रुवार्थों से सिद्धार्थ को अभिमन्त्रित करे । सुप्रतिष्ठित को सम्पात कलश के द्वारा ही स्नान करावे ।।८३।८४ ८५।

दीपधूपसुगन्धैश्च नैवेद्यैश्च प्रपूजयेत् ।
अर्घ्यं दत्वा नमस्कृत्य ततो देवं क्षमापायेत् ।।८६
पात्रं वस्त्रयुगं छत्रं तथा दिव्यांगुरीयकम् ।
ऋत्विग्भ्यश्च प्रदातव्या दक्षिणा चैव शक्तितः ।।८७
चतुर्थी जुहुयात्पश्चाद्यजमानः समाहितः ।
आहुतीनां शतं हुत्वा ततः पूर्णां प्रदापयेत् ॥८८
निष्क्रम्य बहिराचार्य्यो दिक्पालानां बलि हरेत् ।
आचार्य्यः पुष्पहस्तस्तु क्षमस्वेति विसर्जयेत् ।।८९
यागान्ते कपिशां दद्यादाचार्य्याय च चामरम् ।
मुकुटं कुण्डलं छत्रं केयूरं कटिसूत्रकम् ।
व्यञ्जन ग्रामवस्त्रादीन्सोपस्कारं समण्डलम् ॥९०
योजनञ्च महत कुर्य्यात् कृतकृत्यश्च जायते ।
यजमानो विमुक्तः स्यात्स्थापकस्य प्रसादतः ।।९१

फिर दीपों-धूपों और सुगन्धियों के द्वारा और नैवेद्यों के द्वारा पूजन करना चाहिए अर्घ्य देकर नमस्कार करके इसके अनन्तर देवता से क्षमापन करने की क्रिया करे ।।८६।। पात्र-वस्त्र युग्म तथा दिव्य अगुरीयक और शक्ति पूर्वक दक्षिणा देनी चाहिए ।।८७।। इसके पीछे यजमान को पूर्ण सावधान होकर चतुर्थी का हवन करना चाहिए । इस प्रकार से एक सौ आहुतियाँ देकर फिर पूर्णाहुति देवे ।८८। आचार्य्य बाहिर निकल कर दिक्पालों के लिये बलि का हरण करे । आचार्य पुष्प हाथों में लेकर 'क्षमस्व'-इससे विसर्जन करे । याग की समाप्ति हो जाने पर आचार्य को एक कपिला गौ का दान करे तथा चामर मुकुट-कुण्डल-छत्र-केयूर-कटिसूत्र-व्यञ्जन एवं सोपस्कर तथा समडल ग्राम वस्त्रादि देवे । इससे यजमान कृतकृत्य होता है और स्थापक के प्रासाद से विमुक्त हो जाता है ।।८९,९०।९१।।

२३-अष्टाङ्गयोग कथन

सर्गादिकृद्धरिश्चैव पूज्यः स्वायम्भुवादिभिः ।
विप्राद्यैः स्वेन धर्मेण तद्धर्मं व्यास वै शृणु ।।१

यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः ।
अध्यापनञ्चाध्ययनं षट्कर्माणि द्विजोत्तमे ॥२
दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः ।
दण्डस्तथा क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते ॥३
शुश्रूषेव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम् ।
कारुकर्म तथा जीवोऽपाकयज्ञोऽपि धर्मतः ॥४
भिक्षाचर्य्याथ शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च ।
संन्यासकर्माग्निकार्यञ्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणः ॥५
सर्वेषामाश्रमाणाञ्च द्वैविध्यन्तु चतुर्विधम् ।
ब्रह्मचार्य्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः ॥६
योधीत्य विधिवद्वेदान्गृहस्थाश्रममाव्रजेत् ।
उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ॥७
अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम् ।
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं द्विजसत्तम ॥८

ब्रह्माजी ने कहा—सर्गादि के करने वाले हरि स्वायम्भुव आदि के द्वारा तथा विप्रादि के द्वारा अपने धर्म से पूजने के योग्य हैं । हे व्यास ! अब उस धर्म का श्रवण करो ॥१॥ यजन करना—यज्ञ कराना—दान लेना—ब्राह्मणों को दान देना—वेद-शास्त्रों का अध्ययन करना तथा अध्यापन कराना ये द्विज के श्रेष्ठ छः धर्म होते हैं ॥२॥ दान देना-अध्ययन करना और यज्ञ कर्म करना—ये क्षत्रिय और वैश्य के धर्म हैं । क्षत्रिय का कर्म दण्ड देना तथा वैश्य का कर्म कृषि करना प्रशस्त कहा जाता है ॥३॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजातियों की सेवा करना ही शूद्रों का धर्म-साधन कर्म होता है । तथा शूद्रों का कारुकर्म और धर्म से अपाक यज्ञ भी जीविका का साधन होता है ॥ ४ ॥ भिक्षाचरण करना—गुरु की सेवा करना और स्वाध्याय करना संयम कर्म और अग्नि कार्य हवनादि ये ब्रह्मचारी के धर्म कृत्य होते हैं ॥ ५ ॥ समस्त आश्रमों के दो प्रकार होते हैं । इस प्रकार से चार भेद होते हैं । ब्रह्म-

चारी–उष कुर्वाण- नैष्ठिक और ब्रह्मतत्पर होते हैं ॥६॥ जो विधिपूर्वक गुरु के पास ब्रह्मचर्य विधि से रह कर वेदों का अध्ययन करे और फिर समावर्त्तन करके गार्हस्थ्य आश्रम को ग्रहण करता है उसे उपकुर्वाण जानना चाहिए। जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश न करके मरण पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य का पालन करता है वह नैष्ठिक होता है ॥७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! अग्नि कर्म–अतिथियों की सत्कारपूर्वक सेवा- यज्ञ करना- दान देना और देव पूजन करना यह गृहस्थ का संक्षेप में धर्म कहा गया है ॥८॥

उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत् ।
कुटुम्बभरणे युक्तः साधकोऽसौ गृही भवेत् ॥६
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्य्याधनादिकम् ।
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्षिकः ॥१०
भूमौ मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च ।
संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनः ॥११
तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद्देवान्जुहोति च ।
स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसोत्तमः ॥१२
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत् ।
संन्यासी स हि विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः ॥१३
योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः ।
ज्ञानाय वर्त्तते भिक्षुः प्रोच्यते पारमेष्ठिकः ॥१४
यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः ।
सम्यक् चन्दनसम्पन्नः स योगी भिक्षुरुच्यते ॥१५
भैक्ष्यं श्रुतञ्च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः ।
सम्यक्च ज्ञानवैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः ॥१६

उदासीन और साधक भेद से गृहस्थ भी दो प्रकार का हुआ करता है। जो अपने कुटुम्ब के भरण-पोषणमें युक्त रहा करताहै वह साधक गृही होता है॥६॥देव ऋषि और पितर इन तीनों के ऋणों को दूरकर अर्थात् चुका कर

फिर अपनी भार्या और धन-वैभवका त्याग कर एकाकी जो विचरण किया करता है वह मौक्षिक उदासीन गृही होता है।।१०॥वनमें निवास करने वाले का यह धर्म होता है कि भूमि में शयन करे–वन के मूल और फलोंका भोजन करे–स्वाध्याय करे–तपश्चर्या करे और यथान्याय संविभाग करे ।।११।। जो वन में तपश्चर्या करता है–देवों का यजन किया करता है–हवन करता है और सदा स्वाध्यायमें निरत रहा करताहै वह वनवासियोंमें परमश्रेष्ठ तापस होता है ।।१२।। तपस्या से जो अत्यन्त कर्षित होता हुआ निरन्तर ध्यान में ही परायण रहताहै उसे वानप्रस्थ आश्रममें रहनेवाला संन्यासी ही समझना चाहिए।।१३।। नित्य ही योग के अभ्यासमें रति रखने वाला और उच्चपद पर आरोहण करने की इच्छा वाला–इन्द्रियों को जीत कर वश में रखने वाला ज्ञान के लिये ही वर्त्तन करता है वह पारमेष्ठिक भिक्षु कहा जाता है ।।१४।। जो आत्मामें ही रति रखने वाला-नित्य तृप्त सम्यक् तथा चन्दन सम्पन्न महामुनि होता है वह योगी भिक्षु कहा जाया करता है ।।१५।। भिक्षा करना–शास्त्र तथा वेद का ज्ञान–मौन व्रत धारण करना–तपश्चर्या विक्षेप रूप से ध्यान लगाना और भली भाँति ज्ञान एवं वैराग्य का रखना ये ही भिक्षु का धर्म कहा गया है ।।१६।।

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् वेदसंन्यासिनोऽपरे ।
कर्मसंन्य सिनः केचित्त्रिविधः पारमेष्ठिकः ।।१७

योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः क्षत्र एव च ।
तृतीयोऽन्त्याश्रमी प्रोक्तो योगमूर्त्तिसमाश्रितः ।।१८

प्रथमा भावना पूर्वे मोक्षे दुष्करभावना ।
तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी ।।१९

धर्मात्संजायते मोक्षो ह्यर्थात् कामोऽभिजायते ।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविध कर्म वैदिकम् ।
ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात्प्रवृत्तश्चाग्निदेवकृत् ।।२०

क्षमा दमो दया दानमलोभाभ्यास एव च।
आर्जवश्चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा ॥२१
सत्यं सन्तोष आस्तिक्यं यथा चेन्द्रियनिग्रहः।
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ॥२२
अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमरूक्षता।
एते आश्रमिका धर्माश्चातुर्वर्ण्यं ब्रवीम्यतः ॥२३
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥२४
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्त्तताम्।
गन्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारे च वर्त्तताम् ॥२५
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम्।
स्मृतं तेषान्तु यत् स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥२६

यह पारमेष्ठिक तीन प्रकार के होते हैं-कुछ तो ज्ञान संन्यासी होते हैं अर्थात् ज्ञान के बल से हृदय में सबका पूर्ण त्याग भाव रखने वाले होते हैं-दूसरे वेद संन्यासी हुआ करते हैं और तीसरे प्रकार के कर्म संन्यासी होते हैं ॥१७॥ योगी भी तीन प्रकार के होते हैं-भौतिक योगी क्षत्र योगी और तृतीय योगमूर्त्ति समाश्रित अन्त्याश्रमी होता है।।१८। प्रथम में प्रथमा भावना होती है-मोक्ष में दुष्कर भावना होती है और तीसरे में अन्तिम पारमेश्वरी भावना हुआ करती है ॥१९॥ धर्म से मोक्ष हुआ करता है और अर्थ से काम की उत्पत्ति होनी है। इस तरहसे यह वैदिक कर्म प्रवृत्ति परक और निवृत्ति-परक दो प्रकार का होता है। जो ज्ञानपूर्वक कर्म होता है वह निवृत्ति परक होताहै और जोअग्नि एवं देव परक कर्म होताहै वही प्रवृत्ति कर्म कहा जाता है ॥२०॥ क्षमा-दम-दया-दान-लोभ का अभ्यास-सरलता-अनसूया अर्थात् दूसरों के दोषों का प्रकट करने का अभाव-तीर्थों का अटन-सत्य-सन्तोष-आस्तिकता की भावना-इन्द्रियों पर निग्रह रखना-देवताओं का समर्चन-विशेष रूप से ब्राह्मणों की पूजा-अहिंसा-प्रिय बोलना-पिशुनता का न होना-

रूखापन का अभाव ये सब आश्रमों वालों के धर्म होते हैं। अतएव मैं अब चातुर्वर्ण्य को बतलाता हूँ ॥२१।२२।२३॥ क्रिया वाले ब्राह्मणों का प्राजापत्य स्थान कहा गया है। संग्रामों में पलायन न करने वाले क्षत्रियों का ऐन्द्र स्थान कहा गया है। अपने धर्म का अनुवर्त्तन करने वाले वैश्यों का मारुत स्थान होता है। परिचर्या में सर्वदा संलग्न रहने वाले शूद्रों का गाधर्व स्थान बताया गया है ॥२४।२५॥ ऊर्ध्व रेतस अट्ठासी सहस्र ऋषियों का जो स्थान कहा गया है वही गुरुवासियों का होता है ॥२६॥

सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्थानं तद्वै वनौकसाम् ।
यतीनां यतचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम ।
आनन्दं ब्रह्म तत् स्थानं यस्मान्नवर्त्तते मुनिः ॥२७
योगिनाममृतस्थानं व्योमाख्यं परमाक्षरम् ।
आनन्दमैश्वरं यस्मान्मुक्तो नावर्त्तते नरः ॥२८
मुक्तिरष्टाङ्गविज्ञान त् सक्षेप त्तद्वदे शृणु ।
यमाः पञ्चत्वहिंसाद्या अहिंसा प्राण्यहिंसनम् ॥२६
सत्यं भूतहितं वाक्यमस्तेयं स्वग्रहं परम् ।
अमैथुन ब्रह्मचर्यं सर्वत्यागोऽपरिग्रहः ॥३०
नियमाः पञ्च सत्याद्या बाह्यामाभ्यन्तरं द्विधा ।
शौचं सत्यञ्च सन्तोषस्तपश्चेन्द्रियनिग्रहः ॥३१
स्वाध्यायः स्यान्मन्त्रजपः प्रणिधानं हरेर्यजिः ।
आसनं पद्मकाद्युक्तं प्राणायामो मरुज्जयः ॥३२
मंत्रध्यानयुतो गर्भो विपरीतो ह्यगर्भकः ।
एवं द्विधा त्रिधाप्युक्तं पूरणात् पूरकः स च ।
कुम्भको निश्चलत्वाच्च रेचनाद्रेचकस्त्रि ा ॥३३

सप्तऋषियों का जो स्थान होता है वह स्थान वन में रहने वाले यतियों का होता है जो यतचित्त होते हैं और न्यास करने वाले तथा ऊर्ध्व रेता होते हैं। वह आनन्द ब्रह्म स्थान है जहाँसे फिर मुनि पुनरावर्तित नहींहुआ करता

है ॥२७॥ योगियों का व्योमसंज्ञक परमाक्षर अमृत स्थान होता है। वह आनन्दमय तथा ऐश्वर स्थान है जहाँ से फिर मानव का पुनरावर्त्तन इस संसार में नहीं होता है ॥२८॥ आठ अङ्गों के विशेष ज्ञान से मुक्ति हुआ करती है। उसे मैं अब संक्षेप में बताता हूँ। उसका श्रवण करो। अहिंसा आदि पाँच यम होते हैं। प्राणियों की कायिक-वाचिक एवं मानसिक हिंसा का न करना ही अहिंसा कही जाती है ॥२९॥ भूतों का हित करने वाला वाक्य सत्य होता है। पराई वस्तु का न ग्रहण करना अस्तेय है। मैथुन का न करना ब्रह्मचर्य होता है। समस्त वस्तुओं का परिग्रह न करना ही त्याग है ॥३०॥ सत्य आदि पाँच नियम होते हैं। वे बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार के होते हैं। शौच–सत्य एवं सन्तोष है–तपश्चर्या–इन्द्रियों का निग्रह है–स्वाध्याय–मन्त्रों का जप है-प्रणिधान–हरि का यजन है–पद्मक आदि आसन हैं–वायु पर जय प्राप्त कर लेना ही प्राणायाम होता है ॥३१।३२॥ मन्त्र के ध्यान से जो युक्त होता है वह अगर्भक कहा जाता है। इस प्रकार से वह दो एवं तीन प्रकार का है। पूरण करने से वह पूरक होता है। निश्चल होने से कुम्भक और रेचन से रेचक कहा जाता है ॥३३॥

लघुर्द्वादशमात्रः स्याच्चतुर्विंशतिकः परः।
षट्त्रिंशन्मात्रिकः श्रेष्ठः प्रत्याहारश्च रोधनम् ॥३४
ब्रह्मात्मचिन्ता ध्यानं स्याद्धारणा मनसो धृतिः।
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिर्ब्रह्मणः स्थितिः ॥३५
अहमात्मा परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम्।
ब्रह्मविज्ञानमानन्दः स तत्त्वमसि केवलम् ॥३६
अहं ब्रह्मास्मयहं ब्रह्म अशरीरमनिन्द्रियम्।
अहं मनोबुद्धिमहदहङ्कारादिवर्जितम् ॥३७
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादियुक्तज्योतिस्तदीयकम्।
नित्यं शुद्धं बुद्धियुक्तं सत्यमानन्दमद्वयम् ॥३८

योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्डितम् ।
इति ध्यायन् विमुच्येत ब्राह्मणो भवबन्धनात् ।। ६

बारह मात्राओं वाला लघु प्राणायाम होता है और चौबीस मात्राओं वाला पर होता है तथा छत्तीस मात्राओं से युक्त परम श्रेष्ठ होता है । रोधन करने को ही प्रत्याहार कहते हैं।।३४।।ब्रह्मात्म का चिन्तन करनेको ही ध्यान कहते हैं । मन की धृति को धारणा कहा जाता है । मैं ही ब्रह्महूँ-इस प्रकार की जो अवस्थिति होनेपर ब्रह्मकी स्थिति का प्राप्त हो जानाहै उसेही समाधि कहा जाता है।।३५।। मैं आत्मा हूँ ब्रह्म पर है और वह सत्य एवं ज्ञानस्वरूप तथा अनन्त है । ब्रह्म का विज्ञान ही आनन्दमय है और वह केवल तत्त्वमसि है ।।३६।। मैं ब्रह्म हूँ मैं विना शरीर वाला और इन्द्रियों से रहित हूँ-मैं मन, बुद्धि अहङ्कार आदि से वर्जितहूँ और जाग्रत्, सुषुप्ति आदिसे युक्त उसी की ज्योति स्वरूपहूँ । मैंनित्य-शुद्ध बुद्धियुक्त सत्य एवं आनन्दस्वरूप अद्वितीय हूँ । जो यह आदित्य पुरुष है वह मैं अखण्डित हूँ-इस प्रकारसे अपने आपको ध्यान करने वाला ब्राह्मण इस संसार के महा बन्धन से विमुक्त हो जाता है ।।३७।।३८।।३९।।

२४-नित्य क्रिया शौच वर्णन

अहन्यहनि यःकुर्यात् क्रियां स ज्ञानमाप्नुयात् ।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत् ।।१
चिन्तयेद्धृदि पद्मस्थमानन्दमजरं हरिम् ।
ऊषःकाले तु संप्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः ।।
स्नाय न्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि ।।२
प्रातःस्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रातःस्नानं समाचरेत् ।।३
प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत् ।
सुखात् सुमस्य सततं लालाद्याः संस्रवन्ति हि ।।
अतो नैवाचरेत् कर्माण्यकृत्वा स्नानमादितः ।।४

अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ।
प्रातःस्नानेन पापानि धूयन्ते नात्र संशयः ॥५

न च स्नानं विना पुंसां प्राशस्त्यं कर्म संस्मृतम् ।
होमे जप्ये विषेशेण तस्मात् स्नानं समाचरेत् ॥६

अशक्तावशिरस्कं तु स्नानमस्य विधीयते ।
आर्द्रेण वाससा वापि मार्जनं कायिकं स्मृतम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा–जो प्रति दिन इस क्रिया को करता है यह ज्ञान प्रो प्राप्त किया करता है । ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर अर्थात् शय्या का त्याग करके सर्वप्रथम धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिये । ऊषा काल के सम्प्राप्त होने पर बुध पुरुष को आवश्यक कृत्य करके हृदय में पद्मासन पर संस्थित आनन्दस्वरूप अजर श्रीहरि का चिन्तन करे । यथा विधि शौच-कार्य करके फिर शुद्ध नदियोंमें स्नान-क्रिया सम्पन्न करे।।१।२।। पापोंके करनेवाले भी मनुष्य प्रातःकालमें स्नान करने से पवित्र हो जाया करतेहैं । इसलिये पूर्व प्रयत्नोंके द्वारा प्रातःकाल के समयमें अवश्यही स्नान करना चाहिए । प्रातः-काल में किये जाने वाले स्नान की प्रशंसा की जाती है क्योंकि वह दृष्ट और अदृष्ट के करने वाला होता है । सुख से सोते हुए मनुष्य की सर्वदा लाला (लार) आदि का स्रवण हुआ करता है । इसलिये आदि में स्नान न करके कभी भी अन्य कर्मों का आरम्भ न करे।।३।४।। प्रातःकालमें नित्य किये हुए स्नान से अलक्ष्मी,कालकर्णी, दु स्वप्न, दुर्विचिन्तित (बुरी भावना,एवं सभी पाप नष्ट हो जाया करते हैं–इसमें कुछभी संशय नहीं है ।५। स्नान के बिना पुरुषों के प्रशस्त कर्म नहीं बताये गये हैं । होम और मन्त्र जापके करने में तो विशेष रूपसे स्नान करना ही चाहिए ।।६।। यदि सर्वाङ्ग स्नान करने की स्थिति में न हो और ऐसी शक्ति शरीर में न हो तो बिना शरीर को भिगोये हुए ही स्नान अवश्यही करना चाहिए । इतनाभी न किया जा सके तो गीला वस्त्र करके उससे ही शरीर का मार्जन अवश्य करे–ऐसा कहा गया है।।७।।

ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च ।
वारुण यौगिक तद्वत्षडङ्गं स्नानमाचरेत् ।।८
ब्राह्मन्तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः ।
आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद् देहधूननम् ।।९
गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम् ।
यत् तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ।।१०
वारुणञ्चावगाहञ्च मानसं त्वात्मवेदनम् ।
यौगिकं स्नानमाख्यातं योगेन परिचिन्तनम् ।
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ।।११
क्षारवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम् ।
अपामार्गञ्च बिल्वञ्च करवीरञ्च धारणम् ।।१२
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा कुर्यात्तु दन्तधावनम् ।
प्रक्षाल्य भुक्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः ।।१३
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन्पितृगांस्तथा ।
आचम्य विधिवन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः ।।१४
समार्ज्य मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकबिन्दुभिः ।
आपोहिष्टाव्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः ।।१५

ब्राह्म स्नान को आग्नेय स्नान कहा गया है–वायव्य स्नान को दिव्य स्नान बताया गया है–बारुण स्नानको यौगिक कहा गया है । इसी भाँति षडङ्ग स्नान करे ।८। जल की बूँदों के सहित कुशों के द्वारा मन्त्रों से जो स्नान क्रियाको सम्पन्न करके मार्जन किया जाताहै उसे ब्राह्म स्नान कहतेहैं। भस्म से मस्तकसे लेकर पाद पर्यन्त जो देह-धूनन किया जाताहै उसे आग्नेय स्नान कहा जाता है।।९।। गौओं के खुरों से उठी हुई रज से जो स्नान किया जाताहै उस उत्तम स्नानको वायव्य स्नान कहतेहैं। जो आतप रहतेहुए वर्षा की बूँदोंसे स्नान होता है उसे दिव्य स्नान कहा जाताहै।१०। मानस स्नान को वारुण स्नान कहतेहैं और आत्मवेदन यौगिक स्नान होता है जिसमें योग के द्वारा परिचिन्तन किया जाता है । ब्रह्मवादियों के द्वारा सेवित आत्मतीर्थ

कहा गया है ।।११।। दूध जिन वृक्षों से निकला करता है उन वृक्षों की बनाई हुई–मालती लता की टहनी से बनाई गई परम शुभ अपामार्ग (औंधा) की विल्व की और करवीर की दाँतुन को उत्तर की ओर मुख करके अथवा पूर्व की ओर मुख वाला होकर करना चाहिए। चबा कर और धोकर शुचि देश में समाहित होकर उसका उपयोग करके फिर त्याग देवे ।।१२।१३।। फिर स्नान करके देवों का–ऋषियों का पितृगण का तर्पण करना चाहिए। विधि के सहित आचमन करके नित्य ही पुनः आचमन करके मौन होकर उदक बिन्दुओं के सहित कुशाग्रों से मन्त्रों के द्वारा अपना संमार्जन करे और वह "आपोहिष्ठा मयोभुव." इत्यादि व्याहृतियों से–सावित्री से और शुभ वारुणों से करना चाहिए।१४।१५।

ॐकारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम् ।
जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद्भास्करं प्रति तन्मनाः ।।१६
प्रातःकाले ततःस्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः ।
प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति श्रुतिः ।।१७
या सन्ध्या सा जगत्सूतिमायातीता हि निष्कला ।
ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा ।।१८
ध्यात्वा रक्तां सितां कृष्णां गायत्रीं वै जपेद्बुधः ।
प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत् ।।१९
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
यदन्यत्कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलभाग्भवेत् ।।२०
अनन्यचेतसः सन्तो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
उपास्य विधिवत्सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वंपरां गतिम् ।।२१
योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्य्ये द्विजोत्तमः ।
विहाय सन्ध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम् ।।२२

फिर ओङ्कार व्याहृतियों से युक्त वेदमाता गायत्री का जप करके तन्मनस्क होकर भगवान् भास्कर देव के प्रति जलाञ्जलि समर्पित करे।१६। इसके अनन्तर प्रातःकाल में कुशासन पर स्थित होकर सुसमाहित होते हुए

प्रणाम करके सन्ध्या की उपासना करे-ऐसा श्रुति प्रतिपादन करतीहै।१७। जो यह सन्ध्याहै वह जगत् की जननी है-माया से अतीत और निष्कला है। यह केवल ऐश्वरी शक्ति तीनों तत्वों से समुत्पन्न होने वाली है ॥१८॥ बुध पुरुष को चाहिए कि गायत्री के स्वरूप का रक्त-सित और कृष्ण वर्ण का ध्यान करके फिर इसका जप करे। विप्र को सर्वदा पूर्व की ओर मुख करके सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए॥१६॥जो विप्र सन्ध्या नहीं करता है वह परमहीन ही होताहै और समस्त कर्मोंके करने के अयोग्य होता है। औरभी वह जोकुछ करता है उसके फल को भोगने वाला नहीं होता है॥२०॥अनन्य चित्त वाले होते हुए वेद के पारगामी ब्राह्मण विधि-विधान के साथ सन्ध्या की उपासना करके पूर्वपरा गति को प्राप्त हुए हैं ॥२१॥ जो द्विज श्रेष्ठ अन्य कर्मों में जो कि धर्मयुक्त होते हैं यत्न किया करता है और सन्ध्या की प्रगति की प्रणति का त्याग कर देता है वह दश सहस्र वर्ष पर्यन्त नरक का गामी होता है ॥२२॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् ।
उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुः परः ॥२३
सहस्रपरमां नित्यां शतमध्यां दशापराम् ।
गायत्रीं वै जपेद्विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतः शुचिः ॥२४
अथोपतिष्ठेदादित्यमुदयस्थं समाहितः ।
मन्त्रैस्तु विविधैः सारैः ऋग्यजुःसामसंज्ञितैः ॥२५
उपस्थाय महायोग देव देवं दिवाकरम् ।
कुर्वीत प्रणतिं भूमौ मूर्द्धानमभिमन्त्रितः ॥२६
ॐ खखोल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
निवेदयामि चात्मनं नमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥२७
त्वमेव ब्रह्म परममापोज्योतीरसोऽमृतम् ।
भूर्भुवःस्वस्त्वमोङ्कारः सर्वो रुद्रः सनातनः ॥२८
एतद्वै सूर्य्यं हृदये जप्त्वा स्तवनमुत्तमम् ।
प्रातःकाले च मध्याह्ने नमस्कुर्य्याद्दिवाकरम् ॥२६

अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि ।
प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥३०

अतएव सम्पूर्ण प्रयत्नों से ब्राह्मण को सन्ध्योपासना अवश्य करनी चाहिए। उस सन्ध्या में उपासित देव परमभोग तनु होजाता है॥२३॥विद्वान् ब्राह्मण को नित्य प्रति एक सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए–यह सर्वोत्तम है। यदि इतना न बन सकेतो एकसौ आठबार एकही माला गायत्री के जप की करे–यह मध्यम है और इतना भी व्यस्ततावश न कर सके तो कम से कम दस बार तो अवश्य ही गायत्री का जप प्रतिदिन करना चाहिए - यह सबसे निम्न श्रेणी की जप संख्या है। विद्वान् को पूर्वकी ओर मुखकरके और परम अयत होकर ही परम शुचिता के साथ गायत्री का जप करना चाहिए ॥२४॥ इसके अनन्तर बहुत सावधान होते हुए उदयस्थ भगवान् आदित्यदेव का उपस्थान करे। यह उपस्थान परम साररूप विविध ऋक्-यजु और सामवेद की संज्ञा वाले मन्त्रोंके द्वारा करे॥२५॥ महायोग देवों के भी देव भगवान् दिवाकर (सूर्य) का उपस्थान करके अभिमन्त्रित होते हुए भूमि में मस्तक टेक कर सूर्यदेव को प्रणाम करे। प्रणाम करने का मन्त्र यह है–"ओम् ख खोल्काय शान्ताय–इत्यादि"–अर्थात् ख अर्थात् आकाश के उल्का-स्वरूप–परम शान्त–तीनों कारणों के हेतु–ज्ञानस्वरूप वाले आप के लिये मेरा नमस्कार है। मैं अपने आपको आपके लिये निवेदित करताहूँ॥२६।२७॥ आपही परम ब्रह्म हैं। आपो ज्योति रस एवं अमृत हैं। आप भूर्भुवः स्वः हैं-आप ओङ्कार–सर्व -रुद्र एवं सनातन हैं॥२८॥ इस उत्तम स्तवन का हृदय में सूर्य्य जाप करके प्रातःकालमें और मध्याह्नके समय में भगवान् दिवाकर को नमस्कार करे ॥२९॥ इसके अनन्तर विप्र अपने घर में आकर विधिपूर्वक आचमन करके अग्नि को प्रज्वलित करे और विधि के साथ उसे अग्नि में हवन करना चाहिए ॥३०॥

ऋत्विक्पुत्रोऽथपत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः।
प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयाद्वा यथाविधि ॥

विना मन्त्रेण यत्कर्म नामुत्रेह फलप्रदम् ॥३१
दैवतानि नमस्कुर्य्यादुपहारान्निवेदयेत् ।
गुरुश्चैवाप्युपासीत हितश्चास्य समाचरेत् ॥३२
वेदाभ्यास ततः कुर्य्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः ।
जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद्वै विचारयेत् ॥३३
अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तम ।
वैदिकांश्चैव निगमान्वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥३४
उपेयादीश्वरश्चैव योगक्षेमप्रसिद्धये ।
साधयेद्विविधानर्थान्कुटुम्बार्थं ततो द्विजः ॥३५
ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।
पुष्पाक्षतान्तिलकुशान् गोमयं शुद्धमेव च ॥३६
नदीषु देवखातेषु तड़ागेषु सरःसु च ।
स्नानं समाचरेन्नैव परकीये कदाचन ॥
पञ्च पिण्डाननुद्धृत्य स्नानं दुष्यन्ति नित्यशः ॥३७

ऋत्विक्-पुत्र-पत्नी-शिष्य अथवा सहोदर भाई की आज्ञा प्राप्त करके विशेष रूप से यथा विधि हवन करना चाहिए। मन्त्र के बिना जो कोई भी कर्म होता है वह इस लोक में तथा परलोक में फल प्रदान करने वाला नहीं होता है ॥ ३१ ॥ समस्त देवों को नमस्कार करे और उन्हें उपहारों की समर्पित करे। फिर गुरुदेव और इनके जो भी हित हों उनकी उपासना करनी चाहिए ॥३२॥ इस कृत्य के सम्पन्न करने के अनन्तर द्विज को अपनी शक्ति से प्रयत्न पूर्वक वेदों का अभ्यास करना चाहिए। जप करे-शिष्यों को अध्यापन करे—धारण करे और विचारण करे ॥३३॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! फिर शास्त्रों का अवेक्षण करे तथा धर्म आदि का निरीक्षण करे। वैदिक निगमों को तथा सभी वेद के अङ्ग व्याकरण-निरुक्त आदि शास्त्रों का परिशीलन करे ॥३४॥ अपने योगक्षेम की प्रसिद्धि के लिए ईश्वर का उपगमन करे और इसके पश्चात् द्विज को कुटुम्ब के लिए अनेक प्रकार के अर्थों का साधन करना चाहिए ॥ ३५ ॥

इसके अनन्तर मध्याह्न के समय स्नान के लिए मृत्तिका लावे । पुष्प-अक्षत-तिल-कुशा और शुद्ध गोमय लाना चाहिए ।।३६।। नदी-देवखात-तड़ाग अथवा सरोवर में स्नान करना चाहिए । किन्तु दूसरों के स्थान में कभी भी स्नान नहीं करे । नित्य ही पाँच पिण्डों का उद्धार न करके लोग स्नान को दूषित कर दिया करते हैं ।।३७।।

मृदैकया शिरः क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि ।
अधश्च तिसृभिः क्षाल्यं पादौ षड्भिस्तथैव च ।।३८
मृत्तिका च समुद्दिष्टा वृद्धामलकमात्रिका ।
गोमयस्य प्रमाणन्तु तेनाङ्गं लेपयेत्ततः ।।
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्ततः स्नायात्समाहितः ।।३९
लेपयित्वा तु तीरस्थस्तल्लिङ्गैरेव मन्त्रतः ।
अभिमन्त्र्य जलं मन्त्रैरालिङ्गैर्वारुणैः शुभैः ।।
स्नानकाले स्मरेद्विष्णुमापो नारायणो यतः ।।४०
प्रेक्ष्य ओंकारमादित्य त्रिर्निमज्जेज्जलाशये ।
आचान्तः पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।।४१
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखम् ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योतीरसोऽमृतम् ।।४२
द्रुपदां वा त्रिरभ्यस्येद् व्याहृतिप्रणवान्विताम् ।
सावित्रीं वा जपेद्विद्वांस्तथा चैवाघमर्षणम् ।।४३

एक मृत्तिका से शिर को धोना चाहिए-दो से नाभिके ऊपर के भाग का प्रक्षालन करे-तीन मृत्तिकाओंसे अधोभाग को और छै से पैरों का प्रक्षालन करना चाहिए । बँधेहुए आंवले के फलके बराबर एक मृत्तिका समझनी चाहिए । फिर गोमय (गोबर) का प्रमाण लेकर उससे अङ्ग का लेपन करे और प्रक्षालन करकेफिर आचमन करे तथा फिर विधिपूर्वक समाहित होकर स्नान करना चाहिए।।३८।३९।।तीरमें स्थित होते हुए लेप करके उसके लिंगों से ही मन्त्र से जल को आलिंग शुभ वारुणों द्वारा अभिमन्त्रित करके स्नानके

समयमें भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिएक्योंकि आप नारायण का स्वरूप है।४०। ओङ्कार आदित्य का प्रेक्षण करके जलाशयमें तीनबार निमज्जन करे। मन्त्र वेत्ता को निम्न मन्त्रसे आचान्त होकर पुनः आचमन करना चाहिए।।४१।। मन्त्र–"अन्तश्चरसि अमृतम्"–यह है अर्थात् विश्व तो मुख आप प्राणियोंके अन्तस्तल में गुहा में चरण करते हैं। आप यज्ञ स्वरूप हैं–वषट्कार–आप–ज्योति–रस और अमृत हैं।४२। द्रुपदा–इस मन्त्रको तीन बार बोले अथवा व्याहृतियों तथा प्रणव से युक्त सावित्री का जाप विद्वान् को करना चाहिए। एवं अघमर्षण मन्त्र का उच्चारण करे।।४३।।

ततः संमार्जनं कुर्यादापोहिष्ठामयो भुवः।
इदमापः प्रवहत व्याहृतिभिस्तथैव च।।
ततोऽभिमन्त्रितं तोयमापोहिष्ठादिमन्त्रकैः।।४४
अन्तर्जलमवागश्नौ जपेत्त्रिरघमर्षणम्।
द्रुपदां वाथ सावित्रीं तद्विष्णोः परम पदम्।।
आवर्त्तयेद्वा प्रणवं देवदेव स्मरेद्धरिम्।। ४५
आपः पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते।
विन्यस्य मूर्ध्नि तत्तोयं मुच्यते सर्वपातकैः।।४६
सन्ध्यामुपास्य चाचम्य संस्मरेन्नित्यमीश्वरीम्।
अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्ध्वपुष्पान्विताञ्जलिः।।४७
प्रक्षिप्यालोकयेद्देवमुदयन्थं न शक्यते।
उदुत्यं चित्रमित्येव चक्षुरिति मन्त्रतः।।४८
हंसः शुचिः सदेतेन सावित्र्या च विशेषतः।
अन्यैः सौरैश्च दर्कैश्च गायत्रीश्च ततो जपेत्।।४९
मन्त्रांश्च विविधान् पश्चात् प्राक्कूले च कुशासने।
तिष्ठश्च वीक्षमाणोऽर्कं जपं कुर्यात्समाहितः।।५०

इसके उपरान्त "आपो हिष्ठामयो भुवः"–इत्यादि मन्त्रोंसे संमार्जन करे "इदमापः प्रवहत"–इससे तथा व्याहृतियोंसे एवं 'आपोहिष्ठा'-इत्यादि मंत्रों

से जल को अभिमन्त्रित करे ॥४४॥ जल के मध्य में चुपचाप अघमर्षण मन्त्र का तीन बार जप करे। अथवा 'द्रुपदां-इसका या सावित्री का किम्बा 'तद्विष्णोः परमं पदम्'-इसका अथवा प्रणव का आवर्त्तन करे और देवों के भी देव श्री हरि का स्मरण करना चाहिए ॥४५॥ हाथ में जल लेकर अघमर्षण मन्त्र का जाप करके मार्जन करने पर विन्यास करके उस जल को समस्त पातकों के सहित छोड़ देना चाहिए ॥ ४६ ॥ सन्ध्या की उपासना करके आचमन करे और ईश्वरी का नित्य ही स्मरण करना चाहिए। इसके अनन्तर ऊपर की ओर पुष्पाञ्जलि लेकर भगवान् आदित्य देव का उपस्थान करना चाहिए ॥४७॥ उस पुष्पों की अञ्जलि को प्रक्षिप्त करके देव का आलोकन करे। उदयाचल में स्थित का नहीं किया जा सकता है। "उदुत्य, चित्रम्" और "तच्चक्षुः"-इत्यादि मन्त्रों से हंसः शुचिः सदेत' इससे तथा विशेषतया सावित्री से एवं अन्य सौर तथा वैदिक मन्त्रों द्वारा उपस्थान करे। इसके अनन्तर गायत्री मन्त्र का जाप करे ॥४८।४९॥ तट पर पूर्व की ओर मुख करके स्थित होकर सूर्य का दर्शन करते हुए अति समाहित होकर कुशासन पर बैठकर विविध मन्त्रों का जाप करे ॥५०॥

स्फटिकाब्जाक्षरुद्राक्षैः पुत्रञ्जीवसमुद्भवैः।
कर्त्तव्या त्वक्षमाला स्यादन्तरा तत्र सा स्मृता ॥५१
यदि स्यात्क्लिन्नवासा वै वारिमध्यगतश्चरेत्।
अन्यथा च शुचौ भूम्यां दर्भेषु च समाहितः ॥५२
प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कुर्य्यात्ततः क्षितौ।
आचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत् ॥५३
ततः सन्तर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा।
आदावोङ्कारमुच्चार्य नमोऽन्ते तर्पयामि च ॥५४
देवान् ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः।
पितृन् देवान् मुनीन् भक्त्या स्वसूत्रोक्तविधानतः॥
देवर्षींस्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभिः पितृन् ॥५५

यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे ।
प्राचीनावीती पित्र्ये तु तेन तीर्थेन भारत ॥५६
निष्पीड्य स्नानवस्त्रं वै समाचम्य च वाग्यतः ।
स्वैर्मन्त्रैरर्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रैस्तथाम्बुभिः ॥५७

अब जाप करने की माला के विषयमें बतलाते हैं कि माला स्फटिक-कमलगट्टा-रुद्राक्ष अथवा पुत्रजीव की निर्मित होनी चाहिए। वह अन्तरा अक्षमाला कही गई है ।५१। यदि गीले वस्त्रों वाला हो तो जल के मध्यमें स्थित होकरही जपकरे अन्यथा शुचि भूमिमें दर्भासन पर स्थित होकर समाहित होते हुए जप करे ॥५२॥ फिर प्रदक्षिणा करके भूमि में नमस्कार करे और शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आचमन करके अपनी शक्ति के अनुरूप स्वाध्याय करे ॥५३॥ इसके उपरान्त देवगण – ऋषिवर्ग और पितरों का सन्तर्पण करना चाहिए। आदि में ओङ्कार का उच्चारण करके अन्त में "नमः तर्पयामि"–इसे बोलकर तर्पण करना चाहिए। देवों को और ब्रह्म ऋषियों को तर्पण अक्षत मिश्रित जल से करे। अपने सूत्रोक्त विधान से भक्ति के साथ पितर-देव और मुनियों का तर्पण करना चाहिए। उदकाञ्जलियों के द्वारा धीमान् पुरुष को देवर्षियों का तथा पितृगण का तर्पण करना चाहिए ॥५४॥५५॥ हे भारत ! देवों का तर्पण करने के समय में यज्ञोपवीती रहे – ऋषियों के तर्पण के समय में निवीती रहे और पितृगण के तर्पण में प्राचीनावीती रहते हुए उस तीर्थ से तर्पण करे ॥५६॥ स्नान के वस्त्र का निष्पीड़न कर आचमन करे और वाग्यत अर्थात् मौन होकर अपने मन्त्रों के द्वारा पुष्पों से-पत्रों से तथा जलों से देवों का अर्चन करना चाहिए ॥५७॥

ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् ।
अन्यांश्चाभिमतान् देवान् भक्त्या चाक्रोधनो हरः ॥५८
प्रदद्यादथ पुष्पादि सूक्तेन पुरुषेण तु ।
आपो वा देवताः सर्वास्तेन सम्यक् समर्चिताः ॥५९

ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वै देवं परिसमाहितः ।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद्वै पृथक् पृथक् ।।६०
नर्ते ह्याराधनां पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् ।
तस्मात्तादिमध्यान्ते चेतसा धारयेद्धरिम् ।।६१
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण तु ।
निवेदयेच्च आत्मानं विष्णवेऽमलतेजसे ।।६२
तदध्यातमनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रितः ।
देवयज्ञं भूतयज्ञ पितृयज्ञ तथैव च ।।
मानुष ब्रह्मयज्ञञ्च पञ्च यज्ञान् समाचरेत् ।।६३
यदि स्यात्तर्पणादर्वाग् ब्रह्मयज्ञं कुतो भवेत् ।
कृत्वा मनुष्ययज्ञ वै ततः स्वाध्यायमाचरेत् ।।६४

ब्रह्मा-शङ्कर-सूर्य्यं तथा मधुसूदन एवं अन्य जो अपने अभिमत माने हुए, देवगण हों उनका क्रोध रहित होकर भक्ति भावसे समर्चन करे।५८ पुरुष सूक्त के मन्त्रोंके द्वारा पुष्पाक्षत गन्धादि सम्पूर्ण उपचारोंको समर्पित करे। अथवा जलके द्वारा ही समस्त देव समर्चित करने चाहिए।५९।परिसमाहित होकर प्रणवपूर्वक देवका ध्यान करेऔर नमस्कारके द्वारा पृथक्-पृथक् पुष्पोंका विन्यास करना चाहिए।६ । इनकी आराधना करना पुण्य नहीं किन्तु यह एक वैदिक कर्महै । इसलिये आदि-मध्य और अन्तमें चित्त से भगवान् हरि को धारण करना चाहिए।६१।अमल तेज से युक्त भगवान् विष्णुके लिये 'तद्विष्णोः परमं पदम्'—इत्यादि मन्त्र से और पुरुष सूक्त से अपनी आत्माको निवेदित करे।६२। उसका ध्यान मनमें रखने वाला परम शान्त रहते हुए 'तद्विष्णो'-इत्यादि मन्त्र से मन्त्रित होकर देवयज्ञ-भूतयज्ञ-पितृयज्ञ-मानुष यज्ञ और ब्रह्मयज्ञ-इन पाँच यज्ञों को करना चाहिए ।।६३।। यदि तर्पण करे तो इसके पीछे ब्रह्मयज्ञ कैसे होगा । मानुष यज्ञ करके इसके अनन्तर स्वाध्याय करना चाहिए ।।६४।।

वैश्वदेवस्तु कर्त्तव्यो देवयज्ञः स तु स्मृतः ।
भूतयज्ञः स विज्ञेयो भूतेभ्यो यस्त्वयं बलिः ।।६५

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च ।
दद्याद् भूमौ बहिस्त्वन्नं पक्षिभ्यश्च द्विजोत्तमः ॥६६
एकं तु भोजयेद्विप्रं पितृनुद्दिश्य सत्तमः ।
नित्यश्राद्धं तदुद्दिश्य पितृयज्ञो गतिप्रदः ॥६७
उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत् ॥६८
पूजयेदतिथिं नित्यं नमस्येदर्चवेद् द्विजम् ।
मनोवाक्कर्मभिः शान्तं स्वागतैः स्वगृह ततः ॥६९
भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमन्नं तस्य चतुर्गुणम् ।
पुष्कलं हस्तमात्रन्तु तच्चतुर्गुणमुच्यते ॥७०
गोदोहमात्रकालो वै प्रतीक्षेदतिथिः स्वयम् ।
अभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेदतिथिं तथा ॥७१
भिक्षां वै भिक्षवे दद्याद्विधिवद् ब्रह्मचारिणे ।
दद्यादन्नं यथाशक्ति अर्थिभ्यो लोभवर्जितः ॥
भुञ्जीत बन्धुभिः सार्द्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ॥७२

वैश्वदेव करना चाहिए। यह दैवयज्ञ कहा गया है। भूतयज्ञ उसे ही समझना चाहिए। जिसमें भूतों के लिये बलि का आहरण किया जाता है ॥६५॥ द्विज श्रेष्ठ को श्वानों के लिये–श्वपचों के लिये और पतित आदि को बाहिर भूमि में अन्न देना चाहिए। पक्षियों के लिये भी अन्न देना चाहिए ॥६६॥ श्रेष्ठतम पुरुष को पितरों का उद्देश्य करके एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। इसे नित्य श्राद्ध कहते हैं जो कि पितृगण के उद्देश्य से किया जाता है। यह पितृयज्ञ गति के प्रदान करने वाला होता है ॥६७॥ अथवा सावधान होते हुए अपनी शक्ति के अनुसार कुछ अन्न उद्धृत करके वेदों के तत्त्वों के विद्वान् द्विज के लिये उपपादित करना चाहिए ॥ ६८ ॥ अतिथि का नित्य ही पूजन करे। अपने घर पर समागत शान्त द्विज को मन-वाणी और कर्म से किये हुए स्वागत सत्कारों के द्वारा नमस्कार करे और अर्चना करे ॥६९॥ ग्रास मात्र अन्न को भिक्षा कहते हैं। उसका चतुर्गुण पुष्कल कहलाता

है और इसका चतुर्गुण हस्त मात्र कहा जाता है।।७०।। अतिथि को जितने समय में एक गाय का दोहन होता है उतने काल तक स्वयं प्रतीक्षा करनी चाहिए। अभ्यागतों को तथा अतिथियों को अपनी शक्ति भर पूजन करना चाहिए।७१। ब्रह्मचारी भिक्षुके लिये विधि पूर्वक भिक्षा देनी चाहिए। लोभ से रहित होकर अर्थियों (याचकों के लिए यथाशक्ति अन्न का दान करना चाहिए। अन्न की बुराई न करते हुए मौन होकर अपने बन्धुओं के साथ भोजन करे।।७२।।

अकृत्वा तु द्विजः पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तमः।
भुञ्जते चेत् स मूढ़ात्मा तिर्यग्योनिञ्च गच्छति।।७३
वेदाभ्यासोऽन्वह शक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमाः।
नाशयन्त्याशु पापानि देवानामर्चनं तथा।।७४
यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम्।
भुङ्क्ते स याति नरकान् शूकरादेव जायते।।७५
अशौचं संप्रवक्ष्यामि अशुचिः पातकी सदा।
अशौच चैव संसर्गाच्छुचिः संसर्गवर्जनात्।।७६
दशाह प्राहुराशौचं सर्वे विप्रा विपश्चितः।
मृतेषु वाथ जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तम।।७७
आदन्तजननात्सद्य आचूड़ादेकरात्रकम्।
त्रिरात्रमौपनयनाद्दशरात्रमतः परम्।।७८
क्षत्रियो द्वादशाहेन दशभिः पञ्चभिर्विशः।
शुद्धयेन्मासेन वै शूद्रो यतीनां नास्ति पातकम्।।
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्र वेषु गोत्रकम्।।७९

द्विजों में श्रेष्ठ द्विज पाँच महायज्ञों को न करके यदि स्वयं भोजन कर लेता है तो वह मूढ़ आत्मा वाला है और दूसरे जन्म में वह तिर्यग् योनि में जन्म ग्रहण किया करता है।।७३।।नित्य प्रति वेदों का अभ्यास और शक्ति से महायज्ञों की क्रिया में समर्थ तथा देवों का अर्चन ये पापों को शीघ्र ही नष्ट

कर देते हैं।।७४।। जो भी मोह से अथवा आलस्य से देवताओं की अर्चना न करके भोजन कर लेता है वह नरकों को प्राप्त होता है और शूकर की योनि में जन्म ग्रहण किया करता है ।।७५।।अब मैं अशौच को बताऊँगा । पातक करने वाला पुरुष सर्वदा अशुचि रहा करताहै । संसर्गसे भी अशुचि होजाता है यदि शुचि का उसे कभी ससर्ग ही न होता हो ।।७६।। विद्वान् पुरुष हेद्विज श्रेष्ठ ! मृत होने पर और जन्म होने पर ब्राह्मण को दश दिन पर्यन्त आशौच कहते हैं ।।७७।।जब तक बालक के दांत नहीं निकलते हैं और उसकी मृत्यु हो जावे तो उसका आशौच तुरन्त ही दूर हो जाता है । जब तक चूड़ा कर्म न हो तब तक एक रात्रि का आशौच होता है । उप नयन संस्कार हो जाने पर तीन रात्रि का आशौच मृतक का होता है और इसके आगे तो दश रात्रि तक आशौच मृतक का होता है ।।७८।। यह ब्राह्मण के आशौच के विषय में बताया गया है किन्तु क्षत्रिय वर्ण वाले पुरुष का आशौच बारह दिन तक रहता है तथा वैश्य का आशौच पन्द्रह दिन तक होता है और शूद्र का आशौच एक मास पर्यन्त रहा करता है । यतियों को पातक नहीं होता है । गर्भ के स्राव हो जाने पर जितने भी मास का गर्भ हो उतनी ही रात्रियों तक उसका आशौच रहा करता है और इसके पश्चात् ही वह शुद्ध होता है ।।७९।।

२५–दान धर्म वर्णन

अथातः संप्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम् ।
अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ।।१
दानन्तु कथितं तज्ज्ञैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।
न्यायेनोपार्जयेद्वित्तं दानभोगफलञ्च तत् ।।२
अध्यापनं याजनञ्च वृत्तमाहुः प्रतिग्रहम् ।
कुषीदं कृषिवाणिज्यं क्षत्रवृत्तोऽयवार्जयेत् । ३
यद्दीयते तु पात्रेभ्यस्तद्दानं सात्त्विकं विदुः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलं दानमीरितम् ।।४

अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे ।
अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यशः ॥५
यत्तु पापोपशान्त्यै च दीयते विदुषां करे ।
नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम् ॥६
अपत्यविजयैश्वर्य्यस्वगार्थं यत्प्रदीयते ।
दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः ॥७

ब्रह्माजी बोले-इसके अनन्तर अब मैं सर्वश्रेष्ठ दान के धर्म के विषय में बतलाऊँगा किसी समुचित दान देने के पात्र पुरुष को श्रद्धापूर्वक किया हुआ दान का प्रतिपादन विज्ञ पुरुषों के द्वारा भुक्ति एवं मुक्ति का प्रदान करने वाला दान बताया गया है । न्याय से उपार्जन करे यही वित्त दान के फल का भोग कहा गया है ॥१।२॥ ब्राह्मण के लिये अध्यापन करना-याजन करना और प्रतिग्रह ग्रहण करना ये ही वृत्ति बताई गई है । कुषीद (व्याज)-कृषि और वाणिज्य कर्म यह क्षत्रियों की वृत्ति है । इसके द्वारा अर्जन करे ॥३॥ जो दान किसी भी योग्य पुरुष को दिया जाता है वही दान सात्त्विक कहा गया है । दान कितने ही प्रकार का होता है—नित्य—नैमित्तिक—काम्य और विमल दान होता है ॥४॥ जो नित्य प्रति हर एक दिन कुछ भी किसी अनुपकारी को अर्थात् जिससे किसी भी अपने उपकार की आशा न हो, दान दिया जाता है वह नित्य दान होता है । किसी फल का उद्देश्य न रखकर ब्राह्मण को नित्य दान दिया जाता है ॥५॥ जो किसी पाप की उपशान्ति के लिये विद्वान् पुरुषों के हाथ में दान दिया जाता है सत्पुरुषों ने उस दान को नैमित्तिक दान बतलाया है ॥६॥ सन्तति—विजय—ऐश्वर्य और स्वर्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से जो दान दिया जाता है यह काम्य दान कहा गया है और धर्म का चिन्तन करने वाले ऋषियों ने इसे कामना की पूर्त्ति के लिये किया गया काम्य दान कहा है ॥७॥

ईश्वरप्रीणनार्थाय ब्रह्मवित्सु प्रदीयते ।
चेतसा सत्त्वयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥८

इक्षुभिः सन्ततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम् ।
ददाति वेदविदुषे स न भूयोऽभिजायते ॥
भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥६
विद्यां दत्त्वा ब्राह्मणाय ब्रह्मलोके महीयते ।
दद्यादहरहस्तास्तु श्रद्धया ब्रह्मचारिणे ॥
सर्वपाप विनिर्मुक्तो ब्रह्म स्थान मवाप्नुयात् ॥१०
वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च च ।
उपोष्याभ्यर्चयेद्विद्वान्मधुना तिलपिष्टकैः ॥
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य वाचयेद्वा स्वयं वदेत् ॥११
प्रीयतां धर्मराजाभिस्तथा मनसि वर्त्तते ।
यावज्जीवं कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ २
कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यमधुसर्पिषा ।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥ ३
घृतान्नमुदकञ्चैव वैशाख्याञ्च विशेषतः ।
निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात् ॥१४

केवल भगवत्प्रीति प्राप्त करने के लिये ब्रह्म के वेत्ता पुरुषों में जो दान दिया जाता है और सत्त्व सम्पन्न चित्त से जिसको दिया जाता है वह परम शिव विमल दान कहा गया है ॥ ८ ॥ ईख की सदा उपज से सम्पन्न भूमि–यव-गोधूम (गेहूं के उपज वाली भूमि का जो किसी वेद के विद्वान् को दान देता है वह परम पद को प्राप्त हो जाता है और फिर इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है। भूमि का दान सबसे परम एवं श्रेष्ठ दान होता है। ऐसा उत्तम अन्य कोई भी दान न अब तक हुआ है और न भविष्य में भी होगा ॥९॥ जो विद्या का दान है जिसको कि ब्राह्मण के लिये दिया जाता है उसका बड़ा आदर ब्रह्मलोक में होता है। उस विद्या का दान नित्य प्रति बड़ी श्रद्धा से ब्रह्मचारी को देना चाहिए। ब्रह्मचारीको विद्या का दान करने वाला पुरुष समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पाकर ब्रह्मस्थान को प्राप्त किया करता है ॥ १० ॥ वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन बारह ब्राह्मणों को उपवास कराकर

विद्वान् को मधु और तिल पिष्ठि से उनका अभ्यर्चन करना चाहिए। गन्धाक्षत पुष्पादि से भली भाँति अर्चना करके उनसे बचवावे या स्वयं बोले ॥११॥ धर्म वाणियों से प्रसन्न होवो उस प्रकार से मन में वर्त्तमान होता है। पूरे जीवन में जो भी पाप किये हैं वे सब उसी क्षण में नष्ट हो जाते हैं ॥१२॥ कृष्णाजिन में तिलों को रखकर हिरण्य—मधु और घृत के सहित जो ब्राह्मण के लिये दान देता है वह सब दुष्कृतों से तर जाता है ॥१३॥ वैशाखी पूर्णिमासी के दिन घृत—अन्न और जल विशेष रूप से धर्मराज का निर्देश करके ब्राह्मणों को दान देता है वह भय से मुक्त हो जाता है ॥१४॥

द्वादश्यामर्चयेद्विष्णुमुपोष्याघप्रणाशनम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो भवति निश्चितम् ॥१५
यो हि यां देवतामिच्छेत्समाराधयितुं नरः ।
ब्राह्मणान्पूजयेद्यत्नाद्भोजयेद्योषितः सुरान् ॥१६
सन्तानकामः सततं पूजयेद् वै पुरन्दरम् ।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्राह्मणान् ब्रह्मनिश्चयात् ॥१७
आरोग्यकामोऽथ रविं धनकामो हुताशनम् ।
कर्मणां सिद्धि कामस्तु पूजयेद् वै विनायकम् ॥१८
भोगकामो हि शशिनं बलकामः समीरणम् ।
मुमुक्षुः सर्वसंसारात् प्रयत्नेन र्चयेद्धरिम् ॥
अकामः सर्वकामो वा पूजयेत्तु गदाधरम् ॥१९
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥२०
भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोऽग्र्याणि विश्वानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥२१

द्वादशी के दिन में पापों के प्रनष्ट करने वाले भगवान् विष्णु की उपोषित होकर जोअर्जना करताहै वह मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विनिर्मुक्त निश्चय ही हो जाया करता है॥१५॥ जो मनुष्य जिस देवता की आराधना करने की

इच्छा रखताहै वह ब्राह्मणोंका पू जनकरे औरउन्हें भोजन करावे तथा स्त्रियों को भी भोजन करावे एवं सुरों का यजन करे ।।१६।। जो सन्तति प्राप्त करने की कामना रखता है उसे इन्द्र देव का पूजन करना चाहिए । जो ब्रह्मवर्चस प्राप्त करने का इच्छुक है उसे ब्रह्म के निश्चय से ब्राह्मणों का यजन करना चाहिए ।।१७।। आरोग्य की कामना वाले को सूर्यदेव की और धन की प्राप्ति करने की इच्छा वालेको हुताशन की पूजा करनी चाहिए । जोअपने कियेहुए कर्मों की सिद्धि की कामना करता है वह विनायक देव का पूजन करे।।१८।। बिविध भोगों के पाने की कामना रखने वाले को चन्द्रदेव का यजन करना चाहिए । बलके प्राप्त करनेकी इच्छा वाला समीरण अर्थात् वायुदेवका यजन करे । समस्त ससार के बन्धनोंसे छुटकारा पाने की इच्छा वाले मुमुक्षु पुरुष को प्रयत्न पूर्वक श्रीहरि भगवान् का यजन करना चाहिए । किसीभी कामना के न रखने वाला या सभी कामनाओं वाला पुरुष भगवान् गदाधर का पूजन करे।।१९।। जल के दान करने वाला तृप्ति की प्राप्ति करता है । अन्न का दान करने वाला कभी क्षय न होने वाला सुख पाताहै । तिलों का दान देने वाला अभीष्ट प्रजा का लाभ करता है । दीप-दान करने वाला उत्तम चक्षुओं को पाता है ।।२०।। भूमि का दान करने वाला समस्त पदार्थों की प्राप्ति किया करता है । सुवर्ण का दान करने वाला पुरुष दीर्घ आयु को प्राप्त करता है । गृह का दान देने वाला उत्तम विश्वों को पाता है और रूप्य (चाँदी) का दाता उत्तम रूप का लाभ करता है ।।२१।।

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।
अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य पिष्टपम् ।।२२
यानशय्याप्रदो भार्य्यामैश्वय्यमभयप्रदः ।
धान्यदः शाश्वतं सौख्य ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम् ।।२३
वेदवित्सु ददज्ज्ञानं स्वर्गलोके महीयते ।
गवां घासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः ।।२४

औषधं स्नेहमाहारं रोगिरोगप्रशान्तये ।
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ।।२५
असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारसमन्वितम् ।
तीक्ष्णातपञ्च नरति छत्रोपानत्प्रदानतः ।।२६
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे ।
तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ।।२७

वसु (धन) का दान करने वाला चन्द्र देव के सालोक्य की प्राप्ति करता है और अश्व का दाता अश्वि के लोक की प्राप्ति करता है । वृषभ का दाता पुष्ट श्री का लाभ करता है । गौ का दाता ब्रध्न के पिष्टप को पाता है ।।२२।। यान तथा शय्या के दान करने वाला पुरुष भार्य्या को पाता है । अभय के दान देने वाला ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है । धान्य का दाता शाश्वत सुख प्राप्त किया करता है । ब्रह्म का दान करने वाला शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति करता है ।।२३।। वेदों के ज्ञाताओं में दिया हुआ ज्ञान स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है । गौओं को घास देने से मनुष्य समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है । ईंधनों के दान से मानव दीप्त अग्नि वाला होता है ।।२४।। औषध—स्नेह और आहार रोग वाले के रोग को शान्त करने के लिये जो दान करने वाला है वह सदा रोगों से रहित–परम सुखी तथा लम्बी उम्र वाला होता है ।।२५।। छाता और उपानत् अर्थात् जूती के प्रदान करने पर असिपत्र वन नाम वाले नरक के मार्ग को जो कि छुरा की धारा से युक्त होता है उसे और अत्यन्त तीव्र आतप के कष्ट को तैर जाया करता है ।।२६।। जो-जो भी वस्तु संसार में अपने आपको घर में अभीष्टतम और प्रिय हो वह–वही वस्तु किसी गुण वाले विप्र को दान में प्रदान करनी चाहिए । इससे अक्षय सुख की प्राप्ति हुआ करती है ।।२७।।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ।।२८
प्रयागादिषु तीर्थेषु गयायाञ्च विशेषतः ।
दानधर्मात्परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते ।।२९

स्वर्गादच्युतिकामेन दानं पापोपशान्तये ।
दीयमानन्तु यो मोहाद्विप्राग्निष्वध्वरेषु च ।।
निवारयति पापात्मा तिर्य्यग्योनिं व्रजेन्नरः ॥३०
यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति ।
म्रियमाणेषु विप्रेषु ब्रह्महा स तु गर्हितः ॥३१

अयन में—विषुव अर्थात् सक्रान्ति के समय में तथा चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण के अवसर पर एवं अन्य संक्रान्ति आदि के समयों पर जो दान किया जाता है वह कभी क्षय को प्राप्त न होने वाला होता है ।।२८।। प्रयाग आदि महान् तीर्थों में और विशेष रूपसे गया नामक तीर्थ में दान करने के धर्म से बड़ा धर्म प्राणियों का अन्य कोई भी धर्म इस संसार में नहीं होता है।।२९।। स्वर्ग प्राप्त करके फिर वहाँसे कभी भी च्युति न होअर्थात् स्वर्गलोक का त्याग न करना पड़े एवं किये हुए समस्त पापों के उपशमन करने के लिये दिये हुए दान को मोहवश होकर जो विप्र-अग्नि और अध्वरों में निवारण कर देताहै वह पापात्मा पुरुष तिर्यग योनि को प्राप्त हुआ करता है ।।३०।। जो दुर्भिक्ष (अकाल) के समय में अन्न आदि का दान नहीं दिया करता है अर्थात् जोअन्न प्राप्त न होने के कारण विप्रगण भूखसे मर रहे हों उन्हें अन्न नहीं देताहै वह ब्रह्म हत्यारा ही होता है और बहुत ही निन्दित होता है ।।३१।।

२६—सप्तद्वीप उत्पत्ति और वंश वर्णन

अग्निध्रश्चाग्निवाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा ।
मेधा मेधातिथिर्भव्यः शबलः पुत्र एव च ।।
ज्योतिष्मान्दशमो जातः पुत्रा ह्येते प्रियव्रतात् ॥१
मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः ।
जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधुः ।।
विभज्य सप्त द्वीपानि सप्तानां प्रददौ नृपः ।।२

योजनानां प्रमाणेन पञ्चाशत्कोटिराप्लुता ।
जलोपरि मही याता नौरिवास्ते सरिज्जले ॥३
जम्बुप्लक्षह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो हर ।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥४
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः ॥५
द्वीपात्तु द्विगुणो द्वीपः समुद्रश्च वृषध्वज ।
जम्बुद्वीपे स्थितो मेरुर्लक्षयोजनविस्तृतः ॥६
चतुरशीतिसाहस्रैर्योजनैरस्य चोच्छ्रयः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्निविस्तृतः । ७
अधः षोडशसाहस्रं कर्णिकाकारसंस्थितः ।
हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥८

श्रीहरि भगवान् ने कहा—राजा प्रिय व्रत से दश पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनके नाम अग्निध्र अग्निवाहु—वपुष्मान्—द्युतिमान्· मेधातिथि—भव्य—शवल—पुत्र और ज्योतिष्मान् ये थे ॥ ॥ मेधा—अग्निवाहु और पुत्र ये तीनों योगाभ्भास में परायण और महान् भाग वाले जातिस्मर हुए थे जिन्होंने कभी भी अपना मन राज्य के सुखों का उपभोग करने में नहीं लगाया था । केवल प्रियव्रत नृप के सात ही पुत्र ऐसे थे जिनके लिये राजा ने सातों को भूमि का सात द्वीपों में विभाजन करके दे दिया था ॥२॥ पचास करोड़ योजनों के प्रमाण से युक्त यह पृथ्वी नदी के जल में एक नौका की भाँति आप्लुत थी ॥३॥ सात द्वीपों के नाम – जम्बु द्वीप—प्लक्ष—शाल्मल द्वीप—हे हर ! कुश=क्रौञ्च—शाक द्वीप और सातवाँ पुष्कर द्वीप है ॥४॥ ये सातों द्वीप सात समुद्रों से आवृत थे । हे वृषध्वज! उन सात समुद्रों के नाम ये हैं—लवण—समुद्र—इक्षु – सुरा—सर्पि (घृत)—दधि-- दुग्ध सागर और जल सागर हैं ॥५॥ एक द्वीप से दूसरा द्वीप तथा इसी भाँति एक सागर से दूसरा समुद्र दुगुना विस्तार वाला होताहै जम्बूद्वीप में स्थित मेरु गिरि एक लाख योजन के विस्तार वाला है ॥६॥

चौरासी सहस्र योजन वाली इस मेरु पर्वत की ऊँचाई होतीहै । षोडश योजन नीचे के भाग में प्रविष्ट है और बत्तीस योजन मूर्द्धा में विस्तृत है ।।७।।सोलह सहस्र नीचे कर्णिका के आकार में संस्थित है । हिमवान् और हेमकूट तथा इसके दक्षिण में निषघ है । उत्तर दिशा में नील श्वेत और शृङ्गी पर्बत संस्थित हैं ।।८।।

प्लक्षादिषु नरा रुद्र ये वसन्ति सनातनाः ।
शङ्कर हि न तेष्वस्ति युगावस्था कथञ्चन ।।६
जम्बुद्वीपेश्वरात्पुत्रा ह्यग्निध्रादभवन्नव ।
नाभिः किंपुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः ।।१०
रम्यो हिरण्वान्षष्ठश्च कुरुभद्राश्व एव च ।
केतुमालो नृपस्तेभ्यस्तत्संज्ञान्खण्डकान्ददौ ।।११
नाभेस्तु मेरुदेव्यान्तु पुत्रोऽभूदृषभो हर ।
तत्पुत्रो भरतो नाम शालग्रामे स्थितो व्रती ।।१२
सुमतिर्भरतस्याभूत्तत्पुत्रस्तेजसोऽभवत् ।
इन्द्रद्युम्नश्च तत्पुत्रः परमेष्ठी ततः स्मृतः ।।१३
प्रतीहारश्च तत्पुत्रः प्रतिहर्त्ता तदात्मजः ।
सुतस्तस्मादथो जातः प्रस्तारस्तत्सुतो विभुः ।।१४
पृथुश्च तत्सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः ।
नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रो बुद्धिराट् ततः ।।१५
ततो धीमान्महातेजा भौवनस्तस्य चात्मजः ।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रजस्तस्याप्यभूत्सुतः ।
शतजिद्रजसस्तस्य विष्वग्ज्योतिः सुतः स्मृतः ।।१६

हे रुद्र ! प्लक्ष आदि द्वीपों में जो सनातन मनुष्य निवास किया करते हैं हे शङ्कर ! उनमें युगावस्था किसी भी प्रकार से नहीं होती है ।।६।। जम्बूद्वीपके अधिपति नृपसे जिसका नाम अग्निध्र था उससे नौपुत्र समुत्पन्न हुएथे। उनके नाम नाभि—किं पुरुष—हरि वर्ष—इलावृत—रम्य—हिरण्वान् षष्ठ है ।

कुरु-भद्राश्व और केतुमाल थे। राजाने उनके लिए उन्हीं की संज्ञा वाले खंडों को दे दिया ।।१०।११।। हे हर ! नाभि से मेरु देवी में ऋषभ नामधारी पुत्र समुत्पन्न हुआ था। उसका पुत्रभरत नाम वालाथा जो शालग्रामकी उपासना में स्थित और व्रतधारी था ।।१२।। भरत का सुमति पुत्र हुआ और उसका पुत्र तेजस हुआ। तेजस का तयन इन्द्र द्युम्न हुआ और फिर इससे परमेष्ठी नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी।।१३।। परमेष्ठी का आत्मज प्रतीहार हुआ था तथा इसका पुत्र प्रतिहर्त्ता हुआ। फिर इसकापुत्र प्रस्तार समुत्पन्न हुआ और प्रस्तार का पुत्र विभु हुआ था ।।१४।। विभु का आत्मज नक्त हुआ और नक्त का गय तथा गयका सुतनर और इसका पुत्र बुद्धि राट् उत्पन्न हुआ था।१५। इससे महान्तेजस्वी धीमान् भौवन पुत्रहुआ और इसका आत्मज त्वष्टा हुआ। त्वष्टा का पुत्र विरजा और विरजा का पुत्र रज हुआ था। रज का पुत्र सत-जित् हुआ और इसका पुत्र विष्वग्ज्योति हुआ था ।।१६।।

२७–वर्ष और कुल पर्वत वर्णन

मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतो भवेत् ।
पूर्वदक्षिणतो वर्षो हिरण्वान्वृषभध्वज ।।१
ततः किन्पुरुषो वर्षो मेरोर्दक्षिणतः स्मृतः ।
भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे ।।
पश्चिमे केतुमालश्च रम्यकः पश्चिमोत्तरे ।।२
उत्तरे च कुरोर्वर्षः कल्पवृक्षसमावृतः ।
सिद्धिः स्वाभाविकी रुद्र वर्जयित्वा तु भारतम् ।।३
इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वरुणस्तथा ।।
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।।४
पूर्वे किरातास्तस्यास्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ।
आन्ध्रा दक्षिणतो रुद्र तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे ।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तरवासिनः ।।५

महेन्द्रो मलयः सह्य शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारिभद्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥६
वेदस्मृतिर्नर्मदा च वरदा सुरसा शिवा ।
तापी पयोष्णी सरयू कावेरी गोमती तथा ॥७
गोदावरी भीमरथी कृष्णवर्णा महानदी ।
केतुमाला ताम्रपर्णी चन्द्रभागा सरस्वती ॥८
ऋषिकुल्या च कावेरी मृतगङ्गा पयस्विनी ।
विदर्भा च शतद्रुश्च नद्यः पापहराः शुभाः ॥
आसां पिबन्ति सलिलं मध्यदेशादयो जनाः ॥६

श्री हरि भगवान् ने कहा हे वृषभध्वज ! इलावर्त्त वर्ष मध्य में स्थित है । इसके पूर्व दिशा में भद्राश्व वर्ष है । पूर्व और दक्षिणमें हिरण्वान् वर्ष है । इसके अनन्तर किम्पुरुष वर्ष मेरु के दक्षिण में स्थित कहा गया है । दक्षिण में भारत वर्ष बताया गया है तथा दक्षिण और पश्चिम में हरि वर्ष स्थित है । पश्चिम में केतुमाल है और पश्चिम उत्तरमें रम्यक वर्ष है ॥१-२॥ उत्तर दिशा में कुरु का वर्ष है जो कि कल्प वृक्ष से समावृत है । हे रुद्र ! भारत को वर्जित करके सर्वत्र स्वाभाविकी सिद्धि होती हैं ॥३॥ इन्द्रद्वीप कशेरुमान् ताम्रवर्ण-गभस्तिमान्-नागद्वीप और कटाह-सिंहल तथा वारुण यह उनमें नवम द्वीप हैं जो कि सागर से संवृत होता है ॥४॥ इसके पूर्वमें किरात लोग निवास किया करतेहैं और पश्चिम में यवन जाति वाले मानव रहते हैं । दक्षिण दिशा में आन्ध्र लोग तथा हे रुद्र ! उत्तर दिशा में तुरुष्क निवास करते हैं । ब्राह्मण–क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र अन्तर में वास करने वाले हैं॥५॥ यहाँ पर सात कुल पर्वत हैं जिनके नाम—महेन्द्र—मलय-सह्य-शुक्तिमान्–ऋक्ष पर्वत–विन्ध्य और पारिभद्र हैं ॥६॥ वेदस्मृति-नर्मदा-वरदा–सुरसा-शिवा—तापी–पयोष्णी–सरयू -कावेरी —गोमती — गोदावरी–भीमरथी -कृष्णवर्णा-महानदी-केतुमाला-ताम्र पर्णी-चन्द्रभागा-सरस्वती-ऋषि कुल्या-कावेरी-मृत गङ्गा-पयस्विनी–विदर्भा और शतद्रु हैं । ये सभी नदियाँ परम

शुभ एवं पापों के हरण करने वाली हैं। इन समस्त नदियों का जल मध्य देशादि के मानव पान किया करते हैं ॥९॥

पाञ्चालाः कुरवो मत्स्या यौधेयाः सपटच्चराः ।
कुन्तयः शूरसेनाश्च मध्यदेशजनाः स्मृताः ॥१०
वृषध्वज जनाः पाद्माः सूतमागधचेदयः ।
काषायाश्च विदेहाश्च पूर्वस्यां कोशलास्तथा ॥११
कलिङ्गवङ्गपुण्ड्राङ्गा वैदर्भा मूलकास्तथा ।
विन्ध्यान्तर्निलया देशाः पूर्वदक्षिणतः स्मृताः ॥१२
पुलिन्दाश्मकजीमूतनयराष्ट्रनिवासिनः ।
कार्णाटाः काम्बोजा घाटा दक्षिणापथवासिनः ॥१३
अम्बष्ठद्रविड़ा लाटाः कम्बोजा स्त्रीमुखाः शकाः ।
आनर्त्तवासिनश्चैव ज्ञेया दक्षिणपश्चिमे ॥१४
स्त्रीराज्याः सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा ।
पश्चिमेन च विज्ञेया माथुरा नैषधैः सह ॥१५
माण्डव्याश्च तुषाराश्च मूलिकाश्चमसाः खशाः ।
महाकेशा महानादा देशास्तूत्तरपश्चिमे ॥१६
लम्बकास्तननागाश्च म द्रगान्धारवाह्लिकाः ।
हिमाचलालया म्लेच्छा उदीचीं दिशमाश्रिताः ॥ ७
त्रिगर्त्तनोलकोलाभब्रह्मपुत्राः सटङ्कणाः ।
अभीषाहाः सकाश्मीरा उदक्पूर्वेण कीर्त्तिताः ॥१८

पाञ्चाल– कुरु-मत्स्य-यौधेय सपटच्चर–कुन्ति और शूरसेन ये मध्य देश के मनुष्य कहे जाते हैं ॥१०॥ हे वृषध्वज ! पाद्म सूत-मागध—चेदि-काषाय—विदेह तथा कोशल ये देश पूर्व में स्थित हैं ॥११॥ कलिंग—वङ्ग—पुण्ड्र-अंग— वैदर्भ-मूलक ये देश विन्ध्य के अन्तर्निलय रहते हैं और पूर्व तथा दक्षिण में स्थित हैं।।१२।। पुलिन्द अश्मक-जीमूत–नय राष्ट्र निवासी-कार्णाट काम्बोज और घाट ये दक्षिणापथ के निवासी होते हैं ॥१३॥ अम्बष्ठ द्रविड़-

लाट कम्बोज-स्त्री मुख-शक और आनर्त्त वासी लोग दक्षिण तथा पश्चिम में जानने के योग्य हैं ॥१४॥ स्त्री राज्य-सैन्धव-म्लेच्छ-नास्तिक तथा यवन पश्चिम दिशा में समझने चाहिए। नैपधों के साथ माथुर—माण्डलय-तुषार-मूलिक चमस-खशर-महाकेश-महानाद ये देश उत्तर-पश्चिम में स्थित होते हैं॥ १६ ॥ लम्बक-स्तन नाग-माद्र-गान्धार-वाह्लिक-हिमाचल में आलय रखने वाले तथा म्लेच्छ ये देश उत्तर दिशा का आश्रय लेने वाले हैं॥ १७ ॥ त्रिगर्त्त-नील—कोलाभ-ब्रह्म पुत्र—सटङ्कण-अभीषाह-सकाश्मीर ये देश उत्तर-पूर्व में स्थित बताये गये हैं ॥ १८ ॥

२८—प्लक्ष द्वीपादि वर्णन

सप्त मेधातिथे पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य च ।
ज्येष्ठः शान्तभवो नाम शिशिरस्तदनन्तरः ॥१
सुखोदयस्तथा नन्दः शिवः क्षेमक एव च ।
ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते ॥२
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा ।
सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजश्चात्र सप्तमः ॥३
अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवा क्रमुः ।
अमृता सुकृता चैव सप्त तास्तत्र निम्नगाः ॥४
वपुष्मान्श ल्मलस्येशस्तत्सुता वर्षनामकाः ।
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ॥
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्चापि सप्तमः ॥५
कुमुदश्चोन्नतो द्रोणो महिषोऽथ बलाहकः ।
क्रौञ्चः ककुद्मान्ह्येते वै गिरयः सरितस्त्विमाः ॥६
योनिस्तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी ।
विधृतिः सप्तमी तासां स्मृताः पापप्रशान्तिदाः ॥७

श्री हरि भगवान् ने कहा—प्लक्ष द्वीप के अधिपति मेधातिथि के सात पुत्र हुए थे। सबसे बड़ा जो उसका पुत्र था उसका नाम शान्त भव था। इसके

पीछे दूसरे का नाम शिशिर था ॥१॥ सुखोदय–नन्द–शिव क्षेमक–ध्रुव सातवाँ पुत्र था । वे सब प्लक्ष द्वीप के स्वामी हुए थे ॥२॥ गोमेद–चन्द्र–नारद–दुन्दुभि सोमक–सुमना–शैल यह सातवाँ वैभ्राज हुआ था ॥ ३ ॥ इसी प्रकार से निम्नग भी सात हुए थे । उनके नाम अनुतप्ता–शिखी–विपाशा–त्रिदिव–क्रमु–अमृत और सुकृत ये हैं ॥४॥ वपुष्मान् शाल्मल द्वीप का स्वामी था । उसके पुत्र वर्ष नामधारी हैं । श्वेत–हरित–जीमूत–रोहित–वैद्युत–मानस और सातवाँ सुप्रभ था ॥ ५ ॥ कुमुद–उन्नत—द्रोण–महिष–बलाहक–क्रौञ्च–ककुद्मान् ये सब गिरि हैं और नदियाँ ये हैं–योनिस्तोया–वितृष्णा–चन्द्रा–शुक्ला–विमोचनी–विधृति सातवीं है । ये सब पापों की सान्ति प्रदान करने वाली कही गई हैं ॥६।७॥

ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त पुत्राः शृणुष्व तान् ।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव द्वैरथो लम्बनो धृतिः ॥
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नामा वर्षपद्धतिः ॥८
विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान्पुष्पवांस्तथा ।
कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः ॥९
धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा ।
विद्युदम्भा मही काशा सर्वपापहरास्त्विमाः ॥१०
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमतः पुत्राः सप्त महात्मनः ।
कुशलो मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः ॥
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुता हर ॥११
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ।
देवावृच्च महाशैलो दुन्दुभिः पुण्डरीकवान् ॥१२
गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ।
ख्यातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः ॥१३
शाकद्वीपेश्वराद्भव्यात्सप्त पुत्राः प्रजज्ञिरे ।

जलदश्च कुमारश्च सुकुमारी मशीवक: ।।
कुसुमोद: समोदार्कि: सप्तमश्च महाद्रुम ।। ४

कुशद्वीप में ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हुए थे उनका श्रवण करो । उद्भिद– वेणुमान्-द्वैरथ लम्बन–धृति–प्रभाकर-कपिल ये उनके सात नाम हैं । इनके नामों से ही वर्षों की पद्धति की रचना हुई थी।।८।।विद्रुम-हेमशैल द्युतिमान्–पुष्पवान्–कुशेशय -हरि और सातवाँ मन्दराचल ये सात पर्वत हैं ।।६।।धूतपापा-शिवा–पवित्रा–सम्मति-विद्युदम्भा-मही और काशा ये सात नदियाँ हैं जो समस्त प्रकार के पापों के हरण करने वाली हैं ।।१०।। क्रौञ्च द्वीप में महान् आत्मा वाले द्युतिमान्के सात पुत्र हुए थे। उनके नाम कुशल-मन्दग—उष्ण–पीवर-अन्धकारक-मुनि और दुन्दुभि हे हर ये सात उसके पुत्रों के शुभ नाम हैं ।।११। क्रौञ्च—वामन-तीसरा अन्धकारक–देवावृत्-महाशैल-दुन्दुभि और पुण्डरीकवान् ये सात पर्वत हैं ।।१२।। गौरी कुमुद्वती-सन्ध्या–रात्रि-मनोजवा-ख्याति और पुण्डरीका ये सात उस क्रौञ्च द्वीपमें बहने वाली नदियाँ हैं ।। १३ ।। शाक द्वीप के स्वामी भव्य से सात पुत्र समुत्पन्न हुए थे । उनके नाम जलद– कुमार—सुकुमार मशीवक—कुसुमोद —समोदार्कि और सातवें पुत्र का नाम महाद्रुम था ।।१४।।

सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या ।
इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा ।।१५
शबल त्पुष्करेशाच्च महानीरश्च धातकि: ।
अभूद्वर्षद्वयश्चैव मानसोत्तरपूर्वत: ।।१६
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्च शदुच्छ्रित: ।
तावच्चैव च विस्तीर्णं सर्वत: परिमण्डल: ।।१७
स्यादूदकेनोदधिना पुष्कर: परिवेष्टित: ।
स्वादूदकस्य पुरतो दृश्यते लोकसंस्थिति: । १८
द्विगुणा काञ्चनी भूमि: सर्वजन्तुविवर्जिता ।।१६
लोकालोकस्तत: शैलो योजनायुतविस्तृत: ।
तमसा पर्वतो व्याप्तस्तमोऽप्यण्डकटाहत: ।।२०

उस द्वीप में सात नदियाँ हैं उनके नाम सुकुमारी—कुमारी—नलिनी-धेनुका-इक्षु वेणुका-गभस्ती ये हैं ॥१५॥ शबल और पुष्करेश से महावीर और धातकि ये मानस के उत्तर-पूर्व में दो वर्ष हुए थे ॥१६॥ पचास सहस्र योजन ऊपर को ऊँचे और उतना ही सब ओर से परिमण्डल विस्तार वाला था ।१७। पुष्कर समुद्र के जल से परिवेष्टित है । उदक के आगे लोक संस्थिति दिखलाई देती है॥१८॥दुगुनी स्वर्णमयी भूमि है जोकि सब प्रकारके जन्तुओं से रहित है ॥१९। वहाँ पर लोकालोक पर्वत है जोकि दश हजार योजन के विस्तार वाला है । वह पर्वत अन्धकार से व्याप्त है और अन्धकार अण्डकटाह से व्याप्त है ॥२०॥

२९-पाताल नरकादि वर्णन

सप्ततिस्तु सहस्राणि भूम्युच्छ्रयोऽपि कथ्यते ।
दशसाहस्रमेकैकं पातालं वृषभध्वज ॥१
अतलं वितलश्चैव नितलश्च गभस्तिमत् ।
महाख्यं सुतलश्चाग्र्यं पातालश्चापि सप्तमम् ॥२
कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा शैलकाञ्चना ।
भूमयस्तत्र दैतेया वसन्ति च भुजङ्गमाः ॥३
रौद्रे तु पुष्करद्वीपे नरकाः सन्ति तान् शृणु ।
रौरवः शूकरो बोधस्तालो विशसनस्तथा ॥४
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽथ विमोहितः ।
रुधिरोऽथ वैतरणी कृमिशः कृमिभोजनः ॥५
असिपत्रवनः कृष्णो नानाभक्षश्च दारुणः ।
तथा पूयवहः पापो वह्निज्वालोद्भवोऽशिवः ॥६
सदंशः कृष्णसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च ।
श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठोष्णवीचिर्नरकाः स्मृताः ॥
पापिनस्तेसु पच्यन्ते विषशस्त्राग्निदायिनः ॥७
उपर्युपरि वै लोका रुद्र भूतादयः स्थिताः ॥८

वारिवह्नचनिलाकाशे वृतं भूतादिना च तत् ।
तदण्डं महता रुद्र प्रधानेन च वेष्टितम् ॥
अण्डं दशगुणं व्याप्तं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥६

श्री हरि भगवान् ने कहा–हे वृषभ ध्वज ! इस भूमि की ऊँचाई भी सत्तर हजार योजन कही जाती है और एक-एकका दश सहस्र वाला पाताल है पाताल भी सात हैं–उनके याम अतल-वितल–नितल–गभस्तिमत्–महाख्य सुतल और अग्र्य पाताल सातमाँ है ॥१।२॥ कृष्णा–शुक्ला–अरुणा–पीता-शर्करा और शैलकाञ्चना ये वहाँ पर भूमियाँ हैं। दैतेय और भुजङ्गम वहाँ निवास किया करते हैं ॥३॥ रौद्र पुष्कर द्वीप में नरक हैं अब उनके नामों का श्रवण करो। रौरव–शूकर–वोधस्ताल—विशसन–महाज्वाल–तप्त कुम्भ–लवण-विमोहित—रुधिर—वैतरणी—कृमिश—कृमिभोजन—असिपत्र वन-कृष्ण-नानाभक्ष—पूय वह—पाप-वह्निज्वालोद्भव—अशिव–सदंश—कृष्ण सूत्र - तम—अवीचि—श्वभोजन–अप्रतिष्ठ - उष्णवीचि-ये नरक कहे गये हैं। पापी लोग इन उक्त नरकों में अपने किये हुए पापों के फलों की पीड़ा भोगा करते हैं जो कि विष्ठ—शस्त्र तथा अग्नि के देने वाले होते हैं। हे रुद्र ! इनके ऊपर-उत्तर में लोक हैं जहाँ पर भूतादि स्थित रहा करते हैं। जल–अग्नि—वायु और आकाश में वह भूतादि से वृत है। हे रुद्र ! वह अण्ड महान् प्रधान के द्वारा वेष्टित है यह अण्ड दश गुना व्याप्त है और वहाँ नारायण व्याप्त होकर स्थित हैं ॥ ४ से ६ ॥

३०–ज्योतिषशास्त्र वर्णन

षडादित्ये दशा ज्ञेया सोमे पञ्चदश स्मृताः ।
अष्टावङ्गारके चैव बुधे सप्तदश स्मृताः ॥१
शनैश्चरे दश ज्ञेया गुरोरेकोनविंशतिः ।
राहोर्द्वादशवर्षाणि एव विंशति भार्गवे ॥२
रवेर्दशा दुःखदा स्यादुद्वेगनृपनाशकृत् ।
विभूतिदा सोमदशा सुखमिष्टान्नदा तथा ॥३

दुःखप्रदा कुजदशा राज्यादेः स्याद्विनाशिनी ।
दिव्यस्त्रीदा बुधदशा राज्यदा कोषवृद्धिदा ॥४
शनेर्दशा राज्यनाशबन्धुदुःखकरी भवेत् ।
गुरोर्दशा राज्यदा स्यात् सुखधर्मादिदायिनी ॥
राहोर्दशा राज्यनाशव्याधिदा दुःखदा भवेत् ॥५
हस्त्यश्वदा शुक्रदशा राज्यस्त्रीलाभदा भवेत् ॥६
मेषमङ्गारकक्षेत्रं वृषं शुक्रस्त कीर्त्तितम् ।
मिथुनस्य बुधो ज्ञेयः सोमः कर्कटस्य च ॥७

श्री हरि भगवान् बोले–छै आदित्य में दशा जाननी चाहिए । चन्द्रमा में पन्द्रह दशा बताई गई हैं । मङ्गल में आठ–बुध में सत्रह कही गई हैं ॥१॥ शनीचर में दश और गुरु की उन्नीस तथा राहु की बारह वर्ष की और शुक्र की इक्कीस वर्ष की दशा होती है ॥ २ ॥ रवि की दशा दुःख दायिनी होती है । यह उद्वेग और नृप का नाश करने वाली होती है । चन्द्रमा की दशा विभूति के प्रदान करने वाली होती है और यह सुख तथा मिष्टान्न के देने वाली है ॥३॥ मङ्गल की दशा दुःख देने वाली और राज्य आदि के विनाश करने वाली होती है । बुध की दशा दिव्य स्त्री का प्रदान करने वाली राज्य देने वाली तथा कोष की वृद्धि करने वाली है ॥४॥ शनि की दशा राज्य के नाश करने वाली और बन्धुओं को दुःख करने वाली होती है । गुरु की दशा राज्य प्रदान करने वाली तथा सुख एवं धर्म आदि के देने वाली होती है । राहु की दशा राज्य का नाश करने वाली व्याधि देने वाली और दुःख दायिनी होती हैं ॥५॥ शुक्रदेव की दशा हाथी-घोड़े देने वाली और राज्य-स्त्री एवं लाभ कराने वाली हुआ करती है ॥६॥ मङ्गल का क्षेत्र मेष है और शुक्र का क्षेत्र वृष होता है । मिथुन का बुध जानना चाहिए तथा कर्क का सोम होता है ॥७॥

सूर्य्यक्षेत्रं भवेत् सिंहः कन्याक्षेत्रं बुधस्य च ।
भार्गवस्य तुलाक्षेत्रं वृश्चिकोऽङ्गारकस्य च ॥८

धनुः सुरगुरोश्चैव शनेर्मकरकुम्भकौ ।
मीनः सुरगुरोश्चैव ग्रहक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ॥६
पौर्णमास्या द्वय यत्र पूर्वाषाढ़ाद्वय भवेत् ।
द्विराषाढ़ः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे ॥१०
अश्विनी रेवती चित्रा धनिष्ठा स्य दलङ्कृतौ ॥११
मृगाहिकपिमार्जारश्वानः शूकरपक्षिणः ।
नकुलो मूषिकश्चैव यात्रायां दक्षिणे शुभः ॥१२
विप्रकन्या शवो रुद्र शङ्खभेरीवसुन्धराः ।
वेणुस्त्रीपूर्णकुम्भानां यात्रायां दर्शनं शुभम् ॥
जम्बूकोष्ट्रखराद्याश्च यात्रायां वामके शुभाः ॥१३
कार्पासौषधितैलञ्च पक्व ङ्गारभुजङ्गमाः ।
मुक्तकेशी रक्तमाल्यं नग्नाद्यशुभमीक्षतम् ॥१४

सिंह का स्वामी सूर्य होता है और कन्या का अधिपति बुध होता है। अङ्गारका अर्थात् मङ्गलका क्षेत्र वृश्चिक होताहै। तात्पर्य यह हैकि मेष और वृश्चिक दोनों का स्वामी भौमहै तथा तुला और वृष दोनों का स्वामी शुक्र होता है। बृहस्पति धन का स्वामीहै तथा मकर और कुम्भ इन दोनों का स्वामी शनि होताहै। मीन का भी धन के साथ स्वामी गुरु होता है। इस तरह ये ग्रहों के क्षेत्र बता दिये गये हैं ॥८।६। पौर्णमासी से जहाँ पर दो पूर्वाषाढ़ा हों वह दो आषाढ़ वाला जानना चाहिए बिष्णु कर्कटमें शयन किया करते हैं ॥१०॥ अलंकृति में अश्विनी--रेवती— चित्रा और धनिष्ठा ये नक्षत्र लिये जाते हैं ॥११॥ मृग— अहि—कपि— मार्जार— श्वान--शूकर पक्षी-नकुल और मूषिक ये यात्रावे दक्षिण रहने वाले शुभ होते हैं ॥१२॥ विप्रकी कन्या- शव मृत देह)--शङ्ख--भेरी--वसुन्धरा--वेणु--पूर्ण कुम्भ ये हे रुद्र ! यात्रा के समय में दर्शन देने वाले शुभ माने जाते हैं। जम्बूक--उष्ट्र (ऊँट और खर आदि यात्रा में बाँई ओर हों तो शुभ कहे गये हैं ॥१३॥ कार्पास--औषधि--तैल--पयव अङ्गार--भुजङ्गम--मुक्त केशों वाली-रक्त वर्ण

की माला और नग्न (नंगाशरीर) आदि ये सब अगर दिखलाई देते हैं तो अशुभ होते हैं ॥१४॥

हिक्काया लक्षणं वक्ष्ये लभेत्पूर्व महाफलम् ।
आग्नेये शोकसन्तापौ दक्षिणे हानिमाप्नुयात् ॥१५
नैर्ऋत्ये शोकसन्तापौ मिष्टान्नश्चैव पश्चिमे ।
अर्थं प्राप्नोति वायव्ये उत्तरे कलहो भवेत् ॥
ईशाने मरणं प्रोक्त हिक्कायाश्च फलाफलम् ॥१६
विलिख्य रविचक्रन्तु भास्करो नरसन्निभः ।
यस्मिनृक्षे वसेद्भानुस्तदादि त्रीणि मस्तके ॥१७
त्रय वक्त्रे प्रदातव्यमेकैक स्कन्धयोर्न्यसेत् ।
एकैकं बाहुयुग्मे तु एकैकं हस्तयोर्द्वयोः ॥१८
हृदये पञ्च ऋक्षाणि एक नाभौ प्रदापयेत् ।
ऋक्षमेक न्यसेद् गुह्ये एकैकं जानुके न्यसेत् ॥१९
नक्षत्राणि च शेषाणि रविपादे नियोजयेत् ।
चरणस्थेन ऋक्षेण अल्पायुर्जायते नरः ॥२०
विदेशगमनं जानौ गुह्यस्थे परदारवान् ।
नाभिस्थेनाल्पसन्तुष्टो हृत्स्थेन स्यान्महेश्वरः ॥२१
पाणिस्थेन भवेच्चौरः स्थानभ्रष्टो भवेद् भुजे ।
स्कन्धस्थिते धनपतिर्मुखे मिष्टान्नमाप्नुयात् ॥
मस्तके पट्टवस्त्रन्तु नक्षत्रं स्याद्यदि स्थितम् ॥२२

अब हिचकी के लक्षण बताये जाते हैं। यदि हिचकी पूर्व दिशा में होवे तो इसका महान्‌फल होताहै। अग्निकोण में यह शोक एवं संतापकी देने वाली होती है। दक्षिण दिशामें होने वाली हिक्का हानिप्रद होती है ॥१५॥ नैऋत्य कोण की हिक्का शोक एवं सन्ताप की देने वाली है। पश्चिममें होनेवाली मिष्टान्न प्रदान करने वालीहै। वायव्य दिशाकी हिचकी अर्थ प्रदा है और उत्तरमें होने से कलह होता है। ईशान दिशामें होने से

मरण होता है। इस प्रकार से हिक्का के ये फलाफल होते हैं ॥१६॥ रवि का चक्र लिखे। भास्कर एक नर के सदृश होता है। जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से आदि लेकर तीन नक्षत्र मस्तक पर विन्यस्त करे। तीन मुख में न्यस्त करे और एक-एक दोनों कन्धों पर विन्यस्त करे। एक-एक दोनों बाहुओं में और एक-एक दोनों हाथों में न्यस्त करे ॥१७॥१८॥ उस नराकृति रविचक्र के हृदय में पाँच नक्षत्र उसी क्रम से लिखे और एक नाभि में विन्यस्त करना चाहिए। एक नक्षत्र गुह्यमें रक्खे और एक-एक दोनों घुटनों में विन्यस्त करे ॥१९॥ शेष नक्षत्रों को रवि के चरणों में विन्यस्त कर देना चाहिए। चरण में स्थित नक्षत्र से मनुष्य अल्प आयु वाला होता है ॥२०॥ जानु में स्थित नक्षत्र से विदेशमें गमन होता है और जो गुह्य में स्थित नक्षत्र है उससे पराई स्त्री से सम्बन्ध रखने वाला होता है। नाभि में स्थित नक्षत्र से अल्प सन्तोष वाला होता है तथा हृदय में स्थित नक्षत्र से महेश्वर हुआ करता है ॥२१॥ हाथ में स्थित नक्षत्र से चोर होता है और भुजा में स्थित नक्षत्र से स्थान भ्रष्ट होता है। स्कन्ध में स्थित नक्षत्र का यह फल है कि वह धन का स्वामी होता है तथा मुख में स्थित नक्षत्र से मिष्टान्न की प्राप्ति वाला है। मस्तक में स्थित नक्षत्र से पट्ट वस्त्र वाला होता है ॥२२॥

३१—चन्द्रशुद्धि कथन।

सप्तमोपचयाद्यस्थश्चन्द्रः सर्वत्र शोभनः।
शुक्लपक्षे द्वितीयस्तु पञ्चमो नवमस्तथा॥
सपूज्यमानो लोकैस्तु गुरुवद् दृश्यते शशी॥
चन्द्रस्य द्वादशावस्था भवन्ति शृणुत अपि।
त्रिषु त्रिषु च ऋक्षेयु अश्विन्यादि वदाम्यहम् ॥२
प्रवासस्थं पुनर्नष्टं मृतावस्थं जयावहम्।
हास्यावस्थं क्रीड़ावस्थ प्रमोदावस्थमेव च ॥३
विषादावस्थभोगस्थे ज्वरावस्थं व्यवस्थितम।
कम्पावस्थं स्वस्थावस्थं द्वादशावस्थगं भवेत् ॥४

प्रवासो हानिमृत्युश्च जयो हासो रतिः सुखम् ।
शोको भोगो ज्वरः कम्पः सुस्थावस्था क्रमात् फलम् ॥५
जन्मस्थः कुरुते तुष्टिं द्वितीये नास्ति निर्वृतिः ।
तृतीये राजसम्मानं चतुर्थे कलहागमः ॥६
पञ्चमेन मृगाङ्केण स्त्रीलाभो वै तथा भवेत् ।
धनधान्यागमः षष्ठे रतिः पूजा च सप्तमे ॥
अष्टमे प्राणसन्देहो नवमे कोषसञ्चयः ॥७
दशमे कार्य्यनिष्पत्तिर्ध्रुवमेकादशे जयः ।
द्वादशेन शशाङ्केन मृत्युरेव न संशयः ॥८

श्री हरि ने कहा सप्तम उपचयादि में स्थित चन्द्रमा सब जगह शोभन होता है । शुक्लपक्ष में द्वितीय—पञ्चम और नवम लोकों के द्वारा सपूज्यमान तथा गुरु के समान चन्द्र दिखलाई देता है ॥ १ ॥ चन्द्र की बारह अवस्थाऐं होती हैं उनका भी अब श्रवण करो । अश्विनी आदि तीन—तीन नक्षत्रों में वह होती है जिसको मैं अब बतलाता हूँ ॥ २ ॥ वे बारह अवस्थाऐं ये हैं-प्रवासावस्था-पुनः नष्टावस्था - मृतावस्था—जयावहावस्था हास्यावस्था—विषादावस्था भोगावस्था - ज्वरावस्था—कम्पावस्था - स्वस्थावस्था ये बारह अवस्थाऐं हैं । इस प्रकार से द्वादश अवस्थाओं में चन्द्र गमन करने वाला होता है ॥३॥४॥ इन अवस्थाओं का क्रम से फल भी कहा जाता है प्रवास का होना-हानि मृत्यु-जय प्राप्त करना-हास रति-सुख-शोक - भोग—ज्वर—कम्प और सुख ये हुआ करते हैं॥५॥ जन्ममें रहने वाला चन्द्र तुष्टि किया करता है । द्वितीय चन्द्र निर्वृति (आनन्द)नहीं करने वाला होताहै । तीसरे घर में रहने वाला चन्द्र राज सम्मान का प्रदान कराने वाला होताहै । चतुर्थ चन्द्र कलह करानेवाला है ॥६॥ पाँचवाँ चन्द्र स्त्री का लाभ देने वाला है और छटवें चन्द्र में धन धान्यादि का आगम होताहै । सातवें चन्द्र में रति और पूजा होतीहै । आठवें घरमें स्थित चन्द्रमा मारक होता है और इससे प्राणों का भी सन्देह रहा करता है । नवम चन्द्र से कोष का सञ्चय होता है ॥७॥ दशम चन्द्र में कार्यों

की सिद्धि होती है तथा ग्यारहवें चन्द्र में जय होता है। बारहवां चन्द्र अत्यन्त अशुभ है। इसमें निश्चय ही मृत्यु होती है और कुछ भी संशय नहीं होता है ॥८॥

कृत्तिकादौ च पूर्वेण सप्तर्क्षाणि च वै व्रजेत्।
मघादौ दक्षिणे गच्छेदनुराधादि पश्चिमे ॥६
प्रशस्ता चोत्तरे यात्रा धनिष्ठादि च सप्तसु ॥१०
अश्विनी रेवती चित्रा धनिष्ठा समलङ्कृतौ।
मृगाश्विचित्रापुष्याश्च मूला हस्ता शुभाः सदा ॥
कन्याप्रदाने यात्रायां प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ॥११
शुक्रचन्द्रौ जन्मस्थौ शुभदौ च द्वितीयके।
शशिज्ञशुक्रजीवाश्च राशौ चाथ तृतीयके ॥१२
भौममन्दशशाङ्कार्का बुधः श्रेष्ठश्चतुर्थके।
शुक्रजीवौ पञ्चमौ च चन्द्रकेतुसमाहितौ ॥१३
मन्दार्कौ च कुजः षष्ठे गुरुचन्द्रौ च सप्तमे।
ज्ञशुक्रावष्टमे श्रेष्ठौ नवमस्थो गुरुः शुभः ॥१४

अब यात्रा के लिये प्रशस्त नक्षत्रों के विषयमें विभिन्न दिशाऐं बतलाई जाती हैं–कृत्तिकादि सात नक्षत्रों में पूर्व दिशा में यात्रा करे–मघादि सात में दक्षिण दिशा में यात्रा करे–अनुराधा आदि सात नक्षत्रों में पश्चिममें यात्रा शुभ होती है तथा धनिष्ठा आदि सात नक्षत्रों में उत्तर दिशामें यात्रा प्रशस्त होती है ॥६।१०॥ अश्विनी–रेवती—चित्रा और धनिष्ठा ये नक्षत्र सम–लङ्करण क्रिया में शुभ होते हैं। मृगशिरा-अश्विनी-चित्रा-पुष्प-मूल-हस्त ये नक्षत्र कन्या के दान करने में–यात्रा में और प्रतिष्ठा आदि कर्मों के करने में सदा शुभ माने जाते हैं ॥११॥ जन्म गृह में स्थित शुक्र और चन्द्र तथा दूसरे गृह में स्थित होने पर शुभ फल देने वाले होते हैं। चन्द्र-बुध-शुक्र और गुरु तीसरे घर से स्थित होने पर शुभ फल प्रदान करने वाले हैं ॥१२॥ मङ्गल-शनि–चन्द्र–सूर्य और बुध चौथे घर में हों तो श्रेष्ठ हैं। शुक्र और बृहस्पति

पाँचवें घर में हों तथा चन्द्र एवं केतु से समाहित होवें तो श्रेष्ठ होते हैं ॥१३॥ शनि और सूर्य तथा मङ्गल छटे हों और गुरु चन्द्र सप्तम हों बुध और शुक्र अष्टम हों तो श्रेष्ठ कहे गये हैं। नवम घर में स्थित बृहस्पति सदा शुभ होता है ॥ १४ ॥

अर्कार्किचन्द्रा दशम एकादशेऽखिला ग्रहाः ।
बुधोऽथ द्वादशे चैव भार्गवः सुखदो भवेत् ॥१५
सिंहेन मकरः श्रेष्ठः कन्यया मेष उत्तमः ।
तुलया स मीनस्तु कुम्भेन सह कर्कटः ॥१६
धनुषा वृषभः श्रेष्ठो मिथुनेन च वृश्चिकः ।
एतत्षडष्टकं प्रीत्यै भवत्येव न संशयः ॥१७

सूर्य और सूर्य का पुत्र अर्की तथा चन्द्रमा दशम घर में एवं ग्यारहवें घर में स्थित समस्त ग्रह शुभ होते हैं। बारहवें घर में बुध तथा शुक्र सुखदेने वाले होते हैं ॥१५॥ अब उच्च स्थानीय ग्रहों के विषय में बतलाते हैं-सिंह से युक्त मकर श्रेष्ठ होता है। कन्या से युक्त मेष उत्तम होता है। तुला से मीन और कुम्भ से कर्क उत्तम है ॥१६॥ धन से वृषभ और मिथुन से वृश्चिक यह षड़ष्टक प्रीतिके लिये होताहै और कुछ भी संशय की बात नहीं है॥१७॥

३२—द्वादश राशि वर्णन

उदयात्तु समारभ्य राशी भानुः स्थितो हर ।
स्वराश्याद्यं व्रजेदह्निषड्भिः षड्भिस्तथा निशाम् ॥१
मीने मेषे च पञ्च स्युश्चतस्रो वृषकुम्भयोः ।
मकरे मिथुने तिस्रः पञ्च चापे च कर्कटे ॥२
सिंहे च वृश्चिके षट् च सप्त कन्यातुले तथा ।
एता लग्नप्रमाणेन घटिकाः परिकीर्त्तिताः ॥३
रसपूर्वविसानेषु रसाब्धिषण्वरिसागराः ।
लङ्कोदया हि तद्वत्तु लग्ना मेषादयोऽथवा ॥४

मेषलग्ने भवेद् बन्ध्या वृषे भवति कामिनी ।
मिथुने सुभगा कन्या वेश्या भवति कर्कटे ।।५

सिंहे चैवाल्पपुत्रा च कन्यायां रूपसंयुता ।
तुलायां रूपमैश्वर्य्यं वृश्चिके कर्कशा भवेत् ।।६

सौभाग्यं धनुषि स्याच्च मकरे नीचगामिनी ।
कुम्भे चैव.ल्पपुत्रा स्यान्मीने वैराग्यसंयुता ।।७

श्री हरि भगवान् बोले-हे हर ! उदय काल में जिस राशि पर सूर्य स्थित होता है उस अपनी राशिसे छै राशियाँ दिन में और छै राशियाँ रात्रि में वह गमन किया करता है ।।१।। इस प्रकार से छै छै राशियों में गति किया करताहै । इस रीतिसे अब भिन्न-भिन्न राशियों की लग्न घड़ियाँ बताई जाती हैं । मीन और मेष की पाँच घड़ी होती हैं--वृष और कुम्भ की चार घड़ी होती हैं-मकर और मिथुन की तीन-तीन घड़ियाँ होती हैं तथा धन एवं कर्क की पाँच घड़ी हुआ करती हैं ।।२ । सिंह और वृश्चिक की छै घड़ी हैं तथा कन्या और तुला की सात घड़ी होती हैं । इस प्रकार से अहोरात्र में लग्न के प्रमाण से सम्पूर्ण राशियों की घटिकाऐं बताई गई हैं ।।३।। आदि और अन्त में रस संख्यक अर्थात् छै-छै घड़ियों की तथा पाँच चार और तीन घड़ियों की मेष आदि राशियों की लग्न होती हैं ।।४।। मेष लग्न में जो कन्या हो वह बन्ध्या होती है-वृष लग्न में कामिनी—मिथुन में परम सुभग और कर्क लग्नमें जन्मग्रहण करने वाली वेश्या वृत्ति वाली अल्प पुत्रों वाली होती है-कन्या लग्न में उत्पन्न कन्या रूप लावण्य से समन्वित होती है । तुला लग्न में जन्मने वाली के रूप और ऐश्वर्य दोनों ही होते हैं । वृश्चिक लग्न में समुत्पन्न कन्या बहुत ही कर्कशा होती है ।।६।। धन लग्नमें उत्पत्ति वाली कन्या सौभाग्य शालिनी होतीहै मकर लग्नमें पैदा होने वाली कन्या नीच का गमन करने वाली होती है । कुम्भ में उत्पन्न अल्प पुत्र वाली तथा मीन लग्न में समुत्पन्न कन्या वैराग्य से संयुत होती है ।।७।।

तुलाकर्कटको मेषो मकरश्चैव राशयः ।
चरकार्य्याणि कुर्य्याच्च स्थिरकार्य्याणि चैव हि ॥८
पञ्चाननो वृषः कुम्भो वृश्चिकः स्युः स्थिराणि हि ।
कन्या धनुश्च मीनश्च मिथुनं द्विस्वभावतः ॥९
द्विस्वभावानि कर्माणि कुर्यादेषु विचक्षणः ।
यात्रा चरेण कर्त्तव्या प्रवेष्टव्यं स्थिरेण तु ॥
देवस्थापनवैवाह्यः द्विस्वभावेन कारयेत् ॥१०
प्रतिपच्चाथ षष्ठी च नन्दा चैकादशी स्मृता ।
द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी वृषभध्वज ॥११
जयाष्टमी तृतीया च स्मृता रुद्र त्रयोदशी ।
चतुर्थी नवमी रिक्ता सा वर्ज्याऽथ चतुर्दशी ।
पञ्चमी दशमी पूर्णा पूर्णिमा च शुभाः स्मृताः ॥१२
चरः सौम्यो गुरुः क्षिप्रो मृदुः शुक्रो रविध्रुवः ।
शनिश्च दारुणो ज्ञेयो भौम उग्रः शशी समः ॥१३

तुला – कर्क-मेष और मकर ये राशियाँ चर कार्य वाली हैं क्योंकि ये चर स्वभाव वालीहैं । इनमें चर कार्य ही करने चाहिएँ । सिंह-वृष-कुम्भ और वृश्चिक ये स्थिर राशियाँ होती हैं । इनमें स्थिर कार्य करने चाहिए । कन्या-धन-मीन और मिथुन ये द्विस्वभाव वाली राशियां होती हैं । इन राशियोंमें विचक्षण पुरुष को ऐसेही कार्य करने चाहिए जो द्विभाव वाले हैं । यात्रा सर्वदा चर लग्नों में करे और गृह प्रवेश आदि कार्य्य स्थिर लग्नोंमें ही करना चाहिए। देवताकी स्थापनाऔर वैवाह्य कार्य द्वि-स्वभाव वाली लग्नों में करने चाहिए ॥८॥९। १०॥ अब तिथियों की शुभाशुभ संज्ञा बताते हैं–प्रतिपदा षष्ठी और एकादशी–इन तिथियों की नन्दा संज्ञा है-द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी-इन तिथियों की हे वृषभध्वज ! भद्रा संज्ञा होती है । अष्टमी तृतीया और त्रयोदशी हे रुद्र! इन तिथियों को जया नाम वाली कहा जाता है । चतुर्थी-नवमी और चतुर्दशी-ये तिथियाँ रिक्ता कही जाती हैं और

ये वर्जित मानी जाती हैं अर्थात् कोई भी शुभ कार्य रिक्ता तिथियों में नहीं किया जाता है। पञ्चमी–दशमी और पूर्णिमा ये तिथियाँ पूर्ण संज्ञा वाली होती हैं तथा परम शुभ कही गई हैं ॥११॥१२॥ अब ग्रहों के स्वभाव और स्वरूप बताये जाते हैं-- गुरु चर एवं सौम्य है। शुक्र क्षिप्र तथा मृदु होता है। रवि ध्रुव है। शनि परम दारुण जानना चाहिए। भौम उग्र होता है। चन्द्र सम है ॥ १३ ॥

चरक्षिप्रैः प्रयातव्यं प्रवेष्टव्यं मृदुध्रुवैः।
दारुणोग्रैश्च योद्धव्यं क्षत्रियैर्जयकाङ्क्षिभिः ॥
नृपाभिषेकोऽग्निकार्य्यश्च सोमवारे प्रशस्यते ॥१४
सोमे तुले प्रमाणश्च कुर्य्याच्चैव गृहादिकम् ।
सैनापत्यं शौर्य्ययुद्धं शस्त्राभ्यासः कुजे स्मृतः ॥१५
सिद्धिकार्य्यश्च मन्त्रश्च यात्रा चैव बुधे स्मृता ।
पठनं देवपूजा च वस्त्रं ह्याभरणं गुरौ ॥ १६
कन्यादानं गजारोहः शुक्रे स्यात्समयः स्त्रियाः ।
स्थापनं गृहप्रवेशश्च गजबन्धः शनौ शुभः ॥१७

चर और क्षिप्र ग्रहों के दिन प्रयाण करे और मृदु तथा ध्रुवमें प्रवेश करना चाहिए। दारुण तथा उग्र में जय की आकाङ्क्षा रखने वाले क्षत्रियों को युद्ध करना चाहिए। नृप का अभिषेक का कार्य तथा अग्नि कार्य चन्द्रवार में ही परम प्रशस्त होता है ॥ १४ ॥ सोम तुल में प्रमाण और गृहादिक का कार्य करना चाहिए। सैनापत्य सेना से सम्बन्धित कार्य, शूरतापूर्ण युद्ध और शस्त्रादि के अभ्यास का काम मङ्गल में बताया गया है। सिद्धि कार्य मन्त्र सम्बन्धी कार्य—यात्रा बुध में करे। पठन–देवों की पूजा तथा वस्त्रादि एवं आभरण धारणादि का कार्य गुरुवार में करे ॥१५॥१६॥ कन्या का दान-गजपर आरोहण अर्थात् हाथी की सवारी करना—ये कार्य शुक्रवार में करे। स्त्री के समय—स्थापना के योग्य कार्य तथा गृह प्रवेश और गजबन्ध शनिवार में शुभ होते हैं ॥ १७ ॥

३३—पुरुष और स्त्री लक्षण ।

नरस्त्रीलक्षणं वक्ष्ये संक्षेपाच्छृणु शङ्कर ।
अस्वेदिनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ ॥१
श्लिष्टांगुली ताम्रनखौ सुगुल्फौ शिरयोज्झितौ ।
कूर्मोन्नतौ च चरणौ स्यातां नृपवरस्य हि ॥२
विरूक्षापाण्डरनखौ वक्रश्चैव शिरोन्नतम् ।
शूर्पाकारौ च चरणौ संशुष्कौ चरणांगुली ॥
दुःखदारिद्रयदौ स्यातां नात्र कार्य्या विचारणा ॥३
अल्परोमयुता श्रेष्ठा जङ्घा हस्तिकरोपमा ।
रोमैकैकं कूपके स्याद् भूपानान्तु महात्मनाम् ॥४
द्वे द्वे रोमे पण्डितानां श्रोत्रियाणां तथैव च ।
रोमत्रयं दरिद्राणां रोगी निर्मांसजानुकः ॥५
अल्पलिङ्गे च धनवान् स्याच्च पुत्रादिवर्जितः ।
स्थूललिङ्गो दरिद्रः स्याद् दुःख्येकवृषणो भवेत् ॥६
विषमे स्त्रीचञ्चलो वै नृपः स्याद्वृषणे समे ।
प्रलम्बवृषणोऽल्पायुर्निर्द्रव्यः कुमणिर्भवेत् ॥
पाण्डरैर्मलिनैश्चैव मणिभिश्च सुखी नरः ॥७

श्री हरि भगवान् बोले—हे शङ्कर ! अब हम नर स्त्रियों के लक्षण संक्षेप से बताते हैं उनका श्रवण आप करें। जोपरम श्रेष्ठ नृप होते हैं अर्थात् नृप के समकक्ष पुरुष होते हैं उनके चरण मृदु तले वाले होते हैं और उनके तलों में कभी भी पसीना नहीं होताहै। इनके चरण कमल पुष्पके मध्य भाग के सदृश हुआ करते हैं। इन चरणोंकी अंगुलियां एक दूसरे से श्लिष्ट अर्थात् सटी हुई हुआ करती हैं। इन चरणों के नाखून ताम्र के समान होने हैं शिर से उज्झित एवं सुन्दर गुल्फों वाले होतेहैं। ये चरण कूर्मके सदृश उन्नत हुआ करते हैं ॥१।२॥ विशेष रूप से रूक्ष पाण्डर वर्ण के नखों वाले—शिरोन्नत वक्त्र—सूप के समान फैले हुए आकार वाले चरण-संशुष्क अंगुलियों वाले

चरण जिनके होते हैं ये लक्षण दुःख और दरिद्रता के देने वाले हैं–इसमें तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।।३।। हाथी के रूँड के समान उतार-चढ़ाव वाली और बहुत ही कम रोमों वाली जाँघ श्रेष्ठ होती है। महान् आत्मा वाले नृपों के कूपकों में एक-एक ही रोम हुआ करता है ।।४।। सद् एवं असद् बुद्धि वाले पण्डितों के तथा श्रोत्रियों के रोमों के छिद्रों में दो-दो रोम हुआ करते हैं। जो दरिद्र होते हैं उनके कूपकों में तीन-तीन रोम होते हैं। बिना मांस वाले जिनके जानु होते हैं वे रोगी हुआ करते हैं ।। ५ ।। स्वल्प लिङ्ग वाला पुरुष धनवान् होता है किन्तु पुत्रादि से रहित हुआ करता है। जो स्थूल लिङ्ग धारी पुरुष होता है वह दरिद्र हुआ करता है। एक ही वृषण जिसके होता है वह दुःखी होता है ॥६।। वह विषम होने पर स्त्री के समान चञ्चल होता है तथा सम वृषण होने पर वह पुरुष नृप होता है। जिसके वृषण लम्बे होते हैं वह मनुष्य अल्प आयु वाला होता है, द्रव्यहीन और कुमणि होता है। पाण्डर और मलिन मणियों से मनुष्य सुखी होता है ।।७।।

निःस्वस्य शब्दमूत्राः स्युर्नृपा निःशब्दधारयः ।
भोगाढ्याः समजठरा निःस्वाः स्युर्घटसन्निभाः ।।८
सर्पोदरा दरिद्राः स्यू रेखाभिश्चायुरुच्यते ।
ललाटे यस्य दृश्यन्ते तिस्रो रेखाः समाहिताः ।।
सुखी पुत्रसमायुक्तः स षष्टिं जीवते नरः ।।९
चत्वारिंशच्च वर्षाणि द्विरेखादर्शनान्नरः ।
विंशत्यब्दमेकरेखा आकर्णान्ता गतायुषः ।।
आकर्णान्तरिता रेखास्तिस्रश्च स्युः शतायुषः ।।१०
सप्तत्यायुर्द्विरेखा तु षष्टश्चायुस्तिसृभिर्भवेत् ।
व्यक्ताव्यक्ताभी रेखाभिर्विंशत्यायुर्भवेन्नरः ॥११
चत्वारिंशच्च वर्षाणि हीनरेखस्तु जीवति ।
भिन्नाभिश्चैव रेखाभिरपमृत्युर्नरस्य हि ।।१२

त्रिशूल पट्टिशं वापि ललाटे यस्य दृश्यते
धनपुत्रसमायुक्तः स जीवेच्छरदः शतम् ॥१३

निःश्वास लेकर शब्दयुक्त मूत्र वाले नृप निःशब्द धारी होते हैं। भोगों से युक्त-समान जठर वाले-निःस्व घट के सदृश होतेहैं। सर्पके समान उदर वाले मनुष्य दरिद्र होतेहैं। अब रेखाओं के द्वारा आयु बतलाई जाती है। जिसके ललाटमें समाहित तीन रेखाऐं दिखलाई दिया करती हैं वह मनुष्य परम सुखी-पुत्रों से युक्त और साठवर्ष पर्यन्त जीवित रहा करता है ॥८॥ ।९। जिसके ललाट पर दो रेखाऐं दिखलाई हैं वह चालीसवर्ष तक जीवित रहता है और केवल एकही रेखा जिसके दिखलाई देतीहै वह बीस वर्षतक ही जीवित रहा करताहै। कर्ण पर्यन्त जोरेखाऐं होतीहै वह गतायु होता है। जिसके तीन रेखाऐं आकर्णान्तिरित होती हैं वह शतायु अर्थात् सौवर्ष की उम्र वाला पुरुष होता है ॥१०॥ इसी प्रकारकी यदि दोरेखाऐं हों तो सत्तर वर्षकी उम्र होतीहै और तीन रेखाओंसे युक्त यदि लल ट होताहै तो साठ वर्ष तक जीवित रहताहै। जोरेखाऐं कुछ व्यक्त और कुछ अव्यक्तहों तो बीस वर्ष की आयु वाला मनुष्य होताहै ॥११॥हीन रेखा वाला मानव चालीस वर्ष तक जीवित रहताहै। जिसके ललाटमें भिन्न रेखाऐं होती हैं उनसे मनुष्यकी अपमृत्यु होती है ॥१२॥ जिस मनुष्य के ललाटमें त्रिशूल और पट्टिश का चिह्न दिखलाई देते हैं वह धन तथा पुत्रों से युक्त सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है ॥१३॥

तर्जन्या मध्यमांगुल्या आयुरेखा तु मध्यतः।
सप्राप्ता या भवेद्रुद्र स जीवेच्छरदः शतम् ॥१४
प्रथमा ज्ञानरेखा तु ह्यंगुष्टादनुवर्त्तते।
मध्यमा मूलगा रेखा आयूरेखा अतःपरम् ॥१५
कनिष्ठायां समाश्रित्य आयुरेखा समाविशेत्।
अच्छिन्ना वा विभक्ता बा स जीवेच्छरदः शतम् ॥१६

यस्य पाणितले रेखा आयुस्तस्य प्रकाशयेत् ।
शतवर्षाणि जीवेच्च भोगी रुद्र न संशयः ॥१७
कनिष्ठिकां समाश्रित्य मध्यमायामुपागता ।
षष्टिवर्षायुषं कुर्य्यादायूरेखा तु मानवः ॥१८

हे रुद्र ! तर्जनी और मध्यमा अंगुलि के मध्य से आयु की रेखा जो सम्प्राप्त हो तो वह मनुष्य सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहा करता है ॥१४॥ प्रथम ज्ञान की रेखा होती है जो अँगूठे से अनुवर्त्तित होती है। मध्यमा मूल में गमन करने वाली रेखा है। इससे आगे फिर आयु की रेखा होती है॥१५॥ कनिष्ठिका अंगुलि में समाश्रित होकर आयु की रेखा समाविष्ट होती है। वह अच्छिन्न हो या विभक्त हो किन्तु वह मानव सौ वर्षके जीवन की आयु वाला होता है ॥१६॥ हे रुद्र ! जिस मनुष्य के हाथ के तल में रेखा होती हैं वह भी आयुको प्रकाशित किया करतीहै वह परम भोग करने वाला पुरुष सौवर्ष तक जीवित रहता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१७॥ कनिष्ठिका अँगुलि का समाश्रय लेकर जो मध्यमा अँगुलि में आ जाती है वह आयु को प्रकट करने वाली रेखा बतलाती है कि मनुष्य साठ वर्ष की आयु वाला होता है ॥ १८ ॥

३४—स्त्रीलक्षण ।

यस्यास्तु कुञ्चिताः केशा मुखञ्च परिमण्डलम् ।
नाभिश्च दक्षिणावर्त्ता सा कन्या कुलवर्द्धिनी ॥१
या च काञ्चनवर्णाभा रक्तहस्तसरोरुहा ।
सहस्राणान्तु नारीणां भवेत्सापि पतिव्रता ॥२
वक्रकेशा च या कन्या मण्डलाक्षी च या भवेत् ।
भर्त्ता च म्रियते तस्या नियतं दुःखभागिनी ॥३
पूर्णचन्द्रमुखी कन्या बालसूर्य्यसमप्रभा ।
विशालनेत्रा बिम्बोष्टी सा कन्या लभते सुखम् ॥४

रेखाभिर्बहुभिः क्लेशं स्वल्पाभिर्धनहीनता ।
रक्ताभिः सुखमाप्नोति कृष्णाभिः प्रेष्यतां व्रजेत् ।।५
कार्य्येपि मन्त्री पत्नी स्यात्सखी स्यात्करणेषु च ।
स्नेहेषु भार्य्या माता स्याद् वेश्या च शयने शुभा ।।६
अंकुशं मण्डलं चक्र यस्याः पाणितले भवेत् ।
पुत्रं प्रसूयते नारी नरेन्द्रं लभते पतिम् ।।७

श्री हरि ने कहा–जिस कन्या के केश ती कुञ्चित (घुंघराले) हों और मुख परिमण्डल अर्थात् वर्त्तुलाकार हो तथा नाभि दक्षिण की ओर आवर्त्त वाली हो वह कन्या कुल के बढ़ाने वाली है।।१।। जिस कन्या का वर्ण सुवर्ण के समान हो और हस्त रक्त कमल के सदृश हों वह सहस्रों नारियोंमें एक ही परम पतिव्रत धर्म वाली हुआ करती है ।।२।। जिस कन्या के टेढ़े-तिरछे तो केश हों और मण्डलवत् गोल नेत्र हों उसका स्वामी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और वह निश्चय ही दुःखों के भोगने वाली हुआ करती है ।।३।। जो कन्या पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली और प्रातः कालीन सूर्य के समान प्रभा वाली हो-जिसके विशाल (बड़े, नेत्र हों तथा विम्ब के फल के सदृश रक्त वर्ण के ओष्ठ हों वह कन्या परम सुखों का उपभोग किया करती है ।।४।। बहुत-सी रेखाओं के होने से क्लेश प्राप्त होताहै और अत्यन्त स्वल्प रेखाओं के होने पर धन की कमी हुआ करती है । रक्त रेखाओं से सुख प्राप्त होता है और कृष्ण वर्ण वाली रेखाओं से प्रेष्यता को प्राप्त होती है ।।५।। कार्य के करने में वह पत्नी मन्त्री के समान होती है और साधनों में वह एक सखी अर्थात् मित्र के तुल्य होती है । स्नेह में भार्या माता और शयन में शुभ वेश्या के तुल्य होती है ।।६।। जिसके पाणि (हाथ तल में अंकुश— मण्डल चक्र के चिह्न होते हैं ऐसी स्त्री पुत्र का प्रसव किया करती है और वह नृपति को अपना स्वामी प्राप्त करती है ।।७।।

यस्यास्तु रोमशौ पार्श्वौ रोमशौ च पयोधरौ ।
उन्नतौ चाधरोष्ठौ च क्षिप्रं मारयते पतिम् ।।८

यस्याः पाणितले रेखा प्राकारं तोरणं भवेत् ।
अपि दासकुले जाता राज्ञीत्वमुपगच्छति ॥६
उद्वृत्ता कपिला यस्या रोमराजी निरन्तरम् ।
अपि राजकुले जाता दासीत्वमुपगच्छति ॥१०
यस्य अनामिकांगुष्ठौ पृथिव्यां नैव तिष्ठतः ।
पतिं मारयते क्षिप्रं स्वेच्छाचारेण वर्त्तते ॥११
यस्या गमनमात्रेण भूमिकम्पः प्रजायते ।
पतिं मारयते क्षिप्रं म्लेच्छाचारेण वर्त्तते ॥१२
चक्षुःस्नेहेन सौभाग्यं दन्तस्नेहेन भोजनम् ।
त्वचः स्नेहेन शय्याश्च पादस्नेहेन वाहनम् ॥१३
स्निग्धौन्नतौ ताम्रनखौ नार्य्याश्च चरणौ शुभौ ।
मत्स्याङ्कुशाब्जचिह्नौ च चक्रलाङ्गललक्षितौ ॥
अस्वेदिनौ मृदुतलौ प्रशस्तौ चरणौ स्त्रियाः ॥१४
शुभे जङ्घे विरोमे च ऊरू हस्तिकरोपमौ ।
अश्वत्थपत्रसदृशं विपुलं गुह्यमुत्तमम् ॥१५
नाभिः प्रशस्ता गम्भीरा दक्षिणावर्त्तिका शुभा ।
अरोमा त्रिवली नार्य्या हृत्स्तनौ रोमवर्जितौ ॥१६

जिसके पार्श्व भाग रोमों वाले हों और स्तन भी रोमों से युक्त हों तथा जिसके अधरोष्ठ उन्नत हों वह कन्या शीघ्र ही अपने पति को मारने वाली होती है ॥ ८ ॥ जिस कन्या के पाणितल रेखाओं का आकार तोरण जैसा हो वह दास कुल में भी उत्पन्न होती हुई राज्ञी के पद को प्राप्त किया करती है ॥६॥ जिसकी रोमों की पंक्ति उद्वृत्त और कपिल होती है वह चाहे राजकुल में भी क्यों न समुत्पन्न हुई हो दासी के पद को ही प्राप्त किया करती है ॥ १० ॥ जिस कन्या की अनामिका अंगुलि और पैर का अंगूठा भूमि पर टिकता है वह कन्या शीघ्र ही अपने पति के मारने वाली होती है तथा स्वेच्छा चारिणी हो जाती है । जिस के गमन करने के मार्ग से भूमिकम्प होता है वह भी शीघ्र

पति के मारने वाली होती है और फिर वह म्लेच्छों जैसे आचार वाली हो जाया करती है ।।११।१२।। चक्षुओं के स्नेह से सौभाग्य-दाँतों के स्नेह से भोजन-त्वचा के स्नेह से शय्या सुख और पादों के स्नेह से वाहन होता है ।।१३।। स्निग्ध एवं उन्नत-ताम्र के समान नखों वाले-मत्स्य, अंकुश, कमल के चिन्हों वाले-चक्र, लाङ्गल के चिन्हों से उपलक्षित—मृदु तलों से युक्त-प्रस्वेद से रहित नारी के परम शुभ एवं प्रशस्त हुआ करते हैं ।।१४।। जिन जाँघों में रोम न हों वे शुभ हैं और जो ऊरू हाथी के कर के समान हों तथा पीपल के पत्र के तुल्य विपुल उत्तम गुह्य भाग हो—नाभि दक्षिण की ओर आवर्त्तित होने वाली गम्भीर होती है वह शुभ मानी जाया करती है । नारी की त्रिवली जो कि उदर पर पड़ा करती हैं विना रोमों वाली होनी चाहिए तथा हृदय और स्तन भी रोमों से रहित शुभ हुआ करते हैं ।।१५।१६।।

३५—सामुद्रिक शास्त्र ।

समुद्रोक्तं प्रवक्ष्यामि नरस्त्रीलक्षणं शुभम् ।
येन विज्ञातमात्रेण अतीतानागताश्रमाः ।।१
अस्वेदिनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ ।
श्लिष्टाङ्गुली ताम्रनखौ पादावुष्णौ शिरोज्झितौ ।।
कूर्मोन्नतौ गूढ़गुल्फौ सुपार्ष्णी नृपतेः स्मृतौ ।।२
शूर्पाकारौ विरूक्षौ च वक्रौ पादौ शिरालकौ ।
संशुष्कौ पाण्डरनखौ निःस्वस्य विरलाङ्गुली ।।३
मार्गायोत्कटकौ पादौ कषायसदृशौ तथा ।
विच्छिन्नौ चैव वंशस्य ब्रह्मघ्नौ शङ्कुसन्निभौ ।।४
युगस्यायतने तुल्या जङ्घा विरलरोमका ।
मृदुरोमा समा जङ्घा तथा करिकरप्रभा ।।
ऊरवो जानवस्तुल्या नृपस्योपचिताः स्मृताः ।।५
निःस्वस्य शृगालजङ्घा रोमैकैकश्च कूपके ।
नृपाणां श्रोत्रियाणाञ्च द्वे द्वे श्रिये च धीमताम् ।।
त्र्याद्यैर्निःस्वा मानवाः स्युर्दुःखभाजश्च निन्दिताः ।।६

केशाश्चैव कुञ्चिताश्च प्रवासे म्रियते नरः ।
निर्मांसजानुः सौभाग्यमल्पैर्निम्नै रतः स्त्रियाः ॥
विकटैश्च दरिद्राः स्युः समांसै राज्यमेव च ॥७

श्री हरि भगवान् ने कहा—अब इस समुद्र के द्वारा कथित नर और स्त्री के लक्षण बताते हैं जिनके ज्ञान मात्र से अतीत और आगे आने वाले आश्रमों की पूर्ण जानकारी हो जाती है ॥१॥ अस्वेदी अर्थात् प्रस्वेद न आने वाले—कोमल तलों वाले—कमल के पुष्प के मध्य भाग के समान-मिली हुई अँगुलियों वाले-ताम्र के वर्ण के तुल्य नखों से युक्त—उष्ण-शिरोज्झित-कूर्म के समान उन्नत-गूढ गुल्फों (टकनों) वाले और सुन्दर पार्ष्णि भागों वाले चरण नृपति के बताये गये हैं अर्थात् इस प्रकार के पैर शुभ होते हैं ॥२॥ सूप कें आकार के समान आकृति वाले-विशेष रूप से रूखे-वक्र (तिरछे) शिरालक-संशुष्क—पाण्डर वर्ण के नखों से युक्त-दूर-दूर अँगुलियों वाले-मार्ग के लिये उत्कटक अर्थात् उचक कर उठने वाले—कषाय के सदृश पैर वंश के विच्छेद करने वाले होते हैं और शकु के समान पैर ब्रह्मघ्न होते हैं । ये अशुभ पैरों के लक्षण बताये गये हैं ॥३ ४॥ युग के आयतन में समान हों और विरल रोमों वाली हों—जो रोम हों वे भी अत्यन्त मृदु होने चाहिए और हाथी की सूंड़ के समान उतार चढ़ाव की सुडौल हों—दोनों ही समान जाँघें होती हैं यह नृपति का होना सूचित करती हैं । ऊरु और घुटने भी तुल्य हों तो नृप के लिये ही ऐसे लक्षण बताये गये हैं ॥५। निःस्व होकर शृगाल के समान जो जंघा होती हैं जिनके रोम कूपों में एक-एक ही रोम होता है ऐसी जंघा नृपों की तथा श्रोत्रियों की हुआ करती हैं । जो धीमान् लोग होते है उनके रोम-कूपकों में दो दो रोम होते हैं । यह भी चिह्न श्री के लिये शुभ हैं। तीन और इनसे अधिक जिनके रोम होते हैं वे मानव धन हीन-दुःखों के भोगने वाले और समाज में निन्दित ही हुआ करते हैं ॥ ६ ॥ जिसके कुञ्चित केश होते हैं वह मनुष्य प्रयास में मरता है । बिना माँस के जानुओं वाला सौभाग्यशाली होता है । निम्न और अल्पों से भी सौभाग्य होता है । स्त्री के विकट हों तो दरिद्रा होती है तथा समांस होने पर राज्य प्राप्ति का लक्षण होता है ॥७॥

महद्भिरायुराख्यातं ह्यल्पलिङ्गो धनी नरः ।
अपत्यरहितश्चैव स्थूललिङ्गो धनोज्झितः ॥८

मेढ्रे वामनते चैव सुतार्थरहितो भवेत् ।
वक्रेऽन्यथा पुत्रवान्स्याद्दारिद्र्यं विनते त्वधः ॥९

अल्पे तु तनयो लिङ्गे शिरालेऽथ सुखी नरः ।
स्थूलग्रन्थियुते लिङ्गे भवेत्पुत्रादिसंयुतः ॥१०

कोषगूढ़े नृपो दीर्घैर्भुग्नैश्च धनवर्जितः ।
बलवान्युद्धशीलश्च लघुशेफः स एव च ॥११

दुर्बलस्त्वेकवृषणो विषमाभ्याश्चलस्त्रियः ।
समाभ्यां क्षितिपः प्रोक्तः प्रलम्बेन शताब्दवान् ॥१२
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां बहुष्वायू रूक्षैर्मणिभिरीश्वरः ।
पाण्डरैर्मणिभिर्निस्वा मलिनैः सुखभागिनः ॥१३
सशब्दनिःशब्दमूत्राः स्युर्दरिद्राश्च मानवाः ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिर्धाराभिरेव च ॥१४
दक्षिणावर्त्तचलितमूत्राभिश्च नृपाः स्मृताः ।
विकीर्णमूत्रा निःस्वाश्च प्रधानसुखदायिकाः ॥१५

महान् होने से आयु बतलाई गई है। छोटा उपस्थ वाला पुरुष धनी होता है किन्तु वह सन्तति से हीन रहा करता है। जो स्थूल लिंगधारी पुरुष होता है वह धन से रहित होता है ॥८॥ बाईं ओर नत मेढ्र के होने पर अर्थात् जननेन्द्रिय वामभागमें झुकी हुई रहने पर सुत और अर्थसे हीन रहता है। अन्यथा अर्थात् दाहिनीओर वक्र रहने पर मनुष्य पुत्रवाला होताहै किन्तु यदि उपस्थ नीचे की ओर झुका हुआ हो तो वह दरिद्री रहा करता है।॥९॥ अल्प लिंग के होने पर तनय होता है और शिराल होने पर वह सुखी होता है। स्थूल और ग्रन्थि युक्त उपस्थ के होने पर मानव पुत्रादि से संयुत हुआ करता है।॥१०॥ कोषों के गूढ़ होने पर नृप होता है तथा दीर्घ और भुग्न होने से वह धन से रहित होता है। लघु शेफ वाला पुरुष बलवान् और युद्ध-

शील हुआ करता है ।। ११ ।। एक वृषण वाला पुरुष दुर्बल होता है । जिसके विषम वृषण होते हैं वह चल स्त्री वाला हुआ करता है । सम वृषणों वाला पुरुष राजा अर्थात् भूमिका स्वामी होता है । प्रलम्ब वृषण से शतायु हुआ करता है ।।१२।। दो से ऊर्ध्व—बहुतों में आयु और रूक्ष मणियों से ईश्वर तथा पाण्डर मणियों से निःस्व (धन-ज्ञाति हीन) और मलिनों से सुख भागी होते हैं ।।१३।। शब्द के सहित और बिना शब्द के मूत्र वाले पुरुष दरिद्र होते हैं । एक-दो-तीन-चार-पाँच और छै धाराओं से तथा दक्षिण की ओर आवृत्त से चलने वाली मूत्र धाराओं से भी नृप कहे गये हैं विकीर्ण मूत्र वाले निर्धन होते हैं । प्रधान धारा सुखदायी होती है ।।१४।१५।।

एकधाराश्च वनिताः स्निग्धैर्मणिभिरुन्नतैः ।
समैः स्त्रीरत्नधनिनो मध्ये निम्नैश्च कन्यकाः ।।१६
शुक्रैर्निःस्वा विशुष्कैश्च दुर्भगाश्च प्रकीर्त्तिताः ।
पुष्पगन्धे नृपाः शुक्रे मधुगन्धे धनं बहु ।।१७
पुत्राः शुक्रे मत्स्यगन्धे तन्न शुक्रे च कन्यकाः ।
महाभोगी मांसगन्धे यज्वा स्यान्मदगन्धिनि ।।१८
दरिद्रः क्षारगन्धे च दीर्घायुः शीघ्रमैथुनी ।
अशीघ्रमैथुन्यल्पायुः स्थूलस्फिक्स्याद्धनोज्झितः ।।१९
मांसलस्फिक्सुखी स्याच्च सिंहस्फिग्भूपतिः स्मृतः ।
भवेत्सिंहकटी राजा निःस्वः कपिकटिर्नरः ।।२०
सर्पोदरा दरिद्राः स्युः पिठरैश्च घटैः समाः ।
धनिनो विपुलैः पार्श्वैर्निःस्वा रक्तैश्च निम्नगैः ।।२१

एकधारा वाली वनिता—उन्नत एवं स्निग्ध तथा सम मणियों से स्त्री रूप रत्न के धनी और मध्य में निम्नों से कन्यका होती है।।१६।। शुक्रों से निःस्व—विशेष रूप से शुष्कों से दुर्भगा कही गई हैं । पुष्पके समान गन्ध वाले शुक्र (वीर्य) में नृप—मधु के तुल्य गन्ध वाले शुक्र में बहुत अधिक धन होता है ।।१७।। मत्स्य के समान गन्ध वाले वीर्य में बहुत पुत्र और शुक्र में

ऐसा न हो तो कन्याएें होती हैं। माँस के सदृश गन्ध होने पर वह पुरुष महान् भोगी होता है तथा मद के तुल्य गन्ध होने पर यज्वा होता है ॥१८॥ क्षार के समान यदि शुक्रमें गन्ध होताहै तो दीर्घआयु और शीघ्र मैथुन वाला होताहै। स्थूल स्फिक् वाला और अशीघ्र मैथुन करने वाला-अल्पआयु वाला और धन हीन होता है॥१९॥ मांसल स्फिक् वाला सुखी होता है तथा सिंहके तुल्य स्फिक् अर्थात् कूलों वाला भूपति होता है। सिंह के तुल्य कटिवाला पुरुष राजा होता है और कपि (बन्दर) के सदृश कटि वाला मानव धन हीन हुआ करता है॥२०॥ सर्प के समान उदर वाले दरिद्र हुआ करते हैं। घटों के तुल्य पिठरों से धन युक्त होते हैं। विपुल पार्श्वों से निःस्व होते हैं और निम्नगामी रक्त पार्श्वों से भी निर्धन होते हैं॥ २१ ॥

समकक्षाश्च भोगाढ्या निम्नकक्षा धनोज्झिताः।
नृपाश्चोन्नतकक्षाः स्युर्जिह्मा विषमकक्षकाः ॥२२
मत्स्योदरा बहुधना नाभिभिः सुखिनः स्मृताः।
विस्तीर्णाभिर्दहुलाभिर्निम्नाभिः क्लेशभागिनः ॥२३
बलिमध्यगतो नाभिः शूलबाधां करोति हि।
वामावर्त्तश्च साध्यं वै मेधां दक्षिणतस्तथा ॥२४
पार्श्वायता चिरायुः स्याद् भूपरिष्ठाद्धनेश्वरः।
अधो गवाढ्यं कुर्य्याच्च नृपत्वं पद्मकर्णिका ॥२५
एकबलिः शतायुः स्याच्छीभोगी द्विबलिः स्मृतः।
त्रिबलिः क्ष्माप आचार्य्य ऋजुभिर्बलिभिः सुखी॥
अगम्यागामी जिह्मबलिः भूपाः पार्श्वैश्च मांसलैः ॥२६
मृदुभिः सुसमैश्चैव दक्षिणावर्त्त रोमभिः।
विपरीतैः परप्रेष्या निर्द्रव्याः सुखवर्जिताः ॥२७
अनुद्धतैश्चूचुकैश्च भवन्ति सुभगा नराः।
निर्धना विषमैर्दीर्घैः पीतोपचितकैर्नरैः ॥२८

जिन मनुष्यों के कक्ष समान होते हैं वे भोगों से युक्त हुआ करते हैं

और जिनके कक्ष निम्न होते हैं वे धन से उज्भित अर्थात् हीन होते हैं। उन्नत कक्षों वाले नृप एवं विषम कक्षों वाले पुरुष कुटिल प्रकृति से युक्त होते हैं ।।२२।। मत्स्य (मछली) के समान उदर वाले पुरुष बहुत अधिक धनी होते हैं। मत्स्य के तुल्य नाभियों से युक्त पुरुष सुखी बताये गये हैं। विस्तीर्ण—बहुत और निम्न नाभियों से युक्त क्लेशों के भोगने वाले होते हैं ।।२३।। जिस नाभि के मध्य में बलि होती है वह शूल की बाधा करने वाली होती है। वाम भाग की ओर जिसका आवर्त्त होता है वह साध्य होता है तथा दक्षिणावर्त्त नाभि मेधा को प्रकट करती है ।।२४।। पार्श्व में आयत चिरायु देने वाली होती है। भूपरिष्ठ होने से धनों का स्वामी होता है। नीचे की ओर होने वाली गौओं से सम्पन्नता प्रकट करती है तथा पद्म की कर्णिका के तुल्य नाभि नृपत्व की सूचक है ।।२५।। एक बलि जिसमें हो वह शतायु प्रदान करने वाली है। दो बलि जिसमें हों वह पुरुष श्री का भोग करने वाला होता है। तीन बलि भूमिका पति एवं आचार्य होना सूचित करती हैं और ऋजु अर्थात् सरल त्रलियों से पुरुष सुखी कहा गया है। जिसकी बलि जिह्म (कुटिल) हों वह अगम्या स्त्री के गमन करने वाला होता है और मांसल पार्श्वों से युक्त भूप होते हैं ।।२६।। मृदु और सुसमान तथा दक्षिण की ओर आवर्त्त वाले रोमों से युक्त भी भूप होते हैं। इसके विपरीत जिनके हैं वे परप्रेष्य—द्रव्य हीन और सुख से रहित हुआ करते हैं ॥२७।। अनुद्धत चूचूकों से मनुष्य सुभग अर्थात् अच्छे भाग वाले होते हैं। विषम—दीर्घ और पीतोपचितकों से मनुष्य निर्धन हुआ करते हैं ।। २८ ।।

समोन्नतश्च हृदयमकम्पं मांसलं पृथु ।
नृपाणामधमानाञ्च खररोमशिरालकम् ।।२९
अर्थवान्समबक्षाः स्यात्पीनैर्वक्षोभिरूर्जितः ।
वक्षोभिर्विषमैर्निस्वाः शस्त्रेण निर्धनास्तथा ॥३०
विषमैर्जत्रुभिर्निस्वा अस्थिनद्धैश्च मानवाः ।
उन्नतैर्भोगिनो निम्नैर्निःस्वाः पीनैर्धनान्विताः ।।३१
निःस्वश्चिपिटकण्ठः स्याच्छिराशुष्कगलः सुखी ।
शूरः स्यान्महिषग्रीवः शास्त्रान्तो मृगकण्ठकः ।।३२

कम्बुग्रीवश्च नृपतिर्लम्बकण्ठोऽतिभक्षकः।
अरोमशाभुग्नपृष्ठं शुभञ्चाशुभमन्यथा ॥३३
कक्षाऽश्वत्थदला श्रेष्ठा सुगन्धिमृं गरोमिका।
अन्यथा त्वर्थहीनानां दारिद्रयस्य च कारणम् ॥३४
समांसौ चैव भुग्नाल्पौ श्लिष्टौ च विपुलौ शुभौ।
आजानुलम्बितौ बाहू वृत्तौ पीनौ नृपेश्वरे॥
निःस्वानां रोमशौ ह्रस्वौ श्रेष्ठौ करिकरप्रभौ ॥३५

नृपों का हृदय कम्प से रहित—सम एवं उन्नत होता है एवं मांसल और पृथुभी हुआ करता है। जो अधम श्रेणी के मनुष्य होते हैं उनका हृदय खर-रोमों वाला तथा शिरालक होता है ॥२९॥ समान वक्षःस्थल वाला पुरुष अर्थवान् हुआ करता है। जिसका वृक्षःस्थल पीन होता है वह ऊर्जित होता है विषम अर्थात् नतोन्नत वक्ष वाले पुरुष निःस्व अर्थात् निर्धन होते हैं तथा वे शास्त्र से भी निर्धन हुआ करते हैं ॥३०॥ जिनके जत्रु (हँसली) विषम होते हैं वे भी निःस्व होते हैं। अस्थिनद्ध उन्नत होने पर मनुष्य भोगी हुआ करते हैं। निम्न होने पर निर्धन एवं पीन होने से धन युक्त हुआ करते हैं ॥ ३१ ॥ चिपिट कण्ठ वाला पुरुष भी निःस्व होता है शिरा शुष्क गले वाला पुरुष सुखी होता है। महिष के समान ग्रीवा (गरदन) वाला मानव शूरवीर होता है और मृग के तुल्य जिसका कण्ठ होता है वह शास्त्रों को साद्यन्त जानने वाला हुआ करता है॥३२॥ कम्बु के सदृश जिसकी ग्रीवा होती है वह नृपति का लक्षण होता है। जिसका कण्ठ लम्बा होता है वह अत्यन्त भक्षण करने वाला होता है। बिना रोमों वाला और अभुग्न पृष्ठ वाला शुभ एवं अशुभ दोनोंही हुआ करते हैं। पीपल के पत्र के तुल्य सुन्दर गन्ध वाली एवं मृग के सदृश रोमों वाली कक्षा शुभ एवं श्रेष्ठ होतीहै अन्यथा अर्थसे हीनोंके दारिद्र्य का कारण हुआ करती है॥३३।३४॥ समान अंस (कन्धे) थोड़े से भुग्न एवं श्लिष्ट तथा विपुल शुभ हुआ करते हैं। घुटनों तक लम्बे-वृत्त एवं पीन भुजाऐ नृपेश्वरकी हुआ करती हैं। जो निःस्व होते हैं उनकी बाहुऐं रोमों वाली—ह्रस्व (छोटी)होती हैं। हाथी की सूंड़ की प्रभा रखने वाली भुजाऐं श्रेष्ठ हुआ करती हैं ॥३५॥

हस्ताङ्गुलय एव स्युर्वायुद्वारनिभाः शुभाः ।
मेधाविनाञ्च सूक्ष्माः स्युर्भृत्यानां चिपिटाः स्मृताः ॥
स्थूलाङ्गुलीभिर्निःस्वाः स्युर्नताः स्युः सुकृशैस्तदा ॥३६
कपितुल्यकरा निःस्वा व्याघ्रतुल्यकरैर्बलम् ।
पितृवित्तविनाशश्च निम्नात्करतलान्नराः ॥३७
मणिबन्धैर्निगूढ़ैश्च सुश्लिष्टैः शुभगन्धिभिः ।
नृपा हीनाः करच्छेदैः सशब्दैर्धनवर्जिताः ॥३८
सवृतैश्चैव निम्नैश्च धनिनः परिकीर्त्तिताः ।
प्रोत्तानकरदातारो विषमैर्विषमा नराः ॥३९
करैः करतलैश्चैव लाक्षाभैरीश्वरस्तनैः ।
परदाररताः पीतै रूक्षैर्निःस्वा नरा मताः ।४०
तुषतुल्यनखाः क्लीवाः कुटिलैः स्फुटितैर्नराः ।
निःस्वाश्च कुनखैस्तद्वद्विवर्णैः परतर्कका ॥४१
ताम्रैर्भूपा धनाढ्याश्च अङ्गुष्ठैः सयवैस्तथा ।
अङ्गुष्ठमूलजैः पुत्री स्याद्दीर्घाङ्गुलिपर्वकः ॥४२
दीर्घायुः सुभगश्चैव निर्धनो विरलाङ्गुलिः ।
घनाङ्गुलिश्च सधनस्तिस्रो रेखाश्च यस्य वै ॥
नृपतेः करतलगा मणिबन्धात्समुत्थिताः ॥४३

हाथों की अँगुलियाँ जो वायु द्वार के सदृश होती है वे शुभ हुआ करती हैं। जो मेधावी पुरुष होते हैं उनकी हाथों की अँगुलियाँ सूक्ष्म हुआ करतीहैं और जो भृत्य श्रेणी के मानव हुआ करते हैं उनकी अँगुलियाँ चिपिटी कही गईं हैं। जिनकी अँगुलियाँ स्थूल होतीहैं वे निःस्व हुआ करते हैं और सुकृश अँगुलियों वाले नत होते हैं ॥३६॥ बन्दर के समान करों वाले मानव निर्धन होते हैं। व्याघ्र के तुल्य हाथों वाले पुरुष बली होतेहैं। निम्न (नीचे) करतल वाले मनुष्यों के पितृवित्त का विनाश हो जाया करता है ॥३७॥ सुश्लिष्ट–निगूढ़और शुभ गन्ध वाले मणिबन्ध (कनिष्ठा अँगुलि पर्यन्त करके भाग का

नाम) के होने में नृप होता है। सशब्द कर छेदों से हीन एवं धन से वर्जित होता है ॥३८॥ त और निम्न करों वाले धनी बतलाये गये हैं। प्रोत्तान करों वाले पुरुष दाता होते हैं। जिनके कर विषम होते हैं वे मनुष्य भी विषम प्रकृति वाले होते हैं ॥३९॥ लाक्षा (लाल) के समान आभा वाले जिनके कर एवं करतल होते हैं वे ईश्वर अर्थात् स्वामी हुआ करते हैं। पीत वर्ण वाले पराई स्त्रियों से रति करने वाले और रूक्षता युक्त जिनके करतल होते हैं वे मनुष्य निःस्व अर्थात् निर्धन हुआ करते हैं ॥४०॥ जिन पुरुषों के तुष के तुल्य नख होते हैं वे क्लीव अर्थात् पुंस्त्व हीन हुआ करते हैं। जिनके नाखून कुटिल एवं स्फुटित होते हैं वे निःस्व होते हैं। कुनखों वाले और विवर्ण युक्त नखों वाले मनुष्य पराया तर्क करने वाले हुआ करते हैं ॥४१॥ ताम्र वर्ण के नखों वाले भूप तथा धनाढ्य होते हैं। जिनके अंगूठों में यव की रेखा होती है वे भी धन सम्पन्न होते हैं। अंगुष्ठ के मूल में यव हो तो पुत्री दीर्घाङ्गुलि पर्वों वाला पुरुष दीर्घ आयु वाला सुभग होता है। विरल अंगुलियों वाला निर्धन होता है। जिसकी अंगुलियाँ घनी होती हैं वह भी पुरुष धन-समन्वित हुआ करता है और जिसके तीन रेखाएँ होती हैं वह धनी होता है ॥४२॥ नृपति की अंगुलियां करतल में गमन करती हुई मणि वन्ध तक समुत्थित हुआ करती हैं ॥४३॥

युगमीनाङ्कितनरो भवेत्सत्रप्रदो नरः।
वज्राकाराश्च धनिनां मत्स्यपुच्छनिभा बुधे ॥४४
शङ्खातपत्रशिबिकागजपद्मोपमा नृपे।
कुम्भाङ्कुशपताकाभा मृणालाभा निधिश्वरे ॥४५
दामाभाश्च गवाढ्यानां स्वस्तिकाभा नृपेश्वरे।
चक्रासितोमरधनुर्दन्ताभा नृपतेः करे ॥४६
उलूखलाभा यज्ञाढ्या वेदाभाश्चाग्निहोत्रिणि।
वापीदेवकुल्याभाश्च त्रिकोणाभाश्च धार्मिके ॥४७
अङ्गुष्ठमूलगा रेखाः पुत्राश्च सुखदायकाः।
प्रदेशिनीगता रेखा कनिष्ठामूलगामिनी।
शतायुषश्च कुरुते छिन्नया तरते भयम् ॥४८

दो मीन की रेखाओं से युक्त मनुष्य सत्रप्रद हुआ करता है । वज्र के आकार के समान आकार की रेखाऐं धनियों के हुआ करती हैं। बुध पुरुषके मत्स्य की पूँछ के समान रेखा हुआ करती है।।४४।। शङ्ख–आतपत्र (छत्र)-शिविका (पालकी)-गज और पद्म के तुल्य रेखाऐं नृप होना सूचित किया करती हैं । कुम्भ-अंकुश-पताका और मृणाल के सदृश आभा वाली रेखाऐं निधीश्वर के करतल में हुआ करती हैं ।।४५।। दाम (रज्जु) की आभा वाली रेखा गवाढ्यों के होतीहै । स्वस्तिक(साथिया)की आभासे युक्त रेखा नृपेश्वर के करतल में हुआ करती है । चक्र–असि (खड्ग)-तोमर-धनुष और दन्त की आभा वाली रेखाऐं राजा के करतल में होती हैं ।।४६।। उलूखल के समान रेखा वाले पुरुष यज्ञाढ्य होतेहैं और वेदी के तुल्य रेखा अग्निहोत्री के कर में हुआ करती है । वावड़ी–देव कुल्या के सदृश रेखाऐं तथा त्रिकोण की रेखा धार्म्मिक पुरुष के करतल में हुआ करती हैं ।।४७।। जिसके अंगुष्ठ के मूल में गमन करने वाली रेखा होतीहै उसके पुत्र परम सुख देने वाले हुआ करते हैं। कनिष्ठिका अँगुलिके मूलमें गमन करने वाली प्रवेशिनी अँगुलि गत रेखा जिस पुरुष के होती है वह उसे सौ वर्ष की आयु वाला किया करती है और यदि यह रेखा छिन्न हो तो भी भयों से पार करने वाली होती है ।।४८।।

निःस्वाश्च बहुरेखाः स्युर्निर्द्रव्याश्चिबुकैः कृशैः ।
मांसलैश्च धनोपेता आरक्तैरधरैर्नृपाः ।।४६
विम्बोपमैश्च स्फुटितैरोष्ठैरूक्षैश्च खण्डितैः ।
त्रिषमैर्धनहीनाश्च दन्ताः स्निग्धा घनाः शुभाः ।।५०
तीक्ष्णा दन्ताः समा श्रेष्ठा जिह्वा रक्ता समाः शुभाः ।
श्लक्ष्णा दीर्घा च विज्ञेया तालुः श्वेतो धनक्षये ।।५१
कृष्णा च परुषा वक्त्रं समं सौम्यञ्च संवृतम् ।
भूपानाममलं श्लक्ष्णं विपरीतञ्च दुःखिनाम् ।।५२

बहुत-सी रेखाऐं जो किसी के करमें हों तो वे उसे निर्धन किया करती हैं। कृश चिवुक (ठोड़ी) वाले पुरुष भी द्रव्य हीन होते हैं । जिनकी चिवुक

माँसल होती हैं वे मानव धन-सम्पन्न हुआ करते हैं। जिनके अधर थोड़े-थोड़े रक्तिमा लिये होते हैं वे नृप होते हैं॥४९॥ बिम्ब के फल के समान रक्त वर्ण वाले अधर जिनके हुआ करते हैं वे भी नृप होते हैं स्फुटित–खण्डित और रूक्ष एवं विषम ओठों वाले मनुष्य धन हीन हुआ करते हैं। दांत स्निग्ध और घने परम शुभ होते हैं॥५०॥ तीक्ष्ण और समान दाँत भी श्रेष्ठ होते हैं और जिह्वा रक्त वर्ण वाली एवं सम शुभ होती है। श्वेत तालु और श्लक्ष्ण एवं दीर्घ जिह्वा धन क्षय सूचित करने वाली होती है॥५१॥ धन के क्षय सूचित करने वाली पुरुष (कठोर) और कृष्णवर्ण वाली जिह्वा भी हुआ करती है। मुख सम-संवृत सौम्य होताहै। भूपों का मुख अमल एवं श्लक्ष्ण होताहै और जोदुखिया होतेहैं उनका मुख इसके विपरीत अवस्था वालाहुआ करताहै।५२॥

महादुःखं दुर्भगाणां स्त्रीमुखं पुत्रमाप्नुयात् ।
आढ्यानां वर्त्तुलं वक्त्रं निर्द्रव्याणाञ्च दीर्घकम् ॥५३
भीरुवक्त्रः पापकर्मा धूर्त्तानाञ्चतुरस्रकम् ।
निम्नं वक्रमपुत्राणां कृपणानाञ्च ह्रस्वकम् ॥५४
सम्पूर्णं भोगिनां कान्तं श्मश्रु स्निग्धं शुभं मृदु ।
संहतश्चास्फुटिताग्रं रक्तश्मश्रुश्च चौरकः ॥
रक्ताल्पपरुषश्मश्रुः कर्णाः स्युः पापमृत्यवः ॥५५
निर्मांसैश्चिपिटैर्भोगाः कृपणा ह्रस्वकर्णकाः ।
शङ्कुकर्णाश्च राजानो रोमकर्णा गतायुषः ॥५६
वृहत्कर्णाश्च धनिनो राजानः परिकीर्त्तिताः ।
कर्णैः स्निग्धैरनद्धैश्च व्यालम्बैर्मांसलैर्नृपाः ॥५७
भोगी वै निम्नगण्ड स्यान्मन्त्री सम्पूर्णगण्डकः ।
शुकनाशः सुखी स्याच्च शुष्कनासोऽतिजीवनः ॥५८
छिन्नाग्रकूपनासः स्यादगम्यागमने रतः ।
दीर्घनासे च सौभाग्यं चौरश्चाकुञ्चितेन्द्रियः ॥५९
मृत्युश्चिपिटनासः स्याद्धीनभाग्यवतां भवेत् ।
स्वल्पच्छिद्रा सुपटा च अवक्रा च नृपेश्वरे ॥६०

जो दुर्भाग्य वाले मानव होते हैं उनका मुख महा दुःख पूर्ण होता है और स्त्री–मुख पुत्र की प्राप्ति किया करता है। जो आढ्य मनुष्य होते हैं उनका मुख वर्त्तुलाकार (गोल) होताहै और जो द्रव्यहीन मनुष्य हुआ करते हैं उनका मुख दीर्घता वाला होता है अर्थात् लम्बा होता है।।५३।। पाप कर्मों के करने वालोंके मुख भीरुता से परिपूर्ण रहा करते हैं। धूर्तों का मुख चारों ओर की चेष्टाओं से सम्पन्न होते हैं। पुत्र रहित मानवोंका मुख निम्न होताहै तथा कृपणों का मुख छोटा होता है।।५४।। सम्पूर्ण और कान्त मुख भोगी पुरुषोंका होताहै। श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ) स्निग्ध और मृदु शुभ होतीहैं। जिसकी श्मश्रु संहत और अस्फुटित अग्र भाग वालीहो तथा रक्त-श्मश्रु हो वह चोर होता है। जिनके रक्त अल्प परुष श्मश्रु तथा वर्ण होते हैं वे पाप मृत्युवाले पुरुष हुआ करते हैं।५५। निर्मांस अर्थात् बिना माँस वाले-चिपिट कानोंवाले पुरुष भोगी होते हैं। ह्रस्व (छोटे) कानों वाले मनुष्य कजूस होते हैं। शंकु (कील) के सदृश जिनके कान होतेहैं वे राजा होते हैं। जिनके कानों पर रोम होते हैं वे गतायु हुआ करते हैं। बड़े-बड़े कानों वाले मनुष्य धनी हुआकरते हैं तथा स्निग्ध-अनद्ध और व्यालम्ब कानों वाले एवं मांसल पुरुष नृप होतेहैं ।।५६।५७।। जिनके गण्ड (कपोल) निम्न होते हैं वे भोगी होतेहैं और जिनके गण्ड स्थल सम्पूर्ण होते हैं वे मन्त्री पद के प्राप्त करने वाले होते हैं। शुक (तोता)के समान जिनकी नासिका होतीहै वेसुखी हुआ करतेहैं। शुष्क नाक वाले अत्यधिक जीवन वाले हुआ करतेहैं।५८। जिनकी नासिका के अग्रकूप छिन्न होते हैं वे पुरुष अगम्या (गमन न करने के योग्य) स्त्री के साथ गमन करनेमें रति रखने वाले हुआ करतेहैं। दीर्घ नाक वाला पुरुष सौभाग्यशाली होता है और अकुञ्चित इन्द्रिय (नाक) वाला मानव चोर होता है।।५९।। चिपिट नासिका वाला मनुष्य मृत्यु युक्त होता है तथा हीन भाग्य वाला भी होता है। स्वल्प छिद्र वाली नासिका वाले तथा सुन्दर पुर वाले एवं अवक्र नाक वाले नृपेश्वर हुआ करते हैं ।।६०।।

क्रूरे दक्षिणवक्रा स्याद्वलिनाश्च क्षुतं सकृत् ।
स्याद्विनिष्पिण्डितं ह्लादी सानुनादश्च जीवकृत् ।।६१

वक्रान्तैः पद्मपत्राभैर्लोचनैः सुखभागिनः ।
मार्जारलोचनैः पाप्मा दुरात्मा मधुपिङ्गलैः ॥६२
क्रूराः केकरनेत्राश्च हरिताक्षाः सकल्मषाः ।
जिह्मैश्च लोचनैः शूराः सेनान्यो गजलोचनाः ॥६३
गम्भीराक्षा ईश्वराः स्युर्मन्त्रिणः स्थूलचक्षुषः ।
नीलोत्पलाक्षा विद्वांसः सौभाग्यं श्यामचक्षुषाम् ॥६४
स्यात्कृष्णतारकाक्षाणामक्ष्णामुत्पाटनं किल ।
मण्डलाक्षाश्च पापाः स्युर्निःस्वाःस्युर्दीनलोचनाः ॥६५
त्वक् स्निग्धा विपुला भोगा अल्पायुर्नाभिरुन्नता ॥६६
विशालोन्नताः सुखिनो दरिद्रा विषमभ्रुवः ।
धनी दीर्घासंसक्तभ्रूर्बालेन्दून्नतसुभ्रुवः ॥६७

दक्षिण की ओर वक्र रहने वाली नासिका क्रूर पुरुष का लक्षण होता है। बलियों को एक बार ही छींक होती है जो कि विनिष्पिण्डित होती है। अनुवाद के सहित और ह्लाद वाली जीव कृत हुआ करती है ॥६१॥ वक्र जिनका अन्त भाग हो और पद्म पत्र के समान आभा वाले जो नेत्र होते हैं वे पुरुष सुख भागी हुआ करते हैं। मार्जार बिल्ली की आँखों जैसी जिन मनुष्यो की आँखें होती है वे पापी हुआ करते हैं। मधु के सदृश पिङ्गल वर्ण वाले नेत्र जिनके होते हैं वे दुष्ट आत्मा वाले मानव होते हैं ॥६२॥ केकर (भैंड़े-फिरती हुई आँख वाले) नेत्र वाले पुरुष क्रूर स्वभाव के होते हैं। हरित नेत्र वाले मनुष्य कल्मष युक्त हुआ करते हैं। जिह्म नेत्रों वाले शूरवीर होते हैं। हाथी के समान आंखों वाले पुरुष सेनानी (सेनाधिप) हुआ करते हैं॥ ६३ ॥ गम्भीर नेत्रों वाले ईश्वर (स्वामी) होते हैं और स्थूल चक्षुओं वाले पुरुष मन्त्री हुआ करते हैं। नील कमल के समान नेत्रों वाले मानव बड़े विद्वान् हुआ करते हैं। श्याम वर्ण की चक्षुओं वाले पुरुषों का बहुत अच्छा भाग होता है। जिनके नेत्रों के तारका कृष्ण वर्ण के हों तथा आँखों का उत्पाटन हो अर्थात् उभार हो और मण्डलके तुल्य नेत्र हों ऐसे पुरुष पापी-निःस्व और दीन लोचनों वाले हुआ करतेहैं। जिनकी त्वचा स्निग्ध होती है वे बहुत भोगोंके भोगने वाले

होते हैं। जिनकी नाभि उन्नत होती है वे अल्पायु होते हैं ॥६४।६५॥ ॥६६॥ विशाल और उन्नत भौहें जिन मनुष्यों की होती हैं वे संसार में सुखी होते हैं और विषम भ्रकुटियों वाले दरिद्र होते हैं। दीर्घ संसक्त भ्रू वाला और बालचन्द्र के समान भ्रू वाला पुरुष धनी हुआ करता है ॥ ६७ ॥

आढ्यो निःस्वश्च खण्डभ्रुर्मध्ये च विनतभ्रुवः ।
स्त्रीष्वगम्यास्वासक्ताः स्युः सुतार्थे परिवर्जिताः ॥६८
उन्नतैर्विपुलैः शङ्खैर्ललाटैर्विषमैस्तथा ।
निर्धना धनवन्तश्च अर्द्धेन्दुसदृशैर्नराः ॥६९
आचार्य्याः शुक्तिविशालैः शिरालैः पापकारिणः ।
ऊन्नताभिः शिराभिश्च स्वस्तिकाभिर्धनेश्वराः ॥७०
निम्नैर्ललाटैर्वधार्हाः क्रूरकर्मरतास्तथा ।
सवृतैश्च ललाटैश्च कृपणा उन्नतैर्नृपाः ॥७१
अनश्रुस्निग्धरुदितमदीनमशुभं नृणाम् ।
प्रचुरस्वेदिनं रूक्ष रुदितञ्च सुखावहम् ॥७२
अकम्पं हसितं श्रेष्ठं निमीलितमघावहम् ।
असकृद्धसितं दुष्टं सोन्मादस्य ह्यनेकधा ॥७३
ललाटोत्थसृतास्तिस्रो रेखाः स्युः शतवर्षिणाम् ।
नृपत्वं स्याच्चतसृभिरायुः पञ्चनवत्यथ ॥७४

खण्ड भ्रू वाला पुरुष आढ्य और निःस्व होता है। जिसकी भ्रू मध्य में विनत हों वह अगम्य स्त्री में आसक्त होता है और सुतार्थ परिवर्जित होता है ॥६८॥ उन्नत-विशाल-शङ्ख तथा ललाटों वाले पुरुष निर्धन होते हैं। अर्धचन्द्र के समान ललाटों वाले मनुष्य धन वाले हुआ करते हैं ॥ ६९ ॥ शुक्ति के समान विशाल ललाटों से युक्त आचार्य होते हैं। विशाल ललाट वाले पुरुष पाप कर्मों के करने वाले होते हैं। उन्नत शिराओं से समन्वित ललाटों वाले और स्वस्तिक के सदृश ललाटों वाले मनुष्य धनेश्वर हुआ करते हैं ॥ ७० ॥ जिनके ललाट निम्न हों वे वध के योग्य होते हैं तथा क्रूर कर्म करने में रति रखने

वाले हुआ करते हैं। संवृत ललाटों वाले मनुष्य कंजूस स्वभाव के होते हैं तथा उन्नत ललाट वाले नृप होते हैं ॥७१॥ बिना अश्रुओं वाला स्निग्ध रुदित अदीन तथा अशुभ होता है। जिस रुदन में अधिक प्रस्वेद होता है और रूक्ष होता है वह रुदित सुख वह हुआ करता है ॥ ७२ ॥ बिना कम्प वाला हसित श्रेष्ठ माना गया है। जो निमीलित हसित होता है वह अघ के देने वाला होता है। बार-बार हँसना दोष युक्त होता है। उन्माद युक्त का हसित अनेक बार हुआ करता है ॥७३॥ ललाट पर उपसृत तीन रेखाऐं यह सूचित करती हैं कि ऐसे पुरुष सौ वर्ष पर्यन्त जीने वाले होते हैं। चार रेखाऐं भूपति होना प्रकट किया करती हैं और पांच रेखाऐं नव्वे वर्ष की आयु बतलाया करती हैं ॥७४॥

अरेखेनायुर्नवतिर्विच्छिन्नाभिश्च पुंश्चला:।
केशान्तोपगताभिश्च अशीत्यायुर्नरो भवेत् ॥७५
पञ्चभि: सप्तभि: षड्भि: पञ्चाशद्बहुभिस्तथा।
चत्वारिंशच्च रक्ताभिस्त्रिशद्भ्रूलग्नगामिभि:।
विंशतिर्वामवक्राभिरायु: क्षुद्राभिरल्पकम् ॥७६
छत्राकारै: शिरोभिस्तु नृप: शिवमयो धनी।
चिपिटैश्च पितुर्मृत्युधनाढ्य: परिमण्डलै: ॥
घटमूर्द्धा पापरुचिर्धनाद्यै: परिवर्जित: ॥७७
कृष्णैराकुञ्चितै: केशै: स्निग्धैरेकैकसम्भवै:।
अभिन्नाग्रैश्च मृदुभिर्न चातिबहुभिर्नृपा: ॥७८
बहुमूलैश्च विषमै: स्थूलाग्रै: कपिलैस्तथा।
निम्नैश्चैवातिकुटिलैर्घनैरसितमूर्द्धजै: ॥७९
यद्यद्गात्र महारूक्ष शिराल मांसवर्जितम्।
तत्तत्स्यादशुभं सर्वं शुभं सर्वं ततोऽन्यथा ॥८०
विपुलस्त्रिषु गम्भीरो दीर्घ: सूक्ष्मश्च पञ्चसु।
षडुन्नतश्चतुर्ह्रस्वो रक्त: सप्त: समो नृप: ॥८१
नाभि: स्वरश्च बुद्धिश्च त्रयं गम्भीरमीरितम्।
पुस: स्यादतिविस्तीर्णं ललाटं वदनमुर: ॥८२

चक्षुःकक्षदन्तनासा षट्स्युर्मुखकृकाटिकाः ।
उन्नतानि च ह्रस्वानि जङ्घाः ग्रीवा च लिङ्गकम् ।।८३
पृष्ठश्चत्वारि रक्तानि करतालवधरा नखाः ।
नेत्रान्तपादजिह्वोष्ठाः पञ्च सूक्ष्माणि सन्ति वै ।।८४

अरेख ललाट से भी नब्वे वर्ष की आयु प्रकट होती है । विच्छिन्न रेखाओं से मनुष्य पुंश्चल होते हैं । केशान्त में उपगत रेखाओं से अस्सी वर्ष की आयु व्यक्त होती है ।।७५।। पाँच छै सात से पचास वर्ष की आयु, बहुत सी रेखाओं से चालीस साल की–रक्त रेखाओं से जो भ्रू लग्न गामी हों तीस साल की आयु प्रकट होती है। बाईं ओर वक्र रहने वाली रेखा-ओं से बीस वर्ष की उम्र तथा क्षुद्र रेखाओं से अल्प आयु प्रकट हुआ करती है ।।७६।। छत्र के समान आकार वाले शिरों से मनुष्य शिवमय धनी एवं नृप होते हैं । चिपिट शिरों वालों के पिता की मृत्यु होती है और परिमंडल शिर से मानव धनी होता है । घट के समान मूर्धा वाला पुरुष पाप में रुचि वाला होता है और धनादि से रहित होता है अर्थात् सुख प्रदायक वस्तुओं का उसे अभाव रहता है ।।७७।। कृष्ण वर्ण वाले–थोड़े कुञ्चित–स्निग्ध–एक–एक उत्पन्न जिनके अग्र भाग अभिन्न हों तथा मुलायम और अत्यन्त घने न हों ऐसे केशों वाले पुरुष नृप होते हैं ।।७८।। बहुमूल–विषम स्थूल अग्र भाग वाले–कपिल वर्ण से युक्त निम्न–अत्यन्त कुटिल घने तथा केशों वाले पुरुष अशुभ होते हैं । अङ्ग जो–जो भी हों वह महान् रूक्षा–शिराल अर्थात् जिसमें शिरायें चमक रहीं हों तथा मांस से रहित हों वे सभी अशुभ होतेहैं । इनके विपरीत सब शुभ कहे गयेहैं।।७९।। ।।८०।। तीन में विपुल-दीर्घ और गम्भीर-पाँचमें सूक्ष्म-छै उन्नत-चार ह्रस्व और सात रक्त हों तो वह मनुष्य नृप होता है।।८१।। नाभि-स्वर और बुद्धि ये तीन गम्भीर बताये गये हैं । पुरुष का ललाट–वदन और उरःस्थल विस्तीर्ण होना चाहिए ।।८२।। नेत्र-कक्ष–दाँत-नासिका-मुख और कृकाटिका घांटी) ये छै उन्नत होने चाहिए । जाँघ–ग्रीवा (गरदन) और लिङ्ग तथा पृष्ठ ये ह्रस्व होने चाहिए ।।८३।। कर–तालु–अधर और नख ये चार रक्त वर्ण

वाले परम शुभ होते हैं। नेत्रान्त पाद-जिह्वा ओष्ठ ये पांच सूक्ष्म शुभ एवं प्रशस्त होते हैं ॥८४॥

दशनाङ्गुलिपर्वाणि नखकेशत्वचः शुभाः ।
दीर्घाः स्तनान्तरं वाहुदन्तलोचननासिकाः ॥८५
नराणां लक्षणं प्रोक्तं वदामि स्त्रीषु लक्षणम् ।
राज्याः स्निग्धौ समौ पादौ तलौ ताम्रौ नखौ तथा ॥
श्लिष्टाङ्गुली चोन्नताग्रौ तां प्राप्य नृपतिर्भवेत् ॥८६
निगूढ़गुल्फोपचितौ पद्मकान्तितलौ शुभौ ।
अस्वेदिनौ मृदुतलौ मत्स्याङ्कुशध्वजाश्चितौ ॥
वज्राब्जहलचिह्नौ च राज्ञ्याः पादौ ततोऽन्यथा ॥८७
जङ्घे च रोमरहिते सुवृत्ते विशिरे शुभे ।
अनूल्बणा सन्धिदेशं समं जानुद्वयं शुभम ॥८८
ऊरू करिकराकारावरोमौ च समौ शुभौ ।
अश्वत्थपत्रसदृश विपुलं गुह्यमुत्तमम् ॥८९
श्रोणीललाटकं स्त्रीणां उरः कूर्मोन्नतं शुभम् ।
गूढ़ो मणिश्च शुभदो नितम्बश्च गुरुः शुभः ॥९०

दशन-अँगुलि पर्व-नख-केश-त्वचा ये दीर्घ शुभ होते हैं। स्तनों का मध्यान्तर भाग-वाहु-दन्त लोचन और नासिका ये भी दीर्घ प्रशस्त होते हैं ॥८५॥ अब तक पुरुषों के लक्षण बताये गये हैं। इससे आगे अब स्त्रियों के लक्षण बताते हैं। रानीके पाद स्निग्ध-सम होते हैं तथा उनके पद तल और नख ताम्रवर्ण के हुआ करते हैं। अंगुलियाँ एक दूसरे से सटी हुई श्लिष्ट होती हैं तथा अग्र भाग उन्नत होता है। ऐसे लक्षणों वाली नारी को प्राप्तकर पुरुष नृपति हो जाता है ॥८६॥ राज्ञी के चरण निगूढ़ गुल्फ वाले-उपचित-पद्म के समान कान्ति से युक्त तलों वाले-बिना स्वेद (पसीना) वाले-अत्यन्त मुलायम-मत्स्य, अंकुश, ध्वज, वज्र, अब्ज और हल के चिह्नों से युक्त परम शुभ हुआ करते हैं। इसके विपरीत अशुभ हैं॥८७॥नारी की जाँघें रोमों से रहित

सुवृत्त–बिना शिराओं वाली अर्थात् जिनमें शिराएें न चमकती हों ऐसी परम शुभ होती हैं। नारी का सन्धि भाग उल्वण नहीं होना चाहिए। दोनों जानु (घुटने समान हों-ये लक्षण शुभ बताये गये हैं ॥८८॥ नारी के ऊरू हाथी के सूड़ के समान उतार–चढ़ाव वाले बिना रोमों वाले और समान शुभ हैं। अश्वत्थ (पीपल) के पत्र के समान विपुल गुह्य भाग उत्तम बताया गया है ॥८९॥ नारियों की श्रोणी-ललाट–उरःस्थल कूर्म के समान उन्नत शुभ होता है। मणि नारियों का गूढ़ शुभ प्रदान करने वाला होता है तथा नारियों के नितम्ब गुरु होना ही शुभ माने गये हैं ॥९०॥

विस्तीर्णा मांसोपचिता गम्भीरा विपुला शुभा ।
नाभिः प्रदक्षिणावर्त्ता मध्य त्रिबलिशोभितम् ॥९१
अरोमशौ स्तनौ पीनौ घनावविषमौ शुभौ ।
कठिना रोमशा शस्ता मृदुग्रीवा च कम्बुभा ॥९२
आरक्तावधरौ श्रेष्ठौ मांसलं वर्त्तुलं मुखम् ।
कुन्दपुष्पसमा दन्ता भाषितं कोकिलासमम् ॥९३
दाक्षिण्ययुक्तमशठं हंसशब्दसुखावहम् ।
नासा समा समपुटा स्त्रीणान्तु रुचिरा शुभा ॥९४
नीलोत्पलनिभं चक्षुर्नासिलग्नं शुभावहम् ।
न पृथू बालेन्दुनिभे भ्रुवौ चाथ ललाटकम् ॥
शुभमर्द्धेन्दुसस्थानमतुङ्गं स्यादलोमकम् ॥९५
अमांसल कर्णयुग्मं समं मृदु समाहितम् ।
स्निग्धनीलाश्च मृदवो मूर्द्धजाः कुञ्चिताः शुभाः ॥९६
स्त्रीणां समं शिरः श्रेष्ठं पादे पाणितलेऽथवा ।
वाजिकुञ्जरश्रीवृक्षयूपेषुयवतोमरैः ॥९७
ध्वजचामरमालाभिः शैलकुण्डलवेदिभिः ।
शङ्खतपत्रपद्मैश्च मत्स्यस्वस्तिकसद्रथैः ॥
लक्षणैरङ्कुशाद्यैश्च स्त्रियः स्यू राजबल्लभाः ॥९८

विस्तीर्ण–मांस से उपचित–विपुल और गम्भीर नाभि स्त्रियों की शुभ होती है जोकि दाहिनी ओर आवर्त्त वाली हो और मध्य भाग त्रिवली से सुशोभित होना चाहिए ॥९१॥ नारी के स्तन रोमों से रहित—पीन–घने और अविषम शुभ होते हैं। नारी की ग्रीवा कठिन–रोमों से युक्त–कम्बु के सदृश आकार वाली मृदु प्रशस्त होती है ॥९२॥ थोड़ी-सी रुक्तिमा से युक्त अधर नारी के श्रेष्ठ होते हैं। स्त्री का मुख वर्त्तुल और मांसल शुभ होता है। कुन्द की कली के समान श्वेत एवं सुन्दर नारी के दाँत प्रशस्त माने गये हैं तथा नारी का भाषित कोकिला की कण्ठ ध्वनि के समान मधुर एवं श्रुति प्रिय होना ही परम शुभ बताया गया है ॥ ९३ ॥ नारी के भाषण की प्रशस्तता तभी मानी जाती है जब उसका भाषण दाक्षिण्य से युक्त-शाठ्य से रहित और हंस की ध्वनि के समान सुख देने वाला हो। स्त्री की नासिका सम एवं समान पुटों वाली रुचिर और शुभ होती है ॥९४॥ नील उत्पल के सदृश नारीके नेत्र शुभावह होतेहैं जो असंलग्न न हों। बहुत बड़ी नहीं बल्कि बाल चन्द्र के समान भौहें शुभ होती हैं। नारी का ललाट अर्धचन्द्र के समान संस्थान वाला जो अधिक तुङ्ग न हो और लोमोंसे रहित शुभ होताहै॥९५॥ नारी के दोनों कान मांसल न होकर समान–मृदु एव समाहित होने चाहिए–ऐसे ही कान शुभ बताये गये हैं। स्त्री के केश स्निग्ध–नील–मृदुल और घुंघराले शुभ होते हैं ॥९६॥ स्त्रियों का मस्तक समश्रेष्ठ होता है। स्त्रियों के चरण और कर में अश्व-गज-श्रीवृक्ष-यूप–यव–तोमर-ध्वजा-चामर-माला-शैल–कुण्डल–वेदी–शङ्ख–छत्र–पद्म–मत्स्य–स्वास्तिक सद्रथ और अंकुश आदि शुभ चिन्हों में से अधिकाधिक लक्षण प्राप्त हों तो ऐसी नारी राज बल्लभ होती है ॥९७॥९८॥

निगूढ़मणिबन्धौ च पद्मगर्भोपमौ करौ।
न निम्नं नोन्नतं स्त्रीणां भवेत्करतलं शुभम् ॥
रेखान्विता त्वविधवां कुर्य्यात्संभोगिनी स्त्रियम् ॥९९
रेखा या मणिबन्धोत्था गता मध्यांगुलीकरे।
गता पाणितले या च योर्ध्वपादतले स्थिता ॥

स्त्रीणां पुंसां तथा सा स्याद्राज्याय च सुखाय च ॥१००
कनिष्ठिकामूलभवा रेखा कुर्याच्छतायुषम् ।
प्रदेशिनीमध्यमाभ्यामन्तरालगता सती ॥१०१
ऊना ऊनायुषं कुर्याद्रेखा चांगुष्ठमूलगा ।
बृहत्यः पुत्रास्ताः क्षीणाः प्रमदाः परिकीर्त्तिताः ॥१०२
स्वल्पायुषा बहुच्छिन्ना दीर्घाच्छिन्ना महायुषः ।
शुभन्तु लक्षणं स्त्रीणां प्रोक्तन्त्वशुभमन्यथा ॥१०३
कनिष्ठिकाऽनामिका वा यस्या न स्पृशते महीम् ।
अंगुष्ठं वा गतातीत्य तर्जनी कुलटा च सा ॥१०४
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां पिण्डिकाभ्यां जङ्घे चातिशिरालके ।
रोमशे चातिमांसे च कुम्भाकारं तथोदरम् ॥
वामावर्त्तं निम्नमल्पं दुःखितानाञ्च गुह्यकम् ॥१०५
ग्रीवया ह्रस्वया निःस्वा दीर्घया च कुलक्षयः ।
पृथुलया प्रचण्डाश्च स्त्रियः स्युर्नात्र संशयः ॥१०६

नारियों के मणिबन्ध निगूढ़ शुभ हैं । स्त्रियों के कर पद्म के मध्य भाग के समान प्रशस्तहोते हैं । स्त्रियों का करतल न अधिक निम्न और न अधिक उन्नत ही शुभ होता है । ये लक्षण नारीका रेखान्वित और अविधवा अर्थात् सौभाग्य वाली एवं सम्भोग शालिनी किया करते हैं ॥६६॥ जो रेखा नारी के मणिबन्धसे उठकर कर की मध्यमांगुलि तक आने वालीहै और ऊर्ध्व पाद तल में रेखा स्थित होती है । ऐसी रेखा स्त्रियोंके कर या पादमें हो या पुरुषों के हो वह राज्य और सुख के देने वाली हुआ करती है ॥१००॥ कनिष्ठिका अंगुलि के मूल भागमें उठी हुई रेखा शतायु बनातीहै प्रदेशिनी और मध्यमा अंगुलियों के अन्तराल में जाने वाली रेखा शत वर्ष की आयु बताती है और सतीत्व की सूचिका होती है ॥१०१॥ कुछ कम हुई तो कुछ कम आयु बढ़ाने वाली होती है । अंगुष्ठके मूल में गमन करने वाली रेखा यह बतलाती हैकि उसके बहुत पुत्र होते हैं किन्तु वे प्रमदाऐं क्षीण बताई गईं हैं ॥१०२॥ बहुत सी छिन्न होने वाली रेखाऐं स्वल्प आयु प्रकट किया करती हैं तथा

दीर्घाच्छिन्ना रेखाऐं महायुष प्रकट करतीहैं। यहाँ तक स्त्रियों के समस्त शुभ लक्षण बताये गयेहैं। इन उपर्युक्त लक्षणों के जो विपरीत लक्षण नारियोंके होते है वे अशुभ हुआ करते हैं ॥१०३॥ जिस नारी की कनिष्ठिका या अनामिका पैरकी अंगुलि भूमि का स्पर्श नहीं किया करतीहै अथवा अंगुष्ठ स्पर्शन करता हो वह अतीत होकर जाने वाली होती है। जिसकी तर्जनी भूमि का स्पर्श न करे वह कुलटा नारी होती है ॥१०४॥ दोनों पिण्डितकों (पिंडलियों) से ऊपर जिसकी जांघें रोमों वाली एवं अत्यन्त शिरालक हों एवं अत्यन्त मांसल हों और कुम्भ के आकार के सदृश उदर हो गुह्यभाग वामावर्त्ती निम्न और अल्प हो वह दुखिया होती है ॥१०५॥ ह्रस्व ग्रीवावाली निःस्वा होती है और दीर्घ ग्रीवा वाली के कुल का क्षय हो जाता है। यदि ग्रीवा पृथुल हो तो वह प्रचण्ड स्वभाव की स्त्री होती है इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१०६॥

केकरे पिङ्गले नेत्रे श्यामे लोलेक्षणाऽसती।
स्मिते कूपं गण्डयोश्च सा ध्रुवं व्यभिचारिणी ॥१०७
प्रलम्बिनो ललाटे तु देवरं हन्ति चाङ्गना।
उदरे श्वशुरं हन्ति पतिं हन्ति स्फिचोर्द्वयोः ॥१०८
या तु रोमोत्तरोष्ठी स्यान्न शुभा भर्त्तुरेव हि।
स्तनौ सरोमावशुभौ कर्णौ च विषमौ तथा ॥१०९
करालाः विषमा दन्ताः क्लेशाय च भवन्ति ते।
चौर्य्याय कृष्णमांसाश्च दीर्घा भर्त्तुश्च मृत्यवे ॥११०
क्रव्यादरूपैर्हस्तैश्च वृककाकादिसन्निभैः।
शिरालैर्विषमैः शुष्कैर्वित्तहीना भवन्ति हि ॥
समुन्नतोत्तरोष्ठी या कलहे रूक्षभाषिणी ॥१११
स्त्रीषु दोषा विरूपासु यत्राकारो गुणास्ततः।
नरस्त्रीलक्षणं प्रोक्तं वक्ष्ये तु ज्ञानदायकम् ॥११२

जिस नारी के नेत्र केकरे (भैंड़े) हों—पिङ्गल तथा श्याम वर्ण वाले हों और चञ्चल नेत्रों वाली हो वह नारी असती होती है। जब कोई नारी

हँसती या मुस्कराती है उस समय में जिसके कपोलों में गड्ढे पड़ जाते हों तो यह निश्चय ही समझ लेना चाहिए कि वह व्यभिचारिणी होती है ॥१०७॥ ललाट में जो प्रलम्बिनी होती है अर्थात् जिसका ललाट लम्बा होता है वह अङ्गना देवर का हनन करने वाली होती है। जिस नारी का उदर लम्बा होता है वह श्वशुर को मारने वाली होती है। ऊर्ध्व स्फिक वाली नारी पति का हनन किया करती है ॥१०८॥ जिसके होटों पर रोम होते हैं वह स्त्री अपने स्वामी के लिये शुभ नहीं हुआ करती है। रोमों से युक्त स्तन भी स्त्री के अशुभ होते हैं और विषम कान अशुभ हुआ करते हैं। कराल एवं विषम दाँत नारी के क्लेश के लिये ही हुआ करते हैं। कृष्ण मांस जिन दाँतों का होता है। वे चोरी के बताने वाले होते हैं। दीर्घ दाँतों वाली भर्त्ता की मृत्यु के लिये होती है ॥१०९॥ ॥११०॥ राक्षस के-से हाथ हों वृक, काक आदि के तुल्य-शिराल—विषम और शुष्क जिनके हाथ होते हैं वे वित्तहीन होती हैं। उत्तर ओष्ठ जिसके समुन्नत होते हैं वह कलह कारिणी और रूक्ष भाषण करने वाली होती है ॥१११॥ ये विरूपा स्त्रियों में दोष हुआ करते हैं। जहाँ आकार सुन्दर होता है वहाँ गुण भी हुआ करते हैं। इस प्रकार से यहाँ तक नर और नारियों के लक्षण बताये गये हैं। अब ज्ञान दायक विषय बतलाया जायगा ॥११२॥

३६—पवन विजय स्वरोदय

हरेः श्रुत्वा हरो गौरीं देहस्थं ज्ञानमब्रवीत् ॥१
कुजो वह्नी रविः पृथ्वी शौरिरोपः प्रकीर्त्तितः।
वायुसंस्थः स्थितो राहुर्दक्षरन्ध्रावभासकः ॥२
गुरुः शुक्रस्तथा सौम्यश्चन्द्रश्चैव चतुर्थकः।
वामनाडयान्तु मध्यस्थान् कारयेदात्मनस्तथा ॥३
यदा चार इडायुक्तस्तथा कर्म समाचरेत्।
स्थानसेवां तथा ध्यानं वाणिज्यं राजदर्शनम्।
अन्यानि शुभकर्माणि कारयेत् प्रयत्नतः ॥४
दक्षनाड़ीप्रवाहे तु शनिर्भौमश्च सैंहिकः।
इनश्चैव तथाप्येव पापानामुदयो भवेत् ॥५

शुभाशुभविवेको हि ज्ञायते तु स्वरोदयात् ।
देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सुविस्तराः ॥६
नाभेरधस्ताद्यः स्कन्द अङ्कुरास्तत्र निर्गताः ।
द्विसप्ततिसहस्राणि नाभिमध्ये व्यवस्थिताः । ७
चक्रवच्च स्थितास्तास्तु सर्वाः प्राणहराः स्मृताः ॥
तासां मध्ये त्रयः श्रेष्ठा वामदक्षिणमध्यमाः ॥८

सूतजी ने कहा-हरि के कथन का श्रवण करके हर ने गौरी को देह में स्थित ज्ञान बतलाया था । कुज (भौम) वह्नि, रवि, पृथ्वी, सौरि आप कहे गये हैं । वायु में स्थित रहने वाला राहु है जो दक्षरन्ध्राव-भासक होता है । गुरु शुक्र तथा चतुर्थ सौम्य चन्द्र वाम नाडी में अपने मध्यस्थ करावे और जब चार इडा से युक्त हो तब उस प्रकार के स्थान, सेवा,ध्यान, वाणिज्य और राजदर्शन कर्मों का समारम्भ करना चाहिए । एवं अन्य भी शुभ कर्म प्रयत्न पूर्वक कराने चाहिए ॥१ से ४॥ दक्ष नाडी प्रवाह में शनि, भौम और सिंह का इन (सूर्य) उस प्रकार से पापों का उदय होता है ॥५॥ स्वरोदय से इस तरह शुभ एवं अशुभ का विवेक जाना जाता है । इस देह के मध्य में बहुत से रूपों वाली सुविस्तार से युक्त नाड़ियाँ स्थित रहती हैं ॥६॥ नाभि के नीचे के भाग में जो स्कन्द है वहाँ पर से अङ्कुर निर्गत होते हैं जो दो सत्तर सहस्र नाभि के मध्य में व्यवस्थित हैं । वे सब चक्र की भाँति वहाँ पर स्थित हैं और सभी प्राणों की हरण करने वाली कही गई हैं ॥७॥ उन समस्तों के मध्य में वामदक्षिण और मध्य में रहने वाली तीन श्रेष्ठ बताई गई है ॥८॥

वामा सोमात्मिका प्रोक्ता दक्षिणा रविसन्निभा ।
मध्यमा च भवेदग्निः फलतां कालरूपिणी ॥
वामा ह्यमृतरूपा च जगदाप्यायने स्थिता ॥९
दक्षिणा रौद्रभागेन जगच्छोषयते सदा ।
द्वयोर्वाहे तु मृत्युः स्यात् सर्वकार्यविनाशिनी ॥
निर्गमे तु भवेद्वामा प्रवेशे दक्षिणा स्मृता ॥१०

इडाचारे तथा सौम्यं चन्द्रसूर्य्यगतस्तथा ।
कारयेत्क्रूरकर्माणि प्राणे पिङ्गलसंस्थिते ॥११
यात्रायां सर्वकार्य्येषु विषापहरणे इड़ा ।
भोजने मैथुने युद्धे पिङ्गला सिद्धिदायिका ॥१२
उच्चाटमारणाद्येषु कर्मस्वेतेषु पिङ्गला ।
मैथुने चव संग्रामे भोजने सिद्धिदायका ॥१३
शोभनेषु च कार्य्येषु यात्रायां विषकर्मणि ।
शान्तिमुक्त्यर्थसिद्धयै च इड़ा योज्या नराधिपैः ॥१४
द्वाभ्याञ्चैव प्रवाहे च क्रूरसौम्यविवर्जने ।
विषुवं तं तु जानीयात् संस्मरेत्तु विचक्षणः ॥१५

वाम भाग में स्थित सोम (चन्द्र) स्वरूपा कही गई है और दक्षिण भाग में स्थित नाड़ी रवि के तुल्य होतीहै तथा मध्यमा काल रूपिणी अग्नि है जो फल देने वाली है । वामा अमृत रूप वाली होती है जो जगत् के आप्यायन करने में अर्थात् संतृप्त करने के कार्य के लिए स्थित होती हैं॥६॥ दक्षिणा जो होती है वह रौद्र भागसे सदा इस जगत् का शोषण किया करतीहै । दोनोंके पार होने में मृत्यु होती है जो कि समस्त कार्यों के विनाश करने वाली होती है । निर्गम करने में वामा होतीहै और प्रवेश करने में दक्षिणा बताई गईहै । ॥१०॥षडाचार में जब सौम्य करे तथा चन्द्र सूर्यगत हो तब प्राणोंके पिङ्गल संस्थित होने पर क्रूर कर्मों को करना चाहिए॥११॥ यात्रा में,समस्त कार्य्यों में और विषों के अपहरण करने में इड़ा होती है तथा भोजन में, मैथुन में और युद्ध में पिङ्गला नाड़ी सिद्धि के प्रदान करने वाली होती है॥१२॥उच्चाटन और मारण आदि कार्यों में पिङ्गला मैथुन, सग्राम और भोजन में सिद्धि प्रदायिनी होती है ॥१३॥ राजाओं के शोभन कार्यों में, यात्रा में,विष कर्म में, शान्ति और उक्त अर्थों की सिद्धिके लिये इड़ा का योजन करना चाहिए । ॥१४॥ दोनों के प्रवाह में और क्रूर तथा सौम्य कार्य के विवर्जन में उसको विषुव जानना चाहिए तथा विचक्षण पुरुष को भली-भाँति स्मरण रखना चाहिए ॥१५॥

सौम्यादिशुभकार्य्येषु लाभादिजयजीविते ।
गमनागमने चैव वामा सर्वत्र पूजिता ॥१६
युद्धादौ भोजने घाते स्त्रीणाञ्चैव तु संगमे ।
प्रशस्ता दक्षिणा नाड़ी प्रवेशे क्षुद्रकर्मणि ॥१७
शुभाशुभानि कार्य्याणि लाभालाभौ जयाजयौ ।
जीवो जीवनायपृच्छेन्न सिध्यति च मध्यमा ।
वामाचारेऽथवा दक्षे प्रत्यये यत्र नायकः ॥१८
तनुस्थः पृच्छते यस्तु तत्र सिद्धिर्न संशयः ।
वैच्छन्दो वामदेवस्तु यदा वहति चात्मनि ।
तत्र भागे स्थितः पृच्छेत् सिद्धिर्भवति निष्फला ॥१९
वामे वा दक्षिणे वापि यत्र संक्रमते शिवा ।
घोरे घोराणि कार्य्याणि सौम्ये वै मध्यमानि च ॥
प्रस्थिते भागतो हंसे द्वाभ्यां वै सर्ववाहिनी ॥२०
तदा मृत्युं विजानीयाद्योगी योगविशारदः ।
यत्र यत्र स्थितः पृच्छेद्व मदक्षिणसंमुखः ॥२१
तत्र तत्र समं दिश्याद्वातस्योदयनं सदा ।
अग्रतो वामिका श्रेष्ठा पृष्ठतो दक्षिणा शुभा ।
वामेन वामिका प्रोक्ता दक्षिणे दक्षिणा शुभा ॥२२

सौम्य आदि शुभ कार्य्यों में तथा लाभ आदि जय एव जीवित में, गमन और आगमन में सब जगह वामा ही पूजित होती है ॥ ६॥ युद्ध आदि में, भोजन में, घात में तथा स्त्रियों के सङ्गम करने के कार्य में, प्रवेश करने में एवं अन्य क्षुद्र कर्म में दक्षिणा नाड़ी को प्रशस्त बनाया गया है॥१७॥ शुभ और अशुभ कार्य,जात-लाभ तथा अलाभ,जय और अजय एवं जीव जीव के लिये कभी कुछ भी न पुछे। वहाँ मध्यमा नाड़ी सिद्ध हुआ करती है। वामाचार में अथवा दक्षिणाचार में जिसमें नायक को विश्वास हो ॥१८॥ तनु में स्थित होता हुआ जो पूछता है वहाँ पर सिद्धि अवश्य ही होती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जब आत्मा में वैच्छन्द वामदेव वहन किया करता है उस

भाग में स्थित होता हुआ पूछता है तो सम्पूर्ण सिद्धि फल रहित हो जाया करती है ॥१९॥ वाम भाग में अथवा दक्षिण भाग में जहाँ पर शिवा संक्रमण किया करती है तो घोर में घोर कार्य और सौम्य में मध्यम कार्य करे। भाग से हंस के प्रस्थित होने पर और दोनों से सर्व वाहिनी हो तो उस समय में योग के महामनीषी योगी को निश्चय ही मृत्यु जाननी चाहिए। जहाँ-जहाँ पर वाम दक्षिण संमुख स्थित होता हुआ पूछे वहाँ वहाँ पर सदा घात का उदयन सम बतावे। अग्र भाग में वामिका श्रेष्ठ होती है और पृष्ठ भाग में दक्षिणा शुभा हुआ करती है। वाम से वामिका कही गई है और दक्षिण में दक्षिणी शुभ बताई गई है ॥२० से २२॥

जीवो जीवति जीवेन यच्छून्यं तत् स्वरो भवेत्।
यत्किञ्चित्कार्य्यमुद्दिष्टं जयादिशुभलक्षणम् ॥२३
तत्सर्वं पूर्णनाड्यान्तु जायते निर्विकल्पतः।
अन्यनाड्यादिपर्य्यन्तं पक्षत्रयमुदाहृतम् ॥२४
यावत्षष्ठीन्तु पृच्छायां पूर्णायां प्रथमो जयेत्।
रिक्तायान्तु द्वितीयस्तु कथयेत्तदशङ्कितः ॥२५
वामाचारसमो वायुर्जायते कर्मसिद्धिदः।
प्रवृत्ते दक्षिणे मार्गे विषमे विषमाक्षरम् ॥२६
अन्यत्र वामवहे तु नाम वै विषमाक्षरम्।
तदासौ जयमाप्नोति योधः संग्राममध्यगः ॥२७
दक्षवातप्रवाहे तु यदि नाम समाक्षरम्।
जायते नात्र सन्देहो नाडीमध्ये तु लक्षयेत् ॥२८
पिङ्गलान्तर्गते प्राणे शमनीयाहवञ्जयेत्।
यावन्नाड्योदयं चारस्तां दिशं यावदापयेत् ॥२९
न दातुं जायते सोऽपि नात्र कार्या विचारणा।
अथ संग्राममध्ये तु यत्र नाड़ी सदा वहेत् ॥३०
सा दिशा जयमाप्नोति शून्ये भङ्गं विनिर्दिशेत्।

जातचारे जयं विद्यान्मृतके मृतमादिशेत् ।
जयं पराजयं चैव यो जानाति स पण्डितः ॥३१

जीव जीव से ही जीवित रहा करता है । जो शून्य है वह स्वर होता है । जय आदि का शुभ लक्षण वाला जो कुछ भी कार्य उद्दिष्ट होता है वह सभी निर्विकल्प रूप से पूर्ण नाड़ी में होता है । अन्य नाड़ी आदि पर्य्यन्त तीन पक्ष बतलाये गये हैं ।।२३।२४।। षष्ठी तक पृच्छा में पूर्णा में प्रथम जय प्राप्त करता है और रिक्ता में द्वितीय को अशङ्कित होता हुआ कह देवे ।।२५।। वामाचार के समान वायु कर्म की सिद्धि देने वाली होती है । दक्षिण मार्ग के प्रवृत्त होने पर ही होता है । विषम होने में तो विषमाक्षर होता है ।। २६ ।। अन्य स्थान में वाम वाह होने पर जो नाम विषम अक्षर वाला होता है तब यह योद्धा संग्राम के मध्य में जय की प्राप्ति किया करता है ।।२७।। दक्ष वात के प्रवाह में यदि नाम में सम अक्षर हों तो अवश्य ही होता है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । नाड़ी के मध्य में लक्षित करना चाहिये ।। २८ ।। प्राण के पिङ्गला में अन्तर्गत होने पर शमनीद युद्ध में जय प्राप्त करता है । जब तक नाड़ी का उदय हो तब तक चार होता है । जब तक उस दिशा को प्राप्त करे ।।२९।। इस विषय में कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिये । इसके अनन्तर संग्राम के मध्य में जहाँ नाड़ी सदा वहन करती है वही दिशा जय को प्राप्त होती है । शून्य होने पर भङ्ग का निर्देश होता है । जाताचार में जय समझना चाहिए और मृतक में मृत का आदेश कर देना चाहिए । इस प्रकार से जय और पराजय को जो जानता है वह पण्डित होता है ।।३०।३१।।

वामे वा दक्षिणे वापि यत्र सञ्चरते शिवम् ।
कृत्वा तत्पादमाप्नोति यात्रा सन्ततशोभना ।।३२
शशिसूर्य्यप्रवाहे तु सति युद्धं समाचरेत् ।
तत्रस्थः पृच्छते यस्तु स साधुर्जयते ध्रुवम् ।।३३
यां दिशं बहते वायुस्तां दिशं यावदाजयेत् ।
जायते नात्र सन्देह इन्द्रो यद्यग्रतः स्थितः ।।३४

मेष्याद्या दश या नाड्यो दक्षिणा वामसंस्थिताः ।
चरस्थिरद्विमार्गे तास्तादृशे तादृशः क्रमात् ॥३५
निर्गमे निर्गमं याति संग्रहे संग्रहं विदुः ।
पृच्छकस्य वचः श्रुत्वा घण्टाकारेण लक्षयेत् ॥३६
बामे वा दक्षिणे वापि पञ्चतत्त्वस्थितः शिवे ।
ऊर्ध्वेऽग्निरध आपश्च तिर्य्यक्संस्थः प्रभञ्जनः ।
मध्ये तु पृथिवी ज्ञेया नभः सर्वत्र सर्वदा ॥३७
ऊर्द्ध्वं मृत्युरधः शान्तिस्तिर्य्यक् चोच्चाटयेत्सुधीः ।
मध्ये स्तम्भ विजानीयान्मोक्षः सर्वत्र सर्वगे ॥३८

बाम भाग में अथवा दक्षिण भाग में जहाँ शिव सञ्चरण करते हैं वहाँ यह करके जो पाद को प्राप्त करता है वह यात्रा सन्तत शोभन अर्थात् अच्छी हुआ करती है ॥ ३२ ॥ चन्द्र और सूर्य के प्रवाह होने पर युद्ध करे । वहाँ पर स्थित जो पूछता है वह साधु निश्चय ही जय प्राप्त करता है अर्थात् विजयी होता है ॥३३॥ जिस दिशा की ओर वायु वहन करता है उस दिशा को तब तक विजय किया करता है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है चाहे सामने इन्द्रदेव ही क्यों न खड़े हों ॥३४॥ मेषी आदि जो दश नाड़ियाँ हैं जो कि दक्षिण एवं वाम भाग में स्थित हैं वे चर-स्थिर और द्विमार्ग में क्रम से वैसे में वैसा ही होता है । निर्गम में निर्गम को प्राप्त करता है और संग्रह में संग्रह जानना चाहिए । पृच्छक के वचन का श्रवण कर घण्टाकार से देखना चाहिए ॥३५।३६॥ हे शिवे ! वाम भाग में अथवा दक्षिण भाग में पञ्च तत्त्व स्थित हैं । ऊर्ध्व भाग में अग्नि है, नीचे के भाग मे जल है, तिर्यक् संस्थ वायु है. मध्य भाग में पृथ्वी तत्त्व है और आकाश सर्वदा सर्वत्र ही जानना चाहिए ॥३७॥ ऊर्ध्व में मृत्यु है, अधोभाग में शान्ति होती है-तिर्यक् भागों में उच्चाटन होता है-मध्य में स्तम्भन जानना चाहिए और सर्वत्र सर्वंग में मोक्ष होता है ॥३८॥

३९—रत्नपरीक्षा — वज्रपरीक्षा

परीक्षां वच्मि रत्नानां बलो नामासुरोऽभवत् ।
इन्द्राद्या निर्जितास्तेन निर्जेतुं तैर्न शक्यते ॥१

वरव्याजेन पशुतां याचितः स सुरैर्मखे ।
बलो ददौ स्वपशुतामतिसत्त्वो दखे हतः ॥२
पशुवत्प्रविशेत्स्तम्भे स्ववाक्याशनियन्त्रितः ।
बलो लोकोपकाराय देवानां हितकाम्यया ॥३
तस्य सत्वविशुद्धस्य विशुद्धेन च कर्मणा ।
कायस्यावयवाः सर्वे रत्नबीजत्वमाययुः ॥४
देवानामथ यक्षाणां सिद्धानां पवनाशिनाम् ।
रत्नबीजमयं ग्राहः सुमहानभवत्तदा ॥५
तेषां तु पततां वेगाद्विमानेन विहायसा ।
यद्यत्पपात रत्नानां बीजं क्वचन किञ्चन ॥६
महोदधौ सरिति वा पर्वते काननेऽपि वा ।
तत्तदाकरतां यातं स्थानमाधेयगौरवात् ॥७

सूतजी ने कहा—अब मैं रत्नों की परीक्षा बतलाता हूँ। बल नाम धारी एक असुर हुआ था। उसने इन्द्र आदि समस्त देवगणों को जीत लिया था और वह इनसे नहीं जीता जा सकता था ॥ १ ॥ देवगणों के द्वारा मख में उस से वरके बहाने से पशुता की याचना की गई थी। बल ने अपने आपको पशुता प्राप्त करने के लिये दे दिया था और अत्यन्त सत्त्व वाला वह मख में मारा गया था ॥२॥ अपने वचन रूपी पाश से नियन्त्रण में प्राप्त हुआ वह पशु के समान स्तम्भ में प्रवेश कर गया था। बल ने यह कार्य लोकों के उपकार के लिये और देवों के हित की कामना से ही किया था ॥३॥ सत्त्व से विशुद्ध उसके शरीर के समस्त अवयव रत्नों के बीजत्व को प्राप्त हो गये थे ॥४॥ इसके अनन्तर देवों के-यक्षों के-सिद्धों के और पवन के अशन करने वालों के रत्न बीजमय ग्राह उस समय में सुमहान् हो गया था ॥ ५ ॥ आकाश मार्ग से विमान के द्वारा उनके महान् वेग से गिरने वाले रत्नों का जो-जो भी कुछ बीज गिरा था वह समुद्र में, नदी में, पर्वत में अथवा कानन में स्थान एवं आधेय के गौरव से वही वह स्थान उसका आकर बन गया था ॥६॥७॥

तेषु रक्षो विषव्यालव्याधिघ्नान्यघहानि च ।
प्रादुर्भवन्ति रत्नानि तथैव विगुणानि च ॥८
वज्रमुक्ता तु मणय: सपद्मरागाः समरकताः प्रोक्ताः ।
अपि चेन्द्रनीलमणिवरवैदूर्य्याश्च पुष्परागाश्च ॥९
कर्केतनं सपुलकं रुधिराख्यसमन्वितं तथा स्फटिकम् ।
विद्रुममणिश्च यत्नादुद्दिष्ट संग्रहे तज्ज्ञैः ॥१०
आकारवर्णौ प्रथमं गुणदोषौ तत्फलं परीक्ष्य च ।
मूल्यश्च रत्नकुशलैर्विज्ञेयं सर्वशास्त्राणाम् ॥११
कुलग्नेषूपजायन्ते यानि चोपहतेऽहनि ।
दोषैस्तानुपयुज्यन्ते हीयन्ते गुणसम्पदा ॥१२
परीक्षापरिशुद्धानां रत्नानां पृथिवीभुजा ।
धारणं संग्रहो वापि कार्य्यः श्रियमभीप्सता ॥१३
शास्त्रज्ञाः कुशलाश्चापि रत्नभाजः परीक्षकाः ।
त एव मूल्यमात्राया वेत्तारः परिकीर्त्तिताः ॥१४
महाप्रभावं विबुधैर्यस्माद्वज्रमुदाहृतम् ।
वज्रपूर्वा परीक्षेय ततोऽस्माभिः प्रकीर्त्यते ॥१५

उनमें रत्न पैदा होते हैं और उनमें राक्षस विष—व्याल—व्याधियों के नाशक तथा अघों के हनन करने वाले भी उत्पन्न होते हैं तथा विगुण भी होते हैं ॥८॥ वज्र (हीरा), मुक्ता (मोती), पद्मराग, मरकत ये मणियाँ कही गई हैं। इन्द्र, नीलमणि, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन सपुलक, रुधिराख्य, समन्वित, स्फटिक, विद्रुम मणि इनके संग्रह में मणियों के ज्ञाताओं ने यत्न से कहा है ॥९।१०॥ सर्व मणियों के आकार और वर्ण फिर उनके गुण एवं दोष तथा उनके फलों का परीक्षण करे। इसके पश्चात् सम्पूर्ण शास्त्रों के विद्वान् रत्नों की विद्या में परमल कुशल लोगों से उनका मूल्य भी जानना चाहिये ॥११॥ बुरी लग्नों में तथा अपहृत दिन में जो रत्न उत्पन्न होते हैं वे दोषों से उपयुक्त हुआ करते हैं और गुणों की सम्पत्ति से हीन होते हैं ॥१२॥ श्री की अभीप्सा रखने वाले

पृथ्वी के स्वामी के द्वारा भली-भाँति परीक्षण करके परम परिशुद्ध रत्नों का धारण करना या संग्रह करना चाहिये ।।१३।। शास्त्रों के ज्ञाता और परम कुशल रत्नों के रखने वाले पुरुष ही इनकी परीक्षा करने वाले हुआ करते हैं और वे ही इन रत्नों की मूल्य मात्रा के जानने वाले बताये गये हैं ।।१४।। विवुध लोगों ने महान् प्रभाव वाले वज्र (हीरा) को बतलाया है । यह वज्र परीक्षा सर्वप्रथम होती है जो कि इस समय में हमारे द्वारा परिकीर्त्तित की जाती है ।।१५।।

तस्यास्थिलेशो निपपात येषु भुवः प्रदेशेषु कथञ्चिदेव ।
वज्राणि वज्रायुधनिर्जिगीषोर्भवन्ति नानाकृतिमन्तितेषु।।१६
हैममातङ्गसौराष्ट्राः पौण्ड्रकालिङ्गकोशलाः ।
वेण्वातटाः ससौवीरा वज्रस्याष्टविहारकाः ।।१७
आताम्रा हिमशैलजाश्च शशिभा वेण्वातटीयाः स्मृताः
सौवीरे त्वसिताब्जमेघसदृशास्ताम्राश्च सौराष्ट्रजाः ।
कालिङ्गाः कनकावदातरुचिराः पीतप्रभाः कोशले
श्यामाः पुण्ड्रभवा मतङ्गविषये नात्यन्तपीतप्रभाः ।।१८
अत्यर्थं लघुवर्णतश्च गुणवत्पार्श्वेषु सम्यक्समं
रेखाबिन्दु कलङ्ककाकपदकत्रासादिभिर्वर्जितम् ।
लोकेऽस्मिन्परमाणुमात्रमपि यद्वज्रं क्वचिद् दृश्यते ।
तस्मिन्देव समाश्रयो ह्यवितथं तीक्ष्णाग्रधारं यदि ।।१६
वज्रेषु वर्णयुक्त्या देवानामपि विग्रहः प्रोक्तः ।
वर्णेभ्यश्च विभागः कार्यो वर्णाश्रयादेव ।।२०
हरितश्वेतपीतपिङ्गश्यामताम्राः स्वभावतो रुचिराः ।
हरिवरुणशक्रहुतवहपितृपतिमरुतां स्वका वर्णाः ।।२१
विप्रस्य शंखकुमुदस्फटिकावदातः
स्यात्क्षत्रियस्य शशवभ्रुविलोचनाभः ।।
वैश्यस्य कान्तकदलीदलसन्निकाशः शूद्रस्य
धौतकरवालसमानदीप्ति ।।२२

जिनमें भूमि के प्रदेशों में किसी भी प्रकार से ही उसका अस्थिलेश गिर गया था उनमें वज्रायुध (इन्द्र)के निर्जिगणुके अनेक आकृति वाले वज्र हुआ करते हैं ।।१६।। हैम–मातङ्ग—सौराष्ट्र–पौण्ड्र–कालिङ्ग कोशल–वेण्वातट–ससौवीर ये आठ वज्र के विहारक होते हैं ।।१७।। हिमशैल में समुत्पन्न वज्र (हीरा) थोड़े से ताम्र वर्ण वाले हुआ करते हैं । वेण्वातटीय वज्र चन्द्रमा की सी आभा से युक्त होते हैं । सौवीर वज्र असिताब्ज एवं मेघ के सदृश हुआ करते हैं । जो सौराष्ट्र में समुत्पन्न वज्र होते हैं वे ताम्र वर्ण के हुआ करते हैं कालिङ्ग वज्र कनक के समान अवदात एवं रुचिर होते हैं । कोशल देशमें उत्पन्न हुए वज्र पीत वर्ण की प्रभा से समन्वित होते हैं । पुण्ड्र में जिनकी उत्पत्ति होती है वे श्याम होते हैं । मतङ्ग में प्रभव होने वाले अत्यन्त पीत वर्ण की प्रभा से युक्त नहीं होते हैं ।।१८।। बहुत ही अधिक लघु वर्ण से युक्त गुण वाला वज्र होताहै जिसके पार्श्व भागोंमें भली-भाँति समान रेखा—विन्दु - कलङ्क–काक–पदक और त्रासादि से जो रहित होता है । ऐसा वज्र इस लोक में कहीं पर एक परमाणु के बराबर भी दिखलाई देता है और यदि अग्रधारा जिसमें तीक्ष्ण हो तो निश्चय ही उसमें देवोंका समाश्रय होता है । यह पूर्णतया सत्य बात है ।।१९।। वज्रों में वर्णों की युक्ति से देवों का भी विग्रह बतलाया गयाहै । वर्णों के आश्रयसे ही वर्णों से विभाग करना चाहिए ।।२०।। हरित्–श्वेत—पीत-पिङ्ग श्याम और ताम्र ये वर्ण सभी स्वाभाविक रूप से ही रुचिर हुआ करते हैं । ये वर्ण हरि—वरुण—इन्द्र–अग्नि–पितृपति और मरुत् देवों के अपने वर्ण होते हैं ॥२१।। विप्रका वर्ण शङ्ख कुमुद और स्फटिक के समान अवदात होता है । क्षत्रिय का वर्ण शश वभ्रु और विलोचन के सदृश आभा वाला होता है । वैश्य का वर्ण कान्त कदली (केला) के दल के तुल्य होता है और शूद्र का वर्ण धौत करवाल के सदृश दीप्ति से युक्त हुआ करता है ।।२२।।

द्वौ वज्रवर्णौ पृथिवीपतीनां सद्भिः प्रदिष्टौ न तु सार्वजन्यौ।
यः स्याज्जवाविद्रुमभङ्गशोणो यो वा हरिद्रारससन्निकाशः।२३

ईशत्वात्सर्ववर्णानां गुणवत्सार्ववर्णिकम् ।
कामतो धारयेद्राजा न त्वन्योऽन्यः कथञ्चन ॥२४
अधरोत्तरवृत्तो हि यादृवस्याद्वर्णसङ्करः ।
ततः कष्टतरो वज्री वर्णानां सङ्करो मतः ॥२५
न च मार्गविभागमात्रवृत्या विदुषा वज्रपरिग्रहो विधेयः ।
गुणवद्गुणसम्पदां विभूतिर्विपरीतो व्यसनोदयस्य हेतुः॥२६
एकमपि यस्य शृङ्गं विदलितमवलोक्यते विशीर्णं वा ।
गुणवदपि तन्न धार्य्यं श्रेयोऽर्थिभिर्भवने ॥२७
स्फुटिताग्निविशीर्णशृङ्गदेश मलवर्णैः पृषतैर्व्यपेतमध्यम् ।
न हि वज्रभृतोऽपि वज्रमाशु श्रियमन्याश्रयलालसां न कुर्य्यात्२८
यस्यैकदेशः क्षतजावभासो यद्वा भवेल्लोहितवर्णचित्रम् ।
न तत्र कुर्य्याद् ह्रियमाणमाशु स्वच्छन्दमृत्योरपि जीवनान्तम्। २६

वज्र के दो वर्ण पृथिवी पतियों के लिये सत्पुरुषों ने बतलाये हैं और ये वर्ण सर्व साधारण पुरुषों के लिये नहीं कहे गये हैं । एक वर्ण तो वह होता है जो जवा विद्रुम के भङ्ग के समान शोण हो और दूसरा इसके विकल्पमें हरिद्रा के रस के समान होता है ।।२३।। समस्त वर्णों का स्वामी होने के कारण सभी वर्णों के गुणों से वह युक्त होता है । इसलिये स्वेच्छा से राजा धारण कर सकताहै किन्तु राजाके अतिरिक्त अन्य कोईभी वर्ण वाला किसी भी प्रकार से धारण न करे ।।२४।। अधरोत्तर वृत्त वाला जैसा कि वर्णों की सङ्करता वालाहो । उससे वज्र रखने या धारण करने वाला कष्टतर होताहै। ऐसा वर्णों का सङ्कर माना गया है।।२५।। मार्ग के विभाग मात्र की वृत्ति से ही विद्वान् पुरुष को वज्र का परिग्रह कभी नहीं करना चाहिए । जो गुणों से समन्वित वज्र होता है वह गुण और सम्पदाओं की विभूति होता है । इसके विपरीत वज्र व्यसनों (कष्टों) के उदय का कारण हुआ करता है ॥२६।। जिस वज्र का एक भी शृङ्ग विदलित अथवा विशीर्ण यदि दिखलाई देता है तो चाहे अन्य गुणों से युक्त भी क्यों न हो उसे श्रेय के चाहने वाले पुरुषों को भवन में कभी धारण नहीं करना चाहिए ।।२७।। स्फुटित अग्नि के स श

विशीर्ण जिस हीरा का शृङ्ग देश हो और मल वर्ण वाले पृषतों (बिन्दु रेख) से मध्य भाग व्यपेत हो—ऐसे वज्र के धारण करने वाले का वह वज्र शीघ्र श्री नहीं करता है और उसे अन्याश्रय की लालसा भी नहीं करनी चाहिये ।।२८।। जिसका एक भाग क्षतजा के समान अब भासित होता है अथवा लोहित वर्ण से चित्रित सा हो उसे शीघ्रता में ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि वह स्वच्छन्द मृत्यु के भी जीवित का अन्त करने वाला होता है ।।२९।।

कोठ्यः पार्श्वानि धाराश्च षडष्टौ द्वादशेति च ।
उत्तुङ्गसमतीक्ष्णाग्रा वज्रस्याकरजा गुणाः ।।३०
षट्कोटिशुद्धममलं स्फुटतीक्ष्णधारं
वर्णान्वितं लघु सुपार्श्व मपेतदोषम् ।
इन्द्रायुधांशुविसृतिच्छुरितान्तरिक्षमेवं विधं
भुवि भवेत्सुलभं न वज्रम् ।।३१
तीक्ष्णाग्रं विमलमपेतसर्वदोषं धत्ते यः प्रयततनुः सदैव वज्रम् ।
वृद्धिस्तं प्रतिदिनमेति यावदायुः स्त्रीसम्पत्सुतधनधान्यगोपशूनाम् ३२
व्यालवह्निविषव्याघ्रतस्कराम्बुभयानि च ।
दूरात्तस्य निवर्त्तन्ते कर्माण्याथर्वणानि च ।।३३
यदि वज्रमपेतसर्वदोषं निभृयात्तण्डुलविंशति गुरुत्वे ।
मणिशास्त्रविदो वदन्ति तस्य द्विगुणं रूपकलक्षणमग्रमूल्यम् ।।३४
त्रिभागहीनार्द्धं तदर्द्धशेषं त्रयोदशं त्रिंशदतोऽर्द्ध भागः ।
अशीतिभागोऽथ शतांशभागः सहस्रभागोऽल्पसमानयोगः ।।३५
यत्तण्डुलैर्द्वादशभिः कृतस्य वज्रस्य मूल्यं प्रथमं प्रदिष्टम् ।
द्वाभ्यां क्रमाद्धानिमुपागतस्य त्वेकावसानस्य विनिश्चयोऽयम्।।३६

जिस वज्र की कोटियाँ, पार्श्व भाग और धाराऐं छै—आठ तथा बारह हों तथा उत्तुङ्ग—सम और तीक्ष्ण अग्रवाली हों ये हीरे के आकार (खान) में उत्पन्न होने वाले गुण हुआ करते हैं ।।३०।। छै कोटियों से युक्त - शुद्ध—अमल—स्फुट एवं तीक्ष्ण धाराओं वाला—वर्ण से युक्त-लघु—अच्छे पार्श्व भागों वाला—सम्पूर्ण दोषों से रहित और इन्द्रायुध

की किरणों की विभूति से छुरित अन्तरिक्ष वाला इस प्रकार का वज्र (हीरा) इस भूलोक में सुलभ नहीं हुआ करता है ।।३१।। तीक्ष्ण अग्रभाग से समन्वित – बिना मल वाला – समस्त दोषों से विवर्जित वज्र को जो कोई प्रयत शरीर वाला सर्वदा धारण किया करता है उसकी आये दिन वृद्धि होती है और वह जब तक जीवित रहता है उसे स्त्री—धन सुत धन—धान्य – गौ और पशुओं का पूर्ण सुख रहता है ।।३२।। उस पुरुष से व्याल (सर्प)—अग्नि—विष—व्याघ्र—तस्कर और जल के भय तथा आथर्वण कर्म अर्थात् मरणोच्चलाटनादि कर्म दूर से ही निवृत्त हो जाया करते हैं ।।३३।। यदि ऐसा वज्र अर्थात् हीरा जो सब प्रकार के दोषों से रहित हो और बीस तण्डुल (चावल) के बराबर गुरुत्व वाला हो उसे कोई पुरुष धारण करता है तो मणि शास्त्र के विद्वान् लोग उसका द्विगुण रूप लक्षण और अग्र मूल्य कहा करते हैं ।।३४।। विभाग होने का अर्ध और उसका अर्धशेष, त्रयोदश, तीस का अर्ध भाग, अशीति भाग, शतांस भाग, सहस्र भाग इसका समान योग होता है ।।३५।। बहुल वारह के द्वारा किया वज्र का मूल्य प्रथम ही बताया गया है । क्रम से दो के द्वारा हानि को उपागत एकावसान का यह विनिश्चय होता है ।।३६।।

न चापि तण्डुलैरेव वज्राणां धारणक्रमः ।
अष्टाभिः सर्षपैगौरैस्तडुलं परिकल्पयेत् ।३७
यत्तु सर्वगुणैर्युक्तं वज्रं तरति वारिणि ।
रत्नवर्गे समस्तेऽपि तस्य धारणमिष्यते ।।३८
अल्पेनापि हि दोषेण लक्ष्यालक्ष्येण दूषितम् ।
स्वमूल्याद्दशमं भागं वज्रं लभति मानवः ।।३९
प्रकटानेकदोषस्य स्वल्पस्य महतोऽपि वा ।
स्वमूल्याच्छतशो भागो वज्रस्य न विधीयते ।।४०
स्पृष्टदोषमलङ्कारे वज्रं यद्यपि दृश्यते ।
रत्नानां परिकल्पार्थं मूल्यं तस्य भवेल्लघु ।।४१

केवल तांडुलों (चावल) से ही जो गुरुत्व पहिले बताया गया है यही इस वज्र (हीरा) के धारण का क्रम नहीं होताहै । बल्कि आठ सफेद सरसों

से उस तण्डुल की परिकल्पना कर लेनी चाहिए ।।३७।। जो समस्त गुणों से युक्त वज्र जल में तैर जाया करता है और सम्पूर्ण रङ्ग वर्ण के होने पर भी उसका धारण करना अभीष्ट होता है ।।३८।। लक्ष्य और अलक्ष्य अल्प दोष से भी दूषित अपने मूल्य से दशम भाग जहाँ मानव प्राप्त करता है तथा प्रकट अनेक दोषों वाले छोटे अथवा बड़े का अपने मूल्यसे सौवाँ भाग वज्र का नहीं होता है ।।३६।४०।। दोषों से स्पृष्ट वज्र यद्यपि अलङ्कारों में दिखलाई दिया करता है। किन्तु रत्नों के परिकल्पित मूल्य से उसका मूल्य थोड़ा ही होता है ।।४१।।

प्रथमं गुणसम्पदाभ्युपेतं प्रतिबद्धं समुपैति यच्च दोषम् ।
अलमाभरणेन तस्य राज्ञो गुणहीनोऽपि मणिर्न भूषणाय४२
नार्या वज्रमधार्य्यं गुणवदपि सुतप्रसूतिमिच्छन्त्या ।
अन्यत्र दीर्घचिपटह्रस्वाद् गुणैर्विमुक्ताच्च ।।४३
अयसा पुष्परागेण तथा गोमेदकेन च ।
वैदूर्य्यस्फटिकाभ्याञ्च काचैश्चापि पृथग्विधैः ।।४४
प्रतिरूपाणि कुर्वन्ति वज्रस्य कुशला जनाः ।
परीक्षा तेषु कर्त्तव्या विद्वद्भिः सुपरीक्षकैः ।
क्षारोल्लेखनशालाभिस्तेषां कार्य्यं परीक्षणम् ।।४५
पृथिव्यां यानि रत्नानि ये चान्ये लोहधातवः ।
सर्वाणि विलिखेद्वज्रं तच्च तैर्न विलिख्यते ।।४६
गुरुता सर्वरत्नानां गौरवाधारकारणम् ।
वज्रे तां वैरीत्येन सूरयः परिचक्षते ।।४७
जातिरजातिं विलिखन्ति वज्रकुरुविन्दाः ।
वज्रैर्वज्रं विलिखति नान्येन विलिख्यते वज्रम् ।।४८
वज्राणि मुक्तामणयो ये च केचन जातयः ।
न तेषां प्रतिबद्धानां भा भवत्यूर्ध्वगामिनी ।।४६
तिर्य्यक्क्षतत्वात्केषाञ्चित्कथञ्चिद्यदि दृश्यते ।
तिर्य्यगालिख्यमानानां स पार्श्वेषु विहन्यते ।।५०

यद्यपि विशीर्णकोटिः स बिन्दुरेखान्वितो विवर्णो वा।
तदपि धनधान्य पुत्रान्करोति सेन्द्रायुधो वज्रः ॥५१
सौदामिनीविस्फुरिताभिरामं राजा यथोक्तं कुलिशंदधानः।
पराक्रमाक्रान्तपरप्रतापः समस्तसामन्तभुवं भुनक्ति ॥५२

सर्व प्रथम गुणों की सम्पदा से जो युक्त हो उसको ही ग्रहण करना उचित है। जहाँ पर दोष दिखाई देता हो उस वज्र को राजा के द्वारा आभरण के स्वरूप में धारण नहीं करना चाहिए क्योंकि गुणों से हीन मणि कभी भी भूषण के लिये उपयुक्त नहीं हुआ करता है ॥ ४२ ॥ पुत्र के प्रसव की इच्छा वाली नारी को गुणों से युक्त ही वज्र को धारण करना चाहिए। अन्यत्र दीर्घ चिपिट (परमल) के समान ह्रस्व और गुणों से विमुक्त अलङ्करण किया जाता है ॥४३॥ अय (लौह)-पुष्पराग-गोमेदक—वैदूर्य—स्फटिक और पृथक् प्रकार के काँचों के द्वारा कुशल पुरुष वज्र के प्रतिरूप अर्थात् इमिटेशन (नकली हीरा) किया करते हैं। अतएव भली भाँति परीक्षा करने वाले रत्नशास्त्र के विद्वानों को इसका परीक्षण (जाँच) कर लेनी चाहिए। क्षारोंल्लेखनशालाओं के द्वारा परीक्षण कार्य करना चाहिए ॥४४।४५॥ पृथिवी मण्डल में जितने रत्न हैं और अन्य जो लौह धातुएँ हैं वे सब वज्र के द्वारा विलिखित होती हैं किन्तु उनमें किसी के भी द्वारा वज्र विलिखित नहीं हुआ करता है ॥४६॥ समस्त रत्नोंमें वज्र की गुरुता होतीहै। इस गौरव के आधार का कारण भी होता है। सूरि वृन्द वज्र में अन्य सबसे विपरीत धर्मता बताते हैं। ॥४७॥ वज्र को कुरुविन्द जाति अजाति को विलिखित करते हैं। वज्र के द्वारा ही वज्र विलिखित होता है। अन्य किसी के भी द्वारा वज्र विलिखित नहीं किया जाता है ॥४८॥ वज्र मुक्तामणि जो कोई भी जातियाँ हैं उनके प्रतिबद्ध करने पर उनकी भी ऊर्ध्वगामिनी नहीं होती है ॥४९॥ तिर्यक् (तिरछा) क्षत होने से यदि कुछ की किसी प्रकार से दिखलाई देती है तो तिर्यक् आलिख्यमानों के यह पार्श्वों में विहन्यमान होजाता है॥५०॥ यद्यपि विशीर्ण कोटियों वाला-बिन्दु रेखासे युक्त अथवा विवर्ण हो तो भी सेन्द्रायुध वज्र धन-धान्य और पुत्रों के करने वाला होता है। सौदामिनी (विद्युत्) की विस्फुरित के

समान सुन्दर विस्फुरण वाला हीरा को जैसा कि बताया गया है, धारण करने वाला राजा पराक्रम से आक्रान्त पर प्रताप वाला सम्पूर्ण सामन्तों की भू का उपभोग किया करता है ॥५१।५२॥

३८—मुक्ता परीक्षा

द्विपेन्द्रजीमूतवराहशंखमत्स्याहिशुक्त्युद्भववेणुजानि ।
मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषाञ्च शुक्त्युद्भवमेव भूरि।१
तत्रैव चकस्य हि मूलमात्रा निविश्यते रत्नपरस्य जातु ।
वेध्यन्तु शुक्त्युद्भवमेव तेषां शेषाण्यवेध्यानिवदन्ति तज्ज्ञाः॥२
त्वक्सारनागेन्द्रतिमिप्रसूतं यच्छुघजं यच्च वराहजातम् ।
प्रायोविक्तानि भवन्ति भासा शस्तानि माङ्गल्यतया तथापि३
या मौक्तिकानामिह जातयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिता रत्नविनिश्चयज्ञैः।
कम्बूद्भवं तेष्वधमं प्रदिष्टमुत्पद्यते यच्च गजेन्द्रकुम्भात्॥४
स्वयोनिमध्यच्छवितुल्यवर्णं शाङ्खं वृहत्कोणपलप्रमाणम् ।
उत्पद्यते वारणकुम्भमध्यादापीतवर्णं प्रभया विहीनम् ॥५
ये कम्बवः शार्ङ्गमुखावमर्षपीतस्य शंखप्रवरस्य गोत्रे ।
मतङ्गजाश्चापि तिशुद्धवंश्यास्ते मौक्तिकानां प्रभवाः प्रदिष्टाः
उत्पद्यते मौक्तिकमेषु वृत्तमापीतवर्णं प्रभया विहीनम् ॥६
पाठीनपृष्ठस्य समानवर्णं मीनात् सुवृत्तं लघुचातिसूक्ष्मम् ।
उत्पद्यते वारिचराननेषु मत्स्याश्च ते मध्यचराः पयोधेः॥७

सूतजी ने कहा—मुक्ताफल अर्थात् मोती द्विपेन्द्र—जीमूत—वराह—शंख—मत्स्य—अहि (सर्प) और शुक्ति से उत्पन्न तथा वेणु से जन्म ग्रहण करने वाले प्रसिद्ध हैं। उन सबमें संसार में शुक्तियों (सीपों) से उद्गव प्राप्त करने वाले मोती ही अधिक हैं ॥१॥ उनमें रत्न पर एक की ही मूल मात्रा विनिवेशित की जाती है। जो सीप से समुत्पन्न मोती होते हैं उन सबमें वे ही मोती विद्ध हुआ करते हैं बाकी अन्य प्रकार से समुत्पन्न मुक्ताओं को इस शास्त्र के ज्ञाता लोग अवेध्य ही बतलाते हैं

॥२॥ त्वक्सार-नागेन्द्र (हाथी)-तिमि (रोहू मछली) से समुत्पन्न मोती और जो शंख से उद्भूत मोती तथा वराह से उत्पन्न होने वाला मुक्ता ये प्राय: भा से विमुक्त ही होते है तो भी माङ्गल्यता से इनको प्रशस्त कहा जाता है ॥३॥ रत्नों के विशेष निश्चय करने के ज्ञान को रखने वाले विद्वानों ने जो मौक्तिकों की आठ जातियां बतलाई है उन सब में सङ्ख से समुत्पन्न मोती अधम प्रकार का बताया गया है। जो मुक्ता गजेन्द्र के कुम्भस्थल से उत्पन्न होता है वह अपनी योनिके मध्यभाग की छविके तुल्य वर्ण वाला होता है। शङ्ख से समुत्पन्न मोती जो है वह बृहत्कोण पल के बराबर होता है। हाथी के कुम्भस्थल के मध्य से जो मुक्ता उत्पन्न होता है वह थोड़ा सा पीत वर्ण का और प्रभा से रहित होता है ॥४।५॥ जो कम्बु से उत्पन्न होने वाले मोती हैं वे शाङ्ग मुखावमर्षपीत शंखों में श्रेष्ठ के गोत्र में हुआ करते हैं। मतङ्ग हाथी, से उत्पन्न भी विशुद्ध वंश में होने वाले मुक्ता होते हैं। ये मौक्तिकों की उत्पत्तियाँ बतला दी गई है। इनमें जो मोती उत्पन्न होता है वह सुवृत्त और पाठीन (मछली) की पीठ के समान वर्ण वाला—लघु और अत्यन्त सूक्ष्म हुआ करता है। जलचरों के मुखों में वह मोती उत्पन्न होता है। वे मछलियां समुद्र के मध्य में विचरण करने वाली हुआ करती हैं॥७॥

वराहदंष्ट्राप्रभवं प्रदिष्टं तस्यैव दंष्ट्रांकुरतुल्यवर्णम्।
क्वचित् कथञ्चित् स भुवः प्रदेशे प्रजायते शूकरवद्विशिष्टः॥८
वर्षोपलानां समवर्णशोभं त्वक्सारपर्वप्रभवं प्रदिष्टम्।
ते वेणवो भव्यजनोपभोग्ये स्थाने प्ररोहन्ति न सार्वजन्ये॥९
भौजङ्गमं मीनविशुद्धवृत्तं संस्थानतोऽत्युज्ज्वलवर्णशोभम्।
नितान्तधौतप्रविकल्पमाननिस्त्रिंशधारासमवर्णकान्तिः॥१०
प्राप्यातिरत्नानि महाप्रभाणि राज्यं श्रियं वा महतीं दुरापाम्।
तेजोऽन्विताः पुण्यकृतो भवन्ति मुक्ताफलस्याहिशिरोभवस्य॥११
जिज्ञासया रत्नधनं विधिज्ञैः शुभे मुहूर्त्ते प्रयतैः प्रयत्नात्।
रक्षाविधानं सुमहद्विधाय हर्म्योपरिष्ठं क्रियते यदा तत्॥१२

तदा महादुन्दुभिमन्द्रघोषैर्विद्युल्लताविस्फुरितान्तरालैः।
पयोधरक्रान्तिविलम्बिनम्रै र्घनैर्घनैराध्रियतेऽन्तरिक्षम् ॥१३
न तं भुजङ्गा न तु यातुधाना न व्याधयो नाप्युपसर्गदोषाः।
हिंसन्ति यस्या हि शिरःसमुत्थं मुक्ताफलं तिष्ठति कोषमध्ये॥१४

वराह (शूकर) की दाढ़ से उत्पन्न मोती उसी की दाढ़ के अंकुर के समान वर्ण वाला बताया गया है। कहीं पर किसी प्रकार से भूमण्डल के भाग में वह शूकर की भाँति विशिष्ट उत्पन्न हुआ करता है ॥८॥ वर्षा के उपलों के समान वर्षा की शोभा वाला बाँस के पर्व से प्रभव होने वाला मोती बताया गया है। वे बाँस भी सर्वसाधारण मनुष्यों के उपभोग में आने वाले स्थान में नहीं हुआ करते हैं जिनके पर्वों से मोती होते हैं बल्कि परम भव्य जनों के उपभोग्य स्थान में ही ऐसे बाँस होते हैं ॥९॥ जो सर्प से उत्पन्न होने वाला मुक्ता होता है वह मीन के समान विशुद्ध वृत्त वाला होता है और संस्थान से अत्यन्त उज्ज्वल वर्ण की शोभा से सम्पन्न होता है। यह बहुत ही धौत और प्रविकल्पमान वज्र की धारा के तुल्य वर्ण तथा कान्तिमान् हुआ करता है ॥ १० ॥ समस्त रत्नों को अतिक्रमण कर देने वाले ऐसे महा प्रभा से युक्त रत्नों को प्राप्त करके राज्य और बहुत ही दुर्लभ श्री को मानव प्राप्त कर लेते हैं। सर्प के शिर में उत्पन्न मुक्ताफल अर्थात् मणि का ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि मनुष्य तेज से युक्त और परम पुण्यधारी हो जाते है॥११॥ ऐसे रत्न धन को प्राप्त करने के लिये बड़ी ही जिज्ञासा होती है और विधि के जानने वाले किसी शुभ मुहूर्त में प्रयत्नों से युक्त होकर प्रयत हुआ करते हैं। ये लोग अपनी सुरक्षा का बड़ा भारी विधान पहिले कर लेते हैं जो कि हर्म्य के ऊपर उस समय में किया जाता है उस समय में विशाल दुन्दुभियों के मन्द्र ध्वनियों से युक्त–बिजली की चमक से आकाश का अन्तराल परिपूर्ण होता है तथा पयोधरों की आक्रान्ति से नीचे झुके हुए एवं नम्र घने मेघों से आकाश आच्छिन्न होता है ॥१२॥१३॥ जिस पुरुष के कोष के मध्य में सूर्य के शिर से समुत्पन्न मणि रहा करती है उसे भुजङ्ग-यातुधान–व्याधियाँ और अन्य कोई भी उपसर्ग दोष हिंसित नहीं किया करते है ॥१४॥

नाभ्येति मेघप्रभमं धरित्रीं वियद्गतं तद्विबुधा हरन्ति।
अर्चिःप्रभावावृतदिग्विभागमादित्यवद् दुःखविभाव्यबिम्बम्।१५
तेजस्तिरस्कृत्य हुताशनेन्दुनक्षत्रताराप्रभवं समग्रम्।
दिवा यथा दीप्तिकरं तथैव तमोऽपगाढ़ास्वपि तन्निशासु ॥१६
विचित्ररत्नद्युतिचारुतोया चतुःसमुद्रा भवनाभिरामा।
मूल्यं न वा स्यादिति निश्चयो मे कृत्स्ना मही तस्य सुवर्णपूर्णा १७
हीनोऽपि यस्तल्लभते कदाचिद्विपाकयोगान्महतः शुभस्य।
सापत्न्यहीनां स महीं समग्रां भुनक्ति तत्तिष्ठति यावदेव ॥१८
न केवलं तच्छुभकृन्नृपस्य भाग्यैः प्रजानामपि तस्य जन्म।
तद्योजनानां परितः सहस्रं सर्वानानथान् विमुखीकरोति॥१९
नक्षत्रमालेय दिवो विशीर्णा दन्तावली तस्य महासुरस्य।
विचित्रवर्णेषु विशुद्धवर्णा पयःसु पत्युः पयसां पपात ॥२०
सम्पूर्णचन्द्रांशुकलापकान्तेर्मणिप्रवेकस्य महागुणस्य।
तच्छुक्तिमत्सु स्थितिमाप बीजमासन् पुराऽप्यन्यभवानि यानि २१

मेघ से समुत्पन्न मौक्तिक इस धरित्री तल तक आ नहीं पाता है। उसे तो देवगण आकाश से ही हरण कर लिया करते हैं। जिसकी अर्चियों की प्रभा से समस्त दिशाओं के भाग आवृत होते हैं। वह सूर्य के ससान बड़े कष्ट से देखने के योग्य बिम्ब वाला होता है ॥१५॥ इसके तेज से अग्नि-चन्द्र-नक्षत्र ताराओं से उत्पन्न समस्त तेज भी तिरस्कृत हो जाया करता है। अन्धकार से परिपूर्ण रात्रिओं में भी दिन के समान दीप्ति करने वाला हुआ करता है ॥१६॥ विचित्र रत्नों की द्युति से सुन्दर जल वाले भवनों में परम अविराम चारों समुद्रों वाली और सुवर्ण से भरी पूरी यह सम्पूर्ण मही भी उस रत्न का मूल्य नहीं हो सकती है ऐसा मेरा पूर्ण निश्चय है ॥१७॥ यदि कोई हीन पुरुष भी किसी समय किसी महान् शुभ कर्म के विपाक के योग से इस महा दुर्लभ रत्न को प्राप्त कर लेता है तो वह फिर सम्पन्न भाव से रहित इस समग्र भूमण्डल को जब तक भी यहाँ रहता है भोगा करता है ॥१८॥ वह केवल राजा को ही शुभ करने वाला नहीं होता है बल्कि प्रजाओं के भाग्य से भी उसका जन्म

हुआ करता है। उसका ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि चारों ओर सहस्रों योजन तक समस्त अनर्थों को दूर भगा दिया करता है ॥ १९ ॥ उस महासुर की दन्तावलि आकाश में नक्षत्रों की माला के समान विशीर्ण हुई है। विचित्र वर्ण वाले जल के स्वामी के जल में विशुद्ध वर्ण वाली वह गिरी थी ॥२०॥ सम्पूर्ण चन्द्र के अंशु कलाप के समान कान्ति वाले – महान् गुणों से समन्वित मणियों में श्रेष्ठ के बीज ने शुक्ति वालों में स्थिति प्राप्त की थी पहिले भी जो अन्य भवन थे ॥२१॥

यस्मिन्प्रदेशेऽम्बुनिधौ पपात सुचारुमुक्तामणिरत्नबीजम्।
तस्मिन्पयस्तोयधरावकीर्णं शुक्तौ स्थितं मौक्तिकनामवाप ॥२२
सैंहलिकपारलौकिकसौराष्ट्रिकताम्रपर्णीपारशवाः।
कौबेरपाण्ड्यहाटकहेमका इत्याकरास्त्वष्टौ ॥२३
शुक्त्युद्भव नाति निकृष्टवर्णं प्रमाणसंस्थानगुणप्रभाभिः।
उत्पद्यते वर्द्धनपारसीकपातालोकान्तरसिंहलेषु ॥२४
चिन्त्या न तस्याकरजा विशेषा रूपे प्रमाणे च यतेत् विद्वान्।
न च व्यवस्थास्ति गुणागुणेषु सर्वत्र सर्वाकृतयोभवन्ति॥२५
एकस्य शुक्तिप्रभवस्य मुक्ताफलस्य शाणेन समुन्मितस्य।
मूल्यं सहस्राणि तु रूपकाणां त्रिभिः शतैरप्यधिकानि पञ्च२६
यन्माषकांकार्द्धेन ततो विहीनं तत्पञ्चभागद्वयहीनमूल्यम्।
यन्माषकानांत्रीन् बिभृयात्सहस्रे द्वे तस्य मूल्यं परमं प्रदिष्टम् ॥२७
अर्द्धाधिकौ द्वौ वहतोऽस्य मूल्य त्रिभिः शतैरप्यधिकं सहस्रम्।
द्विमाषकोन्मापित गौरवस्य शतानि च ष्टो कथितानि मूल्यम्॥२८

जिस प्रदेश में अम्बुनिधि में सुचारु मुक्तामणि का रत्न बीज गिरा था उसमें जल के नीचे के भाग में बिखरी हुई जो शुक्ति (सीप) थी उसमें वह बीज स्थित होता हुआ मौक्तिक के स्वरूप को प्राप्त हो गया था ॥२२॥ उसके सैंहलिक, पारलौकिक, सौराष्ट्रिक, ताम्रपर्णी, पारशव, कौवेर, पाण्ड्य हाटक, हेमक ये आठ आकर हैं ॥२३॥ शुक्ति से समुत्पन्न मोती प्रमाण, संस्थान, गुण और प्रभा से अति निकृष्ट वर्ण वाला नहीं

होता है । यह वर्द्धन पारसीक पाताल लोकान्तर सिंहलों में उत्पन्न होता है ॥ २४ ॥ उसके आकर में उत्पन्न होने वाली विशेषताओं का कोई चिन्तन नहीं करना चाहिए बल्कि विद्वान् पुरुष को उसके रूप और प्रमाण में ही यत्न करना चाहिए । उसके गुण और अगुणों की कोई विशेष व्यवस्था नहीं की गई है क्योंकि सभी जगह सब प्रकार की आकृति वाले हुआ करते हैं ॥२५॥ शुक्ति से समुत्पन्न एक मोती जब शाण से समुन्मित हो जावे तो उसका तीन और पाँच सौ से अधिक सहस्रों रुपये मूल्य होता है ॥२६॥ जो एक उर्द के आधे भाग के बराबर हो या उससे भी कम हो तो वह उसके पञ्च भाग द्वय से हीन मूल्य वाला होता है। जो तीन माषकों के बराबर होता है उसका मूल्य दो सहस्र रुपये होता है—ऐसा बताया गया है ॥२७॥ दो अर्ध अधिक वहन करने वाले इसका मूल्य एक सहस्र से तीन सौ अधिक हुआ करता है। दो माषक और उन्मापन से गौरव युक्त का मूल्य आठ सौ से अधिक कहा गया है ॥२८॥

अर्द्धाधिकं माषकमुन्मितस्य सपंचविंशतित्रितयं शतानाम् ।
गुञ्जाश्च षड् धारयतः शते द्वे मूल्य परं तस्य वदन्ति तज्ज्ञाः ।
अध्यर्द्धमुन्मापकृत शतं स्यान्मूल्यं गुणैस्तस्य समन्वितस्य।२६
यदि षोडशभिर्भवेदनूनं धरणं तत्प्रवदन्ति दार्विकाख्यम् ।
अधिकं दशभिः शतञ्च मूल्यं समाप्नोत्यपि वालिशस्य हस्तात्।३०
द्विगुणैर्दशभिर्भवेदनूनं धरणं तद्भवकं वदन्ति तज्ज्ञाः ।
नवसप्ततिमाप्नुयात्स्वमूल्यं यदि न स्याद् गुणसम्पदा विहीनम्।३१
त्रिशतां धरणं पूर्णं शिक्यमस्येति कीर्त्यते ।
चत्वारिंशद् भवेत्तस्याः परो मूल्यो विनिश्चयः ॥३२
चत्वारिंशद् भवेच्छक्यो त्रिशन्मूल्य लभेत सा ।
षष्टिर्निकरशीष स्यात्तस्य मूल्यं चतुर्दश ॥३३
अशीतिर्नवतिश्चैव कूप्येति परिकीर्त्तिता ।
एकादश स्यान्नव च तयोर्मूल्यमनुक्रमात् ॥३४
आदाय तत्सकलमेव ततोऽन्नभाण्डं जम्बीरजातरसयोजनया विपक्वम् । घृष्टं ततो मृदुतनूकृतपिण्डमूलैः कुर्याद्यथेष्टमनु- मौक्तिकमाशुविद्धम् ॥३५

आधा अधिक माषक और उन्मित मोती का मूल्य तीन सौ बीस होता है। इस विषय के ज्ञाता लोग छै गुञ्जा के प्रमाण वाले का परम मूल्य दो सौ रुपये बतल ते हैं। इसके आधे प्रमाण वाला यदि उन्मापकृत हो और गुणोंसे समन्वित हो तो उसका मूल्य एक सौ रुपये होता है ॥२६॥ यदि सोलह से अनून धरण हो तो उसे दार्विकाख्य कहते हैं। दश से अधिक सौ रुपये भी किसी बालिश (मूर्ख) के हाथ से प्राप्त हो जाता है॥३०॥ दुगुने दश से अनून धरण हो तो उसके ज्ञाता लोग उसे भवक कहा करते हैं। यदि यह गुणों की सम्पदा से विहीन न हो तो उसका अपना मूल्य नो सप्तति (नौ-सत्तर) प्राप्त हो जाता है॥३१॥ तीन सौ का पूर्ण धरण शिक्यन्तस्य- यह कहा जाता है। उसका सबसे अधिक मूल्य चालीस होता है--यह बिल्कुल निश्चित होता है। ॥३२॥ जो चालीस शिक्य होता है उसका मूल्य तीस रुपये ही प्राप्त होते हैं। साठ निकर शीर्ष जो हो उसका मूल्य चौदहँ होता है॥३३॥ अस्सी और नव्वे कूप्या–यह परिकीर्त्तित किया गया है। इन दोनों का मूल्य एकादश और नौ अनुक्रम से होता है॥३४॥ उन सबको लेकर अन्नके पात्रमें जम्बीर जात रस की योजना द्वारा विपक्व करे फिर कोमल तनूकृत पिण्ड मूलोंसे घर्षण करेनो प्रत्येक मौक्तिक शीघ्र ही यथेच्छया विद्ध कर लेवे। अर्थात् फिर तुरन्त ही अपनी इच्छा के अनुसार मोती वेध के योग्य हो जाता है ॥३५॥

मृल्लिप्तमत्स्यपुटमध्यगतन्तु कृत्वा पश्चात्तचेत्तनु त श्च वितानपत्या
दुग्धे ततःपयसि तं विपचेत्सुधायां पक्वं ततोऽपि पयसा शुचिचिक्कणेन॥
शुद्धं ततो विमलवस्त्रनिघर्षणेन स्यान्मौक्तिकं विपुलसद्गुण-
कान्तियुक्तम् ॥३६
व्याडिर्जगाद जगतां हि महाप्रभावसिद्धो विदग्धहिततत्परया दयालुः॥
श्वेनकाचसमं तारं हेमांशशतयोजितम् ॥३७
रसमध्ये प्रधार्य्येत मौक्तिकं देहभूषणम् ॥
एवं हि सिंहले देशे कुर्वन्ति कुशला जनाः ॥३८
यस्मिन्कृत्रिमसन्देहः क्वचिद्भवति मौक्तिके ।
उष्णे सलवणे स्नेहे निशां तद्वासयेज्जले ॥३९

व्रीहिभिर्मर्दनीयं वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम् ।
यत्तु नायाति वैवर्ण्यं विज्ञेयं तदकृत्रिमम् ॥४०
सितं प्रमाणवत् स्निग्धं गुरु स्वच्छं सुनिर्मलम् ।
तेजोऽधिकं सुवृत्तञ्च मौक्तिकं गुणवत्स्मृतम् ॥४१
प्रमाणवद् गौरवरश्मियुक्तं सितं सवृत्तमं समसूक्ष्मवेधम् ।
अक्रेतुरप्यावहति प्रमोदं यन्मौक्तिकं तद्गुणवत्प्रदिष्टम् ॥४२
एवं समस्तेन गुणोदयेन यन्मौक्तिकं योगमुपागतं स्यात् ।
न तस्य भर्त्तार मनर्थजात एकोऽपि कश्चित्समुपैति दोषः ॥४३

मृत्तिका से लिप्त करके मत्स्य पुट मे रक्खे और फिर वितान पत्ती से थोड़ा पाचन करे । फिर दुग्ध में तथा इसके पश्चात् जल में पाचन करे । सुधा में पक्व करे और फिर शुचि चिक्कण पय के साथ पकावे । इसके करने के पश्चात् स्वच्छ वस्त्र से मोतियों का निघर्षण करे तो वे मोती परम शुद्ध और बहुत सद्गुण एवं कान्ति से युक्त हो जाते हैं । महा प्रभाव सिद्धि एवं दयालु व्याडि ने संसार के लोगों पर कृपा करके चतुरों के हित पर ध्यान देकर ऐसा कहा था ॥३६।३७॥ श्वेत काँच के सम चाँदी और जो हेमांश शत से योजित हो ऐसे देह के भूषण मौक्तिक को रस के मध्य में धारण करना चाहिए । इसी प्रकार से सिंहल देश में कुशल पुरुष किया करते हैं ॥३८॥ जिस मौक्तिक में बनावटी होने का सन्देह हो उसे उष्ण लवण सहित स्नेह में एक रात्रि जल में वासित करे अथवा शुष्क वस्त्र मे उपवेष्टित कर व्रीहियों के साथ मर्दन करे । ऐसा करने पर जिसमें कोई भी विवर्णता न आवे तो समझ लेना चाहिये कि वह अकृत्रिम अर्थात् असली मौक्तिक ही है बनावटी नहीं है ॥३६।४०॥ सित्, प्रमाणवत्, स्निग्ध, गुरु, स्वच्छ, सुनिर्मल, अधिक तेज से युक्त और सुवृत्त मौक्तिक गुणों से समन्वित कहा गया है ॥४१॥ प्रमाणवत्, गौरव और रश्मियों से युक्त सित, सुवृत्त तथा सम एवं सूक्ष्म वेध वाला जो न खरीददारी करने वाले के मन को भी प्रमोद देने वाला हो वही मोती गुण गण से समन्वित बताया गया है ॥४२॥ इस प्रकार से सम्पूर्ण गुणों के

उदय से जो मौक्तिक योग को प्राप्त हुआ हो उस मोती के स्वामी तथा धारण करने वाले को अनर्थ से समुत्पन्न कोई एक भी दोष उपस्थित नहीं होता है ॥४३॥

३९—पद्मराग परीक्षा

दिवाकरस्तस्य महामहिम्नो महासुरस्योत्तमरत्नबीजम् ।
असृग् गृहीत्वा चरितुं प्रतस्थे निस्त्रिंशनीलेन नभःस्थलेन।१
जेत्रा सुराणां समरेष्वजस्रं वीर्य्यावलेपोद्धतमानसेन ।
लङ्काधिपेनार्द्धपथे समेत्यस्वर्भानुनेव प्रसभं निरुद्धः ॥२
तत्सिंहलीचारुनितम्बबिम्बविक्षोभितागाधमहाह्रदायाम् ।
पूगद्रुमाबद्धतटद्वयायां मुमोच सूर्य्यः सरिदुत्तमायाम् ॥३
ततः प्रभृति सा गङ्गातुल्यपुण्यफलोदया ।
नाम्ना रावणगङ्गेति प्रथिमानमुपागता ॥४
ततः प्रभृत्येव च शर्वरीषु कूलानि रत्नैर्निचितानि तस्याः ।
सुवर्णनाराचशतैरिबान्तर्बहिःप्रदीप्तैर्निशितानि भान्ति ॥५
तस्यास्तटेषूज्ज्वल चारुरागा भवन्ति तोयेषु च पद्मरागाः ।
सौगन्धिकोत्थाः कुरुविन्दजाश्च महागुणाः स्फाटिकसंप्रसूताः ६
बन्धूकगुंजासकलेन्द्रगोपजवाजपासृक्समवर्णशोभाः ।
भ्राजिष्णवो दाड़िमबीजवर्णास्तथापरे किंशुकपुष्पभासः ॥७

सूत जी ने कहा—उस महान् महिमा से युक्त महासुर का उत्तम रत्न बीज यह दिवाकर है जो असृक् (रुधिर) ग्रहण करके निस्त्रिंश नील इस नभ स्थल के द्वारा चरण करने के लिये प्रयत्न करता था ॥१॥ समरों में निरन्तर सुरों को जीतने वाले—वीर्य—पराक्रम के गर्व से उद्धत मन वाले लङ्का के स्वामी ने अर्ध पथ में आकर स्वर्भानु की ही भाँति इसे बलात् रोक दिया था ॥२॥ सिंहल द्वीप की ललनाओं के अति सुन्दर नितम्ब विम्बों से विक्षोभित और अगाध महान् ह्रद वाली दोनों ओर के तटों पर पूगों की वृक्षावली से सुशोभित सरिताओं में

परमोत्तम में सूर्य ने मोचन किया था ॥३॥ तभी से लेकर वह सरिता गङ्गा के समान पुण्यों के फलोदय वाली "रावण गङ्गा" इस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी ॥४॥ तब से ही आरम्भ करके उसके कूल रात्रियों में रत्नों से निचित रहा करते हैं। सुवर्ण नाराचशतों के समान भीतर—बाहिर से प्रदीप्तों से निशित भासित होते हैं ॥ ५ ॥ उस नदी के तटों और जलों में उज्ज्वल एवं चारु राग वाले पद्मराग होते हैं। सौगन्धिक और कुरु विन्दज—महान् गुणों वाले तथा वे स्फटिक सम्प्रसूत होते हैं ॥६॥ बन्धूक पुष्प - गुञ्जाफल – सक्लेन्द्रगोप और जवा के समान् तथा असृक् (रक्त के समान वर्ण की शोभा वाले—भ्राजिष्णु तथा अनार के दाने के तुल्य वर्ण वाले और अन्य ढाक के पुष्प के समान दीप्ति वाले हैं ॥७॥

सिन्दूरपद्मोत्पलकुंकुमानां लाक्षारसस्यापि समानवर्णाः।
सान्द्रेऽपि रागे प्रभया स्वयैव भान्ति स्वलक्ष्याः स्फुटमध्य शोभाः ॥८
भानोश्च भासामनुवेधयोयमासाद्य रश्मिप्रकरेण दूरम्।
पार्श्वानि सर्वाण्यनुरञ्जयन्ति गुणोपपन्नाः स्फटिकप्रसूताः ॥
कुसुम्भनीलव्यतिमिश्रराग स्त्युग्ररक्ताम्बुजतुल्यभासः।
तथापरेऽरुष्करकण्टुकारीपुष्पत्विषी हिंगुलवत्त्विषोऽन्ये ॥१०
चकोरपुंस्कोकिलसारसानां नेत्रावभासश्च भवन्ति केचित्।
अन्ये पुनः सन्ति च पुष्पितानां तुल्यत्विषः कोकनदोत्तमानाम् ११
प्रभावका ऽन्यगुरुत्वयोगैः प्रायः समानाः स्फटिकोद्भवानाम्।
आनीलरक्तोत्पलचारुभासः सौगन्धिकोत्था मणयः भवन्ति १२
कामं तु रागः कुरुविन्दुजेषु स नैव यादृक्स्फटिकोद्भवेषु।
निरर्चिषोऽन्तर्बहला भवन्ति प्रभाववन्तोऽपि न ते समस्ताः ॥१३
ये तु रावणगङ्गायां जायन्ते कुरुविन्दकाः।
पद्मरागधनं राग बिभ्रणाः स्फटिकार्चिषः ॥१४

सिन्दूर—पद्मोत्पल – कुंकुम और लाक्षारस के समान वर्ण वाले हैं। सान्द्र राग के होने पर भी अपनी ही प्रभा से स्वलक्ष्य तथा स्पष्ट मध्य की शोभा वाले होते हैं॥८॥दूर से ही सूर्य की दीप्तियों की किरणों के समु-

दाय से अनुवेध के योग को प्राप्त कर गुणों से सम्पन्न तथा स्फटिक से समुत्पन्न समस्त पार्श्व भागों को अनुरंजित किया करते हैं ॥ ९ ॥ कुछ कुसुम्भ और नील के व्यतिमिश्रित राग से प्रत्युग्र रक्त कमल की तुल्य दीप्ति वाले होते हैं। अन्य अरुष्कर कण्टकारी के पुष्प के समान कान्ति वाले हैं और कुछ हिंगुल के तुल्य कान्ति से युक्त हुआ करते हैं ॥१०॥ चकोर—पुंस्कोकिल और सारस के नेत्रों के समान अवभाषित होने वाले कुछ हुआ करते हैं। कुछ उत्तम एवं पुष्पित कोकनद के समान कान्ति वाले होते हैं ॥११॥ प्रभाव—कठिनता और गुरुत्व के भोग से प्रायः स्फटिक से उद्भव होने वाले समान ही होते हैं। सौगन्धिकोत्थ मणियाँ थोड़ी नील-रक्तोपल के समान दीप्ति वाली हुआ करती हैं ॥१२॥ जो कुरुविन्व से समुत्पन्न हैं उनमें राग यथेष्ट होता है वह स्फटिक से उद्भव प्राप्त करने वालों में जैसा होता है वैसा नहीं है। वे उन सम्पूर्णों से प्रभाव वाले होते हुए भी बिना अर्चियों वाले और अन्तर्बहल होते हैं ॥१३॥ जो रावण गङ्गा में कुरुविन्दक उत्पन्न होते हैं वे पद्मराग के समान घना राग धारण करने वाले और स्फटिक जैसी अर्चियों को धारण करने वाले हुआ करते हैं ॥१४॥

वर्णानुयायिनस्तेषां अन्ध्रदेशे तथा परे।
न जायन्ते हि ये केचिन्मूल्यलेशमवाप्नुयुः ॥१५
तथैव स्फटिकोत्थानां देशे तुम्बुरुसंज्ञके।
सधर्माणः प्रजायन्ते स्वल्पमूल्या हि ते स्मृताः ॥१६
वर्णाधिक्यं गुरुत्वञ्च स्निग्धता समता च्छता।
अर्चिष्मत्ता महत्ता च मणीनां गुणसंग्रहः ॥१७
ये कर्कराच्छिद्रमलोपदिग्धाः प्रभाविमुक्ताः परुषा विवर्णाः
न ते प्रशस्ता मणयो भवन्ति समानतो जातिगुणैः समग्राः ॥१८
दोषोपसृष्टं मणिमप्रबोधाद्बिभर्ति यः कश्चन कंचिदेव।
तं शोकचिन्तामयमृत्युवित्तनाशादयो दोषगणा हरन्ति ॥१९
कलमं चारुतराः पञ्च जातीनां प्रतिरूपकाः।
विजातयः प्रयत्नेन विद्वांस्तानुपलक्षयेत् ॥२०

कलसपुरोद्भवसिंहलतुम्बुरुदेशोत्थमुक्तपाणीयाः ।
श्रीपूर्णकाश्च सदृशा विजातयः पद्मरागाणाम् ॥२१
तुषोपसर्गात्कलसाभिधानमाताम्रभावादपि तुम्बुरुत्थम् ।
कार्ष्ण्याच्चात्तथा सिंहल देशजातं मुक्ताभिधानंनभसःस्वभावात् २२
श्रीपूर्णकं दाप्तिविनाकृतत्वाद्विजातिलिङ्गाश्रय एव भेदः ।
यस्ताम्रिकां पुष्यतिपद्मरागो योगात्तुषाणामिव पूर्णमध्यः २३

उन्हीं के जैसे वर्ण का अनुकरण करने वाले दूसरे अन्ध्र देश में उत्पन्न नहीं होते हैं जो कोई मूल्य का लेश भी प्राप्त कर सकें ॥१५॥ उसी प्रकार से तुम्बुरु नाम वाले देश में स्फटिक से समुत्पन्नों के समान धर्म वाले पैदा होते हैं किन्तु वे बहुत थोड़ी मूल्य वाले कहे गये हैं॥१६॥ मणियों की वर्ण की अधिकता– गुरुता स्निग्धता–समता–स्वच्छता— अर्चियों वाली होना— महत्ता ये ही गुण हैं जिनका संग्रह होता है ॥१७॥ जो मणियाँ कर्कर– छिद्र और मल से उपदिग्ध होती हैं तथा प्रभाव (जोकि मणि रत्नों का बताया गया है) से रहित हैं—कठोर और बिना समुचित वर्ण वाली हैं वे जाति एवं गुणों के पूर्ण होने पर भी प्रशस्त नहीं होती हैं ॥१८॥ जो कोई पुरुष अज्ञानवश दोषों से उपसृष्ट मणि को धारण किया करता है उसको शोक—चिन्ता-रोग-मृत्यु- वित्तनाश आदि दोषों के समूह हरण कर लेते हैं॥१९॥ पाँच जातियों के चारुतर यथेष्ट प्रतिरूपक विजातीय रत्न होते हैं। विद्वान् पुरुष को पूर्ण प्रयत्न से उनको देख लेना चाहिए ॥२०॥ कलशपुर में उत्पन्न सिंहल और तुम्बुरु देश में समुत्पन्न–मुक्त पाणीय और श्री पूर्वक ये बिजातीय रत्न पद्मरागों के सदृश ही हुआ करते हैं ॥२१॥ तुषोपसर्ग से कलस नाम वाला और थोड़ा ताम्र भाव होने से तुम्बरुत्थ तथा कृष्णता होने से सिंहल देश में समुत्पन्न नभ के स्वभाव होने से मुक्ता नाम वाला है ॥२२॥ दीप्ति के विनाशकृत् होने से श्रीपूर्णक है और विजातीय चिन्ह का आश्रय प्राप्त करना उसका भेद होता है। जो पद्मराग ताम्रिका का पोषण करता है तुषाओं के समान योग से पूर्ण मध्य होता है।२३।

स्नेहप्रदिग्ध: प्रतिभाति यश्च यो वा प्रघृष्ट: प्रजहाति दीप्तिम् ।
आक्रान्तमूर्द्धा च तथांगुलिभ्यां य: कालिकां पार्श्वगतां बिभर्ति२४
सम्प्राप्य चोत्क्षिप्य यथानुवृत्ति बिभर्ति य: सर्वगुणानतीव ।
तुल्यप्रमाणस्य च तुल्यजातेर्यो वा गुरुत्वेन भवेत्तु तुल्य: ।
प्राप्यापि रत्नाकरजां स्वजातिं लक्षेद् गुरुत्वेन गुणेन विद्वान्।२५
अप्रणश्यति सन्देहे शाणे तु परिलेखयेत् ।
स्वजातकसमुत्थेन लिखित्वापि परस्परम् ॥२६
वज्रं वाकुरुविन्दं वा विमुच्यानेन केनचित् ।
नाशक्यं लेखनं कर्तुं पद्मरागेन्द्रनीलयो: ॥२७
जात्यस्य सर्वेऽपि मणेस्तु यादृग् विजातय: सन्ति समानवर्णा: ।
तथापि नामाकरणार्थमेव भेदप्रकार: परम: प्रदिष्ट: ॥२८
गुणोपपन्नेन सहावबद्धो मणिर्न धार्य्यो विगुणो हि जात्य: ।
न कौस्तुभेनापि सहावबद्धं विद्वान् विजातिं बिभृयात्कदाचित् ।२९

जो स्नेह से प्रदिग्ध प्रतीत होता है अथवा जो प्रघृष्ट होता हुआ दीप्ति को त्याग देता है और जो अंगुलियों से आक्रान्त मूर्धा वाला होकर पार्श्वगत कालिका को धारण कर लेता है।।२४।।जो यथाअनुवृत्ति प्राप्त कर और उत्क्षिप्त होकर समस्त गुणों को अत्यर्थ रूप से धारण किया करता है तथा प्रमाण की समानता से तथा जाति के अनुसार जो गुरुत्व से तुल्य होता है और रत्नों के आकार में समुत्पन्न अपनी जाति को प्राप्त होकर भी गुरुत्व एवं गुरु गरिमा रखता है इन सब बातों के होने से ही विद्वान् पुरुष को देखभाल रत्न की करनी चाहिए ।।२५।। सन्देह के प्रणष्ट न होने पर शाण पर रखे जाने पर उसे परिलक्षित करे तथा स्वजातक से समुत्पन्न परस्पर में लिखित करके भी देखना चाहिए । वज्र अथवा कुरुविन्द हो इसका त्याग कर पद्मराग तथा इन्द्र नील पर लेखन इससे यदि नहीं किया जा सकता है तो इस जाति के रत्न समान वर्ण होने वाले सभी विजातीय ही होते हैं—ऐसा समझ लेना चाहिए । तथापि नाम करण करने के लिये ही यह भेदों का परम

प्रकार यहाँ बता दिया गया है ।।२६।२७।२८।। गुणों से उत्पन्न होता हुआ भी जो सहावबद्ध हो ऐसा रत्न मणि जो जातीय विगुणता से युक्त हो कभी धारण नहीं करना चाहिए । कौस्तुभ मणि की समानता रखने वाला भी भले ही वह मणि क्यों न हो यदि विजातीय है तो विद्वान् पुरुष को कभी ऐसा रत्न धारण नहीं करना चाहिए ।।२९।।

चण्डाल एकोऽपि यथा द्विजातीन्समेत्य भूरीनपि हन्त्ययत्नात् ।
अथो मणीन्भूरिगुणोपपन्नान्शक्नोति विप्लावयितुं विजात्यः ।३०
सपत्नमध्येऽपि कृताधिवासं प्रमादवृत्तावपि वर्त्तमानम् ।
न पद्मरागस्य महागुणस्य भर्त्तारमापत्स्पृशतीह काचित् ।।३१
दोषोपसर्गप्रभवाश्च ये ते नोपद्रवास्तं समाभद्रवन्ति ।
गुणैः समुत्तेजितचारुरागं यः पद्मरागं प्रयतो बिभर्ति ।।३२
वज्रस्य तत्तण्डुलसंख्ययोक्तं मूल्यं समुत्पादितगौरवस्य ।
तत्पद्मरागस्य महागुणस्य तन्माषकम्याकलितस्य मूल्यम् ।३३
वर्णदीप्त्युपपन्नं हि मणिरत्नं प्रशस्यते ।
ताभ्यामीषदपि भ्रष्टं मणिर्मूल्यात्प्रहीयते ।।३४

जिस प्रकार से एक भी चण्डाल द्विजातियों के साथ मिलकर बहुत से उनको बिना ही किसी यत्न के द्विजातित्व से हनन कर दिया करता है उसी तरह से विजात्य मणि बहुत से गुणों से उपपन्न अनेक मणियों को विप्लावित कर सकता है ।।३०।। शत्रुओं के मध्य में अधिवास करने वाले और प्रमाद की वृत्त में भी वर्त्तमान रहने वाले महान् गुण युक्त पद्मराग को धारण करने वाले स्वामी को कोई भी आपत्ति स्पर्श नहीं किया करती है ।।३१।। दोषों के उपसर्ग से उत्पन्न होने वाले जो भी उपद्रव हुआ करते हैं वे उसको उपद्रुत नहीं किया करते हैं जो गुणों से समुत्तेजित सुन्दर राग वाले पद्मराग मणि को प्रयत्नशील होता हुआ धारण किया करता है ।। ३२ ।। जो एक तण्डुल की संख्या से वज्र का मूल्य कहा गया है वह समुत्पादित गौरव वाले तथा महान् गुणों से सम्पन्न एकमाषक पद्मराग का मूल्य होता है ।।३३।। वर्ण और दीप्ति

से उत्पन्न रत्न प्रशस्त कहा जाता है। इन दोनों गुणों से यदि थोड़ा भी हीन हो तो वह रत्न मूल्य में हीन होजाना है ॥३४॥

४० – मरकत परीक्षा

दानवाधिपते पित्तमादाय भुजगाधिपः।
द्विधा कुर्वन्निव व्योम सत्वरं वासुकिर्ययौ ॥१
स तदा स्वशिरोरत्नप्रभादीप्ते नभोऽम्बुधौ।
राजतः स महानेकः खंडसेतुरिवाबभौ ॥२
ततः पक्षनिपातेन संहरन्निव रोदसी।
गरुत्मान्पन्नगेन्द्रस्य प्रहर्त्तुमुपचक्रमे ॥३
सहसैव मुमोच तत्फणीन्द्रः सुरसाद्युक्ततुरस्कपादपायाम्।
नलिकावनगन्धवासितायाँ वरमाणिक्यगिरेरुपत्यकायाम् ॥४
तस्यप्रपातसमनन्तरकालमेव तद्वद्वरालयमतीत्य रमासमीपे।
स्थानं क्षितेरुपपयोनिधितीरलेखं तत्प्रत्ययान्मरकताकरतांजगाम५
तत्रैव किंचित्पतनस्तु पित्तादुपेत्य जग्राह ततो गरुत्मान्।
मूर्च्छापरीतः सहसैव घोणारन्ध्रद्वयेन प्रमुमोच सर्वम् ॥६
तत्राकठोरशुककंठशिरीषपुष्पखद्योतपृष्ठचरशाद्वलशैवलानाम्।
कह्लारशष्पकभुजङ्गभुजां चपत्रप्राप्तत्विषो मरकताःशुभदाभवन्ति७

श्री सूतजी बोले भुजङ्गों का स्वामी वासुकि नाग दानवोंके अधिपति के पित्त को लेकर व्योम के दो भाग मानों करता हुआ शीघ्र चला गया था ।।१।। उस समय से वह अपने शिर के रत्न की प्रभा से प्रदीप्त नभ रूपी अम्बुधि में पूरक महान खण्ड सेतु की भाँति सुशोभितहुआ था ।।२।। इसके अनन्तर गरुड़ पक्षों के निपात से रोदसी का संहार करते हुए की भाँति पन्नगेन्द्र के ऊपर प्रहार करने को उद्यत हुआ था ।।३।। उस फणीन्द्र ने सहसा ही उसे सुरसादि से उक्त तुरस्क पादयों वाली—नलिका वन की गन्ध से सुवासित वरमाणिक्य गिरि की उपत्यका में छोड़ दिया था ।।४।। उसके गिरने के समनन्तर काल में ही रमा के समीप में उसके श्रेष्ठ भालय को व्यतीत कर उसी के समान भूमि

के उपपयोनिधि के तट की लेखा वाला उसके प्रत्यय से वह स्थान मरकत मणि की खान बन गया था ।।५।। वहाँ पर ही गुरुत्मान ने आकर उस गिरते हुए पित्त से कुछ थोड़ा सा भाग ग्रहण कर लिया था । मूर्च्छा से परीत होकर उसने तुरन्त ही नासिका के दोनों नथुनों से उन सबको त्याग दिया था ।।६।। वहाँ पर अकठोर शुक वष्ठ-शिरीष पुरुष-खद्योत—पृष्ठ—चर-शाद्वल— शैवल-कह्लार-शष्पक और भुजङ्ग भुज के पत्रों की कान्ति प्राप्त करने वाले शुभ देने वाले मरकत मणि रत्न होते हैं ।।७।।

तद्यत्र भोगीन्द्रभुजाभियुक्तं पपात पित्तं दितिजाधिपस्य ।
तस्याकरस्यातितरां स देशो दुःखोपलभ्यश्च गुणैश्च युक्तः।।८
तस्मिन्मरकतस्थाने यत्किञ्चिदुपजायते ।
तत्सर्वं विषरोगाणां प्रशमाय प्रकीर्त्त्यते ।।९
सर्वमन्त्रौषधिगणैर्यन्न शक्यं चिकित्सितुम् ।
महाहिदंष्ट्राप्रभवं विषं तत् तेन शाम्यति ।।१०
अन्यदप्याकरे तत्र यद्दोषैरुपवर्जितम् ।
जायते तत्पवित्राणामुत्तमं परिकीर्त्तितम् ।।११
अत्यन्तहरितवर्णं कोमलमर्चिर्विभेदजटिलंच ।
कांचनचूर्णस्यान्तः पूर्णमिव लक्ष्यते यच्च ।।१२
युक्तं संस्थानगुणैः समरागं गौरवेण ।
सवितुः करसंस्पर्शाच्छुरयति सर्वाश्रमं दीप्त्या ।।१३
हित्वा च हरितभावं यस्यान्तर्विनिहिता भवेद्दीप्तिः ।
अचिरप्रभाप्रभाहतशाद्वलसमन्विता भाति । १४

वह जहाँ पर भोगीन्द्र भुजा से अभियुक्त दिति के पुत्रों के अधिप का पित्त गिरा था वह देश भाग उसके आकर का बहुत अधिक बड़ा स्थान है किन्तु वह देश गुणों से युक्त और बहुत दुःखों से उपलब्ध करने के योग्य होता है ।।८।। उस मरकतों के आकर के स्थान में जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह सभी कुछ विष रोगों के प्रशमन के लिये कहा जाता है ।।९।। अन्य समस्त और मन्त्रों के समूह भी जिसे अच्छा

नहीं कर सकते हैं वहाँ की उत्पन्न वस्तुयें महान् विषैले सर्प की दाढ़ से उत्पन्न विष को प्रशमित कर दिया करती हैं ।।१०।। उस आकर में अन्य कुछ भी दोषों से उपवर्जित उत्पन्न होता है वह सम्पूर्ण पवित्रों में भी परम पवित्र होता है—ऐसा कीर्त्तित किया गया है ।।११।। अत्यन्त हरे वर्ण वाला—कोमल—अर्चियों के विभेद से जटिल अर्थात् जिसमें बहुत अर्चियाँ फूटी पड़ती हों। जो मध्य में काँचन चूर्ण से पूर्ण दिखलाई देता है। संस्थान के गुणों से युक्त और गौरव के समान राग वाला तथा जो सूर्य की किरणों के संस्पर्श होने से दीप्ति के द्वारा सम्पूर्ण आश्रय को छुरित कर देता है—जो हरित भाव का त्याग कर अन्दर में छिपी हुई दीप्ति को प्रकट करता है और अचिर प्रभा से प्रभाहत शाद्वल (कोमल एवं हरी घास) से समन्वित भासित होता है वह मरकत रत्न होता है ।।१२ से १४।।

यच्च मनसः प्रसाद् विदधाति निरीक्षितमतिमात्रम् ।
तन्मरकतं महागुणमिति रत्नविदां मनोवृत्तिः ।।१५
वर्णस्यातिवहुलत्वाद्यस्यान्तः स्वच्छकिरणपरिधानम् ।
सान्द्रस्निग्धविशुद्ध कोमलबर्हिप्रभादिसमकान्ति ।।१६
वर्णोज्ज्वलया कान्त्या सान्द्राकारो विभासया भाति ।
तदपि न गुणवत् संज्ञामाप्नोति यादृशीं पूर्णाम् ।।१७
शबलकठोरमलिनं रूक्षं पाषाणकर्करोपेतम् ।
दिग्धं च शिलाजतुना मरकतमेवं विधं विगुणम् ।।१८
यत्सन्धिशेषितं रत्नमन्यं मरकताद्भवेत् ।
श्रेयस्कामैर्न तद्धार्य्यं क्रेतव्य वा कथंचन ।।१९
भल्लातकीपुत्रिका च तद्वर्णसमयोगतः ।
मणेर्मरकतस्यते लक्षणीया विजातयः ।।२०
क्षौमेण वाससा मृष्टा दीप्तिं त्यजति पुत्रिका ।
लाघवेनैव काचस्य शक्या कर्त्तुं विभावना ।।२१

जो देखने भर से ही अत्यधिक मन के अन्दर प्रसन्नता उत्पन्न करता है वह मरकत मणि महान् गुणों वाला होता है—ऐसा रत्न शास्त्र के विद्वानों के मन का विचार है ।।१५।। वर्ण के अत्यधिक होने से जिसका

अन्तर्भाग स्वच्छ किरणों का परिधान हो जाता है और जो सान्द्र स्निग्ध और विशुद्ध एवं कोमल बर्हि तथा प्रभादि से समान कान्ति वाला है—जो उज्ज्वल वर्ण वाली कान्ति से सान्द्र आकार वाला है और विशेष दीप्ति से शोभा देता है वह मरकत भी गुण वाला होने की सज्ञा को प्राप्त नहीं किया करता है जैसा कि पहिले बतलाया हुआ मरकत उत्तम होता है ॥१६।१७॥ शवल (चित्र-विचित्र वर्ण वाला) कठोर-मलिन—रूक्ष और पाषाण कर्कर से युक्त तथा शिलाजीत से दिग्ध जो मरकत होता है वह विगुण हुआ करता है ॥१८॥ जो सन्धि से शेषित मरकत सो अन्य रत्न होता है उसे श्रेष्ठ चाहने वाले लोकों को धारण नहीं करना चाहिये और ऐसे रत्न को कभी खरीदना भी नहीं चाहिये ॥१९॥ भल्लातकी पुत्रिका और उसके वर्ण के समयोग से मरकत मणि के ये विजातीय लक्षण जान लेने चाहिए ॥२०॥ जो पुत्रिका है वह यदि क्षोम वस्त्र से मृष्ट की जावे तो अपनी दीप्ति को त्याग देता है। काँच के लाघव से उसकी विभावना की जा सकती है ॥२१॥

कस्यचिदनेकरूपैर्मरकतमनुगच्छतोऽपि गुणवर्णाः।
भल्लातकस्यानिलौर्वैषम्यमुपैति वर्णास्य॥२२
वज्राणि मुक्ताः सन्त्यन्ये ये च केचिद्विजातयः।
तेषां नाप्रतिबद्धानां भा भवत्युर्ध्वगामिनी ॥२३
ऋजुत्वाच्चैव केषाचित् कथाचिदुपजायते।
तिर्य्यगालोच्यमानानां सद्यश्चैव प्रणश्यति ॥२४
स्नानाचमनजप्येषु रक्षामन्त्रक्रियाविधौ।
ददद्भिर्गोहिरण्यानि कुर्वद्भिः साधनानि च ॥२५
दैवपैत्रातिथेयेषु गुरुसंपूजनेषु च।
बाध्यमानेषु विविधैर्दोषजातैर्विषोद्भवैः ॥२६
दोषैर्हीन गुणैर्युक्तं कांचनप्रतियोजितम।
संग्रामे विचरद्भिश्च धार्य्यं मरकतं बुधैः ॥२७
तुलया पद्मरागस्य यन्मूल्यमुपजायते।
लभतेऽत्यधिकं तस्माद्गुणैर्मरकतं युतम् ॥२८

तथा च पद्मरागाणां दोषैर्मूल्यं प्रहीयते ।
ततोऽस्याप्यधिका हानिर्दोषैर्मरकते भवेत् ॥२६

मरकत मणि का अनुकरण करने वाले किसी के अनेक रूपों वाले भल्लातक के अनिल गुण वर्णों से वर्ण की विषमता को प्राप्त होते हैं ॥२२॥ जो वज्र (हीरे) और मुक्ता (मोती) कोई विजातीय होते हैं अप्रति वद्ध उनकी दीप्ति ऊर्ध्वगामिनी हुआ करती है ॥२३॥ कुछ ऐसे होते हैं कि उन्हें सीधा रक्खा जावे तो किसी तरह से उनकी दीप्ति उत्पन्न होती है और यदि तिरछा करके देखे जावें तो वह तुरन्त ही नष्ट हो जाया करती है ॥२४॥ स्नान—आचमन-जाप-रक्षा मन्त्र की क्रिया विधि में गौ और सुवर्ण का दान करने वालों तथा साधनों को करने वालों के द्वारा देव—पित्र-आतिथेय-गुरुसंपूजन एवं विषोद्भव अनेक दोषों से वाध्यमान होनेमें समस्त दोषोंसे रहित-गुणों से सम-न्वित तथासुवर्णालङ्कार में प्रतियोजित मरकत मणि को संग्राम में विचरण करने वाले बुधों के द्वारा धारण करना चाहिए ॥२५।२६॥२७॥ तुला से पद्म राग मणि का जो मूल्य होता है उससे अधिक मूल्य गुणों से युक्त मरकत मणि का होता है ॥२८॥ पद्मराग मणियों का मूल्य दोषों के होने से कम होजाया करता है किन्तु यदि मरकत मणि में दोष हों तो केवल मूल्य की ही कमी नहीं होती बल्कि उससे भी कहीं अधिक हानि हो जाया करती है ॥२६॥

४१—इन्द्रनील परीक्षा

तत्रैव सिंहलवधूकरपल्लवाग्रव्यालूनबाललवलीकुसुमप्रवाले ।
देशे पपात दितिजस्य नितान्तकान्तं प्रोत्फुल्लनीरजसमद्युति नेत्रयुग्मम् ॥१

तत्प्रत्ययादुभयशोभनवीचिभासा विस्तारिणी जलनिधेरुपकच्छः भूमिः । प्रोद्भिन्नकेतकवलप्रतिबद्धलेखा सान्द्रेन्द्रनीलमणिरत्नवती विभाति ॥२॥ तत्रासिताब्जहलभृङ्गसमानि भृङ्गशार्ङ्गायुधाङ्गहरकण्ठकषायपुष्पैः । शुभ्रेतरैश्च कुसुमैर्गिरिकर्णिकायास्तस्माद्भवन्ति मणयः सदृशावभाषाः ॥३॥

अन्ये प्रसन्नपयसःतु पयसां निधारम्बुत्विषः शिखिगणप्रतिमा-स्तथान्ये। नोलीरसप्रभवबुद्बुदभाश्च केचित्केचित्तथा समदकोकिलकण्ठभासः ॥४

एकप्रकारा विस्पष्टवर्णशोभावभासिनः।
जायन्ते मणयस्तस्मिन्निन्द्रनीला महागुणाः ॥५
मृत्पाषाणशिलारन्ध्रकर्करात्राससंयुताः।
अभ्रिकापटलच्छायावर्णदोषैश्च दूषिताः ॥६
तत एव हि जायन्ते मणयस्तत्र भूरयः।
शास्त्रमन्त्रोधितधियस्तान्प्रशंसन्ति सूरयः ॥७
धार्य्यमाणस्य ये दृष्टाः पद्मरागमणेर्गुणाः।
धारणादिन्द्रनीलस्य तानेवाप्नोति मानवः ॥८

सूतजी ने कहा—वहाँ पर ही सिंहल देश की वधू के कर-पल्लव द्वारा व्यालून जो बाल लवली कुसुम का प्रवाल जिस देश में है उस देश में दितिज (महासुर) के अत्यन्त सुन्दर विकसित कमल के समान द्युति वाले दोनों नेत्रों का जोड़ा गिरा था ॥१॥ उसके प्रत्यय से दोनों शोभा युक्त वीथियों की भा (दीप्ति) वाली – विस्तार से युक्त जलनिधि की उपकच्छ भूमि जोकि प्रोद्भिन्न (विकसित) केतक दल से प्रतिवद्ध लेखा वाली थी और सान्द्र इन्द्र नील मणि रत्नों से समन्वित शोभित होती है ॥२॥ वहाँ पर असित कमल और बहल भृङ्गों के समान तथा भृङ्ग शार्ङ्ग—युद्धाङ्ग—हरकण्ठ शिव की गरदन)—कषाय पुष्प शुक्रोतर गिरि कर्णिका के कुसुमों के सदृश भासित मणियाँ उस देश से समुत्पन्न होती हैं ॥३॥ अन्य पयोनिधि के प्रसन्न पय के समान हैं -कुछ अम्बु के तुल्य कान्ति वाली हैं तथा दूसरी मणियाँ मयूरों के समूह के समान प्रतिभा वाली होती हैं। कुछ नीली रस से समुत्पन्न बुद्बुदों के तुल्य भा वाली है और कुछ मद से युक्त कोकिल के कण्ठ की दीप्ति के समान दीप्ति वाली होती हैं ॥४॥ उन मणियों में एक ऐसे प्रकार वाली मणियाँ होती हैं जो विशेष रूप से स्पष्ट वर्ण तथा शोभा से अवभासित हुआ करती हैं। उसमें इन्द्र नील मणियां महान् गुणों से युक्त होती हैं ॥५॥ ये मणियाँ मृत्तिका-पाषाण—शिला—रन्ध्र-वर्करा त्रास से युक्त और अभ्रिका पात्र के छाया और वर्ण दोषों से दूषित होती हैं ॥६॥ वहाँ

पर तभीमे बहुत सी मणियाँ उत्पन्न होती हैं। शास्त्रोंके द्वारा भली भाँति बोधित बुद्धि वाले विद्वान् पुरुष उनकी प्रशंसा किया करते हैं ॥ ७ ॥ पद्मराग मणि के धारण करने पर जो गुण देखे गये हैं उन्हीं गुणों को इन्द्रनील मणि के धारण करने से मानव प्राप्त किया करता है ॥८॥

यथा च पद्मरागाणां जातकत्रितयं भवेत्।
इन्द्रनीलेष्वपि तथा द्रष्टव्यमविशेषतः ॥९
परीक्षा प्रत्ययैयैश्च पद्मरागः परीक्ष्यते।
तत्रैव प्रत्यया दृष्टा इन्द्रनीलमणेरपि ॥१०
यावन्तं चक्रमेदग्नि पद्मरागोपयोगतः।
इन्द्रनीलमणिस्तमात्क्रमेत सुमहत्तरम् ॥११
तथापि न परीक्षार्थं गुणानामभिवृद्धये।
मणिरग्नौ समाधेयः कथञ्चिदपि कश्चन ॥१२
अग्निमात्रापरिज्ञाने दाहदोषैश्च दूषितः।
सोऽनर्थाय भवेद्भर्त्तुः कर्त्तुः कारयितुस्तथा ॥१३

जिस तरह से पद्मरागों के तीन जातक होते हैं उसी भाँति इन्द्र नीलों में भी बिना किसी विशेषता के देखने योग्य होते हैं ॥९॥ प्रत्ययों से परीक्षा पद्मराग की होती है और जिनके द्वारा वह परीक्षित होता है वहाँ इन्द्र नील मणियों में भी वे ही प्रत्यय देखे गये हैं ॥१०॥ पद्मराग के उपयोग से जितना अग्नि चक्रामित होता है इन्द्र नील मणि उससे सुमहत्तर क्रमित किया करता है ॥११॥ तो भी जाँच के लिये और गुणों की अभिवृद्धि के लिये कोई भी किसी भी प्रकार से मणि को अग्नि में समाहित न करे ॥१२॥ अग्नि मात्रा के परिज्ञान में दाह के दोषों से दूषित वह मणि धारण करने वाले स्वामी को, करने वाले को और कराने वाले को अनर्थ के लिये ही होती है अर्थात् अनर्थ वाली हो जाती है ॥१३॥

काचोत्पलकरवीरसस्फटिकाद्या इह बुधैः सवैदूर्याः।
कथिता विजातय इमे सदृशा मणिनेन्द्रनीलेन ॥१४

गुरुभावकठिनभावावेतेषां नित्यमेव विज्ञेयौ।
काचाद्यथावदुत्तरविवर्द्धमानौ विशेषेण ॥१५
इन्द्रनीलो यथा कथंचिद् बिभर्त्याताम्रवर्णताम्।
रक्षणीयौ तथा ताम्रौ करवीरोत्पलाबुभौ ॥१६
यस्य मध्यगता भाति नीलस्येन्द्रायुधप्रभा।
तमिन्द्रनीलमित्याहुर्महार्हं भुवि दुर्लभम् ॥१७
यस्य वर्णस्य भूयस्त्वात्क्षीरे शतगुणे स्थितः।
नीलतां तन्नयेत्सर्वं महानीलः स उच्यते ॥१८
यत्पद्मरागस्य महागुणस्य मूल्यं भवेन्माषसमन्वितस्य।
तदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य वर्णस्य संख्याकुलितस्य मूल्यम् १९

काचोत्पल—करवीर-स्फटिक आदि तथा वैदूर्य बुधों के द्वारा लोक में ये इन्द्र नील मणि के सदृश विजातीय कहे गये हैं ॥ १४ ॥ इनका गुरुभाव और कठिन भाव नित्य ही जान लेने योग्य है काच से यथावत् विशेष रूप से उत्तार विवर्द्धमान होते हैं ॥१५॥ जैसे इन्द्रनील थोड़ा सा ताम्र वर्णता को धारण करता है उसी भाँति करवीरोत्पल दोनों ताम्रों की रक्षा करनी चाहिए ॥ १६ ॥ जिसके मध्य में रहने वाली नील की इन्द्रायुधि प्रभा शोभा देती है उस इन्द्रनील को बहुत अधिक मूल्य वाला और लोक में दुर्लभ कहा गया है ॥ १७ ॥ जिसके वर्णों की अधिकता होने से सोगुने क्षीर में समास्थित होकर उस समस्त क्षीर को नालता प्रदान कर देता है वह महानील कहा जाता है ॥१८॥ जो माष समन्वित पद्मराग का जिसमें महान् गुण हो, मूल्य होता है वह महान् गुण से युक्त वर्ण की संख्या से आकुलित इन्द्रनील का मूल्य होता है ॥१९॥

४२—वैदूर्य परीक्षा

वैदूर्य्यपुष्परागाणां कर्केतनभीष्मकयोः।
परीक्षा ब्रह्मणा प्रोक्ता व्यासेन कथिता द्विज ॥१
कल्पान्तकालक्षुभिताम्बुराशेर्निर्ह्लादकल्पाद्दितिजस्य नादात्।
वैदूर्य्यमुत्पन्नमनेकवर्णं शोभाभिरामद्युतिवर्णबीजम् ॥२

अविदूरे विदूरस्य गिरेरुतुङ्गरोधसः ।
कामभूतिकसीमानमनु तस्याकरो भवेत् ॥३
तस्य नादसमुत्थत्वादाकरः सुमहागुणः ।
अभूदुत्तरितो लोके लोकत्रयविभूषणः ॥४
तस्यैव दानवपतेर्निनदानुरूपाः प्रावृट्पयोदवरदर्शितचारुरूपाः ।
वैदूर्यरत्नमणयो विविधावभासास्तस्मात्स्फुलिङ्गनिवहा इव
संबभूवुः ॥५
पद्मरागमुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षितौ ।
सर्वांस्तान्वर्णशोभाभिर्वैदूर्यमनुगच्छति ॥६
तेषां प्रधानं शिखिकण्ठनील यद्वा भवेद्वेणुदलप्रकाशम् ।
चाषाग्रपक्षप्रतिमश्रियो ये न ते प्रशस्ता मणिशास्त्रविद्भिः ॥७

सूतजी ने कहा—हे द्विज ! वैदूर्य-पुष्पराग-कर्केतन और भीष्मक की परीक्षा ब्रह्माजी के द्वारा प्रोक्त है और उसे फिर व्यास महर्षि ने कहा है ॥१॥ दितिज (महासुर) के नाद से कल्प के अन्त तक के समय में क्षुभित जो अम्बुराशि (समुद्र) उसके निर्ह्राद कल्प से अनेक वर्णों वाला वैदूर्य रत्न जोकि शोभा-अभिरामता-द्युति और वर्ण का बीज है समुत्पन्न हुआ था ॥२॥ उत्तुङ्ग रोधश वाले विदूर गिरि के निकट ही में कामभूतिक सीमा के पीछे उसका आकर होता है ॥३॥ उसके नाद से समुत्थ होने के कारण सुमहान् गुणों वाला लोक में उत्तरित और तीनों लोकों का भूषण आकर हुआ था ॥४॥ उस दानवों के स्वामी के नादके अनुरूप वर्षा के समय में मेघों के श्रेष्ठ दर्शित सुन्दर रूप वाले अनेक प्रकार की दीप्ति से युक्त वैदूर्य रत्न मणियाँ उससे स्फुलिङ्गों के समूहों की भाँति उत्पन्न हुए थे ॥५॥ पद्मराग का उपादान करके भूमण्डल में जो मणियों के वर्ण विद्यमान हैं उन सबको वर्णों की शोभाओं से वैदूर्य अनुगमन किया करता है ॥६॥ उन वर्णों में शिखि (मयूर) के कंठ के समान नील वर्ण प्रधान है । अथवा वेणु के समान प्रकाश वाला प्रधान होता है । जो चाषाग्र के पक्षों की प्रतिमा की श्री के आश्रय वाले हैं उन्हें मणियों के शास्त्र के ज्ञाताओं ने प्रशस्त नहीं बताया है ॥७॥

गुणवान्वैदूर्य्यमणिर्योजयति स्वामिनं वरभाग्यैः।
दोषैर्युक्तो दोषैस्तस्माद्यत्नात्परीक्षेत ॥८
गिरिकाचशिशुपालौ,काचस्फटिकाश्च धूम्रनिर्भिन्नाः।
वैदूर्य्यमणेरेते विजातयः सन्निभाः सन्ति ॥६
लिख्याभावात्काच लघुभावाच्छैशुपालकं विद्यात्।
गिरिकाचमदीप्तित्वात्स्फटिकं वर्णोज्ज्वलत्वेन ॥१०
यदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य सुवर्णसंख्याकलितस्य मूल्यम्।
तदेव वैदूर्य्यमणेः प्रदिष्टं पलद्वयोन्मापितगौरवस्य ॥११
जात्यस्य सर्वेऽपि मणेस्तु यादृग्विजातयः सन्ति समानवर्णाः
तथापि नामाकरणानुमेयभेदप्रकारः परमः प्रदिष्टः ॥१२

जो गुणों से सम्पन्न वैडूर्य मणि होता है वह अपने स्वामी को श्रेष्ठ भाग्यों से योजित किया करता है। जो दोषों से युक्त होता है वह अनेक दोषों से स्वामी को दूषित कर देता है। अतएव यत्न पूर्वक परीक्षा अवश्य कर लेनी चाहिए ॥८॥ गिरि काच—शिशुपाल-काच स्फटिक और धूम्र निर्मित ये इतने वैदूर्य मणि के सदृश विजातीय रत्न हुआ करते हैं ।।६।। लिख्य के अभाव रहने से कांच का तथा लघुभाव होने से शिशुपालक का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। दीप्ति रहित होने से गिरि काच को और वर्हां की उज्ज्वलता होने से स्फटिक को पहिचान लेना चाहिये ॥१०॥ जो महान् गुणों से युक्त सुवर्ण सख्याकलित का मूल्य होता है वही पलद्वय से उन्मापित गौरव वाले वैदूर्य मणि का मूल बनाया गया है ॥११॥ जात्य मणि के सभी समान वर्ण वाले जैसे विजातीय रत्न होते हैं तो भी नामाकरण से अनुमान करने के योग्य भेदों का प्रकार बहुत अच्छा बताया गया है ॥१२॥

सुखोपलक्ष्यश्च सदा विचार्य्यो ह्ययं प्रभेदो विदुषा नरेण।
स्नेहप्रभेदो लघुना मृदुत्वं विजातलिङ्गं खलुमार्वजन्यम्॥१३
कुशलाकुशलैः प्रपूर्य्यमाणा प्रतिबद्धाः प्रतिसत्क्रियाप्रयोगैः।
गुणदोषसमुद्भवं लभन्ते मणयोऽर्थान्तरमूल्यमेव भिन्नाः१

क्रमशः समतीतवर्त्तमानाः प्रतिबद्धा मणिबन्धकेन यत्नात् ।
यदि नाम भवन्ति दोषहीनामणयः षड्गुणमाप्नुवन्ति मूल्यम् ॥१५

आकराम्समतीतानामुदधेस्तीरसन्निधौ ।
मूल्यमेतन्मणीनान्तु न सर्वत्र महीतले ॥१६
सुवर्णो मनुना यस्तु प्रोक्तः षोडशमाषकः ।
तस्य सप्ततमो भागः संज्ञारूपं करिष्यति ॥१७
शाणश्चतुर्माषमानो माषकः पंचकृष्णलः ।
पलस्य दशमो भागो धरणः परिकीर्त्तितः ॥१८
इति मणिविधिः प्रोक्तो रत्नानां मूल्यनिश्चये ॥१९

विद्वान् पुरुष के द्वारा सुख पूर्वक देखने के योग्य यह प्रभेद सदा ही विचार करने के योग्य होता है—स्नेह प्रभेद-लघुता-मृदुता और सर्व साधारण में होने वाला विजाति चिह्न ॥१३॥ कुशल और अकुशलों के द्वारा प्रकृष्ट रूप से पूर्यमाण तथा प्रति मक्रिया के प्रयोगों से प्रतिबद्ध मणियाँ गुणों और दोषों के समुद्भव को प्राप्त किया करती हैं और अर्थान्तर मूल्य ही से भिन्न होती हैं ॥१४॥ क्रम से समतीत वर्त्तमान वाली और यत्नपूर्वक मणि बन्धक के द्वारा प्रतिबद्ध मणियाँ यदि दोषों से हीन हो जाती हैं तो फिर वे छँगुनी कीमत को प्राप्त होती हैं ॥१५॥ सागर के तट के समीप में आकर (खान) से समतीन (निकली हुई) मणियों का मूल्य भूमण्डल में सर्वत्र निश्चय ही नहीं हुआ करता है ॥१६॥ षोडश माषक सुवर्ण मन्त्र के द्वारा कहा गया है उसका सातवाँ भाग संज्ञा के स्वरूप को करेगा ॥१७॥ चार माष मान शाण और पाँच माषक कृष्णल तथा पल का दशम भाग धरण परिकीर्त्तित किया गया है ॥१८॥ यही रत्नों के मूल्य के निश्चय करने में मणियों की विधि बताई गई है ॥६॥

४३—अन्य रत्न परीक्षा

पतितायां हिमाद्रौ तु त्वचस्तस्य सुरद्विषः ।
प्रादुर्भवन्ति ताभ्यस्तु पुष्परागा महागुणाः ॥१

आपीतपाण्डुरुचिरः पाषाणः पद्मरागसंज्ञकः ।
कौरुण्डकनामा स्यात्स एव यदि लोहितस्तु पीतः ॥२
आलोहितस्तु पीतः स्वच्छः काषायकः स एवोक्तः ।
आनीलशुक्लवर्णः स्निग्धः सोमानकः सगुणः ॥३
अत्यन्तलोहितो यः स एव खलु पद्मरागसंज्ञः स्यात् ।
अपि चेन्द्रनीलसंज्ञः स एव कथितः सुनीलः सन् ॥४
मूल्यं वैदूर्य्यमणेरिव गदितं ह्यस्य रत्नशास्त्रविदा ।
धारणफलञ्च तद्वत्किन्तु स्त्रीणां सुतप्रदो भवति ॥५

अब अन्य रत्नों की परीक्षा के विषय में बतलाया जाता है । सूतजी बोले—उस महासुर की त्वचा जब हिमाद्रि में गिरि तो उससे महान् गुणों वाले पुष्पराग रत्नों का प्रादुर्भाव होता है ॥ १ ॥ आपील पाण्डु और सुन्दर वर्ण वाला पद्मराग संज्ञा वाला पाषाण कौरुण्डक नाम वाला होता है । वह ही यदि लोहित एवं पीत होता है । आलोहित पीत और स्वच्छ वह ही काषायक कहा गया है आनील शुक्ल वर्ण वाला गुणों से युक्त एवं स्निग्ध सोमानक कहा जाता है ॥२।३॥ जो बहुत ही अधिक लोहित होता है तो वही पद्मराग की संज्ञा वाला होता है । और इन्द्र-नील की संज्ञा वाला हो तो वह ही सुनील ऐसा कहा गया है । रत्न शास्त्र के विद्वानों के द्वारा इसका मूल्य वैदूर्य मणि का जैसा ही कहा गया है तथा इसके धारण करने का फल भी उसी के समान होता है किन्तु स्त्रियों को यह सुत के प्रदान करने वाला होता है ॥४।५॥

वायुर्नखान्दैत्यपतेर्गृहीत्वा चिक्षेप सत्पद्मवनेषु हृष्टः ।
ततः प्रसूतं पवनोपपन्नं कर्केतनं पूज्यतम पृथिव्याम् ॥६
वर्णेन तद्रुधिरसोममधुप्रकाशमाताम्रपीतदहनोज्ज्वलितं विभाति ।
नीलं पुनः खलु सितं परुषं विभिन्नं व्याध्यादिदोषकरणे न च तद्विभाति ॥७॥
स्निग्धा विशुद्धाः समरागिणश्च आपीतवर्णा गुरवो विचित्राः ।
त्रासव्रणव्यालविवर्जिताश्च कर्केतनास्ते परमं पवित्राः ॥८

पात्रेण काञ्चनमयेन तु वेष्टयित्वा तप्तं यदा हुतवहैर्भवति
प्रकाशम् । रोगप्रणाशनकरं कलिनाशनं तदायुष्करं कुलकरञ्च
सुखप्रदंच ॥६॥ एवंविधं बहुगुणं मणिमावहन्ति कर्केतनं शुभम-
लंकृतये नरा ये । ते पूजिता बहुधना बहुबान्धवाश्च नित्यो-
ज्ज्वलाः प्रमुदिता अपि ते भवन्ति ॥१०

एकेऽपनह्य विकृताकुलनीलभासः प्रम्लानरागलुलिताः कलुषा
विरूपाः । तेजोऽतिदीप्तिकुलपुष्टिविहीनवर्णाः कर्केतनस्य सदृशं
बपुरुद्वहन्ति ॥११॥ कर्केतनं यदि परीक्षितवर्णरूपं प्रत्यग्रभा-
स्वरदिवाकरसुप्रकाशम् । तस्योत्तमस्य मणिशास्त्रविदा महिम्ना
तुल्यन्तु मूल्यमुदितं तुलितस्य कार्य्यम् ॥१२

सूतजी ने कहा—कि उन दैत्यों के स्वामी के नखों को वायु ने ग्रहण कर प्रसन्नता से भरे हुए ने उन्हें पद्मों के वन में डाल दिया था और फिर वहाँ से पवनोपन्न वह इस मही मण्डल में पूज्यतम कर्केतन समुत्पन्न हुआ था ।।६।। वह कर्केतन रत्न वर्ण ने रुधिर—सोम - और मधु के समान द्युति वाला है तथा थोड़ा सा ताम्र एवं पीत अग्नि के सदृश जाज्वल्यमान प्रतीत होता है । वह फिर नील—सित और परुष (कठोर) विभिन्न प्रकार वाला होता है तथा व्याधि आदि दोषों के करने में वह कोई प्रभाव नहीं रखता है ।।७।। स्निग्ध—विशुद्ध —सम राग वाले—आपीत वर्ण वाले-गुरुत्व युक्त तथा विचित्र स्वरूप वाले हैं और त्रास —व्रण और व्याल से रहित कर्केतन परम पवित्र होते हैं ।।८।। काञ्चन मय पात्र के द्वारा वेष्टन करके जब तप्त किया जाता है तो वह हुतवह के द्वारा प्रकाश देता है । वह रोगों के नाश करने वाला-कलिका नाशक—आयु की वृद्धि करने वाला--कुल कर और सुख प्रदान करने वाला होता है ।।६।। इस तरह से जो मनुष्य बहुत गुणों वाले कर्केतन को शुभ अलङ्करण के लिये धारण किया करते हैं वे परम पूजित—अधिक धन से युक्त—बहुत बान्धवों वाले—नित्य उज्ज्वल और प्रमुदित भी हुआ करते हैं ।।१०।। एक ऐसे भी होते हैं जो विकृत-आकुल नील दीप्त वाले--प्रम्लान राग से लुलित--कलुष-विरूप तथा तेज, दीप्ति, कुल और पुष्टि से विहीन वर्ण वाले हैं तथा बिल्कुल कर्केतन के समान

ही वपु को धारण किया करते हैं ॥११॥ यदि कर्केतन परीक्षित वर्ण एवं रूप वाला है तो वह प्रत्यग्र—भास्वर दिवाकर के समान प्रकाश वाला होता है। उस उत्तम कर्केतन का मणि शास्त्र के विद्वान महिमा से तुलित का मूल्य तुल्य कहते हैं ॥१२॥

हिमवत्युत्तरे देशे वीर्य्यं पतितं सुरद्विषस्तस्य।
संप्राप्तमुत्तमानामाकरतां भीष्मरत्नानाम् ॥१३
शुक्लाः शङ्खाब्जनिभाः स्योनाकसन्निभाः प्रभावन्तः।
प्रभवन्ति ततस्तरुणा वज्रनिभा भीष्मपाषाणाः ॥१४
हेमादिप्रतिवद्धाः शुद्धमपि शुद्धया विधत्ते यः।
भीष्ममणि ग्रीवादिषु सम्पदं सर्वदा लभते ॥१५
निरीक्ष्य पलायन्ते ये तमरण्यनिवासिनः समीपेऽपि।
द्वीपिवृकशरभकुञ्जरसिंहव्याघ्रदयो हिंस्राः ॥१६
तस्योत्कलभकृतिनोर्भय नचास्तीशमुपहसन्ति।
भीष्ममणिगुणयुक्तो सम्यक्प्राप्ताङ्गुलीयकलत्रत्वम् ॥१७
पितृतर्पणापि पितृणां तृप्तिर्बहुवार्षिका भवति।
शाम्यन्त्युद्भूतान्यपि सर्पाण्डजाखुवृश्चिक विषाणि।
सलिलाग्निवैरितस्करभयानि भीमानि नश्यन्ति ॥१८
शैवलबलाहकाभं परुषं पीतप्रभं प्रभाहीनम्।
मलिनद्युति च विवर्णं दूरात्परिवर्जयेत्प्राज्ञः १९
मूल्यं प्रकल्प्यमेषां विबुधवरैर्देशकालविज्ञानात्।
दूरे भूतानां बहु किञ्चन्निकटप्रसूतानाम् ॥२०

सूतजी ने कहा—हिमवान् के उत्तर देश में उस महासुर का वीर्य पतित हुआ था और वह वीर्य उत्तम भीष्म रत्नों की आकरता को प्राप्त हुआ था ॥१३॥ वहाँ पर भीष्म पाषाण शुक्ल-शंख और कमल के तुल्य– स्योनाक के सदृश प्रभा वाले—वज्र के समान और तरुण उत्पन्न होते हैं ॥१४॥ सुवर्ण आदि से प्रतिबद्ध शुद्ध विधि से शुद्ध किया हुआ भीष्म मणि को जो ग्रीवा आदि अङ्गों में धारण करता है

वह सर्वदा सम्पदा को प्राप्त किया करता है ।। ५।। इस रत्न के धारण करने वाले पुरुष को समीप में भी अरण्य के निवास करने वाले हाथी-भेड़िया-शरभ-कुञ्जर-सिंह और व्याघ्र आदि हिंसक जीव भी देखते ही दूर भाग जाया करते हैं ।।१६।। उत्कलभकृति उसको भय नहीं होता है । स्वामी का उपहास करते हैं । गुणों से युक्त भीष्म मणि को जिसने भली भाँति अंगूठी में कलत्रत्व को प्राप्त कर लिया है उस मनुष्य के करों से पितृगण को किया हुआ तर्पण भी बहुत वर्षों तक तृप्ति दिया करता है । सर्पाण्डज-आखु और वृश्चिक के समुत्पन्न विष भी उपशान्त हो जाया करते हैं तथा बहुत भयानक जल अग्नि-शत्रु-तस्कर के भय भी नष्ट हो जाते हैं ।।१७।१८।। प्राज्ञ पुरुष को शैवल और वलाहक के समान आभा वाले-परुष (कठोर)-पीली प्रभा से युक्त-प्रभा से रहित-मलिन कान्ति वाला एवं वर्ण रहित रत्नमणि का त्याग दूर से ही कर देना चाहिए ।। १९ ।। देश और काल के विज्ञान से विबुधवरों के द्वारा इन रत्न मणियों का मूल्य प्रकल्पित करना चाहिए । दूर में होने वालों का बहुत और निकट में प्रसूतों का कुछ होता है ।।२०।।

पुण्येषु पर्वतवरेषु च निम्नगासु स्थानान्तरेषु च तथोत्तरदेशगासु ।
संस्थापिताश्च नखरा भुजगैःप्रकाशं संपूज्य दानवपतिं प्रथितेप्रदेशे२१
दाशार्णवागदवमेकलकालगादौ गुञ्जाञ्जनक्षौद्रमृणालवर्णाः ।
गन्धर्ववह्निकदलीसदृशावभासा एते प्रशस्ताः पुलकाः प्रसूताः।२२
शङ्खाब्जभृङ्गार्कविचित्रभङ्गाः सूत्रैर्व्यपेताः परमाः पवित्राः ।
माङ्गल्ययुक्ता बहुभक्तिचित्रा वृद्धिप्रदास्ते पुलका भवन्ति ।।२३
काकश्वरासभश्रृगालवृकोग्ररूपैर्गृध्रैः समांसरुधिरार्द्रमुखैरुपेताः ।
मृत्युप्रदाश्चविदुषा परिवर्जनीया मूल्यंपलस्य कथितञ्च शतानिपञ्च२४
हुतभुग्रूपमादाय दानवस्य यथेप्सितम् ।
नर्मदायां निचिक्षेप किञ्चिद्धोनादिभूमिषु ।।२५
तत्रेन्द्रगोपकलितं शुकवक्त्रवर्णं संस्थानतः प्रकटपीनसमानमात्रम् ।
नानाप्रकारविहितं रुधिराख्यरत्नमुद्धृत्य तस्य खलु सर्वसमानमेव२६
मध्येन्दुपाण्डरमतीव विशुद्धवर्णं तच्चन्द्रनीलसदृशं पटलं तुलेस्यात्।
सैश्वर्य्यभृत्यजननं कथितं तदेव पक्वञ्च तत्किल भवेत्सुरवज्रवर्णम्२७

सूतजी कहते हैं—परम पुण्य श्रेष्ठ पर्वतों में—स्थानान्तरों में तथा उत्तर देश में रहने वाली नदियों में और प्रथित प्रदेश में दानव-पति का भली भाँति पूजन करके भुजगों के द्वारा प्रकाश में नखरों को संस्थापित किया था ॥२१॥ दाशार्णवा गदवमेकल कालगादि में गुञ्जा—अञ्जन—शहद और मृणाल के समान वर्ण वाले तथा गन्धर्व—अग्नि—कदली के सदृश अवभासित होने वाले ये प्रशस्त पुलक समुत्पन्न हुए थे ॥ २२ ॥ शङ्ख—अब्ज—भृङ्ग और अर्क के तुल्य विचित्र भंग वाले और सूत्रों से व्यपेत परम पवित्र होते हैं। माङ्गल्य से समन्वित—बहुत भक्तियों से चित्रित वे पुलक वृद्धि के प्रदान करने वाले होते हैं ॥२३॥ कौआ—कुत्ता—रासभ—शृगाल—वृक—से उग्र रूप वाले गिद्धों से जो कि मांस एवं रुधिर से आर्द्र मुख हैं इनसे समुपेत रत्न मृत्यु प्रद होते हैं और विद्वान् पुरुष को उन्हें त्याग ही देना चाहिए। इसके एक पल का मूल्य पाँच सौ रुपये कहा गया है ॥२४॥ सूतजी ने कहा—दानव का यथेप्सित हुतभुक् का रूप लेकर कुछ हीनादि भूमियों में नर्मदा में डाल दिया था ॥२५॥ वहाँ पर इन्द्र गोप के समान सुन्दर—शुक के मुख के सदृश वर्ण वाला—प्रकट पीन समान मात्र—अनेक प्रकार का विहित रुधिर संज्ञक रत्न का उद्धरण कर उसका सब समान ही मध्यम में इन्द्र के समान पाण्डर अत्यन्त विशुद्ध वर्ण वाला और इन्द्रनील के तुल्य-तुल में पटल होता है। यह परम ऐश्वर्य एवं भृत्य के जनन करने वाला है—ऐसा कहा गया है। वह ही जब पक्व होता है तो निश्चय ही सुरवज्र के तुल्य वर्ण वाला हो जाता है ॥२६॥२७॥

कावेरविन्ध्ययवनचीननेपालभूमिषु ।
लाङ्गली व्यकिरन्मेदो दानवस्य प्रयत्नतः ॥२८
आकाशयुद्धं तैलाख्यमुत्पन्नं स्फटिक ततः ।
मृणालशङ्खधवलं किञ्चिद्वर्णान्तरान्वितम् ॥२९
न तत्तुल्यं हि रत्नञ्च सर्वथा पापनाशनम् ।
संस्कृत शिल्पिना सद्यो मूल्यं किञ्चिल्लभेत्ततः ॥३०
आदाय शेषस्तस्यान्त्रं बलस्य केरलादिषु ।
चिक्षेप तत्र जायन्ते विद्रुमाः सुमहागुणाः ॥३१

तत्र प्रधानं शशिलोहिताभं गुञ्जाजवापुष्पनिभं प्रदिष्टम् ।
सुनीलकं देवकरोमकञ्च स्थानानि तेषु प्रभवं सुरागम् ।
अन्यत्र जातंच न तत्प्रधानं मूल्यं भवेच्छिल्पिविशेषयोगात् ३२
प्रसन्नं कोमलं स्निग्धं सुरागं विद्रुमं हि तत् ।
धनधान्यकरं लोके विषार्त्तिभयनाशनम् ।।
स्फटिकस्य विद्रुमस्य रत्नज्ञानाय शौनकः ॥३३

सूतजी बोले—उस महा दानव का मेद लाङ्गली ने प्रयत्न पूर्वक कावेर-विन्ध्य—यवन—चीन और नेपाल देश की भूमि में बखेर दिया था ।।२८।। वहाँ तैलाख्य आकाश युद्ध स्फटिक समुत्पन्न हुआ था। यह मृणाल एवं शङ्ख के समान धवल होता है और कुछ अन्य वर्णों से भी युक्त होता है ।।२९।। इसके समान सर्वथा पापों के नाश करने वाला अन्य रत्न नहीं है । शिल्पी के द्वारा तुरन्त ही संस्कार किये जाने वाला हो तो उसका कुछ मूल्य भी प्राप्त किया जाता है ।।३०।। सूतजी ने कहा—शेष ने उस बलवान् के अन्त्र को लेकर केरल आदि देशों में क्षिप्त कर दिया था। वहाँ पर सुमहान् गुणों से समन्वित विद्रुम समुत्पन्न होते हैं ।।३१।। उनमें प्रधान शश और लोहित की आभा वाला है तथा गुञ्जा—जवा के पुष्प के तुल्य वर्ण वाला भी बताया गया है। सुनीलक और देवक रोमक स्थान है उनमें सुन्दर राग वाले का प्रभव होता है । अन्य स्थानों में जो पैदा होता है वह प्रधान नहीं है । इसका किसी शिल्पी के विशेष योग प्राप्त हो जाने से मूल्य हुआ करता है ।।३२।। प्रसन्न-कोमल—स्निग्ध और सुन्दर रङ्ग वाला वह विद्रुम होता है। यह लोक में धन—धान्य करने वाला और विष—पीड़ा भय से नाश करने वाला होता है ।।३३।।

४४—तीर्थ माहात्म्य

सर्वतीर्थानि वक्ष्यामि गङ्गा तीर्थोत्तमोत्तमा ।
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ।।१
हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे ।
प्रयागं परमं तीर्थं मृतानां भुक्तिमुक्तिदम् ।।२

सेवनात्कृतपिण्डानां पापजित्कामदं नृणाम् ।
वाराणसी परं तीर्थं विश्वेशो यत्र केशवः ॥३
कुरुक्षेत्रं परं तीर्थं दानाद्यैर्भुक्तिमुक्तिदम् ।
प्रभासं परमं तीर्थं सोमनाथो हि तत्र च ॥४
द्वारका च पुरी रम्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिका ।
प्राची सरस्वती पुण्या सप्तसारस्वतं परम् ॥५
केदारं सर्वपापघ्नं शम्भलग्राम उत्तमम् ।
नारायणं महातीर्थं मुक्त्यै बदरिकाश्रमम् ॥६
श्वेतद्वीपं पुरी माया नैमिषं पुष्करं परम् ।
अयोध्या चार्य्यतीर्थन्तु चित्रकूटश्च गोमती ॥७

सूतजी ने कहा–अब हम समस्त तीर्थों को बतलाते हैं । गंगा उन समस्त तीर्थोंसे उत्तम से भी उत्तम तीर्थहै । यह गंगा सर्वत्र ही सुलभ होती हैं केवल यह तीन स्थानों में दुर्लभ हुआ करती है ॥१॥ वे तीन स्थान हैं—हरिद्वार-प्रयाग और गंगा-सागर संगम । प्रयाग परम तीर्थ है जो मृत पुरुषों को मुक्ति एवं भुक्ति प्रदान करने वाला होता है॥२॥ वाराणसी भी परम तीर्थ है जहाँ विश्वके नाथ केशव विद्यमान रहतेहैं । इसके सेवन करने से तथा यहाँ पिण्ड-दान करने से प्राणी पापों पर विजय प्राप्त कर लेता है और यह मानवों की अभीष्ट कामनाओं को देने वाला है॥३॥ कुरुक्षेत्र भी एक परमोत्तम तीर्थ है । यहाँ दान आदि देने पर इनके द्वारा मनुष्य भुक्ति एवं मुक्ति दोनों की प्राप्ति किया करता है । प्रभास क्षेत्र अति श्रेष्ठ तीर्थहै । वहां पर भगवान् सोमनाथ विराजते हैं ॥४॥ द्वारकापुरी परम सुन्दर है जो भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाली है । प्राची सरस्वती पुण्या है और सप्त सारस्वत परम तीर्थ हैं ॥५॥केदार तीर्थ समस्त प्रकार के पापों का हनन करने वालाहै तथा शम्भल ग्राम अति उत्तम है । नारायण महान् तीर्थ हैं । मुक्ति के प्राप्त करने के लिए बदरिकाश्रम है ॥ ६ ॥ श्वेतद्वीप–मायापुरी–नैमिष और पुष्कर परम तीर्थ हैं । अयोध्या आर्य्यों का श्रेष्ठ तीर्थ है । चित्रकूट–गोमती तीर्थ हैं ॥७॥

वनायकं महातीर्थं रामगिर्य्याश्रमं परम् ।
काञ्चीपुरी तुङ्गभद्रा श्रीशैलं सेतुबन्धनम् ॥८
रामेश्वरं परं तीर्थं कार्त्तिकेयं तथोत्तमम् ।
भृगुतुङ्गं कामतीर्थं कामरं कटकं तथा ॥६
उज्जयिन्यां महाकालः कुब्जके श्रीधरो हरिः ।
कुब्जाम्रकं महातीर्थं कालसर्पिश्च कामदः ॥१०
महाकेशी च कावेरी चन्द्रभागा विपाशया ।
एकाम्रञ्च तथा तीर्थं ब्रह्माणं देवकोटकम् ॥
मथुरा च पुरी रम्या शोणश्चैव महानदः ॥११
जम्बूसरो महातीर्थं तानि तीर्थानि विद्धि च ।
सूर्य्यः शिवो गणो देवी हरिर्यत्र च तिष्ठति ॥१२
एतेषु च तथान्येषु स्नानं दानं जपस्तपः ।
पूजा श्राद्धं पिण्डदानं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥१३
शालग्रामं सर्वदं स्यात् तीर्थं पशुपतेः परम् ।
गोकामुखञ्च वाराहं भाण्डोरं स्वामिसंज्ञकम् ॥१४
मोहदण्डे महाविष्णुर्मन्दारे मधुसूदनः ।
कामरूप महातीर्थं कामाख्या यत्र तिष्ठति ॥
पुण्ड्रवर्द्धनकं तीर्थं कार्त्तिकेयश्च यत्र च ॥१५

वैनायक महान् तीर्थ है। रामगिरि-आश्रम भी परम तीर्थ है। काञ्चीपुरी—तुङ्गभद्रा श्री शैल—सेतुबन्ध—रामेश्वर तथा कार्त्तिकेय ये सब बहुत बड़े तीर्थ हैं। भृगु तुङ्ग—कामतीर्थ—कामर—कटक ये सभी श्रेष्ठतम तीर्थ हैं ॥८॥६॥ उज्जयिनी पुरी विशाल तीर्थ है जहाँ पर भगवान् महाकालेश्वर विद्यमान हैं। कुब्जक तीर्थ में श्रीधर हरि विराजमान रहते हैं। कुब्जाम्र महान् तीर्थ है। कालसर्पि तीर्थ कामनाओं की पूर्त्ति करने वाला है ॥ १० ॥ महाकेशी कावेरी—चन्द्रभागा—विपाशा—एकाम्र ब्राह्मण देवकोटक ये सब महान् तीर्थ हैं। मथुरापुरी परम रम्य तथा उत्तम तीर्थ है। महानद शोण है ॥ ११ ॥ जम्बूसर भी महान् तीर्थ है। उन समस्त तीर्थों को भली-भाँति समझ लो जहाँ

पर सविता देव – शिव – गणेश- साक्षात् शक्ति देवी और भगवान् हरि सस्थित रहा करते हैं ॥१२॥ इन उपर्युक्त तीर्थों में तथा जो नहीं बताये गये हैं ऐसे अन्य तीर्थों में किया हुआ स्नान दान—जाप-तप-पूजा—श्राद्ध और पिण्डदान आदि सभी सत्कर्म अक्षय हो जाया करते हैं ॥१३॥ शालग्राम का अर्चन सभी कुछ प्रदान करने वाला है । पशुपति का परम तीर्थ है । गौ का मुख वाराह–भाण्डीर—स्वामी संज्ञा वाला है । मोह दण्ड में महा विष्णु हैं तथा मन्दार में मधुसूदन हैं । कामाख्या काम रूप एक महान् तीर्थ है जहाँ पर भगवती कामाख्या विराजमान रहती हैं । पुण्ड्र वर्द्धनक तीर्थ है जहाँ पर स्वामि कार्त्तिकेय विद्यमान हैं ॥१४।१५॥

विरजस्तु महातीर्थं तीर्थं श्रीपुरुषोत्तमम् ।
महेन्द्रपर्वतस्तीर्थं काबेरी च नदी परा ॥१६
गोदावरी महातीर्थं पयोष्णी वरदा नदी ।
विन्ध्यः पापहरं तीर्थं नर्मदाभेद उत्तमः ॥१७
गोकर्णं परमं तीर्थं तीर्थं माहिष्मती पुरी ।
कालञ्जरं महातीर्थंशुक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥१८
कृते शौचे मुक्तिदश्च शार्ङ्गधारी तदन्तिके ।
विरजं सर्वदं तीर्थं स्वर्णाक्षं तीर्थमुत्तमम् ॥१९
नन्दितीर्थं मुक्तिदञ्च कोटितीर्थफलप्रदम् ।
नासिक्यञ्च महातीर्थं गोवर्द्धनमतः परम् ॥२०
कृष्णा वेणी भीमरथा गण्डकी या त्विरावती ।
तीर्थं विन्दुसरः पुण्यं विष्णुपादोदकं परम् ॥२१

विरज महान् तीर्थ है और श्री पुरुषोत्तम तीर्थ है । महेन्द्र पर्वत भी तीर्थ है तथा कावेरी परम नदी है । गोदावरी नदी भी महान् तीर्थ स्वरूपा है और पयोष्णी वर देने वाली नदी है । विन्ध्य पापों के हरण करने वाला तीर्थ है तथा नर्मदा भेद उत्तम है॥१६।१७॥ गोकर्ण परमोत्तम तीर्थ है और माहिष्मती पुरी तीर्थ है । कालञ्जर महान् तीर्थ है तथा सर्वोत्तम शुक्रतीर्थ है॥१८॥ ये सम्पूर्ण प्रकार के पापोंसे शुद्ध करके मुक्ति प्रदान करने वाले हैं ।

उनके पास में ही शाङ्ग धारी तीर्थ है। विरज नामधारी तीर्थ सभी कुछ देने वाला है। स्वर्णाक्ष अति उत्तम तीर्थ है ॥१९॥ नन्दि तीर्थ मुक्तिदायक है और करोड़ों तीर्थों के फलों को देने वाला है। नासिक्य महा तीर्थ है और इससे भी परमतीर्थ गोवर्द्धन है। कृष्णा, वेणी, भीमरथा, गण्डकी और इरावती ये सभी तीर्थ हैं। विन्दुसार परम तीर्थ है तथा विष्णुपादोदक परम तीर्थ है ॥२०॥२१॥

ब्रह्मध्यानं परं तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
दमस्तीर्थं तु परमं भावशुद्धिः सरस्तथा ॥२२
ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥२३
इदं तीर्थमिद नेति ये नरा भेददर्शिनः ।
तेषां विधीयते तीर्थगमनं तत्फलंव यत् ॥
सर्वं ब्रह्मे ति योऽवैति नातीर्थं तस्य किंचन ॥२४
एतेषु स्नानदानानि श्राद्धं पिण्डमथाक्षयम् ।
सर्वा नद्यः सर्वशैलाः तीर्थं देवादिसेवितम् ॥२५
श्रीरङ्गश्च हरेस्तीर्थं तापी श्रेष्ठा महानदी ।
सप्तगोदावरं तीर्थं तीर्थं कोणगिरिः परम् ॥२६
महालक्ष्मीर्यत्र देवी प्रणीता परमा नदी ।
सह्याद्रौ देवदेवेश एकवीरः सुरेश्वरी ॥२७
गङ्गाद्वारे कुशावर्त्ते विन्ध्यके नीलपर्वते ।
स्नानं कनखले तीर्थे स भवेन्न पुनर्भवे ॥२८
एतान्यन्यानि तीर्थानि स्नानाद्यैः सर्वदानि हि ।
श्रुत्वाऽब्रवीद् हरेर्ब्रह्मा व्यासं दक्षादिसंयुतम् ॥२९
एतान्युक्त्वा च तीर्थानि पुनस्तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
गयाख्यं प्राह सर्वेषामक्षयं ब्रह्मलोकदम् ॥३०

ब्रह्म ध्यान अर्थात् नितान्त एकान्त स्थान में एकाग्र मन से ब्रह्म का ध्यान करना सबसे उत्तम एवं श्रेष्ठ तीर्थ है। अपनी समस्त इन्द्रियों

पर पूर्ण नियन्त्रण कर लेना भी तीर्थ के समान है । इन्द्रियों का दमन करना परम तीर्थ है तथा अपनी भावनाओं की शुद्धि कर लेना सर के समान है ॥२२॥ ज्ञानरूपी ह्रद में और राग तथा द्वेष के मल का अपहरण करने वाले ध्यान रूपी जल में जो नित्य प्रति इस मानस तीर्थ में स्नान करता है वह मनुष्य परमगति को प्राप्त हो जाता है ॥ २३ ॥ यह तो तीर्थ है और यह तीर्थ स्थान नहीं है जो मनुष्य इस प्रकार से भेद के देखने वाले हैं उनको ही तीर्थों के गमन करने का विधान है और उनको ही तीर्थों का फल भी प्राप्त होता है जोकि ऊपर में बतलाया गया है । जो सभी को ब्रह्ममय ही मानता है उसकी दृष्टि तथा बुद्धि में अतीर्थ कुछ भी नहीं है ॥२४॥ इन तीर्थों में किये हुए स्नान–दान—श्राद्ध और पिंड सब अक्षय हो जाते हैं । सम्पूर्ण नदियाँ और सम्पूर्ण शैल देवादि से सेवित और तीर्थ स्वरूप हैं ॥ २५ ॥ श्री रङ्ग हरि का तीर्थ है । ताप्ती महानदी श्रेष्ठ है । सप्त गोदावर तीर्थ है और कोणागिरि परम तीर्थ है ॥२६॥ जहाँ पर महा लक्ष्मी देवी है वहाँ पर परमा प्रणीता नदी है । सह्याद्रि में देवदेदेश एक वीर हैं और पुरेश्वरी है ॥२७॥ गङ्गाद्वार में—कुशावर्त्त में–विन्ध्यक में और नील पर्वत में तथा कनखल तीर्थ में जो स्नान किया जाता है वह स्नान करने वाला इस संसार में पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करता है ॥२८॥ सूतजी ने कहा—ये उपर्युक्त तीर्थ तथा अन्य तीर्थ जिनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है, इनमें स्नानादि के द्वारा सभी कुछ प्राप्त हो जाता है । यह वृत्तान्त श्री हरि भगवान् से श्रवण करके ब्रह्माजी दक्षादि से संयुत व्यासजी से बोले–इन समस्त तीर्थों को कहकर फिर तीर्थों में परम तीर्थों में परम श्रेष्ठ गया नामक तीर्थ के विषय में कहा था जोकि सबमें अक्षय है और ब्रह्म लोक को प्रदान कराने वाला है ॥२९।३०॥

४५—गया माहात्म्य

सारात्सारतरं व्यास गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ॥१
गयासुरोऽभवत् पूर्वं वीर्य्यवान् परमः स च ।
तपस्तप्यन्महाघोरं सर्वभूतोपतापनम् ॥२

तत्तपस्तापिता देवास्तद्वधार्थं हरिं गताः ।
शरणं हरिरूचे तान्भवितव्यं शिवात्मभिः ॥३
पातितेऽस्य महादेहे तथेत्यूचुः सुरा हरिम् ।
कदाचिच्छिवपूजार्थं क्षीराब्धेः कमलानि च ॥४
आनीय कीटके देशे शयनं चाकरोब्दली ।
विष्णुमायाविमूढोऽसौ गदया विष्णुना हतः ॥५
अतो गदाधरो विष्णुर्गयायां मुक्तिदः स्थितः ।
तस्य देहो लिङ्गरूपी स्थितः शुद्धे पितामहः ॥६
जनार्दनश्च कालेशस्तथाऽन्यः प्रपितामहः ।
विष्णुराहाथ मर्यादां पुण्यक्षेत्रं भविष्यति ॥७

ब्रह्मा जी ने कहा—हे व्यास देव ! सारों में भी परम सार स्वरूप और अत्युत्तम गया तीर्थ का माहात्म्य है । हम उसे अब तुमको संक्षेप से बतलाते हैं । यह सांसारिक सम्पूर्ण सुखों के उपभोग और संसार में आवागमन के बन्धन से छुटकारा दोनों का प्रदान करने वाला है । इस का अब श्रवण करो ॥१॥ पहिले प्राचीन समय में गया नाम धारी एक परम पराक्रमी असुर हुआ था । उसने समस्त प्राणियों को उपताप देने वाला महान् घोर तप किया था ॥२॥ उसकी इस घोर तपश्चर्या के ताप से परम तापित देवगण उसके वध के लिये श्री हरि के शरण में गये थे । तब भगवान् हरि उन देवों से बोले कि इस महान् देह के पातित करने में शिव की आत्माओं को होना चाहिए देवों ने ऐसा होगा—यह श्रीहरि से कहा था । किसी समय में भगवान् शिव की पूजा के लिये क्षीर सागर से कमलों को लाकर कीकट देश में यह बलवान् शयन कर रहा था । विष्णु की माया से विमूढ़ हुआ यह गदा के द्वारा विष्णु से हत किया गया था ॥३।४।५॥ इससे गदाधर विष्णु मुक्ति देने वाले गया में स्थित हैं । उसका लिङ्ग रूपी देह स्थित है । शुद्ध में पितामह जनार्दन तथा अन्य प्रपितामह का लेश हैं । इसके अनन्तर विष्णु ने मर्यादा बतलाई थी कि महापुण्य क्षेत्र हो जायगा ॥६।७॥

यज्ञं श्राद्धं पिण्डदानं स्नानादि कुरुते नरः ।
स स्वर्गं ब्रह्मलोकञ्च गच्छेन्न नरकं नरः ॥८
गयातीर्थं पर ज्ञात्वा यागं चक्रे पितामहः ।
ब्राह्मणान्पूजयामास ऋत्विगर्थमुपागतान् ॥९
महानदीं रसवहां सृष्ट्वा वाप्यादिकं तथा ।
भक्ष्यभोज्यफलादींश्च कामधेनुं तथासृजत् ॥
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्र ब्राह्मणेभ्यो ददौ प्रभुः ॥१०
धर्मयागेषु लोभात्तु प्रतिगृह्य धनादिकम् ।
स्थिता विप्रास्तदा शप्ता गयायां ब्राह्मणास्ततः ॥११
माभूत्त्रैपुरुषी विद्या माभूत्त्रैपुरुष धनम् ।
युष्माकं स्याद्वारिवहा नदी पाषाणपर्वतः ॥१२
शप्तैस्तु प्रार्थितो ब्रह्माऽनुग्रह कृतवान् प्रभुः ।
लोकाः पुण्या गयायां हि श्राद्धिनो ब्रह्मलोकगाः ॥
युष्मान् वै पूजयिष्यन्ति तैरहं पूजितः सदा ॥१३
ब्रह्मज्ञान गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥१४

जो मनुष्य यहाँ पर यज्ञ—श्राद्ध—पिण्डदान और स्नान आदि किया करता है वह मनुष्य स्वर्ग और ब्रह्मलोक चला जाता है और फिर नरक में कभी नहीं जाया करता है ॥८॥ पितामह ने इस गया तीर्थ में स्नान करके याग किया था। जो ब्राह्मण ऋत्विक् के कार्य के लिये आये थे उन सबका पूजन किया था ॥९॥ रस का वहन करने वाली महानदी की रचना करके वापी आदि का सृजन किया था तथा भक्ष्य—भोज्य फलादि को एवं कामधेनु को सृजा था। प्रभु ने पाँच कोश के विस्तार वाला गया तीर्थ ब्राह्मणों को दे दिया था ॥ १० ॥ धर्म के भोगों में लालच से धनादि का प्रतिग्रह लेकर वहाँ स्थित रहा करते थे। तब से गया में विप्र शप्त हो गये हैं ॥ ११ ॥ उन विप्रों को ऐसा शाप था कि तीन पीढ़ियों तक विद्या नहीं होगी—और तीन पुरुषों तक लगातार धन-वैभव भी नहीं रहेगा। तुम्हारी यह जल का वहन करती रहने वाली नदी है और पाषाण पर्वत है। इस प्रकार से जब शाप दिया गया

तो उन शप्त विप्रों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की थी तब प्रभु ने उन पर अनुग्रह किया था कि परम पुण्यशाली लोग गया में श्राद्ध करने वाले होंगे और फिर वे ब्रह्म लोक में गमन करने वाले हो जायेंगे। उनके द्वारा मैं सदा पूजित होऊँगा और वे आप सबकी पूजा किया करेंगे ॥१२।१३॥ ब्रह्मज्ञान-गया में श्राद्ध-गो गृह में मरण तथा कुरुक्षेत्र में पुरुषों का निवास करना यह चार प्रकार की मुक्ति कही गई है ॥१४॥

समुद्राः सरितः सर्वा वापीकूपह्रदानि च।
स्नातुकामा गयातीर्थं व्यास यान्ति न संशयः ॥१५
असंस्कृता मृता ये च पशुचौरहताश्च ये।
सर्पदष्टा गयाश्राद्धान्मुक्ताः स्वर्गं व्रजन्ति ते ॥१७
गयायां पिंडदानेन यत्फलं लभते नरः।
न तच्छक्यं मया बक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ॥१८

हे व्यास देव ! सब समुद्र-सभी नदियाँ और सभी वापी, कूप और ह्रद स्नान करने की इच्छा वाले गया तीर्थ में जाया करतेहैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१८॥ जो बिना ही संस्कार वाले मृत हो गये हैं या जो पशु तथा चोरों के द्वारा हत हुए हैं एवं जिनकी मृत्यु सर्प दंशन से हो गई वे सब गया के श्राद्ध से मुक्त होकर स्वर्ग लोक में जाते है। तात्पर्य यह है कि उक्त प्रकार की अपमृत्यु वाले पुरुष गया में किये गये श्राद्ध से ही विमुक्त हुआ करते हैं ॥१६।१७। गया में पिंड दान से जो फल मनुष्य प्राप्त किया करता है वह मैं भी सैकड़ों करोड़ वर्षों में भी नहीं बतला सकता हूँ अर्थात् मेरी इतनी शक्ति नहीं है कि मैं उसके महान् फलों का बयान कर सकूं ॥ ८॥

४६—गया में तीर्थ माहात्म्य

कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्।
विषयश्चारणः पुण्यो नदीनाञ्चैव पुनः पुनः ॥१
मुण्डपृष्ठं तु पूर्वस्मिन्यपश्चिमे दक्षिणोत्तरे।
सार्द्धं क्रोशद्वयं मानं गयायां परिकीर्त्तिम् ॥२

पञ्चकोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः।
तत्र पिण्डप्रदानेन पितृणां परमा गतिः॥
गयागमनमात्रेण पितृणामनृणो भवेत्।३
गयायां पितृरूपेण देवदेवो जनार्द्दनः।
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते वै ऋणत्रयात्॥४
रथमार्गं गयातीर्थे दृष्ट्वा रुद्रं पदाधिके।
कालेश्वरञ्च केदारं पितृणामनृणो भवेत्॥५
दृष्ट्वा पितामहं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
लोकं त्वनामयं याति दृष्ट्वा च प्रपितामहम्॥६
तथा गदाधरं देवं माधवं पुरुषोत्तमम्।
त प्रणम्य प्रयत्नेन न भूयो जायते: नरः॥७

ब्रह्माजी ने कहा—कीकटों में गया पुण्य स्थल है। राजगृह वन परम पुण्यस्वरूप है। नदियों में पुनः पुनः धारण विषय पुण्यमय है॥१॥ पूर्व पश्चिम में मृत्यु पृष्ठ है और दक्षिणोत्तर में ढाई कोश पर्यन्त गया का मान बताया गया है॥२॥ पांच कोश तक गया क्षेत्र है और एक कोश गया का शिर है। वहाँ पर पिंड प्रदान करने से पितरों की परम गति होती है। केवल गया में गमन करने ही से मनुष्य पितरों के ऋण से उऋण हो जया करता है॥३॥ गया में पितृ रूप से देवों के भी देव भगवान् जनार्दन स्थित हैं। पुण्डरीकाक्ष उसको देखकर ही कि गया में आगय है उसे तीनों ऋणों से मुक्त कर दिया करते हैं अथवा पुण्ड-रीकाक्ष का वहाँ दर्शन प्राप्त करते ही वह तीनों ऋणों से छुटकारा पा जाता है॥४॥ गया तीर्थ में रथ के मार्ग को और पदाधिक पर रुद्र को कालेश्वर और केदार को देखकर अर्थात् इन सबका दर्शन प्राप्त कर मनुष्य पितरों के ऋण से उरिण हो जाता है॥५॥ पितामह देव का दर्शन करके मानव समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है। प्रपितामह का दर्शन कर निरामय लोक की प्राप्ति करता है॥६॥ तथा गदाधर देव-पुरुषों में उत्तम माधव को प्रयत्न पूर्वक प्रणाम करके मनुष्य फिर इस संसार में जन्म नहीं ग्रहण करता है॥७॥

मौनादित्यं महात्मानं कनकार्कं विशेषतः।
दृष्ट्वा मौनेन विप्रर्षे पितृणामनृणो भवेत् ॥८
ब्रह्माणं पूजयित्वा च ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥
गायत्रीं प्रातरुत्थाय यस्तु पश्यति मानवः ॥९
सन्ध्यां कृत्वा प्रयत्नेन सर्वदेवफलं लभेत् ।
सावित्रीञ्चैव मध्याह्ने दृष्ट्वा दानफलं लभेत् ॥१०
नगस्थमीश्वरं दृष्ट्वा पितृणामनृणो भवेत् ।
धर्मारण्य धर्ममीश दृष्ट्वा स्यादृणनाशनम् ॥११
देव गृध्रेश्वरं दृष्ट्वा को न मुच्येत बन्धनात् ।
धेनुं दृष्ट्वा धेनुवने ब्रह्मलोकं नयेत् पितृन् ॥१२
प्रभासेश प्रभासे च दृष्ट्वा याति परां गतिम् ।
कोटीश्वरं चाश्वमेध दृष्ट्वा स्यादृणनाशनम् ॥१३
स्वर्गद्वारेश्वरं दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात् ।
रामेश्वरं गदालोलं दृष्ट्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ॥१४

गया में ब्राह्मण की अर्चना करके मनुष्य सीधा ब्रह्म लोक को चला जाता है ॥ ८ ॥ प्रातः काल में शय्या से उठकर जो मनुष्य गायत्री माता का दर्शन करता है और प्रयत्न पूर्वक सन्ध्या-वन्दन करता है वह समस्त देवों के समर्चाना का फल प्राप्त कर लिया करता है ॥९॥ मध्यान्ह में जो सावित्री देवी का दर्शन अर्थात् ध्यान करता है वह यज्ञ के फल को प्राप्त करता है और सायान्ह के समय में सरस्वती का दर्शन करता है वह महान् दान के फल को प्राप्त किया करता है ॥१०॥ नग पर संस्थित ईश्वर का दर्शन करके मनुष्य पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है। धर्मारण्य-धर्म और ईश का दर्शन करने से भी ऋण का नाश होजाता है ॥११॥ गृध्रेश्वर देव को देखकर कौन पुरुष है जो बन्धन से मुक्त नहीं होता है अर्थात् सभी बन्धन मुक्त अवश्य ही हो जाते हैं। धेनु वन में धेनुका दर्शन कर मनुष्य अपने पितृगण को ब्रह्मलोक में ले जाया करता है ॥ १२ ॥ प्रभास के स्वामी का दर्शन कर मनुष्य परागति को प्राप्त करता है । कोटीश्वर और अश्वमेध का दर्शन कर ऋण का

नाश कर दिया करता है ॥१३॥ स्वर्ग द्वार के ईश्वर का दर्शन करके मनुष्य भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। रामेश्वर और गदा लोक का दर्शन प्राप्त कर मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति करता है ॥१४।

ब्रह्मेश्वर तथा दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया।
मुंडपृष्ठे मह चंडीं दृष्ट्वा कामानवाप्नुयात् ॥१५
फल्ग्वीशं फल्गुचंडीञ्च गौरीं दृष्ट्वा च मङ्गलाम्।
गोमेकं गोपतिं देवं पितॄणामनृणो भवेत् ॥१६
अङ्गारेशञ्च सिद्धेशं गयादित्यं गजं तथा।
मार्कण्डेयेश्वरं दृष्ट्वा पितॄणामनृणो भवेत् ॥१७
फल्गुतीर्थे सरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम्।
एतेन किं न पर्य्याप्तं नृणां सुकृतिकारिणाम् ॥
ब्रह्मलोकं प्रयान्तीह पुरुषानेकविंशतिम् ॥१८
पृथिव्यां यानि तीर्थानि ये समुद्राः सरांसि च।
फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिनेदिने ॥१९
पृथिव्याश्च गया पुण्या गयायाञ्च गयाशिरः।
श्रेष्ठे यथा फल्गुतीर्थं तन्मुखञ्च सुरस्य हि ॥२०
उदाचि कनकानद्यो नाभितीर्थन्तु मध्यतः।
पुण्य ब्रह्मसदस्तीर्थं स्नानात्स्याद्ब्रह्मलोकदः ॥२१

तथा ब्रह्मेश्वर का दर्शन कर ब्रह्म हत्या से मुक्ति पा जाता है। मुण्डपृष्ठ पर महा चण्डी का दर्शन कर मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं की पूर्त्ति करता है ॥१५॥ फल्गु के स्वामी और फल्गु की चंडी तथा मङ्गला गौरी—गोमेक—गोपति देव का दर्शन करके पितरों के ऋण से उरिण हो जाता है ॥१६॥ अङ्गारेश—सिद्धेश—गयादित्य—गज—मार्कंडेयेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य पितृगण के ऋण से मुक्त हो जाया करता है ॥ १७ ॥ फल्गु नदी में सर-स्नान करके तथा गदाधरदेव का दर्शन करके इतने ही से क्या पर्याप्त नहीं होता ? जो मनुष्य सुकृत करने वाले हैं उनको इतने से ही सब

कुछ प्राप्त होता है । ये लोग अपने इक्कीस पूर्व पुरुषों ब्रह्म लोक में इस पुण्य फल से भेज दिया करते हैं ॥१८॥ इस मही मण्डल में जो तीर्थ हैं—जितने सागर और सरोवर हैं वे सभी प्रतिदिन एक फल्गु तीर्थ में जाया करते हैं ॥१९॥ भू-मण्डल में गया क्षेत्र परम पुण्यमय है और गया में भी गया का शिर परम श्रेष्ठ है तथा फल्गु तीर्थ और सुर का मुख अतीव उत्तम है ॥२०॥ उत्तर में कनका नदियाँ और मध्य में नाभि तीर्थ और ब्रह्म सब तीर्थ परम पुण्यमय हैं। इसमें स्नान करने से ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है ॥२१॥

कूपे पिंडादिकं कृत्वा पितृणामनृणो भवेत् ।
तथा क्षयवटे श्राद्धं ब्रह्मलोकं नयेत् पितृन् ॥२२
हंसतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
कोटितीर्थे गयालोके वैतरण्याञ्च गोमके ।
ब्रह्मलोकं नयेत् श्राद्धी पुषानेकविंशतिम् ॥२३
ब्रह्मतीर्थे रामतीर्थे आग्नेये सोमतीर्थके ।
श्राद्धी रामह्रदे ब्रह्मलोकं पितृकुलं नयेत् ॥२४
उत्तरे मानस श्राद्धो न भूयो जायते नरः ।
दक्षिणे मानसे श्राद्धी ब्रह्मलोकं पितृन् नयेत् ॥२५
भीष्मतर्पणकृत्तस्य कूटे तारयते पितृन् ।
गृध्रेश्वरे तथा श्राद्धो पितृणामनृणो भवेत् ॥२६
श्राद्धी च धेनुकारण्ये ब्रह्मलोकं पितृन्नयेत् ।
तिलधेनुप्रदः स्नात्वा दृष्ट्वा धेनु न संशयः ॥२७
ऐन्द्रेषु वा नरतीर्थेषु वासवे वैष्णवे तथा ।
महानद्यां कृतश्राद्धा ब्रह्मलोकं नयेत्पितृन् ॥२८

कूप पिण्ड आदि करके मनुष्य अपने पितृगण के ऋण से मुक्त हो जाता है । क्षय वट पर श्राद्ध करे तो वह अपने पितरों को ब्रह्म लोक में प्राप्त कर दिया करता है ।२२।हंसतीर्थ में मनुष्य स्नान करके सभी पापों से विमुक्ति पा जाता है । कोटि तीर्थ में—गया लोक में—वैतरणी में और गोमक में श्राद्ध करने वाला अपने इक्कीस पूर्वपुरुषों को ब्रह्मलोक प्राप्त करा

देता है ।।२३।। ब्रह्म तीर्थ में–राम तीर्थ में–आग्नेय में और सोमतीर्थ में तथा राम ह्रद में श्राद्ध करने वाला व्यक्ति अपने पितृकुल को ब्रह्म लोक में प्राप्त करा दिया करता ।।२४।। उत्तर मानस में श्राद्ध करने वाला मानव फिर इस लोक में जननी के जठर निवास की पीड़ा प्राप्त नहीं करता । दक्षिण मानस में श्राद्ध विधान को साङ्ग सम्पन्न करने वाला व्यक्ति अपने पितरों को ब्रह्मलोक में ले जाया करता है ।।२५।। कूट में भीष्म तर्पण करने वाला अपने पितरों का उद्धार कर देता है । गृपेश्वर में श्राद्ध करने वाला पितरों के ऋण से उऋण हो जाता है।।२६।। धेनुकारण्य में श्राद्ध कर्त्ता पितृगण को ब्रह्मलोक में पहुंचा देता है । तिल और धेनुका दान करने वाला धेनुका दर्शन करता है–इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।२७।। ऐन्द्र—नरतीर्थ बासव तथा वैष्णव में एवं महानदी में श्राद्ध करने वाला पितरों का ब्रह्मलोक में प्राप्त करा दिया करता हैं ।।२८।।

गायत्रे चैव सावित्रे तीर्थे सारस्वते तथा ।
स्नानसन्ध्यातर्पणकृत् श्राद्धी चैकोत्तरं शतम् ।।
पितृणां तु कुलं ब्रह्मलोकं नयति मानवः ।।२९
ब्रह्मयोनिं विनिर्गच्छेत्प्रयतः पितृमानसः ।
तर्पयित्वा पितृन् देवान्न विशेद्योनिसङ्कटे ।।३०
तर्पणे काकजंघायां पितृणां तृप्तिरक्षया ।
धर्मारण्ये मतङ्गस्य वाप्यां श्राद्धी दिवं व्रजेत् ।।३१
धर्मयूपे च कूपे च पितृणामनृणो भवेत् ।
प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः ।।
मयाऽऽगत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितृणां निष्कृतिः कृता ।।३२
रामतीर्थे नरः स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा प्रभासके ।
शिलायां प्रेतभावाः स्युर्मुक्ता पितृगणाः किल ।।३३
श्राद्धकृच्च स्वपुष्टायां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ।
श्राद्धकृन्मुन्डपृष्ठादौ ब्रह्मलोकं नयेत्पितृन् ।।३४

गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते।
पञ्चकोशे गयाक्षेत्रे यत्र तत्र तु पिण्डदः ॥
अक्षयं फलमाप्नोति ब्रह्मलोकं नयेत् पितृन् ॥३५

गायत्र—सावित्र तथा सारस्वत तीर्थ में स्नान-संध्या और तर्पण करने वाले एवं श्राद्ध विधि को सम्पन्न करने वाला मानव एक सौ एक पितरों के कुल को ब्रह्मलोक की प्राप्ति करा देता है ॥२६॥ पितृ मानस अर्थात् अपने पितरों के समुद्धार करने के लिये मन लगाने वाला प्रयत्नशील पुरुष ब्रह्मयोनि का विनिर्गमन करता है। पितरों और देवों को तृप्त करके वह फिर योनि के सङ्कट में प्राप्त नहीं होता है ॥३०॥ अपने पितृगण की तृप्ति करने की रक्षा से काकजङ्घा में तर्पण करने पर तथा धर्मारण्य में एव मतङ्ग की वाणी में श्राद्ध करने वाला पुरुष दिवलोक की प्राप्ति करता है ॥३१॥ धर्म कूप और कूप में श्राद्ध करने वाला मनुष्य भी पितरों से उरिण हो जाता है। इसके प्रमाण स्वरूप देवगण हैं और इसके साक्षी लोकपाल होते हैं। मैंने यहाँ मतङ्ग में आकर अपने पितृगण की निष्कृति की है ॥३२॥ रामतीर्थ में स्नान करके मनुष्य प्रभासक में श्राद्ध करे तो शिला में प्रेत भाव को प्राप्त पितृगण मुक्त हो जाते हैं। स्वपुष्टा में श्राद्ध करने वाला व्यक्ति अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर देता है मुण्ड पृष्ठ में श्राद्ध करने वाला पुरुष पितरों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति करा दिया करता है ॥३३।३४॥ गया में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जो तीर्थ स्वरूप वाला न हो। पाँच कोश वाले गया के क्षेत्र में जहाँ तहाँ पर पिण्डदान करने वाला पुरुष कभी क्षय को प्राप्त न होने वाला फल प्राप्त करता है और पितरों को ब्रह्मलोक में पहुंचा दिया करता है॥३५॥

जनार्दनस्य हस्ते तु पिण्डं दद्यात्स्वकं नरः।
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥३६
परलोक गते मोक्षमक्षय्यमुपतिष्ठताम्।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति पितृभिः सह निश्चितम् ॥३७
गयायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा।
गयशीर्षेऽक्षयवटे पितृणां दत्तमक्षयम् ॥३८

धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च।
दृष्ट्वैतानि पितुश्चार्घ्यं वंशान्विंशतिमुद्धरेत् ॥३६
ब्रह्मारण्यं मयनद्याः पश्चिमे भाग उच्यते।
पूर्वो ब्रह्मसदो भागो नागाद्रिर्भरताश्रमः ॥४०
भरतस्याश्रमे श्राद्धी मतङ्गस्य पदे भवेत्।
गयाशीर्षाद्दक्षिणतो महानद्याश्च पश्चिमः ॥४१
तत्स्मृतश्चम्पकवनं तत्र पांडुशिलास्ति हि।
श्राद्धी तत्र तृतीयायां निश्चिरायाश्च मंडले।
महाह्रदे च कौशिक्यामक्षय फलमाप्नुयात्।४२

जनार्दन के हाथ में मनुष्य अपना पिंड देवे और प्रार्थना करे कि हे जनार्दन देव ! यह पिण्ड मैंने आपके हाथ में दिया है अब परलोक जाने पर मुझे आप अक्षय्य मोक्ष प्रदान करें। ऐसा करने वाला मानव अपने पितरों के सहित निश्चित रूप से ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है ॥३६।३७॥ गया में ब्राह्मण धर्म पृष्ठ पर सर में— गया के शीर्ष में—अक्षय वट में पितरों को पिंड देने वाला अक्षय पुण्य-फल को प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥ धर्मारण्य-धर्म पृष्ठ और धेनुकारण्य इनका दर्शन करके पितरों को अर्घ्य देने वाला पुरुष अपने बीस वंशों का उद्धार करता है ॥३६॥ ब्रह्मारण्य मय नदी का पश्चिम भाग कहा जाता है और पूर्व ब्रह्मसद भाग है तथा नागाद्रि और भरताश्रम है ॥४०॥ भरत के आश्रम में श्राद्ध करने वाला मतङ्ग के पद में होता है। गया शीर्ष से दक्षिण में और महानदी के पश्चिम में वहाँ पर चम्पक बताया ा है। वहाँ पर पाँडु शिला है। वहाँ श्राद्ध करने वाला तृतीया में और निश्चिरा के मंडप में तथा महाह्रद में एवं कौशिकी में श्राद्ध कर्त्ता अक्षय फल का भागी हो है ४१।४ ॥

वैतरण्याश्चोत्तरतस्तृतीयाख्यो जलाशयः।
पदानि तत्र क्रौञ्चस्य श्राद्धी स्वर्गं नयेत्पितॄन् ॥४३
क्रौञ्चपादादुत्तरतो निश्चिराख्यो जलाशयः।

सकृत् गयाभिगमनं सकृत्पिडप्रपातनम् ।।
दुर्लभं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थिनः ।।४४।।
महानद्यामपः स्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः ।
अक्षयान्प्राप्नुयाल्लोकान्कुलञ्चापि समुद्धरेत् ।।
सावित्रे पठ्यते सन्ध्या कृता स्याद्द्वादशाब्दिकी ।।४५
शुक्लकृष्णावुभौ पक्षौ गयायां यो वसेन्नरः ।
पुनात्यासप्तमञ्चैव कुलं नास्त्यत्र संशयः ।।४६
गयायां मुंडपृष्ठंच अरविन्दञ्च पर्वतम् ।
तृतीयं क्रौञ्चपादञ्च दृष्ट्वा पापैःप्रमुच्यते ।।४७
मकरे वर्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिंडपातनम् ।।४८।
महाह्रदे च कौशिक्यां मूलक्षेत्रे विशेषतः ।
गुहायां गृध्रकूटस्य श्राद्धं सप्त महाफलम् ।।४९

वैतरणी से उत्तर में तृतीयाख्य एक जलाशय है । वहाँ पर क्रौञ्च के पद हैं । वहाँ श्राद्ध करने वाला अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त करा दिया करता है ।। ४३ ।। कौञ्चपाद के उत्तर की ओर निश्चिर संज्ञा वाला एक जलाशय विद्यमान है । एक बार गया में गमन करना तथा एक बार पिंडों का प्रपातन करना ही इतना फल देने वाला है कि उस पुरुष को कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है और जो यहाँ नित्य ही ऐसा व्यवस्थित होकर करते हैं उनका तो कहना ही क्या है ।। ४४ ।। महानदी के जलों का स्पर्श करके जो पितृगण और देवर्षियों को तृप्त करता है वह अक्षय लोकों की प्राप्ति करता है और अपने कुल का भी उद्धार कर दिया करता है । सावित्र में पढ़ी हुई संन्ध्या द्वादशाब्दि की हुई होती है ।। ४५ ।। जो मनुष्य कृष्ण और शुक्ल दोनों ही मास के पक्षों में गया में निवास किया करता है वह सात कुलों को पवित्र कर देता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।। ४६ ।। गया मो मुन्ड पृष्ठ—अरविन्द पर्वत-तृतीय—क्रौञ्चपाद इनके दर्शन करके मानव समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है।।४७।। मकर संक्रान्ति तथा चन्द्र एवं

सूर्य के ग्रहण के समय पर गयामें पिंडों का पातन करना तीनों लोकों में महान् दुर्लभ है ।।४८।। महाह्लद में-कौशिकी में और विशेषतया मूल क्षेत्र में-गृध्र कूट की गुहा में किया हुआ श्राद्ध सात महा फल वाला होता है ।।४९।।

यत्र माहेश्वरी धारा श्राद्धी तत्रानृणो भवेत् ।
पुण्यां विशालामासाद्य नदी त्रैलोक्यविश्रुताम् ।।
अग्निष्टोममवाप्नोति श्राद्धी प्रायाद्दिवं नरः ।५०
श्राद्धी सोमप स्नात्वादे वाजपेयफलं लभेत् ।
रविपादे पिंडदानात्पतितोद् धारणं भवेत्।। ५१
यो गयास्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः ।
कांक्षते पितरः पुत्रान् नरकाद् भवभीरवः ।।५२
गयां यास्यति यः कश्चित्मोऽस्मान् सन्तारयिष्यति ।
गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ।।५३
पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा अस्मभ्यं किल दास्यति ।
आत्मजो वा तथान्यो वा गयाकूपे यदा तदा ।।५४
यन्नाम्ना पातयेत् पिण्डं तं नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ।
पुण्डरीकं विष्णुलोकं प्राप्नुयात्कोटितीर्थगः ।।५५
या सा वैतरणी नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
साऽवतीर्णा गयाक्षेत्रे पितृणां तारणाय हि। ५६

जहाँ पर माहेश्वरी धारा है वहाँ श्राद्ध करने वाला उरिण हो जाया करता है। परम पुण्यमयी और त्रैलोक्य में परम प्रसिद्ध विशाला नदी को प्राप्त करके श्राद्ध करने वाला मनुष्य अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त करता है और फिर वह दिवलोक को चला जाता है ।।५०।। सोमपद में स्नान करके श्राद्ध के विधान को साङ्ग सम्पन्न करने वाला पुरुष वाजपेय यज्ञ का फल पा जाता है । रविपाद में पिंडों के प्रदान करने से पतितों का उद्धार होता है ।।५१।। जो गया में स्थित होकर अन्न का दान करता है उसी पुत्र से पितृगण पुत्र वाले होते हैं। पितर लोग नरक से भयभीत होते हुये ऐसे पुत्रोंकी इच्छा किया करतेहैं।।५२।। पितरगण सोचा करतेहैं कि हमारे पुत्रादि में से जो कोईभी

कभी गया जायगा तो वह हमारा उद्धार कर देगा। गया में प्राप्त हुए अपने पुत्रादि को देखकर पितृगण को बड़ी प्रसन्नता होती है और वे एक तरह का उत्सव-सा मनाते हैं ॥५३॥ पैरों से भी जल का स्पर्श करसे वह हमारे लिए देगा वह आत्मज हो तथा अन्य कोई हो जब गया के कूप में पिण्डों का पातन करेगा उसी समय में उसको शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करा देता है। कोटितीर्थ में गमन करने वाला पुण्डरीक विष्णु-लोक में प्राप्त होता है ॥५४।५५॥ जो वैतरणी नदी है वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वह गया के क्षेत्र में पितरों के तारने के लिये अवतीर्ण हुई है ॥५६॥

श्राद्धदः पिण्डदस्तत्र गोप्रदानं करोति यः।
एकविंशतिवशान् स तारयेन्नात्र संशयः ॥५७
यदि पुत्रो गयां गच्छेत्कदाचित् कालपर्य्यये।
तानेव भोजयेद्विप्रान् ब्रह्मणा ये प्रकल्पिताः ॥५८
तेषां ब्रह्मसदः स्थानं विप्रा ब्रह्मप्रकल्पिताः।
ब्रह्मप्रकल्पितं स्थानं विप्रा ब्रह्म प्रकल्पिताः।
पूजितैः पूजिताः सर्वे पितृभिः सह देवताः ॥५९
तर्पयेत्तु गयाविप्रान् हव्यकव्यैर्विधानतः।
स्थानं देहपरित्यागे गयायान्तु विधीयते ॥६०
यः करोति वृषोत्सर्गं गयाक्षेत्रे ह्यनुत्तमे।
अग्निष्टोमशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥६१
आत्मनोऽपि महाबुद्धिर्गयायां तु तिलैर्विना।
पिण्डनिर्वपनं कुर्य्यादन्येषामपि मानवः ॥६२
यावन्तो ज्ञातयः पित्र्या बान्धवाः सुहृदस्तया।
तेभ्यो व्यास गयाभूमौ पिंडो देयो विधानतः ॥६३

यहाँ पर श्राद्ध के देने वाला—पिंडदान करने वाला और जो गौ का दान किया करता है वह अपने पूर्वजों की इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर दिया करताहै-इसमें कुछभी संशय नहीहै॥५७॥यदिपुत्र किसीभी समय में कालके विपर्य होनेपर गया तीर्थमें जावे तो उन्हीं विप्रोंको भोजन कराना

चाहिए जो ब्रह्म के द्वारा प्रकल्पित हुए हैं ।।५८।। जो विप्र ब्रह्म प्रकल्पित हैं उनका ब्रह्म सद्स्थान है । ब्रह्म प्रकल्पित स्थान है और विप्र भी ब्रह्म प्रकल्पित हैं । पूजित पितृगणों के साथ समस्त देवगण पूजित किये गये हैं ।।५९।। गया वासी बिप्रों को विधि-विधान से हव्य-कव्यों के द्वारा तृप्त करना चाहिए गया में देह परित्याग करने में स्थान किया जाता है ।।६०।। परमोत्तम गया क्षेत्र में जो वृष का उत्सर्ग करता है वह अग्निष्टोम के फल को प्राप्त करता है इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है ।।६१।। महान् बुद्धिमान पुरुष को अपना भी तिलों के बिना गया में पिंडों का निर्वपन करे और मनुष्य औरों का भी करे ।।६२।। जितने भी ज्ञाति वाले बान्धव और सुहृदगण पितर हैं हे व्यासदेव ! उन सबके लिये विधान के साथ गया की भूमिमें पिंड देना चाहिए।।६३।।

रामतीर्थे नरः स्नात्वा गोशतस्याप्नुयात्फलम् ।
मतङ्गवाप्यां स्नात्वा च गोसहस्रफलं लभेत् ।।६४
निश्चिरासङ्गमे स्नात्वा ब्रह्मलोकं नयेत् पितृन् ।
वशिष्ठस्याश्रमे स्नात्वा वाजपेयञ्च विन्दति ।।
महाकोश्यां समावासादश्वमेधफलं लभेत् ।।६५
पितामहस्य सरसः प्रसृता लोकपावनी ।
समीपे त्वग्निधारेति विश्रुता कपिला हि सा ।।
अग्निष्टोमफलं श्राद्धी स्नात्वाऽत्र कृतकृत्यता ।।६६
श्राद्धी कुमारधारायामश्वमेधफलं लभेत् ।
कुमारमभिगम्याथ महामुक्तिमवाप्नुयात् ।।६७
सोमकुण्डे नरः स्नात्वा सोमलोकञ्च गच्छति ।
संवर्त्तस्य नरो वाप्यां सुभगः स्यात्तु पिंडदः ।।६८
धौतपापो नरो याति प्रेतकुण्डे च पिंडदः ।
देवनद्यां लेहिहाने मथने जनुगर्त्तके ।।६९
एवमादिषु तीर्थेषु पिंडदस्तारयेत् पितृन् ।
नत्वा देवं वसिष्ठेशं प्रभूतमृणसंक्षयम् ।।७०

रामतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य सौ गौओं का दान का फल प्राप्त करता है। मातङ्ग वापी में स्नान करने से एक सहस्र गौ के दान का फल मिलता है ।।६४।। निश्चिरा के सङ्गम में स्नान से पितरों को ब्रह्मलोक प्राप्त करा दिया करता है। वसिष्ठ के आश्रम में स्नान करके वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है और महाकोशी में समावास से अश्वमेध यज्ञ का फल मिला करता है ।।६५।। पितामह केसर से लोक पावनी परम प्रसिद्ध है समीप में ही अग्निधारा विश्रुत है वह कपिला है। यहाँ पर स्नान करके श्राद्ध करने वाला पुरुष अग्निष्टोम के पुण्य फल का लाभ किया करता है और उसे कृत-कृत्यता हो जाती है ।।६६।। कुमार धारा में श्राद्ध करने वाला मानव अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है। इसके अनन्तर कुमार को प्राप्त कर महा मुक्ति का लाभ करता है ।।६७।। सोम कुण्ड में स्नान कर मनुष्य सोम (चन्द्र) के लोक की प्राप्ति कर लेता है। संवर्त्त की वापी में पिंडदान करने वाला परम सुभग हो जाता है ।।६८।। प्रेत कुण्ड में पिंड वपन करने वाला मनुष्य धौत पाप अर्थात् समस्त पापों को धो लेने वाला हो जाता है। देव नदी में—लेलिहान में—जानुगर्त्तक मथन में एवमादि तीर्थों में पिंडों का दान करने वाला मनुष्य अपने पितृगणों का उद्धार कर दिया करता है। वसिष्ठेशदेव को नमस्कार करके प्रभूत ऋण का संक्षय कर लेता है ।।६९।७०।।

४७—गया में तीर्थ कर्तव्य

उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः ।
विधाय कापटं वेश ग्रामस्यापि प्रदक्षिणम् ।।१
ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणां गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः ।।२
गृहाच्चलितमात्रस्य गयाया गमनं प्रति ।
स्वर्गारोहणसोपानं पितृणाँ तु पदे पदे ।।
मुण्डनञ्चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वय विधिः ।।३

वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां विरजां गयाम् ।
दिवा च सर्वदा रात्रौ गयायां श्राद्धकृद्भवेत् ॥४
वाराणस्यां कृतं श्राद्धं तीर्थे शोणनदे तथा ।
पुनः पुनर्महानद्यां श्राद्धी स्वर्गं पितृन्नयेत् ॥५
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ।
तस्मिन्निवर्त्तयेद् श्राद्धं स्नानञ्चैव निवर्त्तयेत् ॥
कामान्स लभते दिव्यान्मोक्षोपायञ्च सर्वशः ॥६
दक्षिणं मानस गत्वा मौनी पिण्डादि कारयेत् ।
ऋणत्रयापाकरणं लभेद्दक्षिणमानसे ॥७

ब्रह्माजी ने कहा-गया को जाने के लिये उद्यत पुरुष पहिले विधान से श्राद्ध करे और फिर कापट वेश करके ग्राम की भी प्रदक्षिणा करे ॥१॥ इसके अनन्तर अन्य ग्राम में जाकर श्राद्ध से शेष का भोजन करे और फिर प्रदक्षिणा करके प्रतिग्रह से रहित होता हुआ आगे जाना चाहिये ॥२॥ गृह से चलने वाले के जो कि गया के प्रति गमन करता हैं, पितर लोग एक-एक पद (कदम) पर स्वर्ग के समारोहण करने के सोपान (सीढ़ी) पर ऊपर चढ़ा करते हैं । गया क्षेत्र को जाने वाले का मुण्डन और उपवास समस्त मार्ग में आने वाले तीर्थों में होना चाहिए क्योंकि यही शास्त्रीय विधान है ॥३॥ कुरुक्षेत्र और विशाला विरजा गया को छोड़ कर सर्वदा दिन में और गया में रात्रि में श्राद्ध करने वाला होवे ॥४॥ वाराणसी में तथा शोणनद में किया हुआ श्राद्ध तथा महानदी में पुनः पुनः श्राद्ध करने वाला अपने पितृगण को स्वर्ग में प्राप्त करा देता है ॥५॥ उत्तर मानस में जाकर परमोत्तम सिद्धि को प्राप्त करता है । उसमें ही श्राद्ध का निर्वर्त्तन करे और उसी में स्नान-क्रिया को पूर्ण करना चाहिये । ऐसा पुरुष अपनी परम दिव्य कामनाओं को प्राप्त करता है और सभी मोक्ष के उपाय का भी लाभ करता है ॥६॥ दक्षिण मानस में पहुँच कर मौन धारण कर पिण्डदान आदि करे- करावे । दक्षिण मानस में जाकर यह करने से तीनों प्रकार के ऋणों का अपाकरण करता है ॥७॥

सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानाञ्च भयङ्करैः ।
लेलिहानैर्महाघोरैरक्षतैः पन्नगोत्तमैः ॥८
नाम्ना कनखलं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिगणसेवितम् ॥९
तत्र स्नात्वा दिवं याति श्राद्धं दत्तमथाक्षयम् ।
सूर्यं नत्वा त्विदं कुर्य्यात्कृतपिण्डादिसत्क्रियः ॥१०
कव्यवाहास्तथा सोमो यमश्चैवार्य्यमा तथा ।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः ॥
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितास्त्विह ॥११
मदीयाः पितरो ये च कुले जाताः सनाभयः ।
तेषां पिण्डप्रदाताहमागतोऽस्मि गयामिह ॥१२
कृतपिण्डः फल्गुतीर्थे पश्येद्देवं पितामहम् ।
गदाधरं ततः पश्येत्पितॄणामनृणो भवेत् ॥१३
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ।
आत्मानं तारयेत्सद्यो दशपूर्वान्दशापरान् ॥१४

सिद्धों की प्रीति को उत्पन्न करने वाले और पापों को भयकर—लेलिहान—महान् घोर-अक्षत पन्नगों में उत्तमों से युक्त कनखल नाम वाला तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है । उदीची में देव-ऋषिगणों के द्वारा सेव्यमान मुण्ड पृष्ठ का तीर्थ है ॥ ८।९ ॥ वहाँ पर स्नान करके मनुष्य दिवलोक को चला जाता है और दिया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है । सूर्य को नमस्कार करके यह करना चाहिये पिंडादि की सत्क्रिया करने वाला यह प्रार्थना करे कि—कव्यवाह—सोम—यम तथा अर्यमा अग्निष्वात्त—वर्हिषद-सोमप पितृ देवता समस्त महा भाग यहाँ आवें और आप लोग यहाँ की रक्षा करें ॥१०।११॥ मेरे जो पितरगण हैं और जो मेरे कुल में सनाभि समुत्पन्न हैं उन सबके लिये पिंड प्रदान करने वाला मैं यहाँ इस गया क्षेत्रमें आगयाहूँ ॥१२॥ इस प्रकारसे पिंडों का प्रदान करने वाला फल्गु तीर्थ में पितामह का दर्शन करे इसके अनन्तर गदाधर का दर्शन करना चाहिए । ऐसा करने वाला मानव

अपने पितरों के ऋण से छुटकारा पा जाता है ॥१३॥ फल्गु तीर्थ में मनुष्य स्नान करके गदाधर देव का दर्शन करे तो तुरन्त ही अपने आपका और दश पहिले तथा दश आगे आने वाले कुलों का उद्धार कर देता है ॥१४॥

प्रथमे हि विधिः प्रोक्तो द्वितीयदिवसे व्रजेत् ।
धर्मारण्यं मतङ्गस्य वाप्यां पिंडादिकृतद्भवेत् ॥१५
धर्मारण्यं समासाद्य वाजपेयफलं लभेत् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं स्याद् ब्रह्मतीर्थके ॥१६
श्राद्धं पिंडोदकं कार्य्यं मध्ये वै यूपयूपयोः ।
कूपोदकेन तत्कार्य्यं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥१७
तृतीयेऽहि्न ब्रह्मसदो गत्वा स्नात्वाऽथ तर्पणम् ।
कृत्वा श्राद्धादिकं पिंडं मध्ये वै यूपकूपयोः ॥१८
गोप्रचारसमीपस्था आब्रह्म ब्रह्मकल्पिताः ।
तेषां सेवनमात्रेण पितरो मोक्षगामिनः ।
यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयंफल लभेत् ॥१६
फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा देवादितर्पणम् ।
कृत्वा श्राद्ध गयाशीर्षे देवरुद्रपदादिषु ॥२०
पिण्डान्देहि मुखे व्यास पञ्चाग्नौ च पदत्रये ।
सूर्य्येन्दुकार्त्तिकेयेषु कृतं श्राद्धं तथाऽक्षयम् ॥
श्राद्धं तु नवदैवत्य कुर्य्याद् द्वादशदैवतम् ॥२१

प्रथम दिवस की विधि बतलादी गई है अब दूसरे दिन में गमन करे। धर्मारण्य और मतङ्ग की वापी में पिंडों का प्रदान करने वाला होवे ॥१५॥ धर्मारण्य को प्राप्त कर वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है । ब्रह्मतीर्थ में पिंडदान एवं स्नानादि करने से राजसूय और अश्वमेध दोनों यज्ञों के फल की प्राप्ति किया करता है ॥१६॥ कूप यूप के मध्य में श्राद्ध एवं पिंडोदक कार्य करना चाहिए। कूपोदक से यह सब करना चाहिए। इससे पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है ॥१७॥ अब तीसरे दिन ब्रह्मसद में जाकर स्नान करे तथा तर्पण करे। यूप और कूप के मध्य में पिंड और श्राद्धादि करके गो प्रचार

के समीप में स्थित आब्रह्म ब्रह्म कल्पित हैं उनके सेवन मात्र से ही समस्त पितरगण मोक्षगामी हो जाते हैं । यूप की प्रदक्षिणा करके वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं ॥१८।१९॥ तीसरे दिन के इस उपर्युक्त कृत्य को समाप्त करके अब चतुर्थ दिन आरम्भ होता है । इस चौथे दिन में फल्गु तीर्थ में स्नान करके और देवादि का तर्पण करके फिर गया शीर्ष में देव रुद्र पदादि में श्राद्ध करे। हे व्यास देव ! मुख में–पञ्चाग्नि में और पद त्रय में पिंडों को देवे सूर्य चन्द्र और कार्त्तिकेय में किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है। यह श्राद्ध नव दैवत्य तथा द्वादश दैवत करना चाहिये ॥२०।२१॥

अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां मृतवासरे ।
अत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥२२
स्नात्वा दशाश्वमेधे तु दृष्ट्वा देवं पितामहम् ।
रुद्रपादं नरः स्पृष्ट्वा न चेहावर्त्तते पुनः ॥२३
त्रिवित्तपूर्णां पृथिवीं दत्वा यत्फलमवाप्नुयात् ।
स तत्फलमवाप्नोति कृत्वा श्राद्धं गयाशिरे ॥२४
शमीपत्र प्रमाणेन पिंडं दद्याद् गयाशिरे ।
पितरो यान्ति देवत्वं नात्र कार्या विचारणा ॥२५
मुंडपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता ।
अल्पेन तपसा तत्र महापुण्यमवाप्नुयात् ॥२६
गयाशीर्षे तु यः पिंडान्नाम्ना येषां तु निर्वपेत् ।
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ॥२७
पञ्चमेऽह्नि गदालोले स्नात्वा वटतले ततः ।
पिंडं दद्यात्पितॄणाञ्च सकलं तारयेत्कुलम् ॥२८

अनवष्टका में-वृद्धि में—गया में-मृत वासर के समय में यहाँ पर माता का पृथक् श्राद्ध करे और अन्य स्थल में पति के साथ ही करे ॥२२॥ दशाश्वमेध में स्नान करके तथा पितामह देव का दर्शन करे । मनुष्य रुद्रपाद का स्पर्श करके फिर संसार में दुबारा जन्म ग्रहण नहीं करता है ॥२३॥ तीन वित्तों से पूर्ण पृथ्वी का दान करके जो फल प्राप्त होता है उसे गया शिर में

श्राद्ध करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ गया शिर में शमी के पत्र के प्रमाण वाला पिंड देना चाहिए । इससे पितरगण देवत्व को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥२५॥ मुण्ड पृष्ठ में धीमान् महादेव ने पद व्यस्त किया है । वहाँ पर अल्प तप से ही महान् पुण्य की प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥ गया शीर्ष में जो पिंड नाम के द्वारा जिनको निर्वपन करता है उसके पितर जो नरक में स्थित हों वे दिवलोक को चले जाते हैं और जो स्वर्गवास करने वाले हैं वे मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं ॥ २७ ॥ अब पाँचवाँ दिन का कृत्य बतलाया जाता है । पाँचवे दिन में गदालोल में स्नान करे और फिर बट के नीचे पितरों को पिंडदान करना चाहिए । ऐसा करने से मनुष्य अपने समस्त कुल को तार दिया करता है ॥२८॥

वटमूलं समासाद्य शाकेनोष्णोदकेन च ।
एकस्मन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥२९
कृते श्राद्धेऽक्षयवटे दृष्ट्वा च प्रपितामहम् ।
अक्षयाल्लभते लोकान्कुलानामुद्धरेच्छतम् ॥३०
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
यजेद्वा अश्वमेधेन नील वा वृषमुत्सृजेत् ॥३१
प्रेतः कश्चित्समुद्दिश्य वणिजं कश्चिदब्रवीत् ।
मम नाम्ना गयाशीर्षे पिण्डनिर्वपनं कुरु ॥
प्रेतभावाद्विमुक्तः स्यात्स्वर्गदो दातुरेव च ॥३२
श्रुत्वा वणिग्गयाशीर्षे प्रेतराजाय पिण्डकम् ।
प्रददावनुजैः सार्द्धं स्वपितृभ्यस्ततो ददौ ॥३३
सर्वे मुक्ता विशालोऽपि सपुत्रोऽभूच्च पिण्डदः ।
विशालायां विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽब्रवीद् द्विजान् ॥३४
कथं पुत्रादयः स्युर्मे विप्राश्चोचुर्विशालकम् ।
गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति ॥
विशालोऽयं गयाशीर्षे पिण्डदोऽभूच्च पुत्रवान् ॥३५

बट के मूल में प्राप्त होकर शाक और उष्णोदक के द्वारा एक विप्र के भोजन करा देने पर एक करोड़ के भोजन का फल होता है।।२९।। अक्षय वट में श्राद्ध के करने पर और प्रपितामह का दर्शन करके अक्षय लोकों की प्राप्ति किया करता है तथा अपने सौ कुलों का उद्धार कर देता है ।।३०।। बहुत-से पुत्रों की इच्छा रखनी चाहिए उनमें यदि कोई भी एक गया चला जाता है अथवा अश्वमेध का यजन करताहै या नील वृष का उत्सर्ग करता है तो परम कल्याणकारी है ।।३१।। कोई प्रेत किसी वैश्य को उद्दिष्ट कर बोला था कि तुम मेरे नामसे गया शीर्षमें पिंड का निर्वपन करदो तो मैं प्रेतभाव से विमुक्त हो जाऊँगा और देने वाले को भी स्वर्ग देने वाला होऊँगा ।।३२।। यह श्रवण कर उस वणिक् ने उस प्रेतराज के लिए गया शीर्ष में पिंडदान किया था। इसके पश्चात् अनुजों के साथ अपने पितरों को भी पिंड दान दिया था।३३। वे सभी मुक्त होगये थे। इसी प्रकारसे पिंडदान करने वाला विशाल भी पुत्रों से युक्त होगया था। विशाला में विशाल एक राजपुत्र हुआ था। वह ब्राह्मणों से बोला-मेरे पुत्रादि किस प्रकार होसकेंगे ? तब विप्रगण विशालक से बोले कि गया में पिंडदान करने से तुमको यह सभी कुछ हो जायगा। तब यह विशाल गया शीर्ष में पिंडदान करके पुत्रों वाला हो गया था ।।३४।३५।।

दृष्ट्वाऽऽकाशे सितं रक्तं कृष्णं पुरुषमब्रवीत् ।
के यूयं तेषु चैवैकः सितः प्रोचे विशालकम् ॥३६
अहं सितस्ते जनकं इन्द्रलोकं गतः शुभात् ।
मम पुत्र पिता रक्तो ब्रह्महा पापकृत्परः ।३७
अयं पितामहः कृष्ण ऋषयोऽनेन घातिताः ।
अवीचिं नरकं प्राप्तौ मुक्तौ जातौ च पिण्डद ।।३८
मुक्तीकृतास्ततः सर्वे व्रजामः स्वर्गमुत्तमम् ।
कृतकृत्यो विशालोऽपि राज्यं कृत्वा दिवं ययौ ।।३९
येऽस्मत्कुले तु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।
ये चाप्यकृतचूडास्तु ये च गर्भाद्विनिःसृताः ॥४०

येषां दाहो न क्रियते येऽग्निदग्धास्तथापरे ।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥४१
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ॥४२
तथा मातामहश्चैव प्रमातामह एव च ।
वृद्धप्रमातामहश्चाथ मातामही ततः परम् ॥४३
प्रमातामही च तथा वृद्धप्रमातामहीति वै ।
अन्येषाञ्चैव पिण्डोऽयमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥४४

आकाश में विशालक ने सित–रक्त और कृष्ण वर्ण वाले पुरुष को देखा था। उसने पूछा था–आप कौन हैं तब उन में से एक सित जो था वह बोला ॥३६॥ मैं सित तेरा पिता हूँ और इस शुभ कर्म से इन्द्रलोक को प्राप्त हो गया हूँ। हे पुत्र ! मेरे पिता रक्त वर्ण वाले हैं। यह ब्रह्म हत्यारे और अधिक पाप करने वाले हैं॥ ३७॥ यह कृष्ण वर्ण वाले पितामह हैं। इनने ऋषियों को घातित किया था। ये दोनों अवीचि नरक में प्राप्त थे। अब हे पिंड देने वाले ! ये मुक्त होकर नारकीय यातना से छूट गये हैं ॥३८॥ इसके अनन्तर हम सभी मुक्त होकर अब उत्तम स्वर्गलोक में जा रहे हैं। वह विशाल भी परम कृतकृत्य होकर राज्य के सुख भोग कर दिवलोक को चला गया था ॥३६॥ वहाँ पिंड-दान करने के समय में प्रार्थना करे कि जो हमारे कुल में ऐसे पितृगण हों जिनकी पिंडोदक क्रिया लुप्त होगई हो अर्थात् कोई भी पिंड तथा उदक देने वाला न रहा हो तथा जो चूड़ा संस्कार रहित हों – और जो गर्भ से ही विनिःसृत होगये हों–जो ऐसे हों कि दाह ही न किया जाता हो–जो अग्नि से दग्ध होकर मृत हुए हों तथा अन्य भी जो कोई हों वे सभी भूमि में दिये हुए उदकसे तृप्तहों और तृप्त होकर परम गति को प्राप्त होवें ॥४०।४१॥ पिता पितामह तथा प्रपितामह, माता पितामही तथा प्रपितामही एवं मातामह–प्रमातामह और वृद्ध प्रमातामह एवं मातामही-प्रमातामही और वृद्ध प्रमातामही तथा अन्य जो भी कोई हों उन सबके लिये यह पिंड अक्षय होवे—यह कहकर पिंडदान करना चाहिए। ॥४२॥४३॥४४॥

४८—मन्वन्तर वर्णन

चतुर्दश मनून्वक्ष्ये तत्सुतांश्च शुकादिकान् ।
मनुः स्वायम्भुवः पूर्वमग्निध्राद्याश्च तत्सुताः ॥१
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठश्च महातेजा ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ॥२
जयाख्याश्चामिताख्याश्च शुक्रो यामास्तथैव च ।
गणा द्वादशकाश्चेति चत्वारः सोमपायिनः ॥३
विश्वभुग्वामदेवेन्द्रो वाष्कलिस्तदरिह्यभूत् ।
स हतो विष्णुना दैत्यश्चक्रेण सुमहात्मना ॥४
मनुः स्वारोचिषश्चाथ तत्पुत्रो मण्डलेश्वरः ।
चैत्रको विनतश्चैव कर्णान्तो विद्युतो रविः ॥५
बृहद्गुणो नभश्चैव महाबलपराक्रमः ।
ऊर्जस्तम्बस्तथा प्राण ऋषभो निचुलस्तथा ॥६
दम्भोलिश्चार्ववीरश्च ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ।
तुषिता द्वादश प्रोक्तास्तथा पारावताश्च ये ॥७

हरि ने कहा—अब हम चौदह मनुओं को बतलाते हैं और उनके सुत शुकादि को बताते हैं। पहिले स्वायम्भुव मनु हुए थे तथा अग्निध्रादि उनके पुत्र हुए थे ॥१॥ मरीचि–अत्रि–अङ्गिरा–पुलस्त्य–पुलह–क्रतु और महान् तेज वाले वसिष्ठ ये सात ऋषिवृन्द कीर्तित किये गये हैं ॥ २ ॥ जयाख्य—अमिताख्य-शुक्र तथा याम और द्वादश गण ये चार सोम पायी थे ॥३॥ विश्व भुक्–वाम देवेन्द्र वाष्कलि उनका शत्रु हुआ था। वह दैत्य सुमहात्मा विष्णु के द्वारा चक्र से मारा गया था ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर स्वारोचिष मनु हुए थे। उसका पुत्र मंडलेश्वर-चैत्रक–विनत—कर्णान्त–विद्युत–रवि बृहद्गुण और महान् बल तथा पराक्रम वाला नभ ये थे। ऊर्ज स्तम्ब–प्राण—ऋषभ—निचल–दम्भोलि और अर्ववीर ये सात ऋषि कीर्त्तित किये गये हैं। द्वादश तुषित कहे गये हैं और पारावत बताये गये हैं ॥५॥६॥७॥

इन्द्रो विपश्चिद्देवानां तद्रिपुः पुरुकृत्सरः ।
जघान हस्तिरूपेण भगवान्मधुसूदनः । ८
औत्तमस्य मनोः पुत्रा आजश्च परशुस्तथा ।
विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्रः सुबलः शुचिः ।
देवो देवावृधो रुद्र महोत्साहाजितस्तथा ॥६
रथौजा ऊर्ध्वबाहुश्च शरणश्चानघो मुनिः ।
सुतपाः शङ्कुरित्येते ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ॥१०
वशवर्त्तिः स्वधामानः शिवाः सत्याः प्रतर्दनाः ।
पञ्च देवगणाः प्रोक्ताः सर्वे द्वादशकास्तु ते ॥११
इन्द्रः स्वशान्तिस्तच्छुकः प्रलम्बो नाम दानवः ।
मत्स्यरूपी हरिर्विष्णुस्तं जघान च दानवम् ॥१२
तामसस्य मनोः पुत्रा जानुजङ्घोऽथ निर्भयः ।
नवख्यातिर्नयश्चैव प्रियभृत्यो विनिक्षिपः ॥१३
हवुष्कधिः प्रस्तलाक्षः कृतबन्धुः कृतस्तथा ।
ज्योतिर्धामा धृष्टकाव्यश्चैत्रश्चेताग्निहेमकौ ॥१४
मुनयः कीर्त्तिताः सप्त सुरागाः स्वधियस्तथा ।
हरयो देवतानाञ्च चत्वारः पञ्चविंशकाः ॥१५

देवों का इन्द्र विपश्चिद् था और उसका शत्रु पुरुकृत्सर था । भगवान् मधु सूदन ने हस्ती के रूप से उसका हनन किया था ॥८॥औत्तम मनु के पुत्र आज–परशु–विनीत–सुकृपु–सुमित्र-सुबल-शुचि-देव-देवावृध तथा महोत्साहाजित रुद्र थे॥६॥ उस मन्वन्तर में रथौजा, ऊर्ध्व वाहु,शरण, अनघ, मुनि, सुतपा,और शकु ये सप्तर्षि बताये गयेहैं॥१०॥वशवर्त्ति-स्वधामान-शिवा-सत्य और प्रतर्दन ये पाँच देवगण कीर्त्तित किये गये हैं वे सब द्वादशक थे ॥११॥ स्वशान्ति नामक इन्द्र था और उसका शुक्रप्रलम्ब नामधारी दानव था । उस दानव को मत्स्य का स्वरूप धारण करने वाले हरि विष्णु ने हनन किया था ॥१२॥ तामस नामक मनु के पुत्र जानुजंघ–निर्भय-नवख्याति-नप–प्रियभृत्य विनिक्षिप–हवुष्कधि–प्रस्तलाक्ष–कृतबन्धु–कृत थे और ज्योतिर्धामा—धृष्ट

काव्य चैत्र-श्वेताग्नि-हेमक ये सात मुनि बताये गये हैं। सुरागा और स्वधिय हरि थे तथा देवताओं के चार पञ्च विंशक गुण हुए थे ॥१३॥ ॥१४॥१५॥

गण इन्द्रः शिबिस्तस्य शत्रुर्भीमरथः स्मृताः।
हरिणा कूर्मरूपेण हतो भीमरथोऽसुरः ॥१६
रैवतस्य मनोः पुत्रा महाप्राणश्च साधकः।
वनबन्धुर्निरमित्रः प्रत्यङ्गः परहा शुचिः ॥१७
दृढव्रतः केतुशृङ्ग ऋषयस्तस्य वर्ण्यते।
देवश्रीर्वेदबाहुश्च ऊर्ध्वबाहुस्तथैव च ॥
हिरण्यरोमा पर्जन्यः सत्यनामा स्वधाम च ॥१८
अभूतरजश्चैवैक स्तथा देवाश्वमेधसः।
वैकुण्ठश्चामृतश्चैव चत्वारो देवतागणाः ॥१९
गणे चतुर्दश सुरा विभुरिन्द्रः प्रतापवान्।
शान्तशत्रुर्हतो दैत्यो हंसरूपेण विष्णुना ॥२०
चाक्षुषस्य मनोः पुत्रा ऊरुः पूरुर्महाबलः।
शतद्युम्नस्तपस्वी च सत्यबाहुः कृतिस्तथा ॥२१
अग्निष्णुरतिरात्रश्च सुद्युम्नश्च तथा नरः।
हविष्मान्सुतनुः श्रीमान्स्वधामा विरजस्तथा ॥
अभिमानः सहिष्णुश्च मधुश्री ऋषयः स्मृताः ॥२२

उनका इन्द्र शिवि था और उसका शत्रु भीमरथ कहे गये हैं। भगवान् हरि ने कूर्मावतार धारण कर भीम रथ असुर का वध किया था ॥१६॥ रैवत मनु के पुत्र—महाप्राण साधक—वनबन्धु—निरमित्र—प्रत्यङ्ग—पराहा—शुचि दृढ़ व्रत और केतुशृङ्ग हुए थे। अब उस मन्वन्तर के ऋषि वर्णित किये जाते हैं—देव श्री—वेदवाहु—ऊर्ध्व वाहु—हिरण्य रोमा—पर्जन्य—सत्य नामा और स्वधाम थे ॥१७॥१८॥ अभूत रज—देवाश्वमेध—वैकुण्ठ और अमृत ये चार देवों के गण थे। इस गण में चौदह सुर थे। उनका प्रतापवान् विभु इन्द्र हुआ था। उसका शत्रु शान्तासुर हुआ था जिस दैत्य का हंस रूप धारी भगवान् विष्णु ने हनन किया था ॥१९॥२०॥ अब चाक्षुष मन्वन्तर को बतलाते हैं। चाक्षुष मनु के

पुत्र ऊरु-पूरु-महाबल—शतद्युम्न-तपस्वी-सत्य वाहु-कृति-अग्निष्णु-अतिरात्र-सुद्युम्न तथा नर ये हुए थे। हविष्मान्-सुतनु-श्रीमान्-स्वधामा-विरज-अभिमान-सहिष्णु और मधु श्री ऋषिगण बताये गये हैं ॥२१।२२॥

आर्य्या प्रसूता भाव्यश्च लेखाश्च पृथुकास्तथा ।
अष्टकस्य गणाः पञ्च तथा प्रोक्ता दिवौकसाम् ॥२३
इन्द्रो मनोजवः शत्रुर्महाकालो महाभुजः ।
अश्वरूपेण स हतो हरिणा लोकधारिणा ॥२४
मनोर्वैवस्वतस्यैते पुत्रा विष्णुपरायणाः ।
इक्ष्वाकुरथ नाभाख्यो विष्टिः सर्जातिरेव च ॥२५
हविष्यन्तस्तथा पांशुर्नभो नेदिष्ठ एव च ।
करूषश्च पृषध्रश्च सुद्युम्नश्च मनोः सुताः ॥२६
अत्रिर्वसिष्ठो भगवान्जामदग्निश्च कश्यपः ।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ सप्तमः ॥२७
तथा ह्येकोनपञ्चाशन्मरुतः परिकीर्त्तिताः ।
आदित्या वसवः साध्या गणा द्वादशकास्त्रयः ॥२८

आर्या—प्रसूता—भाव्य—लेखा और पृथुक ये देवों के अष्टक के पाँच गण कहे गये हैं। उनका इन्द्र मनोजव था और इन्द्र का शत्रु महा भुज महा काल हुआ था। उसका बध लोकोंके धारण करने वाले भगवान् हरिने अश्व का स्वरूप धारण करके किया था ॥२३।२४॥अब वैवस्वत मन्वन्तरको बतलाया जाता है-वैवस्वत मनु के पुत्र सब विष्णु परायण हुए थे। उनके नाम ये हैं--इक्ष्वाकु- नाभाख्य--विष्टि--सर्जाति-हविष्यन्त--पांशु--नभ-नेदिष्ठ-करूष पृषध्र-सुद्युम्न हैं॥२५।२६॥ अत्रि -वसिष्ठ-भगवान् जामदग्नि-कश्यप-गौतम भरद्वाज और विश्वामित्र ये उस मन्वन्तर के साथ ऋषि हैं॥२७॥उसमें उनचास मरुद्गण कहे गये हैं। आदित्य--वसु और साध्य ये तीन द्वादशक गण थे। तथा एकादश रुद्र हुए थे और अष्ट वसु थे। दो अश्विनीकुमार विनिर्दिष्ट किये गये हैं तथा दश विश्वेदेवा हैं ॥२८॥

एकादश तथा रुद्रा वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः।
द्वावश्विनौ विनिर्दिष्टौ विश्वेदेव स्तथा दश॥
दशैवाङ्गिरसो देवा नव देवगणास्तथा॥२९
तेजस्वी नाम वै शक्रो हिरण्याक्षो रिपुः स्मृतः।
हतो वाराहरूपेण हिरण्याख्योऽथ विष्णुना॥३०
वक्ष्ये मनोर्भविष्यस्य सावर्ण्याख्यस्य वै सुतान्।
विजयश्चाववीरश्च निर्देहः सत्यवाक्कृतिः॥
वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च वाचः सगतिरेव च॥३१
अश्वत्थामा कृपो व्यासो गालवो दीप्तिमानथ।
ऋष्यशृङ्गस्तथा राम ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः॥३२
सुतपा अमृताभाश्च मुख्याश्चापि तथा सुराः।
तेषां गणास्तु देवानां एकैको विंशकः स्मृतः॥३३
विरोचनसुतस्तेषां बलिरिन्द्रो भविष्यति।
दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम्॥
ऋद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति॥३४
वारुणेर्दक्षसावर्णेर्नवमस्य सुतान् शृणु।
धृष्टिकेतुर्दीप्तिकेतुः पञ्चहस्तो निराकृतिः॥
पृथुश्रवा बृहद्द्युम्न ऋचीको बृहतो गुणः॥३५
मेधातिथिर्द्युतिश्चैव सवलो वसुरेव च।
ज्योतिष्मान्हव्यकव्यौ च ऋषयो विभुरीश्वरः॥३६
परो मरीचिर्गर्भश्च स्वधर्माणश्च ते त्रयः।
देवशत्रुः कालकाक्षस्तद्धन्ता पद्मनाभकः॥३७

दश अङ्गिरस देव हैं तथा नौ देवगण हैं॥२९॥ तेजस्वी नाम वाला इन्द्र हुआ था और उसका शत्र हिरण्याक्ष नामधारी दैत्य था। उस दैत्यका भगवान् विष्णु ने वराह अवतार लेकर वध किया था॥३०॥ अब सावर्ण्य संज्ञा धारी भविष्य मनु के विषय में बतलायेंगे। सावर्ण्य मनु के पुत्र विजय–अर्ववीर–निर्देह–सत्य वाक्–कृति–वरिष्ठ–गरिष्ठ–वाच और संगति थे॥३१॥ अश्व-

श्यामा-कृप-व्यास-मालव-दीप्तिमान-ऋष्य शृङ्ग-राम थे उस मन्वन्तर के सात ऋषि हैं ।।३२।। सुतपा-अमृताभा और मुख्या ये उन देवों के गण हैं जो एकैक विंशक कहा गया है । उनका इन्द्र विरोचन का पुत्र बलि होगा जिसने भूमि के तीन पैड़ की याचना करने वाले वामन रूप-धारी विष्णु को देकर और जो इस ऋद्ध इन्द्र पद का त्याग करके सिद्धि की प्राप्ति करेगा ।।३३।३४।। अब इसके अनन्तर वारुणि दक्ष सावर्णि नवम के पुत्रों को सुनो-धृष्टिकेतु-दीप्ति केतु-पञ्च हस्त—निरा-कृति—पृथुश्रवा—वृहद् द्युम्न-ऋचीक—वृहतोगुण—मेधातिथि द्युति सबल और वसु थे । ज्योतिष्मान्-हव्य-विभ्र और ईश्वर ये ऋषिगण हुये थे । पर-मरीचि-गर्भ और स्वधर्मा ये तीन थे । देवों का शत्रु कालक संज्ञा वाला है । उसका हनन करने वाले पद्मनाभ हुये हैं ।।३५।३६ ३७।।

धर्मपुत्रस्य पुत्रांस्तु दशमस्य मनोः शृणु ।
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिश्रेण्यश्च वीर्यवान् ।।३८
शतानीको निरमित्रो वृषसेनो जयद्रथः ।
भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च शान्तिरिन्द्रः प्रतापवान् ।।३९
अयोमूर्त्तिर्हविष्मांश्च सुकृतश्चाऽव्ययस्तथा ।
लाभगोऽप्रतिमश्चैव सौरभा ऋषयस्तथा ।।४०
प्राणाख्याः शतसंख्यास्तु देवतानां गणास्तदा ।
बलिशत्रुस्तं हरिश्च गदया घातयिष्यति ।।४१
रुद्रपुत्रस्य ते पुत्रान् वक्ष्याम्येकादशस्य तु ।
सर्वत्रयः सुशर्मा च देवानीकः पुरुर्गुरुः ।।४२
क्षेत्रवर्णो दृढेषुश्च आर्द्रकः पुत्रकस्तथा ।
हविष्मांश्च हविष्यश्च वरुणो विश्वविस्तरौ ।।४३
विष्णुश्चैवाग्नितेजाश्चऋषयः सप्त कीर्तिताः ।
विहङ्गमाः कामगमा निर्माणरुचयस्तथा ।।४४
एकैकरुचयस्तेषां गणाश्चेन्द्रश्च वै वृषः ।
दशग्रीवो रिपुस्तस्य श्रीरूपी घातयिष्यति ।।४५

अब दशम मनु धर्म पुत्र के नामों का श्रवण करो—उनके नाम ये हैं—सुक्षेत्र-उत्तमौजा-भूरिश्रेण्य-वीर्यवान् शतानीक--निरमित्र--वृषसेन-जयद्रथ-भूरिद्युम्न-सुवर्चा। इनका इन्द्र शान्ति नामधारी था जो बड़ा प्रताप वाला था ॥ ३८॥३९ ॥ अयोमूर्त्ति-हविष्मान्-सुकृत—अव्यय---नाभाग-अप्रतिम और सौरभ ये उस मन्वन्तरि के ऋषिगण थे ॥४०॥ उस समय में प्राणाख्य सौ संख्या वाले देवताओं के गण थे। बलि के शत्रु को हरि गदा से घातित करेंगे ॥४१॥ अब मैं ग्यारहवें रुद्र पुत्र के पुत्रों को तुमको बतलाता हूँ-सर्वत्रग-सुशर्मा-देवानीक-पुरु गुरु-क्षेत्र वर्ण-इढेषु-आर्द्रक ये उनके पुत्रों के नाम हैं। हविष्मान्-हविष्य—वरुण-विश्व विस्तर विष्णु और अग्नि तेजा ये सात ऋषि बताये गये हैं। विहङ्गम-कामगम-निर्माण रुचि और एकैक रुचि उनके गण हैं। उनका वृषि इन्द्र है। दशग्रीव उसका शत्रु है उप शत्रु का श्री रूपी घात करेंगे ॥४२ से ४५॥

मनोस्तु दक्षपुत्रस्य द्वादशस्यात्मजान् शृणु।
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः ॥४६
मित्रवान् मित्रदेवश्च मित्रबन्धुश्च वीर्य्यवान्।
मित्रवाहः प्रवाहश्च दक्षपुत्रमनोः सुताः ॥४७
तपस्वी सुतपाश्चैव तपोमूर्त्तिस्तपोरतिः।
तपोधृतिर्द्युतिश्चान्यः सप्तर्षयस्तपोधनाः ॥४८
स्वधर्माणः सुतपसो हरितो रोहितस्तथा।
सुरारयो गणाश्चते प्रत्येकं दशको गणः ॥४९
ऋतधामा च भदेन्द्रस्तारको नाम तद्रिपुः।
हरिर्नपुंसको भूत्वा घातयिष्यति शङ्कर ॥५०
त्रयोदशस्य रौच्यस्य मनोः पुत्रान्निबोध मे।
चित्रसेनो विचित्रश्च तपोधर्मरतो धृतिः ॥५१
सुनेत्रः क्षेत्रवृत्तिश्च मुनयो धर्मपो दृढः।
धृतिमानव्ययश्चैव निशारूपो निरुत्सकः ॥५२
निर्माणस्तत्त्वदर्शी च ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः।
स्वरोमाणः स्वधर्माणः स्वकर्माणस्तथामराः ॥५३

वयस्त्रिंशद्विभेदास्ते देवानां तत्र वै गणाः ।
इन्द्रो दिवस्पतिः शत्रुस्त्विष्टिमो नाम दानवः ॥५४
मायूरेण च रूपेण घातयिष्यति माधवः ।
चतुर्दशस्य भौत्यस्य शृणु पुत्रान्मनोर्मम ॥५५

अब दक्ष पुत्र मनु के बारह पुत्रों का श्रवण करो-उनके नाम ये हैं-देववान्-उपदेव-देव श्रेष्ठ-विदूरथ-मित्रवाह-मित्रदेव-मित्रविन्दु-वीर्यवान्-मित्रवाह-प्रवाह ये सब दक्ष-पुत्र मनु के पुत्र हैं ॥४६।४७॥ तपस्वी—सुतपा—तपोमूर्त्ति-तपोरति- तपोधृति-- द्युति और अन्य ये तपोधन सात ऋषि हैं ॥ ४८ ॥ स्वधर्मा सुतपा-हरित-रोहित तथा सुरारि ये गण हैं और प्रत्येक के दशक गण हैं ॥४६॥ ऋतधामा भद्र इन्द्र है और उसका शत्रु तारक नाम वाला दैत्य है हैं शङ्कर हरि भगवान् नपुंसक होकर उसका हनन करेंगे ॥५०॥ अब तेरहवें रौच्य मनु के पुत्रों को जानलो, मैं उन्हें यहाँ बतलाता हूं । उनके नाम चित्रसेन-विचित्र—तपोधर्म रत—धृति-सुनेत्र क्षेत्र वृत्ति हैं । धर्मप-दृढ़-धृति-मान्-अव्यय- निशारूप-निरुत्सुक निर्माण और तत्वदर्शी ये सात ऋषि बताये गये हैं । स्वरोमाण-स्वधर्माण—स्वकर्म्माण देवगण हैं । उनके तैंतीस विभेद हैं जोकि वहाँ पर देवों के गण होते हैं । उनका दिवस्पति इन्द्र है । उस इन्द्र का शत्रु इष्टिम नामक दानव है । इस दानव का माधव मयूर का स्वरूप धारण करके हनन करेंगे । अब चौदहवें भौत्य मनु के पुत्रों को मुझसे श्रवण करो ॥५१ से ५५॥

ऊरुर्गभीरो धृष्टश्च तरस्वी ग्राह एव च ।
अभिमानी प्रवीरश्च जिष्णुः संक्रन्दनस्तथा ।
तेजस्वी दुर्लभश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः ॥५६
अग्निध्रश्चाग्निबाहुश्च मागधश्च तथा शुचिः ।
अजितो मुक्तशुक्रौ च ऋषयः सप्त कीर्तिताः ॥५७
चाक्षुषाः कर्मनिष्ठाश्च पवित्रा भ्रान्तिनस्तथा ।
वाचावृथा देवगणाः पञ्च प्रोक्तास्तु सप्तकाः ॥५८

शुचिरिन्द्रो महादैत्यो रिपुहन्ता हरिः स्वयम् ।
एको देवश्चतुर्द्धा तु व्यासरूपेण विष्णुना ॥५९
कृतस्ततः पुराणानि विद्याश्चाष्टादशैव तु ।
अङ्गानि चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः ॥६०
पुराणं धर्मशास्त्रञ्च आयुर्वेदार्थशास्त्रकम् ।
धनुर्वेदश्च गान्धर्वो विद्या ह्यष्टादशैव ताः ॥६१

भौत्य चतुर्दश मनु के पुत्रों के नाम ये हैं—ऊरु-गम्भीर-धृष्ट-तपस्वी-ग्राह—अभिमानी-प्रवीर—जिष्णु-संक्रंदन—तेजस्वी-दुर्लभ ॥ ५६ ॥ अग्निध्र —अग्नि बाहु-मागध-शुचि-अजित-मुक्त और शुक्र ये चौदहवें मनु के सात ऋषि हैं । चाक्षुष—कर्मनिष्ठ-पवित्र-भ्रान्तिन और वाचा वृथा ये पाँच देवों के गण हैं जो कि सप्तक बताये गये हैं ॥५७ ५८॥ उन देवताओं के इन्द्र का नाम शुचि है । उसका शत्रु महा दैत्य है जिसके हनन करने वाले स्वय भगवान् हरि हैं । एक ही देव है । वही चार रूप से विद्यमान है व्यास के रूप वाले विष्णु ने फिर समस्त पुराणों की रचना की है । अठारह विद्या चार वेद—उन वेदों के छै अङ्ग शास्त्र-मीमांसा-न्याय शास्त्र का विस्तार—पुराण-धर्म-शास्त्र—आयुर्वेद-अर्थ शास्त्र-धनुर्वेद-गान्धर्व वेद ये ही सब अष्टादश विद्यायें कही जाती हैं । इन सबकी रचना विष्णु ने व्यासदेव के स्वरूप में होकर की है॥५९।६०॥६१॥

४९—पित्राख्यान—पितृस्तोत्र

हरिर्मन्वन्तराण्याह ब्रह्मादिभ्यो हराय च ।
मार्कण्डेयः पितृस्तोत्रं क्रोञ्चुकिं प्राह तच्छृणु॥१
रुचिः प्रजापतिः पूर्वं निर्ममो निरहंकृतिः
अत्रास्तमितमायी च चचार पृथिवीमिमाम् ॥२
अनग्निमनिकेतं तमेकाहारमनाश्रमम् ।
विमुक्तसङ्गं त दृष्ट्वा प्रोचुः स्वपितरो मुनिम् ॥३
वत्स कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसंग्रहः ।
स्वर्गापवर्गसेतुत्वाद्बन्धस्तेनामिषं बिना ॥४

गृही समस्तदेवानां पितृणाञ्च तथार्हणाम् ।
ऋषीणामर्थिनाञ्चैव कुर्वन्लोकानवाप्नुयात् ।।५
स्वाहोच्चारणतो देवान्स्वधोच्चरणतः पितृन् ।
विभजत्यन्नदानेन भृत्याद्यानतिथीनपि ।।६
सत्त्वं दैवादृणाद्बन्धमिमस्मदृणादपि ।
अवाप्तोऽसि मनुष्यर्षे भूतेभ्यश्च दिने दिने ।।७
अनुत्पाद्य सुतान्देवान्सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा ।
अकृत्वा च कथं मौण्ड्यं स्वर्गतिं गन्तुमिच्छसि ।।८
क्लेशबोधैककं पुत्र अध्यायेन भवेत्तव ।
मृतस्य नरकं त्यक्त्वा क्लेश एवान्यजन्मनि ।।९

सूतजी ने कहा—भगवान् श्री हरि ने ब्रह्मा आदि के लिए और हर के लिए चौदह मनवन्तरों का सविस्तार वर्णन किया था। मार्कण्डेय महर्षि ने क्रौंचकी से पितृस्तोत्र कहा था उसे तुम अब श्रवण करो। मार्कण्डेय मुनि ने कहा था—पहिले रुचि नामधारी प्रजापति था जो बिल्कुल निर्मम और बिना अहङ्कार वाला था। जहाँ पर अस्तमित माया वाला होकर वह इस भूमण्डल में विचरण किया करता था ।।१।२।। अनग्नि बिना निकेत वाला-एक ही बार आहार करने वाला और आश्रम रहित एवं विमुक्त सङ्ग उसको देखकर स्वपितरों ने मुनि से पूछा था। पितृगण ने कहा—हे वत्स ! तुमने पुण्य क्यों नहीं किया और दारा का संग्रह भी किस कारण से नहीं किया है ? अर्थात् विवाह क्यों नहीं किया है ? दारापरिग्रह तो स्वर्ग और अपवर्ग का तुसेहोताहै। आमिष के बिना उससे बन्ध होता है ।।३।४।। गृहस्थ आश्रम में रहने वाला व्यक्ति समस्त देवों का पितरों का—ऋषियों का और अर्थियों का अर्चन-सत्कार करता हुआ उत्तम लोकों की प्राप्ति किया करता है ।।५।। 'स्वाहा'—इस शब्द के उच्चारण से देवों को—'स्वधा'—इस शब्द के उच्चारण करने से पितृगण को और अन्न के दान देने से भृत्यादि को तथा अतिथियों को गृही सत्व को विभाजित किया करता है। वह तू दैव ऋण से और हमारे भी ऋण से इस बन्धन को प्राप्त हुआ भी मनुष्य

ऋषि और भूतों के लिये आये दिन सुतों को उत्पन्न न करके देवों और पितरों का तर्पण न करके तू कैसे मौण्डच स्वर्गति को प्राप्त करना चाहता है ? क्लेश बोध से एक ही पुत्र तेरे अन्याय से होवे तो मृत के नरक को त्याग कर अन्य जन्म में क्लेश ही होगा ॥६।७।८।९॥

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतेस्तथा ।
भवत्यतो मया पूर्वं न कृतो दारसंग्रहः ॥१०
आत्मनः संशयोपायः क्रियते क्षणमन्त्रणात् ।
स्वमुक्तिहेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात् ॥११
प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं य आत्मा निष्परिग्रहः ।
ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि विद्याम्भोभिर्वरं हि तत् ॥१२
अनेकभवसंभूतकर्मपङ्काङ्कितो बुधैः ।
आत्मा तत्वज्ञानतोयैः प्रक्षाल्य नियतेन्द्रियैः ॥१३
युक्तं प्रक्षालनं कर्त्तुमात्मनोऽपि यतेन्द्रियैः ।
किन्तु नोपायमार्गोऽय यतस्त्वं पुत्र वर्त्तसे ॥१४

रुचि ने कहा—इस संसार में जो भी कुछ परिग्रह होता है वह अत्यन्त दुःख के लिये ही हुआ करता है । परिग्रह पाप और अधोगति के करने के लिये होता है । इसीलिये मैंने दाराओं का संग्रह नहीं किया है ॥१०॥ आत्मा के संशय का उपाय मैं क्षण मन्त्रण से किया करता हूं । यह परिग्रह से स्वमुक्ति का हेतु नहीं होता है ॥११॥ जो निष्परिग्रह होकरअनुदिन आत्मा का प्रक्षालन करताहै । विद्याम्भ से ममत्वके पङ्क से दिग्ध भी वह श्रेष्ठतर होता है ॥१२॥ अनेक जन्मों में होने वाले कर्मों के पङ्क से अङ्कित आत्मा को नियत इन्द्रियों वाले बुधजन तत्व ज्ञान के जल से प्रक्षालित किया करते हैं ॥१३॥ तब यह सुनकर पितरगण बोले—हे पुत्र ! यत इन्द्रियों वालों के द्वारा अपनी अनेक जन्मों में पंकांकित आत्मा का प्रक्षालन कर लेना बहुत युक्त है किन्तु यह तुम्हारे लिये कोई उपाय का मार्ग नहीं है जिसे कि तुम कर रहे हो ॥१४॥

पञ्चयज्ञैस्तपोदानैरशुभं नुदतस्तव ।
फलाभिसन्धिरहितैः पूर्वकर्म शुभाशुभैः ॥१५

एवं न बाधा भवति कुर्वतः करणात्मकम् ।
न च बन्धाय तत्कर्म भयत्यनतिसन्निभम् । १६
पूर्वकर्म कृतः भोगैः क्षीयते ह्यनिशं तथा ।
सुखदुःखात्मकैर्वत्स पुण्यापुण्यात्मक नृणाम् ॥१७
एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धाच्च रक्ष्यते ।
रक्ष्यश्च स्वविवेकेनं पापपङ्केन दह्यते ॥१८
अविद्या पच्यते वेदे कर्ममार्गाः पितामहाः ।
तत्कथं कर्मणो मार्गे भवन्तो योजयन्ति माम् ॥१९
अविद्या सर्वमेवैतत्कर्मणैतन्मृषा वचः ।
किन्तु विद्यापरिव्याप्तौ हेतु कर्म न संशयः ॥२०
विहिताकरणानर्थो न सद्भिः क्रियते तु यः ।
संयमो मुक्तये योऽन्यः प्रत्युताधोगतिप्रदः ॥२१

पाँच यज्ञों से—तप और दानों से अशुभ कर्म का नोदन करने वाले तुम्हारा पूर्व कर्म शुभाशुभ फलों की अभिसन्धि से रहित है । इस प्रकार से करणात्मक कर्म करते हुए को बाधा नहीं होती है और वह कर्म वन्ध के लिये भी नहीं होता हैं क्योंकि वह अनति सन्निभ होता है जो पूर्व कर्म है वह निरन्तर भोगों के द्वारा क्षीण होता है । हे वत्स! मनुष्यों के पुण्यापुण्यात्मक कर्म सुख एवं दुःखस्वरूप भोगों से क्षीयमाण हो जाते हैं । इसी प्रकार से प्राज्ञ पुरुषों के आत्मा प्रक्षालित किया जाता है और बन्ध से रक्षित किया जाया करता है । और अपने विवेक से ही रक्षा करने के योग्य है जो कि पाप के पङ्क से दह्यमान नहीं होता है ॥१५ से १८॥ रुचि ने कहा—हे पिता महो ! आप तो कर्म मार्ग वाले हैं । वेद में इस अविद्या का पाचन किया जाता है । यह सभी जानतेहुए आप मुझे पुनः कर्ममार्गमेंक्यों योजित कर रहेहैं? पितृगणबोले-यह सम्पूर्ण अविद्या ही है । यह कर्म से है—यह कहना मिथ्या वचन है किन्तु विद्या परिव्याप्ति में कर्म हेतु है इसमें कोई भी संशय नहीं है १९।२०सत्पुरुषोंके द्वाराविहितके न करनेका अनर्थजोनहीं कियाजाताहैवह

संयम मुक्ति के लिए होता है बल्कि अन्य जो है वह अधोगति के प्रदान करने वाला है ।।२१।।

प्रक्षालयामीति भावान्यदेतन्मन्यते वरम् ।
विहिताकरणोद् भूतैः पापैस्त्वमसि दह्यसे ।।२२
अविद्याऽप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम् ।
अनुष्ठानाभ्युपायेन बन्धयोग्यापि नो हि सा ।।२३
तस्माद्वत्स कुरुष्व त्वं विधिद्दारसंग्रहम् ।
आजन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्यान्यलौकिकम्।।२४
वृद्धोऽहं साम्प्रतं को मे पितरः सम्प्रदास्यति ।
भार्य्यां तथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसंग्रहः ।।२५
अस्माकं पतनं वत्स भवतश्च ह्यधोगतिः ।
नूनं भावि भवित्री च नाभिनन्दसि नो वचः ।।२६
इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम ।
बभूवुः सहसाऽदृश्या दीपा वातहता इव ।।२७
मुनिः क्रौञ्चुकये प्राह मार्कण्डेयो महातपाः ।
रुचिवृत्तान्तमखिलं पितृसंवादलक्षणम् ।।२८

मैं भावों का प्रक्षालन कर रहा हूँ—यहाँ जो तुम श्रेष्ठ मानते हो वह तुम विहित कर्म के न करने से समुत्पन्न पापों से दग्ध होरहे हो ।।२२।। अविद्या भी मनुष्यों को विष की भाँति उपकार के लिये होती है । वह अविद्या अनुष्ठान के अभ्युपाय से बन्ध के योग्य भी नहीं है । ।।२३।। इससे हे वत्स तुम विधि पूर्वक दारा का संग्रह करो । आजन्म अन्य लौकिक को सम्प्राप्त न करके तेरा जन्म विफल होवे ।।२४।। इसके पश्चात् रुचि ने कहा—हे पितृवृन्द ! मैं तो इस समय वृद्ध होगया हूं अब मुझे कौन भार्या प्रदान करेगा । मुझ जैसे दरिद्री को इस समय दार संग्रह करना अत्यन्त कठिन कार्य है ।।२५।। तब पितरों ने कहा-हे वत्स ! तुम हमारे वचन को नहीं स्वीकार कर रहे हो तथा अपने भावि एवं भवित्रा जीवन का भी अभिनन्दन नहीं करते हो ।

इससे हम लोगों का तो पतन होगा और तुम्हारी भी अधोगति हो जायगी ॥२६॥ हे मुनि सत्तम ! उसके पितृगण इतना कह कर उसके देखते-देखते ही बात से हत दीपों की भाँति सहसा अदृश्य हो गये थे ॥२७॥ महान् तपस्वी मार्कण्डेय मुनि ने क्रौष्टुकि से कहा था यह सम्पूर्ण रुचि का वृत्तान्त और उसके साथ होने वाला पितरों के साथ सम्वाद है ॥२८॥

५०—पित्राख्यान-पितृस्तोत्र (२)

पृष्टः क्रौष्टुकिनोवाच मार्कण्डेयः पुनश्च तम् ।
स तेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानसः ॥१
कन्याभिलाषी विप्रर्षिः परिबभ्राम मेदिनीम् ।
कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्येन दीपितः ॥
चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥२
किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसंग्रहः ।
क्षिप्रं भवेन्मत्पितॄणां ममाभ्युदयकारकम् ॥३
इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः ।
तपसाऽऽराधयाम्येनं ब्रह्माणं कमलोद्भवम्॥४
ततो वर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे महात्मनाः ।
तत्र स्थितश्चिरं कालं वनेषु नियमस्थितः ॥
आराधनाय स तदा परं नियममास्थितः ॥५
ततः प्रदर्शयमास ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाचाथ प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवांछितम् ॥६
ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम् ।
पितॄणां बचनात्तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ॥७

सूतजी ने कहा—क्रौष्टुकि के द्वारा पूछे गये मार्कण्डेय मुनि ने पुनः उससे कहा कि वह रुचि उन पितरों के वाक्य से बहुत ही अधिक उद्विग्न मन वाला हो गया था ॥१॥ अब तो वह रुचि किसी कन्या प्राप्त करने की इच्छा वाला होकर सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल में भ्रमण करने लगा था ।

उसे जब कहींभी कोई कन्या प्राप्त नहींहुई तो वह पितृ वचनसे बड़ा दुःखित हुआ और एक बहुत भारी चिन्ता प्राप्तहोगईथी तथा वह अति उद्विग्न मन वाला हो गया था ॥२॥ वह मन में सोचने लगा—मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊं तथा मेरा दार से संग्रह किस प्रकार से होवे जोकि शीघ्र ही मेरे पितृगण का तथा मेरा अभ्युदय करने वाला बने ॥ ३ ॥ इस प्रकार से चिन्तन करते हुए उस महात्मा की बुद्धि में आया कि मैं तपस्या से कमल से उद्भव प्राप्त करने वाले श्री ब्रह्माजी की आराधना करूं ॥४॥ इसके अनन्तर एक सौ वर्ष पर्यन्त उसने परम दिव्य तपश्चर्या की थी। वह वहाँ वन में चिरकाल तक नियम में समास्थित होकर बैठ गया था। उसने ब्रह्मा की आराधना करने के लिए यह ऐसा नियम धारण किया था ॥५॥ इसके अनन्तर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने अपना दर्शन उसे दिया था और वे बोले—मैं तुम्हारी तपस्या से परम प्रसन्न हूं। अब तुम अपना अभिवांछित जो भी मनोरथ हो उसे मेरे सामने कहो ॥६॥ इतना श्रवण कर इस रुचि ने जगत् के स्वामी ब्रह्माजी को प्रणाम करके उनसे प्रार्थना की कि मैंने अपने पितरों के वचन को शिरोधार्य करके ही कुछ अभिवांछित किया है ॥७॥

प्रजापतिस्त्वं भविता स्रष्टव्या भवता प्रजाः।
सृष्ट्वा प्रजाः सुतान्विप्रः समुत्पाद्य क्रियास्तथा ॥८
कृत्वा कृताधिकारस्त्वं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि।
स त्वं यथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ॥६
कामश्चेममभिध्याय क्रियतां पितृपूजनम्।
त एव तुष्टाः पितरः प्रदास्यन्ति तवेप्सितम् ॥
पत्नीं सुतांश्च सन्तुष्टाः किं न दद्युः पितामहाः ॥१०
इत्यृषिर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
नद्या विविक्ते पुलिने चकार पितृतर्पणम् ॥११॥
तुष्टाव च पितृन्विप्रः स्तवैरेभिरथादृतः।
एकाग्रप्रयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥१२

नमस्येऽहं पितृन्भक्त्या ये वसन्त्यधिदेवताः ।
देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये श्राद्धेषु स्वधोत्तरैः ॥१३॥
नमस्येऽहं पितृन्स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः ।
श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥१४

ब्रह्माजी ने कहा–तुम प्रजापति हो जाओगे और तुमको प्रजाओं का सृजन करना है । प्रजाओं का सृजन करके तथा सुतों का समुत्पादन करके इसके अनन्तर समस्त क्रियायें पूर्ण करके तुम कृताधिकार हो जाओगे और इसके पश्चात् सिद्धि को प्राप्त करोगे। इसलिये पितृगण ने जैसा तुमसे कहा है वह दार संग्रह करो ॥८।९॥ इस काम का अभि-ध्यान करके पितरों का अर्चन करो फिर वे ही पितरगण परम सन्तुष्ट होकर आपका सम्पूर्ण अभीप्सित प्रदान कर देंगे। सन्तुष्ट पितामह पत्नी-सुतों को देते हैं और भी वे क्या नहीं दिया करते हैं अर्थात् सभी कुछ प्रदान किया करते हैं ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा – ऋषि ने इस प्रकार से अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी के वचन का श्रवण कर नदी के परम एकान्त पुलिन के स्थल में उसने फिर अपने पितरों का तर्पण किया था ॥११॥ एकाग्र मन से परम प्रयत होते हुए भक्तिभाव से अत्यन्त विनीत होकर आदर के साथ उस विप्र ने अपने पितरों को स्तवों के द्वारा संस्तुत किया था ॥१२॥ रुचि ने कहा–मैं भक्ति की परमोत्कृष्ट भावना से पितृगण को नमस्कार करता हूँ जो अधि देवता निवास करते हैं। श्राद्धों में जो स्वधोत्तर देवों के द्वारा भी तृप्त किये जाते हैं ॥१३॥ मैं पितृगण को नमस्कार करता हूँ जो स्वर्ग में महर्षियों के द्वारा तृप्त किये जाया करते हैं। भुक्ति और मुक्ति दोनों की इच्छा रखने वाले भक्तिभाव से मनोमय श्राद्धों के द्वारा उन्हें संतुष्ट एवं संतृप्त किया करते हैं॥ १४॥

नमस्ययेऽहं पितृन्स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान्
श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥१५
नमस्येऽहं पितृन्भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैर्दिवि ।
तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिरृद्धिमात्यन्तिकीं पराम् ॥१६

नमस्येऽहं पितृन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकपुष्टिप्रदायिनः ॥१७
नमस्येऽहं पितृन्विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८
नमस्येऽहं पितृन्ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः ।
वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकल्मषैः ॥१९
नमस्येऽहं पितृन्विप्रैर्नैष्ठिकैर्धर्मचारिभिः ।
ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः ॥२०
नमस्येऽहं पितृन्श्राद्धै राजन्यास्तर्पयन्ति यान् ।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकद्वयफलप्रदान् ॥२१

मैं अपने पितरों को नमस्कार करता हूँ जिनको स्वर्ग में सिद्ध लोग श्राद्धों में समस्त दिव्य और परमोत्तम उपहारों के द्वारा संतृप्त किया करते हैं ॥१५॥ मैं अपने पितृगण की सेवा में प्रणाम करता हूँ जोकि दिविलोक में तन्मयता के साथ परा आत्यन्ति की ऋद्धि की इच्छा करने वाले गुह्यकों के द्वारा भक्ति-भाव से समर्चित किये जाते हैं ॥१६॥ मैं अपने पितरों को प्रणाम करता हूँ जो सदा इस भूमण्डल में मनुष्यों के द्वारा बड़ी श्रद्धा से अभीष्ट लोक और पुष्टि के प्रदान करने वाले श्राद्धों में पूजित किये जाते हैं ॥ १७ ॥ मैं अपने पितृगण को प्रणाम करता हूँ जो पितरगण सर्वदा इस मही मण्डल में आचार्यित्व के प्रदान करने वाले हैं और वांछित अभीष्ट लाभ के देने वाले हैं विप्रों के द्वारा समर्चित हुआ करते हैं ॥ १८ ॥ मैं अपने पितृदेवों की सेवा में प्रणाम करता हूँ जो वो वन में निवास करने वाले—तपस्या से निर्धूत कल्मष वाले और आहार वाले मनुष्य श्राद्धों के द्वारा सदा तृप्त किया करते हैं ॥१९॥ मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं जो धर्मचारी—संयत आत्मा वाले नैष्ठिक विप्रों के द्वारा नित्य ही समाधियों के द्वारा सतृप्त किये जाया करते हैं ॥२०॥ मैं उन पितृ देवों को नमस्कार करता हूं जिनको क्षत्रिय लोग लोक द्वार के फलों को देने वाले होने के कारण विधि पूर्वक सम्पूर्ण श्राद्धों में कव्यों के द्वारा तृप्त करते हैं ॥२१॥

नमस्येऽहं पितृन्वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः ।।२२
नमस्येऽहं पितृन्श्राद्धे शूद्रैरपि च भक्तितः ।
सन्तर्प्यन्ते जगत्कृत्स्नं नाम्ना ख्याताः सुकालिनः ।।२३
नमस्येऽहं पितृन्श्राद्धे पाताले ये महासुरैः ।
सन्तर्प्यन्ते सुधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ।।२४
नमस्येऽहं पितृन्श्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले ।
भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः ।।२५
नमस्येऽहं पितृन्श्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान्सदा ।
तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ।।२६
पितृन्नमस्ये निवसन्ति साक्षाद्ये देवलोकेऽथ महीतले वा ।
तथाऽन्तरिक्षे च सुरारिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मनोपनीतम्२७
पितृन्नमस्ये परमार्थभूता ये वै विमाने निवसन्त्यमूर्त्ताः ।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून्॥ २८

मैं अपने पूज्य पितरों की सेवा में अभिवादन करता हूँ जिनकी इस मही मण्डल में सदा अपने कर्मों में निरत पुष्प धूप-अन्न और जल के द्वारा वैश्यों से समर्चना की जाती है ।।२२।। मैं पितरों को नमस्कार करता हूं जो नाम से सम्पूर्ण जगत् में सुकाली स्थान है शूद्रों के द्वारा भी श्रद्धा में भक्ति-भाव से संतृप्त किये जाते हैं ।।२३।। मैं पितरों को प्रणाम करता हूँ जो सुधाहार श्राद्ध में पाताल लोक में मद और दम्भ का त्याग करने वाले महासुरों के द्वारा भली भाँति संतृप्त किये जाया करते हैं ।।२४।। मैं अपने पितृगण को नमस्कार करता हूँ जिनकी पूजा एवं संतृप्ति कामनाओं के चाहने वाले समस्त भोग और नागों के द्वारा विधि पूर्वक रसातल में श्राद्धों के माध्यम से की जाया करती है ।।२५।। मैं पितरों को प्रणाम करता हूँ जो सप्त श्राद्धों के माध्यम से सर्पों के द्वारा सन्तर्पित हैं । वे सर्प वहाँ पर विधिवत् मन्त्र-भोग और सम्पदा से समन्वित हैं ॥२६॥ मैं उन पितृगणों को नमस्कार करता हूँ जो साक्षात् देवलोक में—महीतल में तथा अन्तरिक्ष में

निवास किया करते हैं। वे सुरारि के पूज्य हैं और वे मेरे मनोपनीत को प्रदान करें ॥२७॥ मै पितृगणों को प्रणाम करता हूँ जो परमार्थ स्वरूप एवं अमूर्त रूप वाले विमान में निवास किया करतेहैं और जिनको क्लेशों की मुक्ति के कारण भूतों को योगीश्वर गण निरस्त मत वाले मनों से यजन किया करते हैं ॥२८॥

पितृन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु॥२९
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान्।
सुरत्वमिन्द्रत्वमितोऽधिकं वा गजाश्वरत्नानि महागृहाणि ॥३०
सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु॥३१
येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः।
ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः ॥३२
ये खड्गमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च।
कालेन शाकेन महर्षिवर्य्यैः सम्प्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु॥३३
कथान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषां मम पूजितानाम्।
तेषाञ्च सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगंधाम्बुभोज्येषु मया कृतेषु ॥३४
दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्चां मासांतपूज्या भुवि येऽष्टकासु।
ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तुष्टिम्॥३५

मैं पितरों को नमस्कार करता हूँ जो दिवलोक में मूर्त रूप वाले हैं और काम्य फल की अभिसन्धि में स्वधा का योग करने वाले हैं तथा समस्त अभीष्टों के प्रदान करने में समर्थ हैं एवं जो किसी फल की आकांक्षी नहीं हैं उनको विमुक्ति प्रदान करने वाले हैं ॥२९॥ इच्छा रखने वालों की कामनाओं को जो पूर्ण किया करते हैं वे समस्तपितृगण इसमें तृप्ति लाभ करें। सुरत्व प्राप्त करने की—इन्द्र के पद पाने की या इससे भी अधिक कोई पद पानेकी अभिलाषा हो और गज-अश्व—रत्न एवं महान् गृह पाने की कामना हो पितृगण सभी को पूर्ण किया करते हैं ॥३०॥ जो चन्द्रमा की रश्मियों में—

सूर्य के विम्ब में—शुक्ल विमान में सदा निवास किया करते हैं वे पितरगण इसमें तृप्त होवें और अन्न-जल तथा गन्ध आदि के द्वारा पुष्टि को प्राप्त होवें ॥३१॥ अग्नि में हवन करने पर जिनकी तृप्ति होती है और जो विप्रों के शरीर में संस्थित होते हुए भोजन करते हैं। जो पिण्डदान से प्रसन्नता प्राप्त करते हैं वे पितरगण यहाँ अन्न और जल से तृप्ति प्राप्त करें ॥३२॥ जो खड्ग मांस से देवों के द्वारा अभीष्ट दिव्य एवं मनोहर कृष्ण तिलों से तथा महर्षि वर्यों के द्वारा तत्कालीन शाक से प्रीणित होते हैं वे यहाँ पर मोद को प्राप्त करें ॥३३॥ कथान्य से शेष जो मेरे पूजित वर्यों को अतीव अभीष्ट हों उन सबका सान्निध्य मेरे द्वारा किये गये यहाँ पर पुष्प गन्ध जल भोज्यों में हो जावे ॥३४॥ जो प्रतिदिन अर्चा को ग्रहण करते हैं और जो अष्टकाओं में भूमण्डल में मासान्त में पूज्य होते हैं और जो वत्सर के अन्त में और अभ्युदय के अवसर पर पूजा करने के योग्य होते हैं वे मेरे पितृगण यहाँ पर अब तुष्टि को प्राप्त करें ॥३५॥

पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणां ज्वलनार्कवर्णाः ।
तथा विशां ये कनकावदाता नीलीप्रभाः शूद्रजनस्य ये च ॥३६
तेऽस्मिन्समस्ता मम पुष्पगन्धधूपाम्बुभोज्यादिनिवेदनेन ।
तथाऽग्निहोमेन च यान्ति तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३७
ये देवपूर्वाण्यभितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहृतानि ।
तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३८
रक्षाँसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयंतु त्वशिवं प्रजानाम् ।
आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यंतु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३९

अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा ।
व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पिता मया ॥४०
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम् ।
तथा बर्हिषदः पांतु याम्यां मे पितरः सदा ॥
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः ॥४१

रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ।
सर्वतः पितरो रक्षां कुर्वन्तु मम नित्यशः ॥४२

द्विजों के जो कुमुद और चन्द्र की आभा के समान आभा वाले पूज्य हैं जो क्षत्रियों के अग्नि और सूर्य के तुल्य वर्ण वाले हैं तथा वैश्यों के सुवर्ण के समान अवदात हैं और शूद्रों के जो नीली की प्रभा के तुल्य प्रभा वाले हैं वे समस्त पितृगण इसमें मेरे द्वारा निवेदित किये पुष्प-गन्ध-धूप-जल और भोजनीय पदार्थ से तृप्ति को प्राप्त होवें तथा जो अग्निहोम से तृप्ति को प्राप्त किया करते हैं उन पितरों को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥३६।३७॥ जो देव पूर्व अभि तृप्ति प्राप्त करने के लिए शुभ एवं आहूत कव्यों का अशन किया करते हैं जो भूति के सृजन करने वाले तृप्त है वे यहाँ पर भी तृप्त हो जावें। मैं उनके समक्ष में प्रणत होता हूँ ॥३८॥ जो पितृगण हैं वे राक्षस—भूत तथा अन्य उग्र असुरों का एवं प्रजाओं के अशुभ हैं उसका नाश कर देवे। जो सुरों में सर्व प्रथम है और देवेश के द्वारा पूजा के योग्य हैं वे पितर इसमें तृप्ति का लाभ करें। मैं उनको प्रणाम करता हूँ ॥३९॥ अग्निस्वात्त—बर्हिषद—आज्यप तथा सोमपान करने वाले हैं वे समस्त पितर मेरे द्वारा इस श्राद्ध में तर्पित होते हुए परम तृप्ति को प्राप्त होवें ॥४०॥ अग्निष्वात्त पितृगण मेरी प्राची दिशा की रक्षा करें। बर्हिषद पितृगण सदा मेरी याम्य दिशा की रक्षा करें। आज्य (घृत) का पान करने वाले पितृगण प्रतीची दिशा और सोमपान करने वाले उदीची दिशा में रक्षा करें ॥४१॥ पितरगण सर्वदा नित्य ही राक्षस—भूत—पिशाचों से तथा असुरों के किये हुए दोषों से मेरी रक्षा करें ॥४२॥

विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्यः शुभाननः ।
भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितृणां ये गणा नवः ॥४३
कल्याणः कल्यदः कर्त्ता कल्यः कल्यतराश्रयः ।
कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः ॥४४
वरो वरेण्यो वरदस्तुष्टिदः पुष्टिदस्तथा ।
विश्वपाता तथा धाता सप्तैते च गणाः स्मृताः ॥४५

महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबलः
गणाः पञ्च तथैवैते पितृणां पापनाशनाः ॥४६
सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः ।
पितृणां कथ्यते चैव तथा गणचतुष्टयम् ॥४७
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।
त एवात्र पितृगणास्तुष्यन्तु च मदाहितम् ॥४८
एवन्तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रितः ।
प्रादुर्बभूव सहसा गगनव्याप्तिकारकः ॥४९
तद् दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समाच्छाद्य स्थितं जगत् ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ ॥५०

विश्व—विश्व भुक्—आराध्य—धर्म—धन्य—शुभानन—भूतिद—भूति कृत् और भूति ये पितरों के नौ गण हैं ॥४३॥ कल्याण-कल्यद-कर्त्ता—कल्य—कल्पतराश्रय—कल्यका हेतु और अनघ ये छै गण कहे गये हैं ॥४४॥ वर-वरेण्यवरद-तुष्टिद पुष्टिद विश्वपाता और धाता ये सात गण कहे गये हैं ॥ ४५ ॥ महान्-महात्मा-महित महिमावान्-महाबल ये पापों के नाश करने वाले पितरों के उसी प्रकार से पाँच गण हैं ॥४ ॥ सुखद-धनद-अन्य धर्मद और अन्य भूतिद ये उसी भाँति पितरों के चार गण कहे जाते हैं ॥४७॥ इस प्रकार से इकत्तीस पितृगण हैं । जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । वे सभी यहाँ मेरे निवेदित श्राद्ध में पितृगण तृप्ति को प्राप्त होवें ॥४८॥ मार्कण्डेयजी बोले--इस प्रकार से स्तवन करते हुये उसकी तेज की राशि उत्थित हुई और तुरन्त ही गगन में व्याप्ति करने वाली वह प्रादुर्भूत हुई थी ॥४९॥ उस सुमहान् तेज को देखकर जो कि सम्पूर्ण जगत् को समाच्छादित कर स्थित था, घुटनों के बल से भूमि पर स्थित होकर रुचि ने इस स्तोत्र का गायन किया था ॥५०॥

अर्चितानाममूर्त्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम् ।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ॥५१

इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा ।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान् ।।५२
मन्वादीनाञ्च नेतारः सूर्य्याचन्द्रमसोस्तथा ।
तान्नमस्याम्यहं सर्वान्पितृनप्युद्धार सः ।।५३
नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्योर्नभस्तथा ।
द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ।।५४
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च ।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ।।५५
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु ।
स्वायम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ।।५६
सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्त्तिधरांस्तथा ।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ।।५७

रुचि ने कहा–अर्चित एवं अमूर्त तथा दीप्त तेज वाले–ध्यानी और दिव्य चक्षुओं वाले उन पितृगणों को मैं सदा नमस्कार करता हूँ ।।५१।। इन्द्र आदि देवों के नेता–दक्ष और मारीच के नेता—सप्तर्षियों के तथा अन्यों के नेता उन कामनाओं के देने वालों को मैं नमस्कार करता हूँ ।।५२।। मनु आदि के नेता तथा सूर्य और चन्द्र के नायक मैं उन सब पितृगण को नमस्कार करता हूँ । उसने समस्त पितरों का उद्धार किया था ।।५३।। नक्षत्रों—ग्रहों का नेता—वायु और अग्नि का नेता–नभका एवं द्यावा पृथिवी के नेता उनको मैं कृताञ्जलि होकर प्रणाम करता हूँ ।।५४।। प्रजापति कश्यप—सोम–वरुण और योगेश्वरों के लिए मैं सदा हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ।।५५।। सात लोकों में सात गणों के लिये नमस्कार है । स्वायम्भू के लिए नमस्कार है और योगचक्षु वाले ब्रह्मा के लिए नमस्कार है ।।५६।। सोमाधार तथा योग मूर्त्तिधर पितृगणों को एवं जगतों के पिता सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ।।५७।।

अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितृनहम् ।
अग्निसोममय विश्वं यत एतदशेषतः ।।५८

ये च तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्त्तयः ।
जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥५९
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः ।
नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ॥६०
एवंस्तुतास्ततस्तेन तेजसो मुनिसत्तमाः ।
निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशो दश ॥६१
निवेदनञ्च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् ।
तद्भूषितानथ स तान्ददृशे पुरतः स्थितान् ॥६२
प्रणिपत्य रुचिर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः ।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ॥६३
ततः प्रसन्नाः पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् ।
वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धरः ॥६४

अग्नि रूप अन्य पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ जिनसे यह संपूर्ण विश्व अग्नि सोममय है ॥५८॥ और जो ये तेज में हैं तथा जो ये सोम-सूर्य और अग्नि की मूर्त्ति वाले हैं। इस सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप वाले हैं तथा ब्रह्म के स्वरूप वाले हैं उन समस्त योगी पितरों को दत्तचित्त होकर मेरा बारम्बार नमस्कार है मेरा आपके लिये प्रणाम है। सब स्वधा भोजी मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥५९॥६०॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा-इसके अनन्तर इस प्रकार से उसके द्वारा स्तवन किये गये तेज स्वरूप मुनि सत्तम वे पितृगण दशों दिशाओं को भासित करते हुए निकले थे ॥६१॥ उसके द्वारा जो भी कुछ पुष्प-गन्ध और अनुलेपन निवेदित किया गया था उस सबसे विभूषित उनको सामने स्थित उसने देखा था ॥ ६२ ॥ रुचि ने फिर हाथ जोड़कर उनको प्रणाम किया और बहुत ही भक्ति के भाव से प्रणिपात किया था। रुचि ने "आपको नमस्कार है—आपको नमस्कार है"—ऐसा पृथक् रूप से आदर के साथ कहा था ॥६३॥ इसके अनन्तर पितरगण उस पर बहुत प्रसन्न हुए और मुनि श्रेष्ठ से बोले तुम अपना अभीष्ट वरदान माँग लो। इसे सुनकर अपनी गरदन नीचे झुका-कर उनसे कहा—॥६४॥

प्रजानां सर्गकर्त्तृ त्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम ।
सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम् ॥६५
अत्रैव सद्यः पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा ।
तस्याञ्च पुत्रो भविता भवतो मुनिसत्तम ॥६६
मन्वन्तराधिपो धीमांस्तन्नाम्नैवोपलक्षितः ।
रुचे रौच्य इति ख्यातिं प्रयास्यति जगत्त्रये ॥६७
तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ।
भविष्यन्ति महात्मानः पृथिवीपरिपालिकाः ॥६८
त्वञ्च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वाचतुर्विधाः ।
क्षीणाधिकारी धर्मज्ञस्ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥६९
स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मांस्तोष्यति भक्तितः ।
तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मजं ध्यानमुत्तमम् ॥७०

रुचि ने कहा-प्रजाओं के सर्ग को करने के लिए ब्रह्माजी ने मुझे आदेश प्रदान किया है । इसलिए मैं प्रजा का सृजन करने के लिए परम दिव्य धन्य और प्रजाओं वाली पत्नी चाहता हूँ ॥६५॥ पितृगण ने कहा-यहाँ पर ही तुरन्त ही अत्यन्त मनोरमा आपकी पत्नी हो जावेगी । हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! उस पत्नी में तुम्हारे एक पुत्र होगा ॥६६॥ वह मन्वन्तर का स्वामी—परम बुद्धिमान् और उसी नाम से उपलक्षित रुचि का रौच्य इस ख्याति को तीनों जगत् में प्राप्त करेगा ॥६७॥ इसके भी बहुत-से पुत्र होंगे जो महान् बल और पराक्रम वाले होंगे और महान् आत्मा वाले तथा पृथ्वी के परिपालन करने वाले होंगे ॥६८॥ और तुम प्रजापति होकर चार प्रकार की प्रजा का सृजन करके क्षीण अधिकार वाले होते हुए धर्म के ज्ञाता होओगे और इसके अनन्तर परम सिद्धि की प्राप्ति करोगे ॥६९॥ इस स्तोत्र से जो मनुष्य हमारी भक्ति के सहित स्तुति करेगा उस पर हम परम सन्तुष्ट होते हैं और उसे समस्त भोग पुत्र तथा उतम ध्यान प्रदान किया करते हैं ॥७०॥

आयुरारोग्यमर्थञ्च पुत्र पौत्रादिकं तथा ।
वाञ्छद्भिः सतत स्तव्याः स्तोत्रेणानेन वै यतः ॥७१

श्राद्धेषु य इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम् ।
पठिष्यति द्विजाग्राणां भुञ्जतां पुरतः स्थितः ॥७२
स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्या सन्निधाने परे कृते ।
अस्माभिरक्षयं श्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयः ॥७३
यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत् ।
अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ॥७४
अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथा कृतैः ।
अकालेऽप्यथवा देशे विधिहीनमथापि वा ॥७५
अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य यत्कृतम् ।
अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात् ॥७६
यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ।
अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ॥७७

जो आयु—आरोग्य—अर्थ और पुत्र—पौत्रादिक के प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं उन्हें इस स्तोत्र से निरन्तर हमारी स्तुति करनी चाहिए ॥७१॥ श्राद्धों में जोइस हमारी प्रीति के समुत्पन्न करने वाले स्तव का भक्ति भाव के साथ पाठ करेगा जबकि श्राद्ध के समय में ब्राह्मण लोग भोजन कर रहे होवें। उनके समक्ष में स्थित होकर इसको पढेगा तो इस स्तोत्र के श्रवण की प्रीति से हमारे द्वारा सन्निधान को किये जाने पर वह श्राद्ध अक्षय हो जायगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥७२।७३॥ यद्यपि श्रोत्रिय विप्रों से रहित श्राद्ध हो—यद्यपि उपहत और अन्याय से प्राप्त किये गये धन से किया गया हो जिसका कि विधान नहीं है श्राद्ध के अयोग्य एवं उपहत उपहारों से किया गया हो और अकाल एवं अदेश में विधान से रहित किया गया हो—बिना श्राद्ध के दम्भ का आश्रय लेकरपुरुषों के द्वारा किया गया हो किन्तु यदि इस स्तव का पाठ किया जावे तो वह भी हमारी परम प्रीति के लिये हो जाता है ॥७४।७५।७६॥ जिस श्राद्ध में हमारे सुख के देने वाले इस स्तव का पाठ किया जाता है तो हमको बारह वर्ष के लिये इससे परम प्रीति एवं तृप्ति हो जाया करती है ॥७७॥

हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति ।
शिशिरे द्विगुणाब्दानि तृप्तिं स्तोत्रमिदं शुभम् ॥७८
वसन्ते षोडशसमास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि ।
ग्रीष्मे च षोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम् ॥७९
विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते ।
वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुके ॥८०
शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ।
अस्माकमेतत्पुरुषैस्तृप्तिं पञ्चदशाब्दिकीम् ॥८१
यस्मिन्गेहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा ।
सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति ॥८२
तस्मादेतत्वया श्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां पुरः ।
श्रावणीयं महाभाग अस्माकं पुष्टिकारकम् ॥८३

यदि इस प्रकार से इस स्तोत्र के पाठ के साथ हेमन्त ऋतु में श्राद्ध करे तो बारह वर्ष तक के लिए तृप्ति होती है । शिशिर ऋतु में किये गये ऐसे श्राद्ध से इससे भी दुगुनी तृप्ति अर्थात् चौबीस वर्ष तक के लिए होती है । ऐसा यह परम शुभ स्तोत्र है ॥७८॥ बसन्त ऋतु में सोलह वर्ष के लिए इस श्राद्ध कर्म से तृप्ति होती है । ग्रीष्म ऋतु में भी सोलह वर्ष की तृप्ति इस स्तोत्र के पठन करने से समुत्पन्न होती है ॥ ७९ ॥ श्राद्ध चाहे विकल भी किया गया हो किन्तु इस स्तोत्र से यदि वह साधित किया जावे तो हे रुचे ! वर्षा ऋतु में किये गये श्राद्ध से हम लोगों की तृप्ति अक्षय होती है ॥ ८० ॥ शरत् ऋतु में किये गये श्राद्ध के समय में इस स्तव के द्वारा हमारी पन्द्रह वर्ष के लिए तृप्ति होती है ॥८१॥ जिस घर मे यह लिखा हुआ स्तोत्र नित्य ही विद्यमान रहा करता है तो श्राद्ध के सन्निधान करने पर वह हमारे लिये ही हो जायगा ॥८२॥ इसलिये हे महा भाग ! तुमको श्राद्ध के समय में विप्रों के भोजन करने के अवसर पर उनके समक्ष में इस स्तोत्र को श्रवण करना चाहिए । इससे हमको परम पुष्टि होती है ॥८३॥

ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौ मनोरमा ।
प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्समीपे वराप्सरा। ॥८४
सा चोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम् ।
प्रसादयामास भूयः प्रम्लोचा च वराप्सराः ॥८५
अतीवरूपिणी कन्या मत्प्रसादाद्वराङ्गना ।
जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ॥८६
तां गृहाण मया दत्तां भार्य्यार्थे वरवर्णिनीम् ।
मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पत्स्यति ते सुतः ॥८७
तथेति तेन साप्युक्ता तस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ।
उद्दधार ततः कन्यां मानिनीं नाम नामतः ॥८८
नद्याश्च पुलिने तस्मिन्स मुनिर्मुनिसत्तमाः ।
जग्राह पाणिं विधिवत्समानीय महामुनिः ॥८९
यस्यां तस्य सुतो जज्ञे महावीर्य्यो महाद्युतिः ।
रुचे रौच्य इति ख्यातो यो मया पूर्वमीरितः ॥९०

श्री मार्कण्डेय महामुनि ने कहा—इसके अनन्तर उस नदी के मध्य भाग से परम सुन्दरी प्रम्लोचा नामवाली एक तन्वङ्गी उत्थित हुई जोकि एकबहुत ही श्रेष्ठ अप्सरा थी। वह उसके समीपमें आई और उस महान् आत्मा वाले रुचि से अत्यन्त मधुर अक्षरों में बोली तथा उस प्रम्लोचा अप्सरा ने उसको प्रसन्न कर दिया था ॥८४।८५॥ उसने कह कि वरुण के पुत्र पुष्कर के द्वारा मेरी कृपा से अतीव रूप वाली तथा परम श्रेष्ठ अङ्गों वाली कन्या उत्पन्नहुई है उसे मैं आपकी सेवा में समर्पित करती हूँ आप उसे अपनी भार्या के रूपमें वर वर्णिनीको ग्रहण कीजिए। उसमें महान् मति वाले मनु आपके पुत्र समुत्पन्न होंगे ॥८६।८७॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—ऐसा ही होगा—इस तरह से रुचि ने उसके कथन को स्वीकार कर लिया तो फिर उस जल से एक परम सुन्दरी मानिनी नामवाली कन्याको उससे निकाला था।८८।हे मुनिसत्तमो! उसी नदी के पुलिनमें उस मुनि ने उसे लाकर विधिपूर्वक उसका पाणिग्रहण किया था॥८९॥फिर उसमें उसका एक महान् वीर्य वाला तथा अत्यन्त द्युति

से सम्पन्न पुत्र हुआ था जोकि रुचि का पुत्र रौच्य-इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था जैसा कि हमने पहिले ही आपको बतला दिया है ॥६०॥

५१-हरिध्यान माहात्म्य

स्वायम्भुवाद्या मुनयो हरिं ध्यायन्ति कर्मणा ।
व्रताचारार्चनाध्यानस्तुतिजप्यपरायणाः ॥१
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ।
आकाशेन विहीनं वै तेजसा परिवर्जितम् ॥२
उदकेन विहीनं वै तद्धर्मपरिवर्जितम् ।
पृथिवीरहितञ्चैव सर्वभूतविवर्जितम् ॥३
भूताध्यक्षं तथा बुद्धं नियन्तारं प्रभुं विभुम् ।
चैतन्यरूपताख्यं सर्वाध्यक्षं निरंजनम् ॥४
मुक्तसङ्गं महेशानं सर्वदेवप्रपूजितम् ।
तेजोरूपमसत्त्वञ्च तपसा परिवर्जितम् ॥५
रहितं रजसा नित्यं व्यतिरिक्तं गुणैस्त्रिभिः ।
सर्वरूपविहीनं वै कर्तृत्वादिविवर्जितम् ॥६
वासनारहितं शुद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ।
पिपासावर्जितं तच्छोकमोहविवर्जितम् ॥७

सूतजी ने कहा – व्रत-आचार-अर्चना-ध्यान-स्तुति और जाप्य में तत्पर स्वायम्भुव आदि मुनिगण कर्म के द्वारा भगवान् श्री हरि का ध्यान करते हैं । वह हरि देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि-प्राण और अहंकार से वर्जित हैं । पृथ्वी से रहित हैं, आकास से हीन और तेज से विहीन हैं । जल से रहित और उसके धर्म से परिवर्जित हैं एव समस्त भूतों से रहित हैं ॥१।२।३॥ श्री हरि समस्त भूतों के अध्यक्ष-बुद्ध-नियन्ता-प्रभु-विभु-चैतन्य रूपता के रूप वाले—सबके अधिपति और निरञ्जन हैं ॥४॥ मुक्त सङ्ग वाले-महेशान और समस्त देवों के द्वारा प्रपूजित हैं । श्री हरि तेजो रूप वाले-असत्व और तप से परिवर्जित हैं ॥५॥ रजोगुण से रहित और तीनों गुणों से व्यतिरिक्त हैं । सब

प्रकार के रूपों से विहीन और हरि भगवान् कर्त्तृत्व आदि से विवर्जित हैं ।।६।। वे वासना से रहित हैं, शुद्ध हैं, सम्पूर्ण दोषों से विवर्जित-व्याप से रहित और तत्तत् शोक से वर्जित हैं ।।७।।

जरामरणहीनं वै कूटस्थं मोहवर्जितम् ।।
उत्पत्तिरहितञ्चैव प्रलयेन विवर्जितम् ।।८
सर्वाचारहीनं सत्य निष्कलं परमेश्वरम् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिवर्जितं नामवर्जितम् ।।९
अध्यक्षं जाग्रदादीनां शान्तरूपं सुरेश्वरम् ।
जाग्रदादिस्थितं नित्यं कार्य्यकारणवर्जितम् ।।१०
सर्वदृष्टं तथा मूर्त्तं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं परम् ।
ज्ञ नदृक्श्रोत्रविज्ञ नं परमानन्दरूपकम् ।।११
विश्वेन रहितं तद्वत्तैजसेन विवर्जितम् ।
प्राज्ञेन रहितञ्चैव तुरीयं परमाक्षरम् ।।१२
सर्वगोप्तृ सर्वहन्तृ सर्वभूतात्मरूपि च ।
बुद्धिधर्मविहीनं वै निराधारं शिवं हरिम् ।।१३

भगवान् हरि जरा (वृद्धावस्था) और मरण से रहित-कूटस्थ-मोह से वर्जित-उत्पत्ति से रहित और प्रलय से वर्जित हैं ।।८।। सम्पूर्ण आचारों से हीन सत्यस्वरूप-निष्कल परम ईश्वर नाम से हीन और जाग्रति, स्वप्न तथा सुषुप्ति की अवस्थाओं से वर्जित हैं अर्थात् जाग्रति आदि कोई भी अवस्था उनमें नहीं होती है ।। ९ ।। जाग्रद आदि के अध्यक्ष हैं-शान्त स्वरूप हैं और सुरों के ईश्वर हैं—जाग्रत आदि में स्थित-नित्य-कार्य और कारण से वर्जित हैं ।।१०।। भगवान् सर्व दृष्ट-मूर्त्त सूक्ष्म तथा परम सूक्ष्मतर हैं । ज्ञान – दृक् और श्रोत्र के विज्ञान वाले — परम आनन्द के स्वरूप से समन्वित हैं ।।११।। वे हरि विश्व से रहित और तैजस से विवर्जित-प्राज्ञ से रहित एवं तुरीय तथा परमाक्षर हैं ।।१२।। सबके गोप्ता-सभी के हन्ता और समस्त भूतों के आत्मरूपी बुद्धि, धर्म से विहीन-निराधार-शिव और हरि हैं ।।१३।।

विक्रियारहितश्चैव वेदान्तैर्वेद्यमेव च ।
वेदरूपं परं भूतमिन्द्रियेभ्यः परं शुभम् ॥१४
शब्देन वर्जितश्चैव रसेन च विवर्जितम् ।
स्पर्शेन रहितं देवं रूपमात्रविवर्जितम् ॥१५
रूपेण रहितश्चैव गन्धेन परिवर्जितम् ।
अनादि ब्रह्मरन्ध्रान्तमहं ब्रह्मास्मि केवलम् ॥१६
एवं ज्ञात्वा महादेव ध्यानं कुर्य्याज्जितेन्द्रियः।
ध्यानं यः कुरुते ह्येवं स भवेद् ब्रह्म मानवः ॥१७
इति ध्यानं समाख्यातमीश्वरस्य मया तव ।
अधुना कथयाम्यन्यत्कि तद् ब्रूहि वृषध्वज ॥१८

भगवान् समस्त प्रकार की विक्रियाओं से रहित हैं तथा वेदान्तोंके द्वारा जानने के योग्य हैं-हरि वेदों के स्वरूप वाले-पर भूत-इन्द्रियों की पहुंच से पर एवं शुभ स्वरूप वाले हैं। वे शब्द से—रस से—स्पर्श से रहित देव हैं। केवल रूप से रहित हैं ॥१४।१५॥ रूप—गन्ध से परिवर्जित हैं—अनादि हैं—ब्रह्म रन्ध्र के अन्त और अहं केवल ब्रह्म हूं-ऐसे स्वरूप वाले हैं ॥ १६ ॥ हे महादेव ! जितेन्द्रिय पुरुष को इस रीति से भगवान् श्री हरि का ज्ञान एवं ध्यान करना चाहिए। जो इस विधि से ध्यान किया जाता है वह मनुष्य ब्रह्म ही हो जाता है। मैंने यह ईश्वरका ध्यान करने का प्रकार सम्पूर्ण तुमको बतला दिया है। अब आगे यह बतलाओ हे वृषध्वज ! मैं आपको क्या बताऊँ ? ॥१७।१८॥

५२—विष्णुध्यान माहात्म्य

विष्णोर्ध्यानं पुनर्ब्रूहि शङ्खचक्रगदाधर ।
येन विज्ञानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥१
प्रवक्ष्यामि हरेर्ध्यानं मायातन्त्रविमर्दकम् ।
मूर्त्तामूर्त्तादिभेदेन तद्ध्यानं द्विविधं हर ॥२
अमूर्त्तं रुद्र कथितं हन्त मूर्त्तं ब्रवीम्यहम् ।
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशो जिष्णुर्भ्राजिष्णुरेकतः ॥३

कुन्दगोक्षीरधवलो हरिर्ध्येयो मुमुक्षुभिः ।
विशालेन सुसौम्येन शङ्खेन च समन्वितः ॥४
सहस्रादित्यतुल्येन ज्वालामालोग्ररूपिणा ।
चक्रेण चान्वितः शान्तो गदाहस्तः शुभाननः ॥५
किरीटेन महार्हेण रत्नप्रज्वलितेन च ।
सायुधः सर्वगो देवः सरोरूहधरस्तथा ॥६
वनमालाधरः शुभ्रः समांसो हेमभूषणः ।
सुवस्त्रः शुद्धदेहश्च सुकर्णः पद्मसंस्थितः ॥७

श्री रुद्र ने कहा–हे शङ्ख चक्र और गदा के धारण करने वाले ! आप भगवान् विष्णुके ध्यान करने की विधिपुनः बतलाइये जिनकेविज्ञान मात्र से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाया करताहै ॥१॥ श्रीहरिने कहा–अबमैं हरि के ध्यान को तुम्हें बतलाता हूँ जो ध्यान इस माया तन्त्रका विमर्दन करने वाला है । हे हर ! वह हरि का ध्यान मूर्त्त ध्यान एवं अमूर्त्त ध्यान इन भेदोंसे दो प्रकार का होता है ॥२॥ हेरुद्र ! अमूर्त्त ध्यान होता है वह तो मैंने अभी तुमको बतलाहीदिया है । अब मैं भगवान् हरिके मूर्त्त ध्यानको बतलाता हूँ । उसका श्रवण करो । करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश वाले–जिष्णु और हरि भ्राजिष्णु होतेहैं।३। कुन्दनके पुष्प और गायकेसमान दुग्ध के धवल वर्ण वाले हरिका ध्यान मुक्ति की इच्छा करने वालों को करना चाहिए । हरि का स्वरूप विशाल एवं परम सौम्य शङ्खसे समिन्वित है॥४॥ भगवान् हरि सहस्रों सूर्योंके तुल्य ज्वालाओंकी मालाओंसे उग्र रूप वाले चक्रसे समन्वित हैं । हरि का स्वरूप परमशान्त है । उनका आनन परम शुभ है और गदा हाथों में धारण किये हुए हैं ॥५॥ रत्नों की आभा से अतीव जाज्वल्यमान महान् कीमती किरीट से सुशोभित हैं भगवान् हरिका स्वरूप आयुधोंसे युक्तसर्वत्र गमनशील और कमलके धारणकरने वालाहै ॥६॥ वनमाला धारीशुभ्र समान अंसों से युक्त और सुवर्ण के भूषणों से शोभित श्रीहरि हैं । पद्मासन पर विराजमान परम सुन्दर वस्त्रोंको धारण किये हुए-शुद्ध देह वाले और सुन्दर कानों वाला श्रीहरि का स्वरूप है।७

हिरण्मयशरीरश्च चारुहारी शुभाङ्गदः ।
केयूरेण समायुक्तो वनमालासमन्वितः ॥८
श्रीवत्सकौस्तुभयुतो लक्ष्मीवन्द्येक्षणान्वितः ।
अणिमादिगुणैर्युक्तः सृष्टिसंहारकारकः ॥९
मुनिध्येयोऽसुरध्येयो देवध्येयोऽतिसुन्दरः ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तभूतजातहृदि स्थितः ॥१०
सनातनोऽव्ययो मेध्यः सर्वानुग्रहकृत्प्रभुः ।
नारायणो महादेवः स्फुरन्मकरकुण्डलः ॥११
सन्तापनाशनोऽभ्यर्च्यो मङ्गल्यो दुष्टनाशनः ।
सर्वात्मा सर्वरूपश्च सर्वगो ग्रहनाशनः ॥१२
चार्वङ्गुरीयसंयुक्तः सुदीप्तनख एव च ।
शरण्यः सुखकारी च सौम्यरूपो महेश्वरः ॥१३
सर्वालंकारसंयुक्तश्चारुचन्दनचर्चितः ।
सर्वदेवससमायुक्तः सर्वदेवप्रियंकरः ॥१४

श्री हरि का सम्पूर्ण शरीर हिरण्यमय है—सुन्दर हार के धारण करने वाले शुभ अङ्गदों के पहिनने वाले हैं। आप केयूर से समायुक्त और वनमाला से सुभूषित हैं ॥८॥ श्रीवत्स एवं कौस्तुभ मणि से युक्त हैं तथा महा लक्ष्मी के वन्दना करने के योग्य नेत्रों से समन्वित हैं अर्थात् लक्ष्मी के द्वारा दर्शनीय हैं। अणिमा महिमा आदि गुणों से युक्त तथा सृष्टि के संहार करने वाले हैं ॥९॥ भगवान् श्री हरि का मूर्त्त स्वरूप महा मुनियों के द्वारा ध्यान करने के योग्य है-असुरों के द्वारा भी ध्यान करने के योग्य हैं और देवों के द्वारा भी ध्येय है । भगवान का स्वरूप अतीव सुन्दर है और ब्रह्मा से आदि लेकर स्तवन पर्यन्त भूतमात्र के हृदय में विराजमान रहने वाले हैं ॥१०॥ वे सब पर अनुग्रह करने वाले प्रभु हैं—परम पवित्र एवं सनातन अर्थात् सदा सदर्वा से चले आये सनातन अव्यय है । नारायण महान् देव और दीप्तिमान मकर के तुल्य कुण्डलों वाले हैं॥११॥श्री हरि का मूर्त्तस्वरूप सन्तापोंका नाश करने वाला है अर्थात् उनके स्वरूप के ध्यान मात्र से ही सब प्रकार

करते हैं। अभ्यर्चना करने के योग्य हैं। परम मंगल प्रदान करने वाला तथा दुष्टों का नाश करने वाला उनका स्वरूप होता है। सबकी आत्मा अर्थात् सब में अन्तर्यामी रूप से विराजमान-सबमें गमनशील-सर्व स्वरूप और उनका मूर्त रूप ग्रहों को नष्ट करने वाला है ॥१२॥ भगवान् श्री हरि अपने हाथों की अँगुलियों में अतीव सुन्दर अँगूठियाँ धारण की हुई हैं—उनके नख सुदीप्ति से समन्वित हैं-शरणागति में प्राप्त होने वाले की रक्षा करने वाले-सुख करने वाले- सौम्य स्वरूप से युक्त और महान् ईश्वर हैं॥ १३ ॥ समस्त प्रकार के सुन्दर अलङ्कारों से भूषित-चारु चन्दन से चर्चित-सम्पूर्ण देवों से समायुक्त और सब देवों के प्रिय करने वाले हैं ॥१४॥

सर्वलोकहितैषी च सर्वेशः सर्वभावनः।
आदित्यमण्डले संस्थो ह्यग्निस्थो वारिसंस्थितः ॥१५
वासुदेवो जगद्धाता ध्येयो विष्णुर्मुमुक्षिभिः।
वासुदेवोऽहमस्मीति आत्मा ध्येयो हरिर्हरिः ॥१६
ध्यायन्त्येवञ्च ये बिष्णुं ते यान्ति परमां गतिम्।
याज्ञवल्क्यः पुरा ह्येवं ध्यात्वा विष्णुं सुरेश्वरम् ॥
धर्मोपदेशकर्त्तृत्वं संप्राप्यागात्परं पदम् ॥१७
तस्मात्त्वमपि देवेश विष्णुं चिन्तय शंकर।
विष्णुध्यानं पठेद्यस्तु प्राप्नोति परमां गतिम् ॥१८

सब लोकोंके हित सम्पादन करने वाले-सभीके स्वामी-सबके भावन (प्रिय)सूर्यमंडलमें संस्थित अग्निमें स्थित और जलमें विराजमानहैं॥१५॥ वासुदेव प्रभु सम्पूर्ण जगत् का ध्यान रखने वाले—सबके ध्यान करने के योग्य मुक्ति की चाहना करने वालों के विष्णु हैं। मैं ही वासुदेव हरि हूँ-इस प्रकार से हरि भगवान् का आत्मरूप से ध्यान करना चाहिये ॥१६॥ जो लोग इस उक्त स्वरूप वाले विष्णु भगवान् का इस रीति से ध्यान किया करते हैं वे परमोत्तम गति को प्राप्त होते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि ने पहिले इस प्रकार से सुरेश्वर विष्णु का ध्यान किया था, अतएव

धर्मों का उपदेश करके परम पद को प्राप्त हुए थे ।।१७।। हे देवेश ! इसलिए आप भी इसी विधि से विष्णु का ध्यान-चिन्तन करो । हे शंकर ! जो इस मेरे बताये हुए भगवान् विष्णु के ध्यान का पठन किया करता है वह भी परमोत्तम गति को प्राप्त कर लेता है ।१-।।

५३—वर्णधर्म कथन (१)

याज्ञवल्क्येन गौ पूर्वं धर्मः प्रोक्तः कथं हरे ।
तन्मे कथय केशिघ्न यथातत्त्वेन माधव ।।१
याज्ञवल्क्य नमस्कृत्य मिथिलायां समास्थितम् ।
अपृच्छनृषयो गत्वा वर्णधर्मानशेषतः ।
तेभ्यः स कथयामास विष्णुं ध्यात्वा जितेन्द्रियः ।।२
यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मं निवोधत ।
पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रार्थमिश्रिताः ।।३
वेदाः स्नानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः ।
वक्तारो धर्मशास्त्राणां मनुर्विष्णुर्यमोऽङ्गिराः ।।४
वसिष्ठदक्षसंवर्त्ताः शातातपपराशराः ।
आपस्तम्बोशनसौ व्यासः कात्यायनवृहस्पती ।।५
गौतमः शङ्खलिखितौ हारीतोऽत्रिर्ऋषिस्तथा ।
एते विष्णुसमाराध्या जाता धर्मोपदेशकाः ।।६
देशकाल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ।।७

श्री महेश्वर ने कहा—हे माधव ! हे केशी असुर के हनन करने वाले! याज्ञवल्क्य मुनि ने पहिले किस प्रकार से धर्म बतलाया था इसे ठीक-ठीक रीति से हमको बतलाने की कृपा करें । श्री हरि ने कहा—ऋषि वृन्दने मिथिला में विराजमान याज्ञवल्क्य मुनि को प्रणाम करके सम्पूर्ण वर्णों के धर्मों को उनसे पूछा था । उन ऋषियों से इन्द्रियों को जीत लेने वाले याज्ञवल्क्य मुनि ने भगवान् विष्णु का ध्यान करके कहा था ।।१।।२।। याज्ञवल्क्य महा मुनि ने कहा—जिस देश में कृष्ण वर्ण के मृग रहा करते हों उसी देश में धर्म की स्थिति होती है—ऐसा

समझना चाहिए । पुराण-न्याय मीमांसा अर्थ से मिश्रित धर्म-शास्त्र वेद समस्त चौदह विद्याओं और धर्म का स्थान होते हैं । इन धर्म शास्त्रोंके वक्ता मनु विष्णु-यम-अङ्गिरा-वसिष्ठ-दक्ष-शातातप-पराशर-आपस्तम्ब-उशना -व्यास-कात्यायन-वृहस्पति-गोतम-शङ्ख-लिखित-हारीत-अत्रि-ये ऋषिहैं अर्थात् इन सबकी निर्मित स्मृतियाँहैं। ये सबविष्णु के समान ही आराधना करने के योग्य धर्मों के उपदेश करने वाले हुए हैं ॥३।४।५।६॥ देशकाल-उपाय से एवं श्रद्धा से समन्वित द्रव्य जो पात्र में प्रदान किया जाता है वह सम्पूर्ण धर्म का लक्षण होता है ॥७॥

इष्टाचारो दमोऽहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च ।
अयञ्च परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ।८
चत्वारो वेदधर्मज्ञाः परास्त्रैविद्यमेव वा ।
स व्रते यत्स्वधर्मः स्याद्देवाराध्यात्मवित्तमः ॥९
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः ।
निषेकाद्या श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रिया ॥१०
गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात्पुरा ।
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवो जातकर्म च ॥११
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूड़ां कुर्य्याद्यथाकुलम् ॥१२
एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम् ।
तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहश्च समन्त्रकः ॥१३

अभीष्ट आचार का होना-दम-अहिंसा-दान-स्वाध्याय कर्म और योग द्वारा के आत्म दर्शनकरना यह ही परम धर्म है ।८। वेदोंके धर्मोंको जानने वाले चार होते हैं । दूसरे त्रैविद्यके ज्ञाता हैं देवोंका आराधनकरके आत्मा का ज्ञान प्राप्तकरने वाला सव्रतमें अपना धर्म होताहै ।९। ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रये चारवर्ण होते हैं किन्तु इनमें द्विज कहे जानेवाले तीन ही हुआ करते हैं । इनकी निषेक से आदि लेकर श्मशान के अन्त तक समस्त क्रियाऐं मन्त्रों सेही हुआ करती हैं ॥१०॥ ऋतुकालमें गर्भाधान संस्कार-

स्पन्दन से पूर्व पुन्सवन संस्कार छटवें या आठवें मास में सीमन्त संस्कार प्रसव और आत कर्म संस्कार ग्यारहवें दिन में नामकरण संस्कार– तथा जब शिशु चार मास का होजावे तो उसका वाहिर निष्क्रमण करना चाहिये। छटवें मास में अन्न प्राशन करे तथा चूड़ा कर्म संस्कार अपने कुल में समागत प्रथा के अनुसार ही जिस समय और जिस प्रकार से होता हो करना चाहिये। इस प्रकार से पापों का शमन हुआ करता है जोकि बीज और गर्भ से समुत्पन्न होता है। ये समस्त क्रियायें चुपचाप ही स्त्रियों के द्वारा हुआ करती है किन्तु विवाह संस्कार का कर्म मन्त्रों के द्वारा ही पूर्ण किया जाता है ॥ ११ से १३ ॥

५४ – वर्णधर्म कथन (२)

गर्भाष्टमाष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ॥१
उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम् ।
वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ॥२
दिवा सन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।
कुर्य्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥३
गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः ।
गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्य्यान्महाव्रतः ॥४
अन्तर्जानुः शुचौ देश उपविष्ट उदङ्मुखः ।
प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥५
कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूलान्यग्रं करस्य च ।
प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थाननुक्रमात् ॥६
त्रिःप्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखान्यद्भिश्च संस्पृशेत् ।
अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिः हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥७

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—गर्भ से आठवें वर्ष में अपना जन्म से आठवें वर्ष में ब्राह्मण का उपनयन संस्कार किया जाता है। क्षत्रियों का उपनयन ग्यारहवें वर्ष में करावे। वैश्यों का भी ऐसा ही संस्कार

करावे-ऐसा एकों का मतहै तथा कुछ का मत है कि वैश्योंमें कुल रीतिकी जो भी पद्धति हो उसी समय करावे ॥१॥ गुरु शिष्य का उपनयन करके फिर महा व्याहृतियों के सहित इस शिष्य को वेदों का अध्यापन करे और शौच तथा आचारों की शिक्षा भी देवे ॥२॥ दिन में और दोनों सन्ध्याओं के समयों में कानपर ब्रह्म सूत्र (जनेऊ) चढ़ाकर उत्तरकी ओर मुख करके मूत्र तथा पुरीष का त्याग करना चाहिए। और यदि रात्रि में मलमूत्रका उत्सर्ग करना हो तो दक्षिण की दिशा की ओर मुख करके करे ॥३॥ मलमत्र त्याग करके अपने शिश्न को पकड़े हुए उठे और महान् व्रत वाले पुरुष को मिट्टी से उद्धृत जल के द्वारा दुर्गन्ध लेप के नाश करने वाली शुद्धि करनी चाहिए।।४॥ अन्तर्जानु होकर पवित्र स्थल में बैठकर उत्तर दिशा की ओर मुख करके अथवा पूर्व की ओर मुख करके द्विज को ब्राह्म तीर्थ से नित्य उपस्पर्शन करना चाहिए ॥५॥ कनिष्ठिका-देशिनी-अंगुष्ठ मूल और कर (हाथ) का अग्र भाग ये क्रम से प्रजापति-पितृ-ब्रह्म और दैव तीर्थ होते हैं ॥६॥ फेन और बुलबुलों से रहित प्रकृति में स्थित रहने वाले जलों से उपस्पर्शन करना चाहिए। तीन बार जल आचमन करके और जलसे मुखों को दो बार उन्मार्जित करे ॥७॥

हृत्कण्ठतालुनाभिस्तु यथासांख्यं द्विजातयः।
शुध्येरन्स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः ॥८
स्नानं तद्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः।
सूर्य्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः ॥९
गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्।
प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिवारं प्राणसयमः ॥१०
प्राणायामस्य संशुद्धिस्त्र्यचा तद्दैवतेन तु।
जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारको दयात्। ११
सन्ध्यां प्राक्प्रातरेवं हि तिष्ठन्नासूर्य्यदर्शनात्।
अग्निकार्य्यं ततः कुर्य्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥१२
ततोऽभिवादयेद्वृद्धानसावहमिति ब्रुवन्।
गुरुञ्चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ॥१३

आहूतश्चा|प्यधीयीत सर्वञ्चास्मै निवेदयेत् ।
हितञ्चास्यापरान्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥१४

द्विजातियोंको हृदय-कण्ठ-तालु और नाभिकी संख्याके अनुसारशुद्धि करनी चाहिए । स्त्री और शूद्र को एकबारहीस्पर्श करके अन्ततः शुद्धिकरनी चाहिए ॥८॥ तद्दैवत मन्त्रोंके द्वारा स्नान-मार्जन-प्राण संयमऔर सूर्यका उप स्थान करे तथा प्रतिदिन गायत्री का जप करना चाहिए ।९। तद्दैवत तीन ऋचाओंसे प्राणायामकी भलीभाँति शुद्धि करे और तारों के उदय से पहिले तक सावित्रीका जप करता हुआ रहे । गायत्रीका जाप शिरके साथ व्याहृतियाँ पूर्वमें लगाकर प्रतिप्रणवसे संयुक्त तीन बार प्राणायाम करना चाहिए ॥१०।११॥ इस प्रकार से प्रातःकालमें सूर्यका दर्शन न हो इससेपूर्व ही संध्या कर्मकर लेवे । इसकेअनन्तर फिर दोनों सन्ध्याओंके अवसरमेंअग्नि कार्य करना चाहिए ॥१२॥ इस सम्पूर्ण कृत्य के करने के अनन्तरमैं अमुक नाम तथा गोत्र वाला हूं ऐसा उच्चारण करते हुए अपनेसे जो वृद्धहोंउनका अभिवादनकरे । फिर स्वाध्यायके लिए समाहित होकर अपने गुरुदेवकीउपासना करनी चाहिए ॥१३॥ और आहूत (बुलाया गया) भी अध्यन करे । गुरु की सेवा में सभी कुछ निवेदन कर देना चाहिए । गुरुका जो भी हितहो उसे मन वाणी-शरीर और कर्म के द्वारा ही सम्पादित करे ॥१४॥

दण्डाजिनोपवीतानि मेखलाञ्चैव धारयेत् ।
द्विजेषु चारयेद् भैक्ष्यमनिन्देष्वात्मवृत्तये ॥१५
आदिमध्यावसानेषु भवेच्छन्दोपलक्षितः :
ब्राह्मणः क्षत्रियविशां भैक्ष्यं चर्य्याद्यथाक्रमम् ॥१६
कृताग्निकार्य्यो भुञ्जीत विनीतो गुर्वनुज्ञया ।
आपोशाणं क्रियापूर्वं सत्कृत्वाऽन्नमकुत्सयन ॥१७
ब्रह्मचर्य्यास्थितोऽनेकमन्नमद्यादनापदि ।
ब्राह्मणः काममश्नीयात् श्राद्धे व्रतमपीड़यन् ॥१८
मधुमांसं तथा स्विन्नमित्यादि परिबर्जयेत् ।
स तु गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ॥१९

उपनीय ददात्येनमाचार्य्यः स प्रकीर्त्तितः ।
एकदेश उपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते ॥२०
एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी ।
प्रतिवेदं ब्रह्मचर्य्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा ॥२१
ग्रहणान्तिकमित्येके केशान्तश्चैव षोडशः ।
आषोडशाद् द्विविंशाच्च चतुर्विंशाच्च वत्सरात् ॥२२
ब्रह्मक्षत्रविशां काल उपनायनिकः परः ।
अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मविवर्जिताः ॥
सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः ॥२३

ब्रह्मचर्य दशा में स्थित होकर अध्ययन के समय में दण्ड-अजिन (मृग चर्म-छाला)-उपवीत और मेखला धारणकरे । आत्म वृत्ति के लिये अर्थात् शरीर पोषणके वास्ते द्विजोंके भिक्षा करे जोकि अनिन्दित अर्थात् प्रशस्तहों ॥१५॥ छन्दोपलक्षित ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्व यथाक्रम आदि-मध्यऔर अवसानमें भिक्षाचर्याकरें ॥१६॥ अग्नि-कार्य पूर्णकरके गुरुकी आज्ञा प्राप्त कर विनीत भावसे भोजनकरे । भोजनके पूर्व आपोशन किया करे अर्थात् आचमन करे और फिर अन्नका सत्कार करके उसकी ओर से कोई भी कुत्सा का भाव न रखतेहुए भोजन करना चाहिए ॥१७॥ ब्रह्मचर्यव्रतमेंसमास्थित होकर अनापत्ति कालमें अनेक अन्नका भोजन करे । श्राद्धमें ब्राह्मणव्रतको पीड़ित न करते हुए इच्छापूर्वक भोजन करे ॥१८॥ मधु-मांस तथा विवन्न इत्यादिकापरिवर्जन करना चाहिए । वहगुरुहै जोसमस्त क्रियाकरके इसको वेदका ज्ञान प्रदान करता है॥१९॥ जो उपनयन करके उपदेश दियाकरता है वह इसका आचार्यकहा गया है । जोएक देशकाही उपदेश करताहै वह उपाध्याय कहा जाता है और यज्ञ करने वाला ऋत्विक् कहा जायाकरताहै ॥२०॥ ये सब ही मान्य होतेहैं किन्तुपूर्व क्रमसे इनकीमान्यता अधिकऔर फिरन्यून हुआ करतीहै किन्तु माता इन सबसे विशेष मान्य होतीहै प्रत्येक वेदके अध्ययनके लिए बारह अथवा पाँच वर्ष हुआ करतेहैं ॥२१॥ कुछलोग ग्रहणान्तिक समय कहते हैं और केशान्त षोडश कहते हैं । सोलहसे लेकर

बाईस और चौबीस वर्ष तक ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्योंका उपनयन का परकाल है । इससे आगे ये सब पतित हो जाया करते हैं तथा समस्त धर्मों से हीन हो जाया करते हैं। जो सावित्री से पतित होते हैं वे व्रात्य हो जाते हैं और क्रतुके बिनाव्रात्य स्तोमसे मुक्ति नहीं होती है ।२२।२३।

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनम् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजातयः ॥२४
यज्ञानां तपसाञ्चैव शुभानाञ्चैव कर्मणाम् ।
वेद एवं द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥२५
मधुना पयसा चैव स देवांस्तर्पयेद् द्विजः ।
पितॄन्मधुघृताभ्याञ्च ऋचोऽधीते हि सोऽन्वहम् ॥२६
यजुः साम पठेत्तद्वदथर्वाङ्गिरसं द्विजः ।
सन्तर्पयेत् पितॄन्देवान्सोऽन्वहं हि घृतामृतैः ॥२७
वेदवाक्यं पुराणञ्च नावाशंसीश्च गाथिकाः ।
इतिहासांस्तथा वेदान्योऽधीते शक्तितोऽन्वहम् ।।२८
सन्तर्पयेत्पितॄन्देवान्मांसक्षीरौदनादिभिः ।
ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं सर्वकामफलैः शुभैः ।।२९
यं य क्रतुमधीते च तस्य तस्याप्नुयात्फलम् ।
भूमिदानस्य तपसः स्वाध्यायफलभाग द्विजः ॥३०
नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्य्यसन्निधौ ।
तदभावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ।।३१
अनेन विधिना देहं साधयेद्विजितेन्द्रियः ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेह जायते पुनः ॥३२

आरम्भ में माता के उदरसे जन्म ग्रहण किया करते हैं। दूसरा जन्म मौञ्जिबन्धन से हुआ करता है। इसीलिए ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य ये द्विजाति कहे जातेहैं क्योंकि इनका उपनयन होता है तथा द्विजाति होतेहैं यज्ञ-तपश्चर्या और अन्य शुभ कर्मों में द्विजातियों का वेद ही परम निःश्रेयस

करने वाला है ॥२४।२५॥ द्विज को मधु-पय से देवों का तर्पण करना चाहिए। घृत और मधु से उसे प्रतिदिन पितरों का सन्तर्पण करना चाहिए। वह अनुदिन ऋचाओं का अध्ययन करता है ॥२६॥ द्विज को यजुर्वेद और सामवेद पढ़ना चाहिए और इसी भांति अथर्वाङ्गिरस का भी अध्ययन करे। वह अनुदिन घृतामृत से पितरों और देवों का तर्पण करे ॥२७॥ वेदों के वाक्य - पुराण और नावाशंसी गाथाऐं — इतिहास तथा वेदों का अनुदिन भरसक जो अध्ययन करता है वह पितरों और देवों को क्षीर-ओदन आदि से सन्तृप्त किया करता है वे जब पूर्ण तया सन्तृप्त होते हैं तो फिर इसको भी शुभ कामनाओं के फलों से सन्तुष्ट किया करते हैं ॥२८।२६॥ जिस-जिस क्रतु का यह अध्ययन करता है उसी-उसी क्रतु के करने का फल इसे प्राप्त हुआ करता है। स्वाध्याय के फल का सेवन करने वाला द्विज भूमिदान और तप के फल को प्राप्त किया करता है ॥३०॥ नैष्ठिक ब्रह्मचारी को अपने आचार्य की सन्निधि में ही वास करना चाहिए। अभाव में शिष्य का आचार्य-भाव आचार्य के पुत्र-पत्नी और वैश्वानर में भी होना चाहिए। इस विधि से विजित इन्द्रियों वालों को देह का साधन करना चाहिए वह फिर ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है और इस भूमण्डल में दूसरा जन्म ग्रहण नहीं करता है। अर्थात् उसका आवागमन के बन्धन से छुटकारा ही हो जाया करता है। ॥३१।३२॥

५५—गृहस्थ धर्म निर्णय

शृण्वन्तु मुनयो धर्मान्गृहस्थस्य यतव्रताः।
गुरवे च धनं दत्त्वा स्नात्वा च तदनुज्ञया ॥१
समापितब्रह्मचर्य्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥२
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्।
पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥३
द्विपञ्चनवविख्यातात् श्रोत्रियाणां महाकुलात्।
सवर्णः श्रोत्रियो विद्वान्वरो दोषान्वितो न च ॥४

यदुच्यते द्विजातीनां शूद्रादारोपसंग्रहः ।
न तन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयम् ॥५
तिस्रो वर्णानुपूर्वेण द्वे तथैका यथाक्रमम् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशाद्भार्या वा शूद्रजन्मनः ॥६
ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता ।
तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥७

याज्ञवल्क्य महर्षि ने कहा—हे मुनि गणो ! अब आप लोग यत व्रत वाले होकर मुझसे गृहस्थ के धर्मों का श्रवण करो । वेदों का साङ्ग सम्पूर्ण अध्ययन समाप्त कर फिर ब्रह्मचारी को गुरु को धन (दक्षिणा-भेंट) देना चाहिए और गुरु की आज्ञा से स्नान करके ब्रह्मचर्य आश्रम को समाप्त कर देवे तथा फिर परम सुलक्षणा स्त्री के साथ विवाह करे । वह कान्ता ऐसी होनी चाहिए कि जिसके पूर्व अन्य कोई न हो - असपिण्ड हो अर्थात् अपने गोत्र वाली न हो और उम्र में छोटी होवे ॥१॥ ॥ ॥ स्त्री जिसके साथ विवाह करे वह रोगों से रहित हो—भाइयों वाली हो और असमान ऋषि गोत्र में समुत्पन्न होने वाली हो । माता और पिता से पाँच या सात पीढ़ी से ऊपर की ही होवे । क्योंकि सात पीढ़ी तक ही सपिण्ड माना जाता है ॥ ३ ॥ दो-पाँच और नौ से विख्यात श्रोत्रियों के महा कुल से सवर्ण श्रोत्रिय विद्वान् वर दोषान्वित नहीं होता है ॥४॥ द्विजातियों का शूद्र से जो आरोप संग्रह कहा जाता है वह हमको सम्मत नहीं है क्योंकि वहाँ तो यह स्वयं ही समुत्पन्न होता है ॥ ५ ॥ वर्णानु पूर्वी से तीन दो तथा एक ब्राह्मण—क्षत्रिय और वैश्य से भार्या है अथवा शूद्र जन्मा से है ॥ ६ ॥ वह ब्रह्म विवाह है जिसमें आह्वान करके अपनी शक्ति के अनुसार आभरणों से अलंकृत करके कन्या का दान किया जाता है । ऐसी कन्या से विवाह होने पर जो भी पुत्र उत्पन्न होगा वह दोनों कुलों (मातृ एवं पितृ) के इक्कीस पूर्वज पितरों को पवित्र कर देता है ॥७॥

यज्ञस्थायर्त्विजे दैवमादायार्षस्तु गोयुगम् ।
चतुर्दशप्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट ॥८

इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने ।
सकायः पावयेत्ताज्जं षडवैश्यानात्मना सह ॥९
आसुरो द्रविणादानाद् गान्धर्वः समयान्मिथः ।
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥१०
चत्वारो ब्राह्मणस्याद्यास्तथा गान्धर्वराक्षसौ ।
राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः ॥११
पाणिग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीत क्षत्रिया शरम् ।
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने चाग्रजन्मनः ॥१२
पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ।
कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥१३
अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्या मृतावृतौ ।
एषामभावे दातृणां कन्या कुर्य्यात्स्वयंवरम् ॥१४

आर्ष विवाह वह है जिसमें गो युग को लेकर कन्या दी जाती है। यज्ञ में स्थित ऋत्विज के लिए जहाँ कन्या का दान होता है वह दैव विवाह कहलाता है। दैव विवाह से समुत्पन्न बालक चौदह पुरुषों को और आर्ष विवाह से उत्पन्न सुत छै पुरुषों को पुनीत करता है ॥८॥ धर्म का आचरण करो—यह कहकर जो किसी अर्थी को कन्या दी जातीहै उस विवाहित स्त्रीसे उत्पन्न होने वाला अपने साथ छै वंश में हुए पुरुषों को पवित्र किया करता है ॥९॥ धन देकर जो विवाह किया जाताहै वह आसुर विवाह होता है। आपसमें ही वचन बद्ध होकर जो स्त्री पुरुष विवाह कर लेते हैं वह गान्धर्व विवाह होताहै युद्धमें जीत कर जो कन्या का हरण किया जाता है और उसे पत्नी बना लेते हैं वह राक्षस विवाह होता है। छल से कन्या को लाकर विवाह कर लेना पैशाच विवाह कहा जाता है॥१०।११॥आदि के चार विवाह ब्राह्मण के लिए बताये गये हैं। गान्धर्व और राक्षस ये दो विवाह क्षत्रिय के होते हैं। आसुर विवाह वैश्य का और पैशाशिक विवाह शूद्र का है जोकि बहुत निन्दित होता है॥१२॥ सवर्णा स्त्रियों का पाणि (हाथ) का ग्रहण करना चाहिए। क्षत्रिया शर का ग्रहण करे तथा वैश्या प्रतोद का ग्रहण करे और अग्र जन्मा के वेदन

ग्रहण करे। पिता—पितामह-भ्राता—सकुल्य तथा माता ये सब कन्या के प्रदान करने के समुचित अधिकारी होते हैं किन्तु इनमें सबसे प्रमुख पूर्वोक्त होता है उसके नाश होने पर पर-पद प्रकृतिस्थ हुआ करता है। यथा पिता न हो तो बाबा और बाबा भी न रहे तो भाई आदि॥१३॥कन्या ऋतु-मती हो जाने पर भी उसका प्रदान किसी वर को नहीं किया जावे तो प्रत्येक ऋतु काल में भ्रूण हत्या का महा पाप होता है। यदि उपर्युक्त कन्याके देने वालों में कोई भी न रहे तो कन्या स्वयं वर करे अर्थात् किसी श्रेष्ठ समुचित वर को स्वयं ही ग्रहण कर लेवे॥१४॥

सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक्।
अदुष्टां हि त्यजन्दण्डचः सुदुष्टां तु परित्यजेत्॥१५
अपुत्रीं गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया।
सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्तो ऋतावियात्॥१६
आगर्भसम्भवं गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत्।
अनेन विधिना जातः क्षेत्रपस्य भवेत्सुतः॥१७
कृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपसेविनीम्।
परिभूतामधःशय्यां वासयेद् व्यभिचारिणीम्॥१८
सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वश्च शुभां गिरम्।
पावकः सर्वदा मेध्यो मेध्यो वै योषितो ह्यतः॥१९
व्यभिचाराहृतेऽशुद्धे गर्भत्यागं करोति च।
गर्भभर्तृवधे तासां तथा महति पातके॥२०
सुरापी व्याधिता द्वेष्ट्री विहर्त्तव्या प्रियंवदा।
भर्त्तव्या चान्यथा ह्येन ऋषयो हि भवेन्महत्॥२१

कन्या का दान एक बार ही किया जाता है। उसका हरण करने वाला चौर को प्राप्त होने वाले दण्ड को भोगने वाला होता है। जो अदुष्टा और सब प्रकार के दोषों से रहित हो ऐसी कन्या को ग्रहण करके भी त्याग देता है वह दण्ड देने के योग्य होता है किन्तु वह दुष्टा हो तो उसे त्याग देना चाहिए॥१५॥

जिसके कोई भी पुत्र न होता हो या हुआ ही न हो उसका गुरु वर्ग की आज्ञा पाकर देवर सगोत्र या कोईभी सपिण्ड व्यक्ति घृतसे अभ्यक्त होकर केवल पुत्र की कामना से ऋतु समय में गमन करे ॥१६॥ जब तक उसको गर्भ धारण न हो तब तक ही उसका गमन करे। अन्यथा गमन करने में तो पतित हो जायगा। इस प्रकार से समुत्पन्न पुत्र क्षेत्रप का होता है॥१७॥अधिकार करने वाली-मलिन-पिण्डमात्रके उपसेवन करने वाली-परिभूत और व्यभिचारिणी स्त्री की अधःशय्या कर देनी चाहिए॥१८॥ उन स्त्रियों को सोम ने शुद्धि दी है और गन्धर्वने शुभवाणी प्रदान की है। पावक सर्वदा मेध्य होताहै इसलिए योषित का भी मेध्य होता है ॥१९॥ व्यभिचार के बिना जो स्त्री अशुद्धि से गर्भ का त्याग कर देती है। उनके गर्भ भर्त्ता के वध में तथा महान् पातकमें-सुरापी–व्याधित–द्वेष्ट्री–प्रियम्बदा विहरण करने के योग्य है। अन्यथा इसका भरण करना चाहिए। नहीं तो वह ऋषिगण कहते हैं कि महान् पाप होता है ॥२०।२१॥

यत्राविरोधी दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्द्धते ।
मृते जीवति या पत्यौ या नान्यमुपगच्छति ॥२२
सेह कीर्त्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह ।
शुद्धां त्यजस्तृतीयांशं दद्यादाभरणं स्त्रियाः ॥२३
स्त्रीभिर्भर्त्तृ वचः कार्य्यमेष धर्मः परः स्त्रियाः ।
षोडशर्त्तु निशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत् ॥२४
ब्रह्मचारी च पर्वण्याद्याश्चतस्रस्तु वर्जयेत् ।
एवं गच्छन्स्त्रियं कामान्मघां मूलञ्च वर्जयेत् ॥२५
लक्षण्यं जनयेदेवं पुत्रं रोगविवर्जितम् ।
यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां स्मरमनुस्मरन् ॥२६
स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतस्ततः ।
भर्त्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः ॥२७
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ॥२८

जहाँ पर दम्पति का अर्थात् स्त्री–पुरुष दोनों का कोई विरोध न हो वहाँ पर त्रिवर्ग की वृद्धि होती है। जो पति के मृत हो जाने पर या उसके जीवित रहने पर अन्य पुरुष का उपगमन नहीं करती है वह स्त्री इस लोक में कीर्त्ति प्राप्त करने की भागिनी होती है और अन्त में उमा देवी के साथ मोह प्राप्त किया करतीहै। यदि पूर्णतः परिशुद्धा अर्थात् किसी भी दोष से जोयुक्त न हो ऐसी स्त्री का त्याग करे तो स्त्री के आभरणों का तृतीय भाग उसे दे देना चाहिए।।२२।२३।।स्त्रियों को अपने स्वामी के वचनों का पूर्णतया पालन करना चाहिए। यही स्त्री का परम धर्महै स्त्री जब ऋतुमती हो तो ऋतुकाल से सोलह रात्रियोंमें जो युग्म रात्रि हों उनमें उसका गमन करे।२४।ब्रह्मचारी को पर्व में और पहिली जो ऋतुकाल की चार रात्रियाँ हैं उन्हें त्याग देना चाहिए। मघा और मूल नक्षत्र हों तो उसको भी वर्जितकर देवे। इस प्रकार से स्त्री का गमन करे तो कामना की प्राप्ति होती है ।।२५।। इस विधि से स्त्री का गमन करने पर वह स्त्री शुभ लक्षणों से समन्वित और रोगोंसे रहित पुत्र को उत्पन्न किया करती है। अथवा जभी काम उत्तेजित हो और स्त्रियों का सत् भी अनुस्मृत हो जावे तो गमन करे ।।२६।। अपनी स्त्री में निरत रहे। स्त्रियाँ स्वामी - भाई—पिता–ज्ञाति–सास–श्वसुर और देवर के द्वारा सदा रक्षा करने के योग्य होती हैं।।२७।। बन्धुओं के द्वारा भूषण–आच्छादन और भोजन के माध्यम से स्त्रियाँ पूज्य हुआ करती हैं किन्तु स्त्रियों को भी संयतो-पस्कर वाली —दक्ष–हृष्ट और व्यय के पराङ्मुख होना चाहिए ।।२८।।

श्वश्रूश्वशुरयोः कुर्यात्पादयोर्वन्दनं सदा।
क्रीड़ाशरीरसंस्कारसमाजोत्सवदर्शनम् ।।२९
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्त्तृका।
रक्षेत्कन्यां पिता बाल्ये यौवने पतिरेव ताम् ॥३०
वार्द्धक्ये रक्षते पुत्रो ह्यन्यथा ज्ञातयस्तथा।
पतिं विना न तिष्ठेत दिवा वा यदि वा निशि ॥३१
ज्येष्ठां धर्मविधौ कुर्यान्न कनिष्ठां कदाचन।
दाहयेदग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः ॥३२

आहारेद्विधिवद्दारानग्निश्चैवाविलम्बितः।
हिता भर्त्तुर्दिवं गच्छेदिह कीर्त्तीरवाप्य च ॥३३

स्त्रियों को अपने सास–श्वशुर की चरणों की वन्दना सदा करनी चाहिए। जो प्रोषित भर्त्तृका स्त्री हो अर्थात् जिसका पति परदेश निवासी हो उसे कोई भी क्रीड़ा—शारीरिक संस्कार अर्थात् शरीर को वेश-भूषा से सुसज्जित करना–समाज में सम्मिलित होना—उत्सवों का देखना—हास्य करना–दूसरों के घर पर जाना आदि का त्याग कर देना चाहिए। कन्या की रक्षा बचपन में पिता और यौवन में उसकी सुरक्षा पति को करनी चाहिए ॥२९।३०॥ वार्द्धक्य की अवस्था में उसकी रक्षा पुत्र को करनी चाहिए। पुत्र न हो तो ज्ञाति के लोग उसकी रक्षा करें। पति के बिना स्त्री को कहीं भी दिन या रात्रि में नहीं रहना चाहिए ॥ ३१ ॥ सर्वदा जो ज्येष्ठा स्त्री हो उसी को धार्मिक विधि से साथ में नियुक्त करे और कनिष्ठा को कभी न करे। पातिव्रत वाली अर्थात् सच्चरित्रा स्त्री का दाह अग्निहोत्र के द्वारा करे ॥ ३२ ॥ विधिवत् विलम्ब न करके दाराओं और अग्निका आहरण करे भर्त्ता की हिता स्त्री यहाँ यश पाकर दिवलोक में जाती है ॥३३॥

५६–द्रव्य शुद्धि

द्रव्यशुद्धिं प्रवक्ष्यामि तां निबोधत सत्तमाः।
सौवर्णराजताब्जानां शङ्खरज्ज्वादिचर्मणाम् ॥
पात्राणाञ्चासनानाञ्च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥१
उष्णाद्भिः स्त्रुवस्त्रुवयोर्धान्यानां प्रोक्षणेन च।
तक्षणाद् दारुश्रृङ्गादेर्यज्ञपात्रस्य मार्जनात् ॥२
सोष्णैरुदकगोमूत्रैः शुद्ध्यत्याविककौषिकम्।
भक्ष्यं योषिन्मुख पश्यन्पुनः पाकान्महीमयम् ॥३
गोघ्रातेऽन्ने तथा केशमक्षिकाकीटदूषिते।
भस्मक्षेपाद्विशुद्धिः स्याद् भूशुद्धिमार्जनादिना ॥४

त्रपुसीसकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः ।
भस्मादिभर्लोहकांस्यानामज्ञातञ्च सदा शुचि ॥५

महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने कहा–हे सत्तमो ! अब मैं द्रव्यों की शुद्धि के विषय में कहता हूँ उसे आप लोग भली भाँति समझ लो । सुवर्ण-रजत-अब्ज शङ्ख–रज्जु आदि तथा चर्म के पात्र एवं आसनों की शुद्धि केवल जल से ही हो जाया करती है ।।१।। स्रुक् और स्रुवा की शुद्धि उष्ण जल से होती है । धान्योंकी शुद्धि केवल जलसे प्रोक्षण करने पर हो जाया करती है । काष्ठ और सींग के पदार्थोंकी शुद्धि तक्षण करने से होती है और यज्ञ के पात्रोंकी शुद्धता मार्जन से हुआ करती है ।।२।। गोघ्रात अन्न में तथा केश,मक्षिका और कीटों से दूषितमें भस्मके क्षेप करने से शुद्धि होतीहै । भूमिकी शुद्धता केवल मार्जन तथा लेपन–प्रक्षालन आदि से होती है । आविक और कौषिक पदार्थ उष्ण जल एवं गोमूत्रसे शुद्ध होतेहैं । भैक्ष्य और स्त्री का मुख देखकर ही शुद्ध होता है । जो महीमय पदार्थ है उसकी पुनः पाक करने से शुद्धि होती है ।।३।। ।।४।। त्रपु सीसा और ताम्र के पात्रों की शुद्धता क्षार–अम्ल (खटाई) और जल से हुआ करती है । लौह के पात्रों की तथा कांसे के पात्रों की शुद्धि भस्म तथा जल से होती है । जो अज्ञात पदार्थ या पात्र है वह तो सदा ही शुचि होता है ॥५।।

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धलेपापकर्षणात् ।
शुचि गोतृप्तिदं तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ।।६
तथा मांसं श्वचण्डालक्रव्यादादिनिपातितम् ।
रश्मिरग्निरजच्छाया गौश्चैव वसुधानि च ॥७
अश्वाजविप्रुषो मेध्यास्तथा च मलबिन्दवः ।
स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्याप्रसर्पणे ।।८
आचान्तः पुनराचामेद्वासोऽन्यत्परिधाय च ।
क्षुते निष्ठीवने स्वापे परिधानेऽश्रुपातने ।।९
पञ्चस्वेतेषु नाचामेद् दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ।
तिष्ठन्त्यग्न्यादयो देवा विप्रकर्णे तु दक्षिणे ।।१०

अमेध्य (अपवित्र) और अक्त अर्थात् तैलादि से युक्त पात्र एवं पदार्थ की शुद्धि मिट्टी एवं जल से करे जब तक कि उस पर जो गन्ध तथा लेपन है वह न छूट जावे। जो एक गौ की तृषा शान्त करदे उतना जल शुद्ध होता है और जो जल स्वाभाविक रूप से भूमिगत होता है वह भी शुद्ध होता है ॥६॥ कुत्ता-चण्डाल और क्रव्याद आदि के द्वारा निपातित मांस, रश्मि, अग्नि-रज की छाया—गौ वसुधा—घोड़ा और बकरी के मुख की बूँदें एवं मल की बूँद सदा मेध्य होती हैं। स्नान करके-पान करके—छींक लेकर-सोकर-खाकर और गली में चल-फिर कर आचान्त होकर भी पुनः आचमन करना चाहिए अन्य वस्त्र का परिधान करके—क्षुत और निष्ठीवन करने पर-स्वाप में—परिधान में तथा अश्रुपातन में इन पाँच कर्मों में आचमन न करे केवल दक्षिण श्रवण का स्पर्श कर लेवे। ब्राह्मण के दक्षिण कर्ण में अग्नि आदि देवगण सर्वदा निवास किया करते हैं। अतएव उसके स्पर्श मात्र से ही शुद्धि का विधान बताया गया है ॥७।८।९।१०॥

५७—श्राद्धविधि

अथ श्राद्धविधिं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम्।
अमावस्याष्टकावृद्धिकृष्णपक्षायनद्वयम् ॥१
द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्य्यसंक्रमः।
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्य्ययोः।
श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालः प्रकीर्त्तितः ॥२
अग्र्यो यः सर्वदेवेषु श्रोत्रियो वेदविद्युवा।
तिथिज्ञाने च कुशलः त्रिमधुस्त्रिसर्वणिकः ॥३
स्वस्त्रीयऋत्विग्जामाताच य्यंश्वशुरमातुलाः।
त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसम्बन्धिबान्धवाः ॥४
कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः।
पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धदेवताः ॥५
रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पौनर्भवस्तथा।
अवकीर्णादयो ये च ये चाचारविवर्जिताः ॥६

अवैष्णवाश्च ये सव श्राद्धार्हा न कदाचन ।
निमन्त्रयेच्च पूर्वेद्युर्द्विजैर्भाव्यं च संयतैः ॥७

श्री याज्ञवल्क्य ऋषि ने कहा—अब मैं श्राद्ध की उस विधि को तुम को बतलाता हूँ जो कि समस्त प्रकार के पापों का नाश करने वाली होती है । अमावस्या-अष्टका वृद्धि—कृष्ण पक्ष-अयन द्वय-द्रव्य—ब्राह्मण सम्पत्ति—विषुवत् में सूर्य का संक्रमण—व्यतीपात-गजच्छाया तथा सूर्य एवं चन्द्र का ग्रहण और श्राद्ध करने के प्रति रुचि का होना ये श्राद्ध के उत्ताम काल बताये गये हैं ॥१।२॥ समस्त देवों में वह अग्र होता है जो श्रोत्रिय और वेदों का विद्वान् युवा हो । तिथि के ज्ञान में कुशल—त्रिमधु-त्रिसर्वाणिक-स्वस्रीय (भानजा) ऋत्विक्-जामाता-आर्य-श्वशुर-मातुल—त्रिणाचिकेत-दौहित्र (धेवता)—शिष्य-सम्बन्धी और बान्धव—कुछ कर्मनिष्ठ ब्रह्मचारी द्विज जो पञ्चाग्नि करने वाले हों तथा पितृ परायण और मातृ परायण हों ये सब ब्राह्मण श्राद्ध देबता होते हैं ॥३॥४॥५॥ जो रोगी हो हीनाङ्ग या अतिरिक्ताङ्ग हो—काना-पौनभव और अव-कीर्ण आदि जो हों वे सब आचार से वर्जित होते हैं । ६॥ जो विप्र विष्णु के भक्त न हों वे सभी कभी भी श्राद्ध के योग्य नहीं हुआ करते हैं श्राद्ध जिस दिन करना हो उसके पहिले दिन में ही ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे देना चाहिए जैसे ही श्राद्ध का निमन्त्रण प्राप्त हो वैसे ही विप्रों को भी संयत होकर रहना चाहिए ॥७॥

आचान्ताश्चैव पूर्वाह्णे ह्यासनेषूपवेशयेत् ।
युग्मान्दैवे तथा पित्र्ये स्वप्रदेशेऽव्वशक्तितः ॥८
द्वौ दैवे प्रागुदक्पित्र्ये त्रीण्येकश्चोभयोः पृथक् ।
मातामहानामप्येवं मन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ॥९
हस्तप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थे कुशानपि ।
आवाह्य तदनुज्ञातो विश्वेदेवा महानृचा ॥१०
यवैरन्नं विकीर्याथ भाजने सपवित्रके ।
शन्नोदेव्या पयः क्षिप्त्वा यवोऽसि ति यवांस्तथा ॥११

या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वेव विनिक्षिपेत् ।
गन्धं तथोदकञ्चैव धूपादींश्च पवित्रकम् ॥१२
अपसव्य ततः कृत्वा पितृणामप्रदक्षिणम् ।
द्विगुणांस्तु कुशान्दत्वा उशन्तस्त्वेत्यृचा पितृन् ॥१३
आवाह्य तदनुज्ञ तर्जपेदायान्तु नस्ततः ।
यवार्थस्तु तिलैः कार्यः कुर्य्यादर्घ्यादि पूर्ववत् ॥१४

श्राद्ध के दिन पूर्वाह्न में आचान्त होते हुए उन्हें आसनों पर उपविष्ट कराना चाहिए। उनसे प्रार्थना करे कि आपको दैव-पित्र्य कर्मके लिये आमन्त्रित किया है। अपने प्रदेशों में प्राप्त कराने की शक्ति नहीं है।।८।। दो को पूर्व में दैव कर्म के लिये–उत्तार दिशा में पित्र्य कर्म के लिये तीन को–इस तरह दोनों को पृथक् रक्खे। इसी रीति से माता महादिक के लिये भी करे। अथवा वैश्वदेविक मन्त्रका प्रयोग करे।।६।।फिर इसके अनन्तर हस्त-प्रक्षालन देकर विष्टरके लिये कुशाओंको देवे। फिर उनके द्वारा अनुज्ञा प्राप्तकर महान् ऋचा से विश्वेदेवाओं का आवाहन करे।।१०।।यवों के द्वारा पवित्रीके सहित पात्रमें अन्न का विकरण करे। "शन्नो देवी"- इस मन्त्र से पय का क्षेपणकर "यवोऽसीति" मन्त्र से यवों का विकरण करे। "या दिव्या"–इस मन्त्र के द्वारा उनके हाथों में ही गन्ध–उदक–धूप और पविप्रक आदि को विनिक्षिप्त करना चाहिए ।।११।१२।।इसके अनन्तर अपसव्य होकर पितरोंके अप्रदक्षिण में द्विगुण कुशाओं के देकर 'उशन्तस्त्वा'–इस मन्त्रसे पितृगण का आवाहन करे। फिर उनसे अनुज्ञात होकर 'आयान्तु नस्तत'–इस मन्त्र का जाप करे यवार्थ तिलों के द्वारा करना चाहिए। फिर पूर्व की भाँति अर्घ्य आदि करे ।।१३।।१४।।

दत्त्वार्घ्यं संश्रवं ह्येषां पात्रे कृत्वा विधानतः ।
पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः ॥१५
अग्नौ करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ।
सव्याहृतिश्च गायत्रीं मधुवातेत्यृचस्तथा ॥१६

जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः ।
अन्नमिष्टं हविष्यञ्च दद्यादक्रोधनो नरः ॥१७

अतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपं तथा ।
अन्नमादाय तृप्ता स्थ शेषञ्चैवान्नमन्वहम् ॥१८

तदन्नं विकिरेद् भूमौ दद्याच्चापि सकृ सकृत् ।
सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः ॥१६
उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान्प्रदद्यात्पितृयज्ञवत् ।
मातामहानामप्येवं दद्याच्चाचमनं ततः ॥२०
स्वस्ति वाच्यस्ततो दद्यादक्षय्योदकमेव च ।
दत्वा च दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् ॥२१

अर्घ्य निवेदित करके इनका संश्रव विधान से पात्र में करे । 'पितृभ्यः स्थानमसि'' — इस मन्त्र से उस न्युब्ज पात्रको अधः करे ॥१५॥ 'अग्नौ करिष्ये''–इससे धृत प्लुत अन्न को लेकर पूछे और व्याहृतियों के सहित गायत्री का तथा ''मधु वात''–इस ऋचा का जाप करके उनसे कहे आप सुख पूर्वक भोजनकरें । उन श्राद्धमें भोजन करने वाले विप्रों को भी मौन होकर भोजन करना आरम्भ करना चाहिए । श्राद्धकर्त्ता मानव को विना किसी प्रकार का क्रोध किये हुए उन ब्राह्मणोंको इष्ट अन्न और हविष्य समर्पितकरना चाहिए ॥१६।१७॥ जब तक उन ब्राह्मणोंकी तृप्तिहो तब तक उन्हें खूब अच्छी तरह तृप्ति पूर्वक भोजन करावे और पवित्र मन्त्रोंका जाप करता रहे । जब वे यह कहदें कि हम खूब तृप्त होगये हैं उन्हें एक एक बार देवे और शेष अन्नको लेकर भूमिमें विकीर्ण कर देवे । फिर सम्पूर्ण अन्न को तिलों सहित लेकर दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके पितृयज्ञ की भाँति उस उच्छिष्ट के समीपमें ही पिंड देवे । इसी रीतिसे मातामह आदि केलिये भी देवे । इस प्रकार से यह सम्पूर्ण कृत्य करके फिर उन्हें आचमन समर्पित करना चाहिए ॥१८।१९।२०॥ स्वस्ति कहकर फिर अक्षय उदक देवे । इसके पश्चात् दक्षिणा देकर जोभी अपनी शक्ति से हो इसके पश्चात् स्वधाकार का उच्चारण करे ॥२१॥

वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यश्च स्वधोच्यताम् ।
विप्रैरस्तु स्वधेत्युक्तो भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् ॥२२
प्रीयन्तामिति चोहैवं विश्वेदेवा जलं ददत् ।
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ॥२३
श्रद्धा च नो माव्यगमद्वहु देयञ्च नोऽस्त्विति ।
इत्युक्तोऽपि प्रियं वाचं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥२४
वाजे वाजे इति प्रीत्या पितृपूर्वं विसर्जनम् ।
यस्मिंस्ते संश्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निपातिताः ॥
पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् ॥२५
प्रदक्षिणमनुस्तुत्य भुञ्जीत पितृशेषितम् ।
ब्रह्मचारी भवेत्तत्र रजनीं भार्यया सह ॥२६
एवं सदक्षिणं कुर्याद्वृद्धौ नान्दीमुखानपि ।
यजेत्तदधिकर्कन्धुमिश्राः पिण्डा यवैः श्रिताः ॥२७
एकोद्दिष्टं दैवहीनं एकान्नैकपवित्रकम् ।
आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥२८
उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रान्विसर्जयेत् ।
अभिरम्यतां प्रब्रूयात्प्रोचुस्तेभिरताः स्वहः ॥२९
गन्धोदकतिलैर्मिश्रं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥३०
ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥३१

स्वधा का वाचन करो—इस प्रकार से उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर पितृगण के लिये स्वधा का वाचन करना चाहिए। विप्रों के द्वारा 'स्वधा होवे'—ऐसा कहने पर उस जल को भूमि पर सिञ्चित कर देवे ॥२२॥ जल देता हुआ विश्वेदेवा प्रसन्न होवें-यह बोले। हमारे दाता-वेद-ख्याति बढ़ें। हमारी श्रद्धा का लोप न होवे और हमको देव होवे-इस प्रकारसे प्रिय वचन कहकर उनको प्रणिपात करके फिर विसर्जित करे। "वाजे-वाजे"—इस का उच्चारण करते

हुए प्रीति से पितरों का विसर्जन करे। पहिले जिसमें वे संश्रव थे और अर्घ्य-पात्रमें निपातित थे उस पितृ पात्र को उत्तान करके विप्रोंका विसर्जन करना चाहिए।।२३।२४।२५।। प्रदक्षिणा और अनुस्तुति करके जो पितृ शेष अन्न हो उसका भोजन करे। अपनी भार्या के साथ उस रात्रि में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।।२६।। इसी प्रकार से वृद्धि के अवसर पर दक्षिणा के सहित नान्दी मुखों को भी करे अर्थात् नान्दी मुख श्राद्ध करना चाहिए। कर्कन्धु मिश्रित यवों से श्रित पिंडों का उस समय में यजन करना चाहिए।।२७।।एको-द्दिष्ट श्राद्ध दैवहीन और एकान्न,एक पवित्रक होता है। अपसव्यवत् आवाहन और अग्नीकरण रहित होता है ।। २८।। उपतिष्ठताम्–इससे अक्षय्य स्थान में विप्रों का विसर्जन करना चाहिए। फिर 'अभिरम्यताम्'-यह बोले। वे 'अभि-रताः स्वहः'-यह बोलें ।।२९।। गन्धोदक तिलों से मिश्रित चार पात्र करे। अर्घ्य के लिये पितृ पात्रों में प्रेत पात्र को प्रसेचित करे ।।३०।। 'समाना'—इन दो मन्त्रों से शेष सब पूर्व की भाँति ही करना चाहिए। यह सपिण्डी-करण एकोद्दिष्ट स्त्री को भी करना चाहिए ।।३१।।

अर्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत् ।
तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरे द्विजः ।।
पिण्डांश्च गोऽजाविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ।।३२
हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् ।
मात्स्यहारिणऔरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ।।३३
ऐणरौरववाराहशशमांसैर्यथाक्रमम् ।
मासवृद्ध्यापि तुष्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः ।।३४
दद्याद्वर्षत्रयोदश्यां मघासु च न संशयः ।
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेवं कन्यादीन्श्राद्धदो लभेत् ।।३५
शस्त्रेण निहतानां तु चतुर्दश्यां प्रदीयते ।
स्वर्गं ह्यपत्ययोगञ्च शौर्य्यं क्षेत्रं बलं तथा ।।३६
अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ।
धनं विद्याञ्च वाक्सिद्धिं कुप्यं गोऽजाविकं तथा ।।

अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रतीच्छति ॥३७
कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामी प्राप्नुयादिमान् ।
वस्त्राढ्य : प्रीणयन्त्येव नवं श्राद्धकृतं द्विजाः ॥३८
आयुः प्रजा धनं विद्यां स्वर्गमोक्षसुखानि च ।
प्रयच्छति तथा राज्यं प्रीत्या नित्यं पितामहः ॥३९

सपिण्डी करण के पीछे जिसका संवत्सर से होवे उसका भी सोद कुम्भ अन्न द्विज को संवत्सर में दे देना चाहिए और पिंडों को गौ–अजा तथा विप्रों को दे देवे अथवा अग्नि या जल में दे देना चाहिए ॥३२॥ हविष्यान्न से मास में-पायस से वत्सर में पितामह सन्तुष्ट होते हैं। मत्स्यादि के आमिष के यथा-क्रम मास वृद्धि में देने पर भी उन्हें परम सन्तोष हुआ करता है ॥३३।३४॥ त्रयोदशी में और मघा में अर्घ्य देवे। इस प्रकार से प्रतिपदा प्रभृति में श्राद्ध दाता कन्यादि की प्राप्ति करता है–इसमें संशय नहीं है॥३५॥जिनका निहनन शस्त्र से हुआ हो उनको श्राद्ध चतुर्दशी तिथि में दिया जाता है। जो विधि-विधान के साथ श्राद्ध देता है उसे स्वर्ग अपत्य योग-शौर्य क्षेत्र-बल-आरोगिता यश–वीतशोकता–परमगति धन-विद्या-वाक्सिद्धि-कुप्य-गौ-अजाविक–अश्व आयु आदि की प्राप्ति होती है ॥३६।३७॥कृत्तिका से आदि लेकर भरणी के अन्त तक कामना वाला इन उक्त पदार्थों को प्राप्त किया करता है। नव श्राद्ध करने वाले पर वस्त्रों से आढ्य द्विज परम प्रसन्न होते हैं। पितामह प्रीति से नित्य आयु–प्रजा–धन–विद्या–स्वर्ग–मोक्ष-सुख तथा राज्य को प्रदान किया करते हैं ॥३८।३९॥

५८–विनायकोपसृष्ट लक्षण

विनायकोपसृष्टस्य लक्षणानि निबोधत ।
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥१
विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः ।
राजा राज्यं कुमारी च पतिं पुत्रञ्च गुर्विणी ॥२
नाप्नुयात्स्नपनं तस्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।

गौरसर्षपगन्धेन साज्येनोत्सारितस्य तु ।।
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसं तथा ।।३
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्यं द्विजान्शुभान् ।
मृत्तिरां रोचनां गन्धान्गुग्गुलुश्चाप्सु निक्षिपेत् ।।४
एकाकृत्या ह्येकवर्णाँश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् ।
चर्मण्यानुद्वहे रक्ते स्नाप्य भद्रासने तथा ।।५
सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पारणं कृतम् ।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ।।६
भगवान्वरुणो राजा भगं सूर्य्यो बृहस्पतिः ।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ।।७

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—अब मैं विनायक के द्वारा उपसृष्ट पुरुष का लक्षण बताता हूँ उन्हें समझ लो। ऐसा पुरुष स्वप्न में जल का अत्यधिक अवगाहन किया करता है। और मुण्डों को भी देखता है ।।१।। सदा विमना (उदास) रहता है और जो भी कुछ आरम्भ करता है वह सब विफल होते हैं। वह पुरुष विना ही किसी कारण के दुःखी रहा करता है। राजा राज्य को—कुमारी पति को और गर्भवती स्त्री पुत्र को प्राप्त नहीं किया करते हैं। इस उप सर्ग के निवारण करने के लिये किसी शुभ दिन में उसका विधि-विधान के साथ स्नपन कराना चाहिए। आज्य (घृत) के सहित और सरसों के गन्ध से पहिले उत्सारित करके फिर स्नान करावे। सर्वोषधियों से और समस्त गन्धों से उसका शिर विलिप्त करे ।।२।।३।। फिर भद्रासन पर उसे बिठा कर शुभ द्विजों से स्वस्ति वाचन करावे। मिट्टी—रोचना—गन्ध और गुग्गुलु को जल में निक्षिप्त करना चाहिए। फिर एक सी आकृति वाले और एक ही वर्ण से युक्त चार कलशों के द्वारा ह्रद से चर्म में अनुद्वह रक्त भद्रासन पर स्नान कराना चाहिए ।।४।।५।। ऋषियों ने सहस्राक्ष शत धारा वाला पारण किया था उससे तुम्हारा अभिषिञ्चन करता हूँ। पावमानी से पुनीत करें ।।६।। भगवान् वरुण राजा—भग को सूर्य्य बृहस्पति और भग को इन्द्र तथा भग को वायु और सात ऋषियों ने दिया था ।।७।।

यत्तो केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोर्नाश तद्यातु ते सदा ॥८
स्नातस्य सार्षपं तैलं श्रवणे मस्तके तथा ।
जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान्साज्यान्संपरिगृह्य च ॥९
मितः संयमितश्चैव तथा शालकटङ्कटैः ।
कूष्माण्डं राजपुत्रांश्च अन्ते स्वाहासमन्वितैः ॥१०
सद्याच्चतुष्पथे भूमौ कुशानास्तीर्य्य सर्वशः ।
कृताकृतं तथा चैव तण्डुलौदनमेव च ॥११
पुष्पं चित्रं सुगन्धश्च सुराश्च त्रिविधामपि ।
दधिपायसमन्नञ्च घृतञ्च गुड़मोदकम् ॥१२
एतान्सर्वानुपाकृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिवः ।
अम्बिकामुपतिष्ठेच्च दद्यादन्नं कृताञ्जलिः ॥१३
दूर्वासर्षपपुष्पैश्च पुत्रजन्मभिरन्ततः ।
कृतस्वस्त्ययनश्चैव प्रार्थयेदम्बिकां सतीम् ॥१४
रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भवति देहि मे ।
पुत्रान्देहि श्रियं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥१५
ब्राह्मणांस्तोषयेत्पश्चाच्छुक्लवस्त्रानुलेपनैः ।
वस्त्रयुग्मं गुरोर्दद्यात्संपूज्यश्च ग्रहस्तथा ॥१६

जो तेरे केशों में—सीमन्त में और मूर्द्धा में दौर्भाग्य है तथा ललाट में—कानों में और नेत्रों में दौर्भाग्य है वह सदा नाश को प्राप्त होवे ॥८॥ जब स्नान कर लेवे तो उस नहाये हुए के श्रवण में तथा मस्तक में और मूर्द्धा में घृत सहित कुशाओं को ग्रहण कर सरसों के तैल की आहूतियाँ देवें ॥९॥ मित और संयमित हो शाल कटङ्कटों से युक्त कूष्माण्ड तथा अन्त में स्वाहा से समन्वित राज पुत्रों की सद्य से चतुष्पथ पर भूमि में सब ओर कुशाओं को आस्तृत करे । कृताकृत तण्डुल और ओदन–पुष्प चित्र–सुगन्ध और तीनों प्रकार की सुरा–दधि–पायस–अन्न–घृत–गुड मोदक इन समस्त वस्तुओं को उपस्कृत करके भूमि में रक्खे और इसके अनन्तर शिव एवं अम्बिका का उप-

स्थान करे। हाथ जोड़कर अन्न समर्पित करे। पुत्र के जन्म के अन्त में दूर्वा और सरसों के पुष्पों से यजन कर तथा स्वस्त्ययन करके सती अम्बिका की प्रार्थना करनी चाहिए ॥१० से १४॥ हे देवि ! आप मुझे रूप प्रदान करें-यश देवें-सौभाग्य देवें पुत्र देवें-श्री देवें और मेरी समस्त कामनाओं को प्रदान करें। इसके पश्चात् शुक्ल वस्त्र तथा अनुलेपनों से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे। दो वस्त्र गुरु को समर्पित करे और ग्रह की भली भाँति पूजा करनी चाहिए ॥१५॥१६॥

५९—ग्रहयाग

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहदृष्ट्यभिचारवान् ।
ग्रहयागं समं कुर्य्याद् ग्रहाश्चैते बुधैः स्मृताः ॥१
सूर्य्यः सोमो मङ्गलश्च बुधश्चैव बृहस्पतिः ।
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुर्ग्रहगणाः स्मृताः ॥२
ताम्रकांस्यस्फाटिकाच्च रक्तचन्दनस्वर्णकात् ।
रजतादयसः सीसात्कांस्याद् दृष्टिः प्रशाम्यति ॥३
रक्त शुक्लस्तथा रक्तः पीतः पीनः सितासित ।
कृष्णः कृष्णः क्रमाद्वर्णं निबोध मुनयस्ततः ॥४
स्नापयेद्धामयेच्चैव ग्रहद्रव्यैर्विधानतः ।
सुवर्णानि प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ॥५
गन्धादिबलयञ्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलुः ।
कर्त्तव्यास्तत्र मन्त्रैश्च अधिप्रत्यधिदैवतः ॥६
आकृष्णेन इमं देवा अग्निमूर्द्धादिवः ककुत् ।
उद्बुध्यस्वेति जुहुयाद्भिरेव यथाक्रमम् ॥७

याज्ञवल्क्य महर्षि ने कहा – श्री की कामना करने वाला शान्ति की अभिलाषा रखने वाला अथवा ग्रहोंकी दृष्टिके अभिचार वाला पुरुष सम ग्रह-याग करे। बुधजनों ने ये ग्रह बताये हैं—सूर्य-चन्द्र-मङ्गल-बुध-बृहस्पति-शुक्र शनैश्चर-राहु और केतु ये ग्रह गण कहे गये हैं ॥१।२॥ इन युक्त नौ ग्रहोंकी दृष्टि ताम्र-कांस्य (कांसा-स्फटिक-रक्त चन्दन-सुवर्ण-रजत (चाँदी)-लौह-सीसा से प्रशान्त होती है ॥३॥ रक्त-शुक्ल तथा रक्त-पीत, पीत और सिता-

सित-कृष्ण कृष्ण ये क्रम से वर्ण हैं। हे मुनिगण ! इनको समझलो।४। इन ग्रहों के द्रव्यों से विधान के साथ स्नपन करावे तथा होम करावे। सुवर्ण का दान करे। वस्त्र और कुसुमों को देवे।।५।। गन्ध आदि वलय देवे। गूगलकी धूप देनी चाहिए। वहाँ पर ग्रह याग में अधि प्रत्यधि दैवत मन्त्रोंके द्वारा यह सब कृत्य पूर्ण करने चाहिए।६।'आकृष्णेव-इमं-देवा-अग्निमूर्धादिवन ककुत् उद्बुध्य स्व' — इन ऋचाओं से क्रमानुसार हवन करना चाहिए।।७।।

बृहस्पते परिदीयेति अन्नात्परिश्रु तोरसम्।
शन्नोदेवी कयानश्च केतुं कृण्वन्निति क्रमात् ।८
अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः।
औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ।।
होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव समन्वितः।।९
गुडौदनौ पायसञ्च हविष्यं क्षीरषष्टिकम्।
दध्योदनं हविः पूपान्मांसं चित्रान्नमेव च।।१०
दद्याद् द्विजः क्रमादेतान्ग्रहेभ्यो भोजनं ततः।
धेनुः शङ्खस्तथानड्वान्हेमवासो हयस्तथा।।११
कृष्णा गौरायसं छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात्।
ग्रहाः पूज्याः सदा यस्माद्वाञ्छापि प्राप्यते फलम्।।१२

'बृहस्पते परिदीय'—इससे 'अन्नात्परि श्रुतोरसन्'-शन्नोदेयी-कथानश्च केतुं कृण्वन्'-इनसे क्रम पूर्वक आहुतियाँ देवे।८।। अर्क (आक,—पलाश (ढाक)-खदिर—अपामार्ग—पीपल-गूलर—शमी (छौंकर)-दूर्वा (दूम और कुशा ये इनके हवन करने के लिये क्रम से समिधाऐं होती हैं। मधु (शहत) और सर्पि (घृत) से जोकि दधि (दही) से समन्वित हो हवन करे।।९।। गुड-ओदन-पायस ये हविष्य हैं। क्षीर षष्टिक-दधि ओदन ये हवि है। पूप (पूआ) आमिष—चित्रान्न यह भोजन द्विजको ग्रहों के लिये देना चाहिए। फिर विप्रों को ग्रहों की सन्तुष्टि के लिए दक्षिणा देवे। दक्षिणा क्रम से धेनु शङ्ख अन-ड्वान्—हेम-वस्त्र-अश्व—श्यामा गौ—आयस छाग यह होती हैं। इस प्रकारसे

ग्रहों की सदा पूजा करनी चाहिए । राजा भी इस तरह पूजा से फल की प्राप्ति किया करते हैं ।।१०।११।१२।।

६०—वानप्रस्थ भिक्षुकाश्रम

वानप्रस्थाश्रमं वक्ष्ये तत्करस्तु महर्षयः ।
पुत्रेषु भार्य्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ।।१
वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः शमदमक्षमी ।
अर्चयेत्साग्निकान्विप्रान्पितृदेवातिथींस्तथा ।।२
भृत्यांस्तु तर्पयेच्छ्मश्रुजटालोमभृदात्मवान् ।
दान्तस्त्रिसवनं स्नायान्निवृत्तश्च प्रतिग्रहात् ।।३
स्वाध्यायवान्ध्यानशीलः सर्वभूतहिते रतः ।
अह्नो मासस्य मध्ये वा कुर्य्यात्स्वार्थपरिग्रहम् ।।४
निराश्रयं स्वपेद् भूमौ कर्म कुर्य्यात्फलं विना ।
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः ।।५
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते योगाभ्यासाद्दिनं नयेत् ।
अक्रुद्धः परितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च ।।६

याज्ञवल्क्य ऋषि ने कहा—हे महर्षि गणो ! अब मैं वानप्रस्थ आश्रम के विषयमें कहताहूं जोकि एक वानप्रस्थाश्रमीको करना चाहिए । वानप्रस्थाश्रमी को चाहिए कि अपनी भार्या को अर्थात् उसके पोषणादिके समस्त भार को अपने पुत्रों के सुपुर्द कर देवे अथवा उस भार्या को अपने ही साथमें लेकर चले जाना चाहिए । अर्थात् घरका त्यागकरके वनमें जावे । वानप्रस्थ आश्रम में रहने वाले व्यक्ति को ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना चाहिए । उसे साग्नि अर्थात् अग्नि यजन करने वाला रहना चाहिए । शम दम और क्षमा से युक्त उसे रहना होता है । वानप्रस्थी को साग्निक विप्रों का—पितरों का—देवों का तथा अतिथियों का यजन करना चाहिए।।१।२।।अपने भृत्यों को निरन्तर तृप्त करनाचाहिए वानप्रस्थीको जटाओर लोम धारणकर आत्मवान् अर्थात्सबमें अपनी ही आत्माको समझने वाला रहना आवश्यकहै । दान्त होकर त्रिकाल

स्नान-सन्ध्या करे और कभी किसी का प्रतिग्रह ग्रहण न करे ॥ ३ ॥ निरन्तर वेदादि निगमों का स्वाध्याय करे। ध्यान के स्वभाव वाला बने। समस्त प्राणीमात्र के हित-सम्पादन के कार्य में रति रक्खे। दिन के अथवा मास के मध्य में स्वार्थ का परिग्रह करना चाहिए ॥ ४ ॥ बिना किसी वस्तु का आश्रय लेकर भूमि में शयन करे और फल की आकाङ्क्षा से रहित होकर कर्म करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में पञ्च अग्नि तपे और वर्षा ऋतु में स्थण्डिल शायी रहे ॥५॥ हेमन्त में गीले वस्त्र धारण कर प्रतिदिन योग का अभ्यास करे। सर्वदा क्रोध रहित-परितोष से सम्पन्न रहे। समस्तों को भी ऐसा ही रक्खे और अपने आपको भी ऐसा रक्खे ॥६॥

भिक्षोर्धर्मं प्रवक्ष्यामि तं निबोधत सत्तमाः।
वनान्निवृत्य कृत्वेष्टिं सर्ववेदप्रदक्षिणाम् ॥७
प्राजापत्यं तदन्तेऽपि अग्निमारोप्य चात्मनि।
सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः ॥
सर्वायासं परित्यज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ॥८
अप्रमत्तश्चरेद् भैक्ष्यं सायाह्ने नाभिलक्षितः।
वाहितैर्भिक्षुकैर्ग्रामे यात्रामात्रमलोलुपः ॥६
भवेत्परमहंसो वा एकदण्डी यमादितः।
सिद्धयोगस्त्यजन्देहममृतत्वमिहाप्नुयात् ॥१०
योगमभ्यस्य मितभुक्परां सिद्धिमवाप्नुयात्।
दाताऽतिथिप्रियो ज्ञानी गृही श्राद्धेऽपि मुच्यते ॥११

याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं—अब भिक्षु के धर्म को बताता हूं—हे सत्तमो ! उसे समझो। वानप्रस्थाश्रम में रहकर वन से निवृत्त होवे। इष्टि करके समस्त वेदों की प्रदक्षिणा करे। इसके अन्त में प्राजापत्य करे और अपनी आत्मा में अग्नि का आरोपण करे। सब भूतों के हित में रत होते हुए शान्ति धारण कर तीन दण्ड धारण करे और कमण्डलु का ग्रहण करे ॥७॥८॥ समस्त प्रकार के आयास का परित्याग कर भिक्षा का अर्थी होकर ग्राम का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। अप्रमत्त होकर भिक्षाचरण करे और सायाह्न में अभिलक्षित न होवे।

वाहित भिक्षुकों के साथ यात्रा मात्रा का कभी लोलुप न होवै ॥ ९ ॥ अथवा परमहंस होकर रहे। यमादि धारण कर एक दण्ड धारी रहे। इस तरह से सिद्ध योग वाला होकर अपने देह का जो त्याग करता है वह यहां सिद्धि को एवं अमृतत्व को प्राप्त किया करता है ॥१०॥ योग का अभ्यास कर परिमित भोजन करे तो परा सिद्धि को प्राप्त किया करता है। दाता-अतिथियों के प्रिय करने वाला ज्ञानशील गृहस्थ भी श्राद्ध करने पर मुक्ति को प्राप्त किया करता है ॥११॥

६१–नर्क में पापियों के फल

नरकात्पातकोद्‌भूतात्पापस्य कर्मणः क्षयात् ।
ब्रह्महा श्वा खरोष्ट्रः स्यान्मूकश्चान्ते भविष्यति ॥१
स्वर्णचौरः कृमिः कीटः तृणादिर्गुरुतल्पगः ।
क्षयरोगी श्यावदन्तः कुनखी शिपिविष्टकः ॥
ब्रह्महत्याक्रमात्स्युश्च तत्सर्वं वा शिशोर्भवेत् । २
धान्यहर्त्ता त्वनाहारी मूको रागापहारकः ।
धान्यहार्य्यतिरिक्ताङ्गः पिशुनः पूतिनासिकः ॥३
तैलहारी तैलपायो पूतिवक्त्रस्तु सूचकः ।
जायन्ते लक्षणभ्रष्टा दरिद्राः पुरुषाधमाः ॥
जायन्ते लक्षणोपेता धनधान्यसमन्विताः ॥४

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—महा पातकों से प्राप्त नरक से - पापों के कर्म का क्षय होने से ब्रह्म हत्यारा व्यक्ति फिर कुत्ता-गधा और ऊँट की योनि प्राप्त किया करता है और अन्त में मूक हो जाता है ॥१॥ सुवर्ण की चोरी करने वाला व्यक्ति कृमि और कीट की योनि प्राप्त किया करता है। गुरु की शय्या पर गमन करने वाला क्षय का रोगी-श्याव दाँतों वाला-कुनखी और शिपि विष्टक होता है। ब्रह्महत्या के क्रम से ये सभी हुआ करते हैं अथवा यह सब शिशुके होताहै।२।धान्यका हरण करने वाला अनाहारी-मूकऔर रोगा-पहारक,धान्यहारी,अतिरिक्त अङ्गोंवाला-पिशुन एवं पूतिनासिका वालाहोता

हैं ॥३॥ तैल का हरण करने वाला तैल पीने वाला—दुर्गन्ध युक्त मुख वाला–सूचक होता है। ऐसे पुरुष समस्त शुभ लक्षणों से भ्रष्ट—दरिद्र और पुरुषों में अधम होते हैं और जन्म ग्रहण किया करते हैं। शुभ लक्षणों से उपेत धन-धान्य से समन्वित हुआ करते हैं ॥४॥

६२–प्रेत शौच वर्णन

प्रेतशौचं प्रवक्ष्यामि मच्छृणुध्वं यतव्रताः।
ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्य्यादुदकं ततः ॥१
आश्मशानादनुवाह्य इतरैर्ज्ञातिभिर्युतः।
यमसूक्तं तथा जप्यं जपद्भिर्लौकिकाग्निना ॥
स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिथाग्न्यावृतार्थवत् ॥२
सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयान्त्यपः।
अपनः सोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥३
एवं मातामहाचार्य्यपत्नीनाञ्चोदकक्रियाः।
कामोदकाः सखिपुत्रस्वस्रीयश्वशुरद्विजाः ॥
नामगोत्रेण ह्युदकं सकृत्सिञ्चन्ति वाग्यताः ॥४
पाषण्डपतितानां तु न कुर्य्युरुदकक्रिया।
न ब्रह्मचारिणो व्रात्या योषितः कामगास्तथा ॥५
सुरापाः स्वात्मघातिन्यो न शौचोदकभाजनाः।
ततो न रोदितव्यं हि त्वनित्या जीवसंस्थितिः ॥६
क्रिया कार्य्या यथाशक्ति ततो गच्छेद् गृहान् प्रति।
विदार्य्य निम्बपत्राणि नियतो द्वारि वेश्मनः ॥७

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा - हे यत व्रत वालो ! अब हम प्रेत के कारण होने वाले आशौच के विषय में आपको बतलाते हैं उसका आप लोग श्रवण करें–जो दो वर्ष से कम हो उसका निखनन करे अर्थात् भूमिमें गाड़ देवे और फिर उदक क्रिया न करे। श्मशान तक अनुवाहित करके इतर ज्ञातियों के सहित यम सूक्त का जप करना चाहिए। इस प्रकार से जाप करने वालों के

द्वारा वह लौकिक अग्नि से दग्ध नहीं करना चाहिए अर्थात् साधारण आग से उसका दाह न करे। यदि उपेत हो तो आहिताग्नि से आवृत अर्थं कीं भांति करे ॥१।२॥ सप्तम अथवा दशम से ज्ञाति के लोग जल का ग्रहण करते हैं। इस प्रकार से पितृ-दिक् की ओर मुख वाले अघ का निवारण किया करते हैं। इसी विधि से मातामह-आचार्य और पत्नी की उदक क्रिया होती है। सखा-पुत्र-स्वस्त्रीय (बहिन का पुत्र)-श्वशुर और द्विज कामोदक होते हैं अर्थात् जल की कामना वाले होते हैं। वाग्यत (मौन) होकर नाम और गोत्र से एक बार का सिञ्चन करते हैं ॥३।४॥ पाषण्ड से जो पतित हों उनकी उदक क्रिया नहीं करनी चाहिए। ब्रह्मचारी-व्रात्य और योषित उसी प्रकार से कामग नहीं होते हैं अर्थात् उदक क्रिया के योग्य नहीं हैं ॥५॥ सुरा का पान करने वाले-अपनी आत्मा का घात करने वाले भी शौचोदक के पात्र नहीं हैं। उनके लिये रुदन भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि जीवों की संस्थिति अनित्य होती है ॥६॥ यथा शक्ति क्रिया करनी चाहिए और फिर ग्रहों के प्रति चले जाना चाहिए। जब घर के द्वार पर पहुँचे तो नियत रूप से स्थित होकर निम्ब के पत्रों का विदारण करे ॥७॥

आचम्याथाग्निमुदकं गोमयं गौरसर्षपान्।
प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः ॥८
प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शनादपि।
ईक्षतां तत्क्षणाच्छुद्धिः परेषां स्नानसंयमात् ॥९
क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक् पृथक्।
पिण्डं यज्ञकृता देयं प्रेतायान्न दिनत्रयम् ॥१०
जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं तु मृन्मये।
वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदिताः ॥११
आदन्तजन्मनः सद्य आचूडं नैशिकी स्मृता।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥१२
त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमुच्यते।

ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हि ॥
अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति ॥१३
दशद्वादशवर्णानां तथा पञ्चदशैव च ।
त्रिंशद्दिनानि च तथा भवति प्रेतसूतकम् ॥१४

आचमन करके इसके अनन्तर अग्नि–उदक–गोमय (गोबर) और गौर सर्षप (सरसों) का प्रवेश करे । समलभन पत्थर पर करके धीरे पद रक्खे ॥८॥ इस प्रकार से प्रवेशन आदि कर्म करे । प्रेत के संस्पर्श से और देखने वालों की उसी समय शुद्धि होती है और दूसरों की स्नान–संयम से शुद्धि हो जाती है ॥९॥ खरीद कर लाये हुए तथा कहीं से प्राप्त हुए भोजन को करने वाले वे पृथक्-पृथक् भूमि पर ही शयन करे । यज्ञ करने वाले पुरुष को प्रेत के लिये तीन दिन तक अन्न पिंड देना चाहिए ॥१०॥ एक दिन आकाश में जल तथा मृन्मय पात्र में क्षीर स्थापित करे । श्रुति प्रतिपादित वैतानोपासना की क्रिया करनी चाहिए ॥ ११ ॥ जिसके दांत पैदा न हुए हों उसकी जन्म से दांत उगने तक सद्यः शुद्धि हो जाती है । चूड़ा कर्म होने तक एक निशा की अशुद्धि रहती है । व्रतादेश होने के पूर्व तक तीन रात्रिका आशौच मृतक का होता है । इससे ऊपर दश रात्रि तक अशौच रहा करता है ॥ १२ ॥ तीन रात्रि अथवा दश रात्रि शव से सम्बन्धित अशौच हुआ करता है । दो वर्ष से कम का दोनों में (जन्म-मरण में) केवल माता को ही सूतक होता है । जन्म-मरण के अन्तर में शेष दिनों में विशुद्धि होती है ॥१३॥ वर्णों का आशौच क्रम से दश–बारह–पन्द्रह और तीस दिन का प्रेत सूतक होता है । अर्थात् ब्राह्मण को दश दिन का– क्षत्रिय को बारह दिन का— वैश्य को पन्द्रह दिन का और शूद्र को तीस दिन का मृतकाशौच होता है ॥ १४ ॥

अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम् ।
गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु च ॥१५
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्य्यास्वन्यगतासु च ।
नीरसे राजनि तथा तदहः शुद्धिकारकम् ॥१६

हतानां नृपगोविप्रै रलक्षं चात्मघातिनाम् ।
विषाद्यैश्च हतानाञ्च नाशौचं पृथिवीपतेः ॥१७
सत्रिव्रतब्रह्मचारिद तृब्रह्मविदां तथा ।
दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे ॥१८
आपद्यपि हतानाञ्च सद्यः शौचं विधीयते ।
कालोऽग्निकर्म मृद्वायुर्मनो ज्ञानं तपो जपः ॥१९
पश्चात्तापो निराहारः सर्वेषां शुद्धिहेतवः ।
अकार्यकारिणां दानं वेगो नद्यास्तु शुद्धिकृत् ॥२०

अदत्ता कन्याओं में और बालों में विशोधन एक दिन होता है । गुरु-अन्ते बासी (शिष्य)-अनूचान-मातुल-श्रोत्रिय-अनौरस पुत्र - अन्यगता भार्या-नीरस राजा में वह दिन ही शुद्धि कारक होता है अर्थात् उसी एक दिन में आशौच की निवृत्ति हो जाती है ॥१५।१६॥ नृप-गौ और विप्र के द्वारा हत और अलक्ष आत्मघाती तथा विषादि के द्वारा हत हुए का पृथिवी पति को आशौच नहीं होता है ॥१७॥ सत्री-व्रती-ब्रह्मचारी-दाता-ब्रह्मवेत्ता का दान में—विवाह में-यज्ञ में—संग्राम में—देश के विप्लव के समय में तथा आपत्ति काल में जो हत हों उनका शौच तुरन्त ही हो जाता है । काल - अग्नि कर्म-मृत्तिका—वायु-मन—ज्ञान-तप-जप—पश्चात्ताप और निराहार ये सब भी शुद्धि के हेतु होते हैं अर्थात् इन उक्त कर्मों से सभी प्रकार की शुद्धि हो जाया करती है । अकार्यों के करने वालों का दान और नदी का वेग शुद्धि के करने वाला है ।।१८॥ ॥१९॥२०॥

क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदि द्विजः ।
फलसोमक्षौमवीरुद्दधि क्षीरं घृतं जलम् ॥
तिलौदनरसक्षारमधुलाक्षायुतं हविः ।२१
वस्त्रोपलासवं पुष्पं शाकमृच्चर्मपादुकम् ।
एणत्वश्चैव कौषेयं लवणं मांसमेव च ॥२२
पिण्याकमूलगन्धांश्च वैश्यवृत्तो न विक्रयेत् ।
धर्मार्थं विक्रयस्तेषां तिलधान्येन संयुतम् ॥२३

लवणादि न विक्रीयात् तथा चापद् गतो द्विजः ।
कुर्य्यात् कृष्यादिकं तद्वद्विक्रेया हयास्तथा ॥२४
बुभुक्षितस्त्र्यहं स्थित्वा दृष्ट्वा वृत्तिविवर्जितम् ।
राजा धर्मान्प्रकुर्वीत वृत्तिं विप्रादिकस्य च ॥२५

द्विज को यदि निर्वाह न होता है तथा आपत्ति काल उपस्थित हो जावे तो उसे क्षत्रिय के अथवा वैश्य के कर्म से जीवन-निर्वाह कर लेना चाहिए। वैश्य की वृत्ति का आश्रय भी लेवे तो फल–सोम–क्षौम–वीरुद्–दधि-क्षीर-घृत-जल–तिल—ओदन-रस-क्षार -मधु -लाक्षायुत–हवि–वस्त्र–उपलामव पुष्प-शाक–मृद–चर्म – पादुका—एणत्व—कौषेय - लवण मांस—पिण्याक – मूल और गन्धों का विक्रय कभी नहीं करना चाहिए। इनका विक्रय धर्मार्थ है जोकि तिल धान्य से संयुत है। आपद्गत होने पर भी द्विज को लवण आदि का विक्रय कभी नहीं करना चाहिए। कृषि आदि का कार्य ही करना चाहिए। अश्वों का भी विक्रय नहीं करे। तीन दिन तक बुभुक्षित रहकर स्थित हो तो उसे देखकर जो कि वृत्ति से वर्जित है राजा को धर्म करना चाहिए और विप्रादि की वृत्ति की व्यवस्था करे ॥२१ से २५॥

६३—पराशरोक्त धर्म कीर्तन

पराशरोऽब्रवीद् व्यासं धर्मं वर्णाश्रमादिकम् ।
कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तिः क्षीयन्ते न ह्यजादयः ॥१
श्रुतिः स्मृतिः सदाचारो यः कश्चिद् वेदकर्त्तृकः ।
वेदाः स्मृताः ब्राह्मणादौ धर्मा मन्वादिभिः सदा ॥२
दानं कलियुगे धर्मः कर्त्तारश्च कलौ त्यजेत् ।
पापकृत्यं तु तत्रैव शापः फलति वर्षतः ॥३
आचारात्प्राप्नुयात्सर्वं षट् कर्माणि दिने दिने ।
सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवातिथ्यादिपूजनम् ॥४
अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वा यतयस्तदा ।

क्षत्रियः परसैन्यानि जित्वा पृथ्वीं प्रपालयेत् ॥
वणिक्कृष्यादि वैश्ये स्याद् द्विजभक्तिश्च शूद्रके ॥५
अभक्ष्यभक्षणाच्चौर्यादिगम्यागमनात् पतेत् ॥
कृषि कुर्वन्द्विजः श्रान्तं बलीबर्दं न वाहयेत् ॥६
दिनार्द्धं स्नानयोगादिकारी विप्रांश्च भोजयेत् ।
निर्वपेत्पञ्च यज्ञानि क्रूरे निन्दाश्च कारयेत् ॥७

सूतजी ने कहा-पराशर मुनि ने व्यास महर्षि से वर्णों और आश्रमों के धर्म आदि कहे थे। कल्प कल्प में क्षय और उत्पत्ति होते हैं किन्तु अजादिक क्षीण नहीं होते हैं ॥१॥ श्रुति—स्मृति और सदाचार जो कि वेद कर्त्तृक है। मन्वादि के द्वारा सदा ब्राह्मणादि में वेद ही धर्म कहे गये हैं ॥२॥ कलियुग में दान धर्म होता है। कलियुग में कर्त्ता का त्याग होता है। पाप कृत्य वहाँ पर ही फल देता है और शाप एक वर्ष में फल दिया करता है ॥३॥ आचार से सभी कुछ की प्राप्ति होती है। ये षट् कर्म प्रतिदिन करने चाहिए—सन्ध्या स्नान— जप—होम—देव और अतिथि का पूजन ये छै कर्म हैं ॥४॥ सुव्रत वाला विप्र अपूर्व होता है और यति लोग भी उस समय अपूर्व होते हैं। क्षत्रिय लोग परों की सेनाओं को जीतकर पृथ्वी का पालन करें। वैश्य वाणिज्य और कृषि-गोपालन आदि कर्म करे। शूद्र में द्विजातियों की भक्ति और सेवा होनी चाहिए ॥ ५ ॥ जो अभक्ष्य पदार्थ हैं उनके भक्षण करने से—चोरी का कुत्सित कर्म करने से और जो गमन करने के अयोग्य नारी है उसका गमन करने से पतित हो जाता है। यदि आपत्ति काल में द्विज कृषि कर्म करे तो उसे चाहिए कि थके हुए वृषभ को वाहित न करे ॥६॥ दिन के अर्धं भाग में स्नान और योगादि के कर्म करे तथा विप्रों को भोजन करावे पञ्चयज्ञों का निर्वपन करे तथा क्रूर कर्म की निन्दा करे ॥७॥

तिलाज्यं न विक्रीणीत शूनायज्ञादघान्वितः ।
राज्ञो दत्त्वा तु षड्भागं देवतानाञ्च विंशतिम् ॥
त्रयस्त्रिंशच्च विप्राणां कृषिकर्त्ता न लिप्यते ॥८

पूर्वक स्वाग्नि से दाह करे ॥२९।३०॥ यदि किसी की प्रवास में मृत्यु हो जावे तो उसका पुत्तल कुशों से बना कर फिर उसका दाह करे। कृष्णाजिनमें छै सौ पलाशजों का समास्तरण करे। शिश्न में शमी को और वृषण में अरणि का विनिक्षिप्त करे। दक्षिण हस्त में कुण्ड तथा वाम हस्त में उपभृत—पार्श्व में उलूखल और पृष्ठ में मुषल का दाह करे। ऊरुओं में दृषद (पत्थर) और मुख में तण्डुल–घृत और तिलों का निक्षेप करे ॥३१।३२।३३॥ श्रोत्र में प्रोक्षणी देवे और चक्षुओं में आज्य स्थाली देवे। कान—नेत्र—मुख और प्राण में सुवर्ण के टुकड़े क्षिप्त करने चाहिए ॥३४॥ अग्नि होत्र के उपकरण से ब्रह्मलोक की गति वाला होता है। "असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा"— इससे एक बार आहुति देवे॥३५॥ हंस—सारस—क्रौञ्च—चक्र वाक—कुक्कुट मयूर और मेष के घात करने वाला पुरुष एक रात्रि में शुद्ध होता है ॥ ३६ ॥ समस्त प्रकार के पक्षियों का हनन करने पर एक अहोरात्र में शुद्धि हुआ करती है। सब तरह के चतुष्पदों का हनन करने पर एक अहोरात्र तक उपोषित रहे और जप करे तो शुद्धि होती है ॥३७॥

६४—नीतिसार कथन

नीतिसारं प्रवक्ष्यामि अर्थशास्त्रादिसंश्रितम् ।
राजादिभ्यो हितं पुण्यमायुः स्वर्गादिदायकम् ॥१
सद्भिः सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिकामः सदा नरः ।
नासद्भिरिहलोकाय परलोकाय वा हितम् ॥२
वर्जयेत्क्षुद्रसंवादं दुष्टस्य चैव दर्शनम् ।
विरोधं सह मित्रेण सप्रीतिं शत्रुसेविना ॥३
मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च ।
दुष्टानां संप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥४
ब्राह्मणं बालिशं क्षत्रमयोद्धारं विशं जड़म् ।
शूद्रमक्षरसंयुक्तं दूरतः परिवर्जयेत् ॥५
कालेन रिपुणा सन्धिः काले मित्रेण विग्रहः ।
कार्य्यकारणमाश्रित्य कालं क्षिपति पण्डितः ॥६

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः ।।७

सूतजी ने कहा—अब मैं नीति शास्त्र का वर्णन करता हूँ जो अर्थ शास्त्र आदि से सम्मित है और राजा आदि के लिये हितप्रद है, पुण्य—आयु और स्वग आदि का प्रदान करने वाला है ।।१।। सिद्धि की कामना करने वाले पुरुष को सदा सत्पुरुषों का सङ्ग करना चाहिए । असत्पुरुषों के साथ सङ्ग करने से इस लोक में कहीं भी हित नहीं होता है ।। २ ।। क्षुद्र स्वभाव और कर्म वाले पुरुष के साथ सम्वाद करना उचित नहीं है । इसे वर्जित कर देना चाहिए और दुष्ट पुरुष का तो कभी दर्शन ही न करे। विरोध रखने वाले के साथ सम्प्रीति और मित्र के साथ विरोध भी नहीं करना चाहिए ।।३।। मूर्ख शिष्य को उपदेश देने से और दुष्ट स्त्री का भरण करने से तथा दुष्टों का सम्प्रयोग करने से पण्डित पुरुष भी सर्वदा दुःखित रहा करता है ।।४।। वालिश मूर्ख ब्राह्मण को—युद्ध न करने वाले क्षत्रिय को—जड़ वैश्य को तथा अक्षर सयुक्त शूद्र को दूर से ही त्याग देना चाहिए ।।५।। समय पर शत्रु के साथ सन्धि करना और अवसर प्राप्त होने पर मित्र के साथ भी विग्रह करे किन्तु कार्य और कारण दोनों को भली भाँति विचार कर ही पण्डित पुरुष काल का क्षेप किया करते हैं ।।६।। काल बड़ा प्रबल है—यह काल ही समस्त भूतों का पाचन किया करता है और काल ही सब का संहार करता है। काल सुप्तों में जागता है और यह काल अत्यन्त दुरतिक्रम वाला है ।।७।।

कालेषु चरते वीर्यं काले गर्भं च वर्द्धते ।
कालो जनयते सृष्टिं पुनः कालोऽपि संहरेत् ।।८
कालः सूक्ष्मगतिर्नित्य द्विविधश्चेह भाव्यते ।
स्थूलसंग्रहचारेण सूक्ष्माचारान्तरेण च ।।९
नीतिसारं सुरेन्द्राय इममूचे बृहस्पतिः ।
सर्वज्ञो येन चेन्द्रोऽभूद् दैत्यान् हत्वाप्नुयाद् दिवम् ।।१०
राजर्षिब्राह्मणैः कार्य्यं देवविप्रादिपूजनम् ।
अश्वमेधेन यष्टव्यं महापातकनाशनम् ।।११

उत्तमै सह साङ्गत्यं पण्डितैः सह सत्कथाम् ।
अलुब्धैः सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति ॥१२

परदारं परार्थञ्च परिहासं परस्त्रिया ।
परवेमनि वासञ्च न कुर्वीत कदाचन ॥१३

परोऽपि हितवान् बन्धुर्बन्धुरप्यस्तिहि परः ।
अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ॥१४

काल में ही वीर्य चरण करता है और काल में ही गर्भ की वृद्धि होती है । काल सृष्टि का जनन किया करता है और फिर सृष्टि का संहार भी काल ही कर देता है ।।८।। यह काल बहुत ही सूक्ष्म गति वाला है और नित्य ही दो प्रकार से प्रतीत हुआ करता है—एक इसका स्थूल संग्रह चार होता है और दूसरा सूक्ष्मा चारान्तर होता है ।। ।। देव गुरु बृहस्पति ने सुरेन्द्र को इस नीति के सार को बतलाया था जिससे इन्द्र सर्वज्ञ होगया था और समस्त दैत्यों का हनन करके उसने दिवलोक की प्राप्ति की थी ।। ०।। राजर्षि और ब्राह्मणों के द्वारा देवों तथा विप्रादि का पूजन करना चाहिए । अश्वमेध का यजन करना चाहिये । इससे महान् पातकों के पापों का क्षय हो जाता है ।।११।। उत्तम पुरुषों के साथ सङ्गति और पण्डित पुरुषों के साथ सत्कथा तथा जो लोभी अधिक न हों उनके साथ मित्रता करते हुए पुरुष को दुख नहीं होता है ।। १२ ।। पराई स्त्री—पराया धन—पराई स्त्री से परिहास तथा पराये घर में निवास कभी भी नहीं करना चाहिए ।।१३।। पर पुरुष भी हित सम्पादन करने वाला होता है और बन्धु भी परम अहित करने वाला पराया बन जाया करता है जिस तरह देह में ही जन्म लेने वाली व्याधि अहित होती है और जङ्गल में उत्पन्न बूटी औषध का काम किया करती है।।१४।।

स बन्धुर्यो हिते युक्तः स पिता यस्तु पोषकः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते ॥१५

स भृत्यो यो विधेयस्तु तद्बीजं यत् प्ररोहति ।
स भार्य्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यस्तु जीवति ॥१६

स जीवति गुणा यस्य धर्मो यस्य स जीवति ।
गुणधर्मविहीनो यो निष्फलं तस्य जीवनम् ॥१७
सा भार्या सा गृहे दक्षा सा भार्या सा प्रियंवदा ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥१८
हिता स्नाता सुगन्धा च नित्यञ्च प्रियवादिनो ।
अल्पभक्त ल्पभाषिणी सततं मङ्गलैर्युता ॥१९
सततं धर्मबहुला सततञ्च पतिप्रिया ।
सततं प्रियवक्त्री च सततं ऋतुकामिनी ॥२०
एतदादिक्रियायुक्ता सर्वसौभाग्यवर्द्धिनी ।
यस्येदृशी भवेद्भार्या देवेन्द्रो न स मानुषः ॥२१

वही वस्तुतः बन्धु है जो हित के कार्य करने में युक्त होता है और वह ही वास्तव में पिता है जो पोषण किया करता है । वह मित्र है जिसमें विश्वास होता है और वही देश अपना देश है जहाँ जीवन के निर्वाह की जीविका होती है ॥१५॥ वह भृत्य है जो विधेय अर्थात् आज्ञानुकारी हो और वही बीज है जो प्ररोहण किया करता है । वही भार्या है जो सदा प्रिय भाषण किया करती है और वही पुत्र है जो जीवित रहता है ॥ ६॥ वही पुरुष वास्तव में जीवित रहा करता है जिसमें गुण विद्यमान होते हैं और जिसमें धर्म की भावना रहा करती है । जिसमें न तो कोई अच्छे गुण ही हैं और धर्म ही है उसका जीवित रहना भी इस ससार में निष्फल ही हुआ करता है ॥१७॥ भार्या वस्तुतः वही है जो गृह-कार्यों में दक्ष होती है और सर्वदा प्रिय भाषण करने वाली होती है तथा अपने पति को अपने प्राणों के समान समझती है और पातिव्रत धर्म का पूर्णतया पालन किया करती है ॥१८॥ हित करने वाली-नित्य स्नान करने वाली - सुगन्धित पदार्थों से समन्वित और नित्य ही प्रिय बोलने वाली—अल्प भक्ता—स्वल्प अर्थात् मित भाषण करने वाली तथा निरन्तर माङ्गलिक पदार्थों से संयुत रहने वाली—अनवरत बहुत-सा धर्म का आचरण करने वाली तथा बराबर अपने पति की प्यारी—सर्वदा प्रिय एवं मधुर भाषण करने वाली बराबर ऋतुकाल में कामेच्छा रखने वाली—इत्यादि उपर्युक्त क्रियाओं से युक्त

कर्षकाः क्षत्रविट्शूद्राः ह्यदत्त्वा तु चौरकाः ।
दिनत्रयेण शुध्येत ब्राह्मणः प्रेतसूतके ॥९
क्षत्री दशाहाद्वैश्यस्तु द्वादशान्मासि शूद्रकः ।
याति विप्रो दशाहात्तु क्षत्रो द्वादशकाद्दिनात् ॥१०
पञ्चदशाहाद्वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति ।
एकपिण्डास्तु दायादाः पृथग्भावनिकेतनाः ॥११
जन्मना च विपत्तौ च भवेत्तेषाञ्च सूतकम् ।
चतुर्थे दशरात्रस्य षण्निशाः पुंसि पञ्चमे ॥१२
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे च दिनत्रयम् ।
देशान्तरे मृते बाले सद्यः शुद्धिर्यतो मृते ॥१३
अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः ।
न तेषामग्निसंस्कारो न पिण्डं नोदकक्रिया ॥१४

शूना यज्ञ से अघान्वित होता हुआ तिल और घृत का विक्रय कभी न करे। राजा को छटवाँ भाग और देवताओं को बीसवाँ भाग देवे। तेतीसवाँ भाग विप्रों को देवे तो कृषि के कर्म को करने वाला व्यक्ति कभी भी पाप से लिप्त नहीं होता है।।८।। जो क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र कर्षक हैं और वे दान नहीं करते हैं तो चोर होते हैं। ब्राह्मण प्रेत सूतक में तीन दिनमें शुद्ध हो जाता है ।।९।। क्षत्रिय दश दिन में—वैश्य बारह दिन में और शूद्र एक मास में प्रेत सूतक में शुद्ध हुआ करता है। विप्र दश दिन में- क्षत्रिय बारह दिन में-वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है। एक पिंड वाले दायाद जिनके भाव और निकेतन पृथक् हों उनको जन्म और मरण में सूतक सबको होता है। चौथी पीढ़ी तक दश रात्रिका—पाँचवीं पीढ़ी में छै रात्रिका-छटवीं पीढ़ी में चार दिन का और सातवीं पीढ़ी में तीन दिन में शुद्धि होती है। देशान्तर में मरने पर और बालक के मरने पर सद्यः शुद्धि हो जाती है।।१०।। ॥११।१२।१३।।अजात दन्त जो बालक हैं और जो गर्भ से निकले हुए बालक हैं उनका अग्नि संस्कार नहीं होता है—न उनका पिंडदान होता है और न उनके लिए उदक क्रिया ही होती है ।।१४।।

यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योषितः ।
यावन्मासान्स्थितो गर्भस्तावद्दिनानि सूतकम् ॥१५
आनामकरणात्सद्य आचूड़ान्तादहर्निशम् ।
आव्रतस्थात्त्रिरात्रेण तदूर्ध्वं दशभिर्दिनैः ॥१६
आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः ।
ब्रह्मचर्य्यादग्निहोत्रान्नाशुद्धिः सङ्गवर्जनात् ॥१७
शिल्पिनः कारवो वैद्या दासीदासाश्च भृत्यकाः ।
अग्निमान्श्रोत्रियो राजा सद्यःशौचाः प्रकीर्त्तिताः ॥१८
दशाहाच्छुद्धयते माता स्नानात्सूते पिता शुचिः ।
सङ्गात सूतौ सूतकं स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥१९
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके ।
पूर्वसंल्पितादन्यत्र वर्जनञ्च विधीयते ॥२०
मृतेन शुद्धयते सूती मृतक जातकं त्वसौ ।
गोग्रहादौ विपन्नानामेकरात्रं तु सूतकम् ॥२१

यदि स्त्री का गर्भ गिर जावे या गर्भ का स्राव हो जावे तो जितने मास का उसको गर्भ हो उतने ही दिन तक उसे सूतक होता है ॥१५॥ जब तक नामकरण संस्कार न हो और उसकी मृत्यु हो जावे तो तुरन्त ही सूतक से शुद्धि हो जाती है। जब तक चूड़ा कर्म न हो तब तक एक दिन और एक रात्रि में शुद्धि होती है। व्रतस्थ तक तीन रात्रि में शुद्धि होती है इसके ऊपर फिर दश रात्रि तक आशौच रहा करता है ॥१६॥ गर्भ जब स्थित हो उससे चौथे मास तक तो उसका स्राव कहा जाता है तथा पाँचवें और छटवें मास में गर्भ क्षीण होता है तो उसे गर्भ का पात कहते हैं। ब्रह्मचर्य से—अग्निहोत्र से और सङ्ग के वर्जन से अशुद्धि नहीं होती है ॥१७॥ शिल्पी-कारु-वैद्य-दासी दास भृत्य-अग्निमान्-श्रोत्रिय-राजा ये तुरन्त ही शौच वाले बताये गये हैं ॥ १८ ॥ माता दश दिन में शुद्ध होती है और पिता स्नान से शुचि हो जाता है। सूतक वाले के सङ्ग से भी सूतक होता है। पिता उपस्पर्शन करके शुचि होता है।१९। विवाह-उत्सव और यज्ञों में यदि मध्य में मृत सूतक होता है तो पूर्व से जो भी

सङ्कल्पित कृत्य है उसका अन्य वर्जन किया जाता है ॥२०॥ यह सूतकी मृत और जातक से शुद्ध होता है । गो ब्रह्मादि में विपन्नों का केवल एक रात्रि का सूतक होता है ॥ २१ ॥

अनाथप्रेतवहनात् प्राणायामेन शुध्यति ।
प्रेतशूद्रस्य वहनात्त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२२
आत्मघातिविषाद्बन्धकृमिदष्टे न संस्कृतिः ।
गोहतकृमिदष्टञ्च स्पृष्ट्वा कृच्छ्रेण शुध्यति ॥२३
अदुष्टां पतितां भार्य्यां यौवने यः परित्यजेत् ।
सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्वं वैधव्यञ्च पुनः पुनः ॥२४
बालहत्या ऋतगमनाद्दतौ च स्त्री तु शूकरी ।
अगम्या व्रतकारिण्यो भ्रष्टपानोदकक्रियाः ॥२५
औरसः क्षेत्रजः पुत्रः पितृजो पिण्डदो पितुः ।
परिवित्तोस्तु कृच्छ्रं स्यात्कन्यायाः कृच्छ्रमेव च ॥२६
अतिकृच्छ्रं चरेद् दाता होता चान्द्रायणञ्चरेत् ।
कुब्जवामनषण्डेषु गद्गदेषु जडेषु च ॥
जात्यन्धवधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥२७
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे वा पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥२८

कोई अनाथ प्रेत हो और उसका वहन श्मशान तक किया जावे तो केवल प्राणायाम करने से ही शुद्धि हो जाया करती है । प्रेत शूद्र के वहन करने मे तीन रात्रि में अशुचिता दूर होती है ॥२२॥ आत्मघात करने वाले—विष से—बन्ध से- कृमि के द्वारा दष्ट हो जाने से जो मृत्यु होती है उसका संस्कार नहीं होता है । गौ से हत और कृमि से दष्ट का स्पर्श करके कृच्छ्र व्रत से शुद्धि होती है ॥ २३ ॥ जो दोषों से रहित अपनी भार्या को यौवनावस्था में ही परित्यक्त कर देता है उसको सात जन्म तक स्त्री की योनि प्राप्त हुआ करती है और बारम्बार वह विधवा भी होती है ॥२४॥ बालहत्या और ऋतुकाल में

गमन न करने से स्त्री शूकरी होती है। व्रतकारिणी और भ्रष्ट पानोदक क्रिया अगम्या होती है॥२५॥ औरस और क्षेत्रज पुत्र पिताके पितृज पिंडदान करने वाले होते हैं। परिवित्ति से और कन्या से जो हो वह कृच्छ्र होता है। ऐसे व्यक्ति को अतिकृच्छ्र व्रत शुद्धि के लिये करना चाहिए। दाता और होता को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। कुब्ज—बौना—षण्ड (नपुंसक—गद्गद् जड़—जन्मान्ध—बधिर और मूक का परिवेदन करने में कोई दोष नहीं होता है ॥२६।२७।२८॥

श्वादिदष्टस्तु गायत्र्या जपाच्छुद्धो भवेन्नरः।
दाह्यो लोकाग्निना विप्रश्चाण्डालाद्यैर्हतोऽग्निमान् ॥२९
क्षीरैः प्रक्षाल्य तस्यास्थि स्वाग्निना मन्त्रतो दहेत् ॥३०
प्रवासे तु मृते भूयः कृत्वा कुशमयं दहेत्।
कृष्णाजिनें समास्तीर्य्य षट्शतानि पलाशजाः ॥३१
शमीं शिश्ने विनिक्षिप्य अरणिं वृषणे क्षिपेत्।
कुण्डं दक्षिणहस्ते तु वामहस्ते तथोपभृत् ॥३२
पार्श्वे तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे तु मुषलं दहेत।
ऊरौ निक्षिप्य दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ॥३३
श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीश्च चक्षुषोः।
कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलान् क्षिपेत् ॥३४
अग्निहोत्रोपकरणाद् ब्रह्मलोकगतिर्भवेत्।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्याज्याहुतिः सकृत् ॥३५
हंससारसक्रौञ्चानां चक्रवाकञ्च कुक्कुटम्।
मयूरमेषघाती च अहोरात्रेण शुद्धयति ॥३६
पक्षिणः सकलान् हत्वा अहोरात्रेण शुध्यति।
सर्वांश्च तुष्पदान्हत्वा अहोरात्रोषितो जपेत् ॥३७

श्वा आदि से दष्ट होने वाला पुरुष गायत्री के जप से शुद्ध हो जाता है। चाण्डाल आदिके द्वारा हनन किया हुआ अग्निमान् विप्रका दाह लौकिक अग्नि से करना चाहिए। क्षीर से उसकी अस्थियों का प्रक्षालन कर मन्त्र

समय में अतिथि-प्रियता जानी जाती है ॥८॥ जिस वृक्ष के समस्त फल क्षीण हो जाते हैं तो फिर उसे पक्षीगण छोड़ दिया करते हैं। सरोवर के जल सूख जाने पर उसे सारस पक्षी छोड़कर अन्यत्र चले जाया करते हैं। जिस व्यक्ति के पास धन नहीं रहता है तो उससे गणिका फिर प्रेम न कर उसे त्याग देती है, जो राजा नीति-नियमादि से सब तरह भ्रष्ट हो जाता है तो मन्त्रिगण उसका त्याग कर दिया करते हैं। जो पुष्प वासी और मलिन हो जाता है भ्रमर (भौंरा) उसका त्याग कर देता है। जिस जङ्गल के भाग में दावानल से दाह होगया है उसे मृग त्याग देते हैं। सभी प्राणी कार्यवश होकर ही रमण करते हैं नहीं तो यहाँ कोई भी किसी का प्यारा नहीं होता है ॥९॥ जो लालची हो उसे कुछ धन देकर सन्तुष्ट करे अर्थ से अपने वश में करना चाहिए। जो श्लाघनीय गुणों से समन्वित हो उसे हाथ जोड़कर सन्तुष्ट कर लेवे। जो मूर्ख हो उसको उसके से ही आचार और अभिलाषा के अनुवर्त्तन से सतुष्ट करे। जो पण्डित पुरुष हो उसके समक्ष में यथातथ (बिल्कुल सत्य) कथन कर सन्तुष्ट करे ॥१०॥ सद्भावना से देवता सत्पुरुष और द्विज सन्तुष्ट हुआ करते हैं। इतर लोग खाना-पीना देने से सन्तुष्ट होते हैं किन्तु पण्डित लोग मान देने से ही सन्तुष्ट एवं वशीभूत हो जाया करते हैं ॥११॥ जो उत्तम है उसको प्रणिपात के द्वारा और शठ पुरुष को भेद के द्वारा योजित करना चाहिए। जो नीच हो उसे कुछ थोड़ा-बहुत देकर तथा समान को तुल्य पराक्रम के द्वारा योजित करे ॥ १२ ॥ जिस--जिस का जो भाव हो उसी-उस भाव को बोलते हुए उसके अन्त:स्तल में भली भाँति प्रवेश करके मेधावी पुरुष शीघ्र ही उसे अपने वशीभूत कर लिया करता है ॥ १३ ॥ नदियों का--नख रखने वाले जन्तुओं का—जिनके सींग हों उनका-हाथों में हथियार रखने वालों का— स्त्रियों का और राज कुल के लोगों का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥१४॥

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनञ्चापमानञ्च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१५
हीनदुर्जनसंसर्गमत्यन्तविरहादरः।
स्नेहोऽन्यगेहवासश्च नारीसच्छीलनाशनम् ॥१६

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीड़ितः ।
केन न व्यसनं प्राप्तं श्रियः कस्य निरन्तराः ॥१७

कोऽर्थं प्राप्त न गर्वितो भुवि नरः कस्यापदो नागताः
स्त्रीभिः कस्य न खण्डित भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः ।
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः कोऽर्थी गतो गौरवं
को वा दुर्जनवागुरानिपतितः क्षेमेण यातः पुमान् ॥१८

सुहृत्स्वजनबन्धुर्न बुद्धिर्यस्य न चात्मनि ।
यस्मिन् कर्मणि सिद्धेऽपि न दृश्येत फलोदयः ॥
विपत्तौ च महद् दुःखं तद् बुधः कथमाचरेत् ॥१९

यस्मिन् देशे न सम्मानं न प्रीतिर्न च बान्धवाः ।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ॥२०

धनस्य यस्य राजभ्यो भयं नास्ति न चौरतः ।
मृतञ्च यन्न मुच्येत समर्जयस्व तद्धनम् ॥२१

अपने किसी भी कारण से होने वाले घर के नाश-अपने हृदय में रहने वाले सन्ताप-अपने घर में होने वाले दुश्चरित-अपने वञ्चित होने और अपने होने वाले अपमान को बुद्धिमान् पुरुष किसी के सामने प्रकाशित नहीं किया करते हैं ।।१५।। हीन तथा दुर्जन पुरुष के साथ संसर्ग-अत्यन्त विरह-आदर-स्नेह-अन्य के घर में निवास-नारी सच्छील का नाश-इन दोषों में से किस का कुल है कि जिसमें कोई भी दोष न हो-कौन ऐसा व्यक्ति है जो व्याधि से पीड़ित न हुआ हो-किसने व्यसन की प्राप्ति नहीं की है और कौन ऐसा है जिसके पास निरन्तर श्री रही हो ? अर्थात् कोई भी नहीं है ।।१६।१७।।कौन ऐसा पुरुष है जो धन पाकर गर्व वाला न हुआ है? इस भूमण्डलमें ऐसा कौन है जिसको आपत्तियों ने न घेरा है ? स्त्रियों ने किसके मन को खण्डित नहीं किया है-राजाओं का प्रिय कौन होता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं है ? ऐसा कौन है जो इस महाबली काल के गोचर का अन्तर्गत न हुआ है? कौन-सा याचक गौरव प्राप्त करता है? कौन पुमान् ऐसा है जो दुर्जनोंकी वागुरामें निपतित होकर अर्थात् दुष्टों के साथ में रहकर क्षेम को प्राप्त हुआ हो-अर्थात्

कोई भी नहीं है।१८। सुहृत्-स्वजन और जिसका बन्धु नहीं है और जिसके आत्मा में बुद्धि नहीं है—जिस कर्म के सिद्ध होने पर भी कोई फलोदय नहीं है तथा विपत्ति में महान् दुःख है उसे बुध पुरुष कैसे करेगा ।१९। जिस देश में कोई भी सम्मान नहीं होता है-न किसी प्रकार की प्रीति है और न कोई बान्धव ही हैं। जहाँ न किसी विद्या का ही आगम है उस देश का परित्याग ही कर देना चाहिए ।।२०।। जिस धन का राजाओं के द्वारा लिये जाने का कोई भय नहीं है और न चोरों से डर है तथा मृतक को भी जो नहीं छोड़ता है उस धन का अर्जन करो ।।२१।।

यदर्जितं प्राणहरैः परिश्रमैः मृतस्य तं वै विभजन्ति रिक्थिनः ।।
कृतञ्च यद् दुष्कृतमर्थलिप्सया तदेव दोषापहृतस्य यौतुकम् ।।२२

सञ्चितं निहितं द्रव्यं परामृष्यं मुहुर्मुहुः ।
आखोरिव कदर्य्यस्य धनं दुःखाय केवलम् ।।२३
नग्ना व्यसनिनो रूक्षाः कपालाङ्कितपाणयः ।
दर्शयन्तीह लोकस्य अदातुः फलमीदृशम् ।।२४
शिक्षयन्ति च याचन्ति देहीति कृपणा जनाः ।
अवस्थेयमदानस्य माभूदेवं भवानपि ।।२५
सञ्चितं क्रतुशतैर्न युज्यते याचितं गुणवते न दीयते ।
तत् कदर्य्यपरिरक्षितं धनं चौरपार्थिवगृहे प्रयुज्यते ।।२६
न देवेभ्यो न विप्रेभ्यो बन्धुभ्यो नैव चात्मनि ।
कदर्य्यस्य धनं याति अग्नितस्कर राजसु ।।२७
अतिक्लेशेन येऽप्यर्था धर्मस्यातिक्रमेण च ।
अरेर्वा प्रणिपातेन माभूवंस्ते कदाचन ।।२८

जो प्राणों का हरण करने वाले घोर तथा महा घोर परिश्रमों के द्वारा अर्जित किया गया है और मृत्युके पश्चात् दायाद लोग जो भी वारिश हों उस का परस्पर में विभाग कर लिया करते हैं। ऐसे अर्थ के प्राप्त करनेकी चाह से जो दुष्कृत कियाहै वह ही दोषोंसे अपहृत प्राणीका यौतुक (विवाह का धन)

होता है ॥२२॥ सञ्चित किया हुआ और निहित (दाब ढक कर रक्खा हुआ) तथा बारम्बार परामृष्ष द्रव्य आखु की तरह कदर्य्य का धन केवल दुःख के लिए होता है ॥२३॥ जो इस संसार में नग्न रहा करते हैं अर्थात् पहिनने को जिनके पास वस्त्र तक नहीं है- व्यसनों (दुःखों) से युक्त और हाथों में कपाल लेकर भिक्षा माँगने वाले पुरुष, यहाँ दान न करने वाले का ऐसा ही फल हुआ करता है—यह स्पष्टतया दिखला रहे हैं ॥२४॥ इस प्रकार के कृपण अर्थात् अभाव वाले पुरुष हमको दान दो--यह कहते हुए याचना करते हैं और सबको शिक्षा भी दे रहे हैं कि दान न देने के कारण हमारी जैसी यह दशा हुआ करती है। आप लोग ऐसे मत होना ॥ २५ ॥ जो धन जोड़-जोड़कर इकट्ठा किया है उसका सैकड़ों क्रतुओं में यदि उपयोग न किया जाता है तथा किसी गुणवान् पुरुष को याचना करने पर नहीं दिया जाता है तो वह धन बुरा धन है जिसको खूब अच्छी तरह रक्षा करके रक्खा है और उसका प्रयोग राजा या चोरों के घर में किया जाता है ॥२६॥ जो कदर्य्य (नीच) पुरुष है उसके धन का उपयोग देवों के लिए—विप्रों के लिये— बन्धुओं के लिये और अपने आपके लिए नहीं होता है वह तो अन्ततोगत्वा अग्नि-तस्कर और राजा के यहाँ पर यों ही चला जाया करता है ॥२७॥ ऐसे जो अर्थ हैं जिनको अत्यन्त क्लेश के द्वारा धर्म के अतिक्रमण करके अथवा शत्रु को प्रणिपात करके प्राप्त किया जाता है वे आपको कभी भी न होवें॥२८॥

विद्याघातो ह्यनभ्यासः श्रीणां घातः कुचैलता ।
व्याधीनां भोजनाज्जीर्णं शत्रोर्घातः प्रपञ्चता ॥२९
तस्करस्य वधो दण्डः कुमित्रस्याल्पभाषणम् ।
पृथक्शय्या तु नारीणां ब्राह्मणस्यानिमन्त्रणम् ॥३०
दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः ।
ताड़िता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम् ॥३१
जानीयात्प्रेषणे भृत्यान्बान्धवान्व्यसनागमे ।
मित्रञ्चापदि काले च भार्य्याञ्च विभवक्षये ॥३२

और समस्त प्रकार के सौभाग्यों का वर्द्धन करने वाली जिस मानव को ऐसी भार्या हो वह साक्षात् देवेन्द्र ही है मनुष्य उसे कभी भी नहीं समझना चाहिए ॥१६।२०।२१॥

यस्य भार्य्या वरूपाक्षी कश्मला कलहप्रिया।
उत्तरोत्तरवादास्या सा जरा न जरा जरा ॥२२
यस्य भार्य्याश्रितान्यत्र परवेश्माभिकांक्षिणी।
कुक्रियात्यक्तलज्जा च सा जरा न जरा जरा ॥२३
यस्य भार्य्या गुणज्ञा च भर्त्तारमनुगामिनी।
अल्पेऽल्पेन तु संतुष्टा सा प्रिया न प्रिया प्रिया ॥२४
दुष्टा भार्य्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥२५
त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥२६
व्याली कण्ठप्रदेशादपि च फणभृतो भीषणा या च रौद्री।
या कृष्णा व्याकुलाङ्गी रुधिरनयनसंव्याकुला व्याघ्ररला।
क्रोधे चैवोग्रवक्त्रा स्फुरदनलशिखा काकजिह्वा कराला
सेव्या न स्त्री विदग्धा परपुरगमना भ्रान्तचित्ता बिरक्ता ॥२७
भुजङ्गमे वेश्मनि दृष्टिदुष्टे व्याधौ चिकित्साविनिर्वर्त्तिते च।
देहे च बाल्यादिवयोऽन्विते च कालावृतोऽपौ लभते धृतिं कः२८

जिसकी भार्या विरूप नेत्रों वाली कश्मला और कलह से प्यार करने वाली और जिसके मुख में उत्तरोत्तर वाद-विवाद बना रहता हो वह भार्या मूर्तिमती जरा (वृद्धता) है और जरा जरा नहीं है ॥२२॥ जिसकी भार्या किसी अन्य पुरुषमें आश्रित रहनेवाली और सदा दूसरेके घरकी ही आकांक्षा रखती है–जिसकी बुरी क्रियाऐं हों और जो लज्जा को त्याग देने वाली हो वह भार्या ही वस्तुतः जरा है अर्थात् वृद्धत्व देने वाली होती है और जो दर-असल जरा है उसे जरा नहीं कहना चाहिए ॥२३॥ जिसकी भार्या गुणों की ज्ञाताहो और अपने स्वामीको सर्वदा अनुगामिनी रहा करती हो तथा अल्पमें

अल्प से ही सन्तोष करने वाली हो वही वास्तव में प्रिया भार्या है और प्रिया प्रिया नहीं होती है ॥२४॥ दुष्टा भार्या अर्थात् अनेक दोषों से भरी हुई स्त्री—शठता करने वाला मित्र—आदेश देने पर फौरन ही उत्तर दे देने वाला भृत्य और जिसमें सदा सर्प का निवास रहता हो ऐसे घर में रहना ये सब बातें निःसन्देह मृत्यु ही के समान होती हैं ॥२५॥ दुष्टजनों का साथ छोड़ दो और सदा साधु पुरुषों का समागम करो। रात दिन पुण्य-कर्म करो तथा नित्य ही सांसारिक समस्त पदार्थों की अनित्यता का ध्यान रक्खो ॥२ ॥ कण्ठ प्रदेश से भी व्याली-फलभृत् से भीषण और जो रौद्री-कृष्णा-व्याकुल अङ्गों वाली-रुधिर जैसे नेत्रों से संव्याकुल—व्याघ्र के तुल्य—क्रोध में उग्र मुख वाली-स्फुरदनल शिखा वाली—काक के समान जिह्वा वाली—कराल स्त्री चाहे विदग्धा ही क्यों न हो—जो पर पुर में गमन करने वाली-भ्रान्त चित्त से युक्त और विरक्त रहने वाली हो उसका कभी भी सेवन नहीं करना चाहिए ॥ २७ ॥ घर में सर्प के आँखों से देख लेने पर और व्याधि के चिकित्सा से विनिवर्त्तित होने पर तथा बाल्यादिवय से अन्वित देह में कालावृत कौन पुरुष है जो धैर्य धारण कर सकता है ? ॥२८॥

६५—नीतिसार कथन (२)

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥१
त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ॥
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥२
वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे ।
नरकात् क्षीयते पापं कुगृहान्न निवर्त्तते ॥३
चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् ।
न परीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतन त्यजेत् ॥४
त्यजेद् देशमसद्वृत्तं वासं सोपद्रवं त्यजेत् ।
त्यजेत् कृपणराजानं मित्रं मायामयं त्यजेत् ॥५

अर्थेन किं कृपणहस्तगतेन पुंसा ज्ञानेन किं बहुशठाकुलसङ्कुलेन।
रूपेणकिं गुणपराक्रमवर्जितेन मित्रेण किं व्यसनकालपराङ्मुखेन६
अदृष्टपूर्वा बहवः सहायाः सर्वे पदस्थस्य भवन्ति मित्राः।
अर्थैर्विहीनस्य पदच्युतस्य भवत्यकाले स्वजनोऽपि शत्रुः ॥७

सूतजी ने कहा—इस संसार में मनुष्य को आपत्ति काल यदि कभी आ जावे तो उसके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिए। तात्पर्य यह हैकि मुसीबत के समय में काम देने को धन अवश्य ही बचाकर सुरक्षित रक्खे। धन के द्वारा स्त्रियों की रक्षा करे अर्थात् दारा की रक्षा करना अधिक महत्त्व वाला है। धन और दारा—इन दोनों से सदा अपने आपकी रक्षा करे। इन दोनों से प्रमुख स्वात्म संरक्षण होता है ॥१॥ यदि किसी एक का विनाश होकर पूरे कुल का संरक्षण होता हो तो उस सम्पूर्ण कुल की सुरक्षा के लिये एक का त्याग कर देना चाहिए और पूरे ग्राम की रक्षा के लिये कुल को त्याग देवे। जनपद की रक्षा हो तो एक ग्राम का कुछभी ध्यान नहीं करना चाहिये। इस प्रकार से बड़े की सुरक्षामें छोटे का त्याग बताया गयाहै किन्तु अपनी आत्मा का महत्त्व सबसे अधिक है आत्म रक्षाके लिये तो सम्पूर्ण पृथ्वीको भी त्याग देना चाहिए ॥२॥ दुष्ट चरितों वाले घर से तो नरक का निवास ही अधिक अच्छा है क्योंकि नरक के निवास से तो क्रमशः पापों का क्षय होता है और कुगृह के निवास से तो उल्टा पाप बढ़ता ही है वहाँ क्षीण होने का कोई अवसर ही नहीं है ॥३॥ बुद्धिमान् पुरुष एक पैर से चलता है तो एक से स्थित रहा करता है। जब तक अगले दूसरे स्थानको भली भाँति परीक्षण कर देख न लेवे तब तक पहिले स्थान को नहीं छोड़ना चाहिए ४।असत् वृत्त (चरित्र) वाले देश का त्यागकर देवे और जिस जगहके निवास करने में उपद्रव होंउसे भी त्याग देना चाहिए। जोकंजूस स्वभाव वाला राजा हो उसे छोड़देवे तथा माया से परिपूर्ण रहने वाले मित्र का त्याग कर देवे ॥५॥ उस धन से क्या लाभ है जो किसी कृपण (कंजूस) के हाथों में पहुंच गया हो। वह ज्ञान भी व्यर्थ ही होता है जो बहुत-से शठों से आकुल एवं संकुल रहता हो। ऐसा रूप लावण्य भी किस प्रयोजन का है जिस सौन्दर्य के साथ गुण और पराक्रम

बिल्कुल भी न हो। ऐसा मित्र भी संसार में बेकार ही है जो विपत्ति के समय आने पर विमुख हो जाता हो ॥ ६ ॥ इस प्रकार से किसी की भी सहायता करने वाले बहुत लोग पहिले नहीं देखे जाते हैं। तात्पर्य यह है कि विरला ही कोई सहायक होता है। प्रायः सभी लोग पदासीन पुरुष के ही मित्र हुआ करते हैं। जो धन से रहित अर्थात् गरीब हो और किसी उच्च पद से भी च्युत हो ऐसे पुरुष के तो दुनिया में स्वजन लोग भी शत्रु बन जाया करते हैं ॥७॥

आपत्सु मित्रं जानीयात् रणे शूरं रहः शुचिम्।
भार्याञ्च विभवे क्षीणे दुर्भिक्षे च प्रियातिथिम् ॥८
वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसाः
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टं नृपं मन्त्रिणः।
पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनान्तं मृगाः
सर्वः कार्यवशाज्जनो हि रमते कस्यास्ति को बल्लभः ॥९
लुब्धमर्थप्रदानेन श्लाघ्यमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दानुवृत्या च याथातथ्येन पण्डितम् ॥१०
सद्भावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषा द्विजाः।
इतराः खाद्यपानेन मानदानेन पण्डिताः ॥११
उत्तमं प्रणिपातेन शठं भेदेन योजयेत्।
नीचं स्वल्पप्रदानेन समं तुल्यपराक्रमैः ॥१२
यस्य यस्य हि यो भावस्तस्य तस्य हि त वदन्।
अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवशं नयेत् ॥१३
नदीनाञ्च नखीनाञ्च शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासो नैव गन्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥१४

सच्चे मित्रकी जाँच आपत्तिके समय आने पर ही होती है। महाविपत्ति काल में ही मित्र की परीक्षा करे। युद्धका समय उपस्थित होनेपर ही सच्चे शूर का ज्ञान प्राप्त होता है। एकान्तमें शुचिता का ज्ञान करे तथा धन-दौलत के वैभवके नष्ट होजाने पर भार्याकी वास्तविकता ज्ञात होती है और दुर्भिक्षके

स्त्रीणां द्विगुण आहारः प्रज्ञा चैव चतुर्गुणा ।
षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥३३
न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन स्त्रियं जयेत् ।
न चेन्धनैर्जयेद्वह्निं न मद्येन तृषां जयेत् ॥३४
समांसैर्भोजनैः स्निग्धैर्मद्यैर्गन्धविलेपनैः ।
वस्त्रैर्मनोरमैर्माल्यैः कामः स्त्रीषु विजृम्भते ॥३५

पढ़ी हुई विद्या का घात अभ्यास न करने से होता है। बुरे वस्त्रों के धारण करने से श्री का घात होता है। किये हुए भोजन के जीर्ण हो जाने से व्याधियों का घात होता है। शत्रु का घात प्रपञ्चता होती है ॥२९॥ तस्कर का वध दण्ड है—कुमित्र का वध अल्प भाषण है—नारियों का दण्ड यही है कि उनको शय्या पृथक् कर देवे। ब्राह्मण का दण्ड उसको निमन्त्रण का न देना ही होता है ॥३०॥ दुर्जन—शिल्पी—दास—दुष्ट-पटह और स्त्री ये ताड़ित होकर मार्दव (मुलायमी) को प्राप्त हुआ करते है ये सत्कार के पात्र नहीं होते हैं ॥३१॥ कहीं कार्य करने के लिए भेजने पर भृत्यों के कौशल एवं उनकी कार्य क्षमता का ज्ञान होता है। जब कोई व्यसन (दुःख) प्राप्त हो तो बान्धवों की बन्धु भावना का सही ज्ञान हो जाता है। आपत्ति के समय में मित्र की मित्रता का ठीक ज्ञान होता है और वैभव के कम हो जाने पर भी बराबर साथ देती है या नहीं—इस तरह भार्या की जाँच होती है ॥३२॥ पुरुषों से स्त्रियों का दुगुना आहार होता है और प्रज्ञा चौगुनी होती है-व्यवसाय छै गुना होता है तथा काम अठ गुना हुआ करता है ॥३३॥ स्वप्न के द्वारा निद्रा पर जय प्राप्त न करे और काम के द्वारा स्त्री पर विजय न करे। वह्नि के ऊपर विजय ईंधन डालकर नहीं करे और मद्य पान करके तृषा को कभी विजित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए ॥३४॥ आमिष से युक्त भोजन—स्निग्ध पदार्थ—मद्य—गन्ध युक्त विलेपन—सुन्दर वस्त्र—मन को रमण कराने वाले माल्य—इनसे स्त्रियों में कामवासना विजृम्भित (उत्तेजित) होती है ॥३५॥

ब्रह्मचर्य्येऽपि वक्तव्यं प्राप्तं मन्मथचेष्टितम् ।
हृद्यं हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ॥३६

सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम् ।
योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि शौनक ॥३७
नद्यश्च नार्यश्च समस्वभावाः स्वतन्त्रभावे गमनादिकञ्च ।
तोयैश्च दोषैश्च निपातयन्ति नद्यो हि कूलानि कुलानि नार्य्यः॥३८
नदी पातयते कूलं नारी पातयते कुलम् ।
नारीणाञ्च नदीनाञ्च स्वच्छन्दा ललिता गतिः ॥३९
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥४०
न तृप्तिरस्ति शिष्टानामिष्टानां प्रियवादिनाम् ।
सुखानाञ्च सुतानाञ्च जीवितस्य वरस्य च ॥४१
राजा न तृप्तो धनसञ्चयेन न सागरस्तृप्तिमगाज्जलेन ।
न पण्डितस्तृप्यति भाषितेन तृप्तं न चक्षुर्नृपदर्शनेन ॥४२

ब्रह्मचर्य में भी प्राप्त कामदेव की चेष्टाऐं कहने के योग्य हैं । किसी रमणीय पुरुष को जब स्त्री देख लेती है तो उस की योनि प्रक्लिन्न हो जाया करती है ॥३६॥ सुन्दर वेशधारी पुरुष को देखकर वह चाहे भाई हो या अपना पुत्र ही क्यों न हो हे शौनक ! यह मैं बिल्कुल सत्य–सत्य बताता हूँ कि नारियों की योनि क्लिद्यमान होने लगती है ॥३७॥ नदियों का और नारियों का समान ही स्वभाव हुआ करता है । ये स्वतन्त्रता के भाव में गमनादिक करने वाली होती हैं । नदियां जलों के द्वारा और नारियाँ दोषों के द्वारा कूल (तट) और कुल (वंश) का निपातन किया करती हैं ॥३८॥ नदी तो तट को गिरा देती है और नारी अपने कुल को पतित कर देती है । नदी और नारी की स्वच्छन्द ललित गति–हुआ करती है ॥३९॥ अग्नि कभी भी काष्ठों से तृप्त नहीं होती है चाहे जितना काष्ठ उसमें डालते रहें । महोदधि सागर नदियों के पात से कभी तृप्त नहीं होता है चाहे जितनी नदियाँ उसमें बराबर अपना पात करती रहे । यम-राज कभी भी प्राणियों के अन्त से तृप्त नहीं हुआ करते हैं चाहे असंख्यों भूत प्राणी मृत्युके ग्रास बनकर वहाँ उसके पास पहुँचते रहा करें । इसी भाँति

वामलोचना नारियाँ पुरुषों के अभिगमन करने से कभी तृप्त नहीं हुआ करती हैं चाहे जितना भी अधिक उनके साथ रमण पुरुष करते रहा करें वे फिर भी अतृप्त ही रहती हैं ।। ४० ।। शिष्ट–इष्ट–प्रियवादी और सुख तथा सुत-जीवित एवं वर इनसे कभी किसी की तृप्ति नहीं होती है।।४१।। राजा कभी भी धन के सञ्चय से तृप्त एवं सन्तुष्ट नहीं होता है चाहे कितना ही अधिकाधिक धन का वैभव क्यों न हो जावे । सागर कभी जल से तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ है । यद्यपि उसमें असीमित जल रहा करता है । पण्डित भाषण से कभी तृप्त नहीं हुआ करते हैं और नेत्र नृप के दर्शन करने से कभी तृप्ति का लाभ नहीं किया करते हैं—यही इच्छा रहती है कि अभी और अधिक देखते रहें ।।४२।।

स्वकर्मधर्मार्जितजीवितानां शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम् ।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम्।।४३

मनोऽनुकूलाः प्रमदा रूपवत्यः स्वलङ्कृताः ।
वासः प्रासादपृष्ठेषु स्वर्गः स्याच्छुभकर्मणा ॥४४

न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया ।
न शास्त्रेण न शस्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः ।।४५

शनैर्विद्या शनैरर्थाः शनैः पर्वतमारुहेत् ।
शनैः कामश्च धर्मश्च पञ्चैतानि शनैः शनैः ।।४६

शाश्वतं देवपूजादि विप्रदानञ्च शाश्वतम् ।
शाश्वतं सगुणा विद्या सुहृन्मित्रञ्च शाश्वतम् ।४७

ये बालभावान्न पठन्ति विद्यां ये यौवनस्था ह्यधनात्मदाराः ।
ते शोचनीया इह जीवलोके मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥४८

पठने भोजने चिन्तां न कुर्य्याच्छास्त्रसेवकः ।
सुदूरमपि विद्यार्थी व्रजेद् गरुड़वेगवान् ॥४९

जो ऐसे उत्तम पुरुष हैं जिनका कि जीवन निर्वाह अपने कर्म और धर्म के द्वारा उपार्जित धन से होता है और जो शास्त्रों में तथा अपनी पत्नी में ही सदा रति रखने वाले हैं-जिनका समस्त इन्द्रियोंपर पूर्णतया नियन्त्रणहैऔर जोसर्वदा अतिथियोंसे प्रीति रखकर उनका सत्कार किया करतेहैं उनकामोक्ष

गृह में रहते हुए भी हो जाता है ।। ४३ ।। अपने मन के अनुकूल रहने वाली प्रमदाऐं हों जो कि रूप-लावण्य से युक्त तथा वासोऽलङ्कारों से सुवुभूषित हो प्रासाद के ऊपर भाग में निवास हो तो शुभ कर्मों के फल-स्वरूप यह ही साक्षात् स्वर्ग है ।।४४।। दान-- मान-आर्जव (सरलता)-सेवा- शास्त्र और शस्त्र से सर्वथा स्त्रियाँ वश में नहीं रहा करती हैं क्योंकि ये बड़ी विषम होती हैं ।। ४५ ।। विद्या -अर्थ --पर्वतारोपण-काम और धर्म ये पाँच ऐसे काम हैं जो शनैः-शनैः ही हुआ करते हैं। इन्हें तुरन्त कोई भी नहीं कर सकता है ।।४६।। देवताओं का पूजन आदि शाश्वत है और विप्रों को दान देना भी शाश्वत कर्म होता है। गुणों से युक्त विद्या-सुहृत् मित्र भी शाश्वत हैं ।।४७।। जो वाल्यावस्था में विद्या का अध्ययन नहीं करते हैं और जो यौवन की अवस्था में पहुँच कर धन और अपनी दारा के अभाव वाले हैं वे इस जीव लोक में चिन्ता करने के योग्य पुरुष होते हैं और उन्हें यही कहना चाहिए कि केवल मनुष्य की आकृति में रहने वाले साक्षात् पशु ही चरण किया करते हैं ॥ ४८ ।। जो शास्त्रों की सेवा करने वाला है उसे पठन और भोजन के विषय में चिन्ता नहीं करनी चाहिए। विद्या के अर्थी को गरुड़ के समान वेग वाला होकर बहुत दूर देश में भी चले जाना चाहिए ।।४९।।

ये बालाभावे न पठन्ति विद्यां कामातुरा यौवननष्टवित्ताः ।
ते वृद्धकाले परिभूयमानाः संदह्यमानाः शिशिरे यथाब्जम् ।।५०
तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ।।५१
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन तु ।
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ।।५२
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः ।
उदीरितार्थः पशुनापि गृह्यते हयाश्च नागाश्च वहन्ति दाशनम् ।।५३
अर्थाद् भ्रष्टस्तीर्थयात्रां तु गच्छेत्सत्याद् भ्रष्टो रौरवं वै व्रजेच्च ।
योगाद् भ्रष्टः सत्यधृतिश्च गच्छेत् राज्याद् भ्रष्टो मृगयायां व्रजेच्च॥

जो बाल भाव में विद्या का पठन नहीं करते हैं और कामातुर होते हुए यौवन में वित्त को नष्ट किया करते हैं वे वृद्धावस्था में परिभूयमान होते हुए शिशिर ऋतु में एक कमलिनी के कमलों की भाँति संदह्यमान होते हैं ।। ५० ।। तर्क प्रतिष्ठा से रहित होता है और तर्क की कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं है । श्रुतियाँ भी विशेष रूप वाली भिन्न भिन्न हैं । ऐसा कोई भी ऋषि नहीं है जिसका मत भिन्न न हो अर्थात् सभी ऋषियों के मतों में विभिन्नता है । एक मतता नहीं है । ऐसी दशा में धर्म का तत्त्व गुहा में छिपा हुआ है अर्थात् क्या धर्म का स्वरूप है और कौन सा धर्म है – यह जान लेना बहुत ही कठिन है । अतएव महान् पुरुषों ने जो मार्ग अपनाया है और वे जिस गतिविधि से करते गये हैं वही मार्ग हमको भी अपनाना चाहिए । उसी में श्रेय होगा ।।५१।। आकृति–इङ्गित गति–चेष्टा–भाषण—नेत्र और मुख के विकारों से अन्तर्गत मन लक्षित होता है ।।५२।। पण्डित पुरुष बिना कुछ कहने पर भी तात्पर्य को समझ लिया करते हैं क्योंकि दूसरे के इङ्गित से ही ज्ञान प्राप्त कर लेना बुद्धि का फल हुआ करता है जो बात उदीरित अर्थात् मुख से कही गई है उसे तो एक पशु भी ग्रहण कर लिया करता है जिसमें कुछ भी बुद्धि नहीं होती है । अश्व और हाथी भी देशित आदेश का वहन किया करते हैं ।। ५३ ।। जो अर्थ से भ्रष्ट हो जाता है वह तीर्थ-यात्रा को चला जावे – सत्य से जो भ्रष्ट हो उसे रौरव नरक में जाना होता है—योग से भ्रष्ट सत्य-धृति को ग्रहण करे और राज्य से भ्रष्ट मृगया करने जाता है ।।५४।।

६६–नीतिसार कथन (३)

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च ।।१
वाग्यन्त्रहीनस्य नरस्य विद्या शस्त्रं तथा कापुरुषस्य हस्ते ।
न तुष्टिमुत्पादयते शरीरे अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः ।।२
भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराः स्त्रियः ।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ।।३

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तिफलं शुभम् ।
रतिपुत्रफला दारा दत्तभुक्तफलं धनम् ॥४
वरयेत्कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् ।
सुरूपां सुनितम्बाञ्च नाकुल नां कदाचन ॥५
अर्थेनापि हि किं तेन यस्यानर्थे तु सङ्गतिः ।
को हि नाम शिखाजातं पन्नगस्य मणि हरेत् ॥६
हविर्दुष्टकुलाद् ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।
अमेध्यात्काञ्चन ग्राह्यं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥७

श्री सूतजी ने कहा-जो मनुष्य ध्रुव अर्थात् परम निश्चित पदार्थों या विषयों का त्याग करके अध्रुवों का सेवन किया करता है उस पुरुष के त्याग कर देने से ध्रुव तो नष्ट हो जाते हैं और जो अध्रुव हैं वे तो स्वयं ही नष्ट प्राय होते हैं ॥१॥ वाग्यन्त्र से रहित अर्थात् बोलने के अङ्ग से या शक्ति से हीन पुरुष की विद्या उसी प्रकार की होती है जैसे किसी कायर पुरुष के हाथ में दिया हुआ शस्त्र बेकार होता है। उस व्यक्तिके शरीरमें तुष्टि को उत्पन्न नहीं किया करती है जिस तरह देखने के योग्य दारा किसी नेत्रान्ध की तुष्टि नहीं कर सकती है ॥२॥ भोजन से योग्य पदार्थों का प्राप्त होना-उन भोज्य पदार्थों के भोजन करने की शक्ति का रहना अथात् खाने तथा पाचन की शक्ति का पाना-रमणी के साथ रति क्रीड़ा करने की शक्ति-श्रेष्ठ वराङ्गना का पाना-वैभव का पाना और दान करने की शक्ति का हृदय विद्यमान रहना इन छै बातों का इस संसार में प्राप्त करना किसी साधारण और थोड़े तप का फल नहींहै अर्थात् ये सब बातें बहुत बड़ी तपश्चर्या से ही प्राप्त हुआ करतीहै॥३॥ वेदों का फल अग्निहोत्र होताहै। शुभ का फल शील वृत्ति का होना होता है। दारा का फल यही होता है कि वह रति क्रीड़ा में पुत्र समुत्पन्न करे और धन का फल होता है कि दान दे और उससे पूर्ण उपयोग करे ॥४॥ प्राज्ञ पुरुष को चाहिए कि ऐसी कन्या के साथ विवाह-सम्बन्ध करे जो किसी अच्छे कुल में समुत्पन्न हुईहो चाहे वह विशेष रूप-लावण्यसे हीन भी हो। जो अकुलीना हो वह चाहे कितनी सुन्दर रूपवती और सुन्दर नितम्बों वालीहो उसके साथ

कभी भी विवाह नहीं करना चाहिए ।। ५ ।। उस अर्थ से भी क्या लाभ है जिसकी सङ्गति अनर्थ में होती है। किसकी शक्ति है कि सर्प की शिखा में समुत्पन्न मणि को ग्रहण करे ।।६।। दुष्ट कुल से भी हवि का ग्रहण कर लेना चाहिए और बालक के मुख से निकला हुआ भी सुभाषित को प्राप्त कर लेने अपवित्र स्थान में भी गिरे हुए सुवर्ण को ले लेवे तथा स्त्री रूपी रत्न को दुष्कुल से भी ग्रहण कर लेना चाहिए ।।७।।

विषादप्यमृतं ग्राह्यं अमेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।।८
न राज्ञा सह मित्रत्व न सर्पो निर्विषः क्वचित् ।
न कुलं निर्मलं तत्र स्त्रीजनो यत्र जायते ।।९
कुले नियोजयेद्भक्ति पुत्रं विद्यासु योजयेत् ।
व्यसने योजयेच्छत्रुमिष्टं धर्मे नियोजयेत् ।।१०
स्थानेष्वेव प्रयोक्तव्या भृत्याश्चाभरणानि च ।
न हि चूडामणिः पादे शोभते वै कदाचन ।।११
चूड़ामणिः समुद्रोऽग्निर्घण्टा चाखण्डमम्बरम् ।
अथवा पृथिवीपालो मूर्ध्नि पादे प्रमादतः ।।१२
कुसुमस्तवकस्येव द्वे गती तु मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकानां शीर्षतः पतितो वने ।।१३
कर्णभूषणसंग्रहणोचितो यदि मणिस्तु पदे प्रतिबध्यते ।
किं मणिर्न हि शोभते ततो भवति योजयितुर्वचनीयता।।१४

विष से भी अमृत के तत्त्व को प्राप्त कर लेना चाहिए और अमेध्य स्थान से भी सुवर्णको ग्रहण कर लेने पर नीच पुरुष से भी उत्तम विद्याऔर दुष्ट कुल से भी स्त्री रत्न को ले लेवे।।८।। राजाके साथ मित्रता का भाव नहीं होता है-सर्प कहीं भी विष रहित नहीं हुआ करता है जिस कुल में स्त्री रत्न समुत्पन्न हुआ करता है वह कुल कभी भी निर्मल नहीं होता है।।९।। कुल को भक्ति में नियोजित करे-पुत्र को विद्या में नियोजित करे-शत्रु को व्यसन में

नियोजित करे और इष्ट को धर्म में नियोजित करना चाहिए ।।१०।। भृत्य और आभरणों को स्थानों में अर्थात् समुचित स्थलों में ही प्रयुक्त करना चाहिए। चूड़ामणि अर्थात् मस्तक पर धारण करने का आभूषण कभी पाद में धारण करने पर शोभा नहीं दिया करता है ।।११।। चूड़ामणि—समुद्र—अग्नि-घण्टा और अखण्ड अम्बर अथवा पृथिवी पाल मस्तक पर और पाद पर प्रमाद से ही हुआ करते हैं ।।१२।। पुष्पों के स्तवक (गुच्छा) की भाँति मनस्वी पुरुष की दो गति हुआ करती हैं या तो समस्त लोकों के मस्तक पर यह रहते हैं या शीर्ष से पतित होकर वन में ही पतित हो जाते हैं ।।१३।। कान के भूषण में सग्रहण करने के योग्य मणि यदि पैर में बाँध दी जाती है तो क्या मणि वहाँ शोभा नहीं दिया करती है प्रत्युत वहाँ तो उसके योजित करने वाले की ही वचनीयता (बुराई) होती है ।।१४।।

वाजिवारणलोहानां काष्ठपाषाणवाससाम् ।
नारीपुरुषतोयानामन्तर महदन्तरम् ।।१५
कदर्थितस्यापि हि धैर्य्यवृत्तेर्न शक्यते सर्वगुणप्रमाथः ।
अधः खलेनापि कृतस्य वह्लेर्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ।। १६
न सदश्वः कशाघातं सिंहो न गजगर्जितम् ।
वीरो वा परनिर्दिष्टं न सहेद्भीमनिःस्वनम् ।।१७
यदि वा विभवहीनः प्रच्युतो वाशु दैवान्नतु
खलजनसेवां काङ्क्षयेन्नैव नीचम् ।
न तृणमदनकार्य्यं सुक्षुधार्तोऽस्ति सिंहः पिबति
रुधिरमुष्णं प्रायशः कुञ्जराणाम् ।।१८
सकृद् दुष्टश्च यो मित्रं पुनः सन्धातुमिच्छति ।
स मृत्युमेव गृह्णीयाद् गर्भमश्वतरी यथा ।।१९
शत्रोरपत्यानि प्रियंवदानि नोपेक्षितव्यानि बुधैर्मनुष्यैः ।
तान्येव कालेषु विपत्कराणि विषस्य पात्राणि हि दारुणानि।।२०
उपकारगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत् ।
पादलग्नं करस्थेन कण्टकेनैव कण्टकम् ।।२१

अश्व–धारण–लोह–काष्ठ पाषाण-वस्त्र- नारी-पुरुष और तोय–इनका अन्तर बहुत बड़ा अन्तर होता है।१५।कदर्थित भी धैर्य वृत्ति वाले का समस्त गुणों का प्रमाप नहीं किया जा सकता है । खल के द्वारा नीचे की ओर की हुई अग्नि की भी शिखा कभी भी नीचे को नहीं जाया करती है॥१६॥अच्छी जाति का घोड़ा कभी कशा (चावुक) का आघात सहन नहीं किया करता है और सिंह अपने समक्षमें हाथी की गर्जनाको नहीं सहा करता है अथवा वीर पुरुष शत्रु के द्वारा निर्दिष्ट भीम ध्वनि की कभी नहीं सहता है ॥१७॥ यदि भाग्य वश वैभवसे रहित होकर शीघ्रही प्रच्युत हो जावे तो भी स्वाभिमानी पुरुष कभी खलजन की सेवा करता और नीच के पास जाने की इच्छा नहीं किया करता है । अत्यन्त भूख से पीड़ित भी सिंह कभी खाने के कार्य में तृण को ग्रहण नहीं करता है और वह प्रायः हाथियों के उष्ण रुधिर का ही पान करके क्षुधा को शान्त करता है॥१८॥ जो एक बार दुष्ट मित्र के साथ संधा न करने की इच्छा करता है वह अश्वतरी (खिच्चरी) के गर्भ की भाँति मृत्युको ही ग्रहण किया करता है ॥१९॥ बुध मनुष्यों के द्वारा शत्रु की सन्तति जो प्रिय बोलने वालीहै कभी उपेक्षित नहीं करनी चाहिए क्योंकि समय उपस्थित होने पर वही विपत्ति के करने वाली और विष दारुण पात्र हो जाया करती है ॥२०॥ उपकार करने के द्वारा शत्रु को अपने काबू में करके फिर उसी के द्वारा अन्य शत्रु का उद्धार करना चाहिए जिस तरह पैर में लगे हुए एक काँटे को निकाल कर दूर फैकने के लिए एक अन्य काँटे को हाथ में लिया जाया करता है ॥२१॥

अपकारपरे नित्यं चिन्तयेन्न कदाचन ।
स्वयमेव पतिष्यन्ति कूलजाता इव द्रुमाः ॥२२
अनर्था ह्यर्थरूपाश्च अर्थाश्चानर्थरूपिणः ।
भवन्ति ते विनाशाय दैवायत्तस्य वै सदा ॥२३
कार्यकालोचिताऽपापा मति सञ्जायते हि वै ।
सानुकूलेषु दैवेषु पुंसः सर्वत्र जायते ॥२४

धनप्रयोगकार्य्येषु तथा विद्यागमेषु च ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सदैव हि ॥२५
धनिनः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्य्यात्तत्र संस्थितिम् ॥२६
लोकयात्रा भय लज्जा दाक्षिण्यं दानशीलता ।
पञ्च यत्र न विद्यते न तत्र दिवसं वसेत् ॥२७
कालविच्छ्रोत्रियो राजा नदी साधुश्च पञ्चमः ।
एते यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् ॥२८
नैकत्र परिनिष्ठाऽस्ति ज्ञानस्य किल शौनक ।
सर्वं सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कुत्रचित् ॥२९
न सर्ववित्कश्चिदिहास्ति लोके नात्यन्तमूर्खो भुवि चापि कश्चित् ।
ज्ञानेन नीचोत्तममध्यमेन यो यं विजानाति स तेन विद्वान् ॥३०

पराये अपकार करने में कभी चिन्तन नहीं करना चाहिए, जो वृक्ष नदी के तट पर खड़े हुए हैं वे तो स्वयमेव ही एक दिन गिर जाँयगे ॥२२॥ भाग्य से उस में उसके अर्थ अनर्थ स्वरूप और अनर्थ अर्थ स्वरूप विनाश के लिये सदा हो जाया करते हैं। जिस समय में दैव सानुकूल होता है तो उस वक्त कार्य-काल में समुचित पापों से रहित मति समुत्पन्न हो जाती है इसी प्रकार से दैव के अनुकूल होने पर सभी जगह पुरुष को हुआ करता है ॥२३-॥२४॥धन के प्रयोग करने के कार्यों में और विद्या के आगम कार्योंमें-आहार और व्यवहार में मनुष्य को सदा ही लज्जा के त्याग कर देने वाला रहना चाहिए ॥२५॥ जिस स्थान पर धन सम्पन्न पुरुष-श्रोत्रिय-राजा-नदी और पाँचवाँ वैद्य नहीं हो वहाँ संस्थिति कभी भी नहीं करनी चाहिए।२६। लोक-यात्रा-भय-लज्जा-दाक्षिण्य और दान शीलता ये पाँच जहाँ पर विद्यमान नहीं हो वहाँ पर तो एक दिनभी निवास नहीं करना चाहिए।२७। समय का ज्ञाता ज्योतिषी-श्रोत्रिय-राजा-नदी और साधु ये पाँच जिस स्थान में विद्यमान नहीं हों वहाँ वास नहीं करना चाहिए।२८। हे शौनक! एक ही में ज्ञान की परनिष्ठा नहीं होती है। सभी बातें सब ही पुरुष नहीं जाना करते हैं

क्योंकि सर्वज्ञ (सब कुछ का ज्ञाता) कहीं पर भी नहीं है ॥ २९ ॥ इस भूलोक में कोई भी सबका ज्ञाता नहीं है। और इस भूमण्डल में अत्यन्त मूर्ख भी कोई नहीं होता है। जो जिसको नीच-मध्यम और उत्तम ज्ञान के द्वारा जानता है उसी से वह विद्वान् होता है ॥३०।

६७-राजा और भृत्य लक्षण (१)

पार्थिवस्य तु वक्ष्यामि भृत्यानाञ्चैव लक्षणम् ।
सर्वाणि हि महीपालः सम्यङ् नित्यं परीक्षयेत् ॥१
राज्यं पालयते नित्यं सत्यधर्मपरायणः ।
निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥२
पुष्पात्पुष्पं विचिन्वीयान्मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवारण्ये न यथाङ्गारकारकः ॥३
दोग्धार क्षीरभुञ्जाना विकृत तन्न भुञ्जते ।
परराष्ट्रं महीपालैर्भोक्तव्यं न च दूषयेत् ॥४
नोधश्छिन्द्यात्तु यो धेन्वाः क्षीरार्थी लभते पयः ।
एवं राष्ट्रं प्रयोगेण पीडयमानं न वर्जयेत् ॥५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पृथिवीमनुपालयेत् ।
पालकस्य भवेद्भूमिः कीर्त्तिरायुर्यशो बलम् ।६
अभ्यर्च्य विष्णुं धर्मात्मा गोब्रह्मणहिते रतः ।
प्रजाः पालयितुं शक्तः पार्थिवो विजितेन्द्रियः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं तुम्हारे सामने राजा के भृत्यों के लक्षणों के विषय में बतलाता हूँ। एक मही पाल को नित्य ही इन सबकी भली भाँति परीक्षा करनी चाहिए ॥१॥ सत्य और धर्म में तत्पर रहता हुआ राजा नित्य राज्य का पालन करता है शत्रुओं की सेनाओं के ऊपर विजय प्राप्त करके इस भूमि का धर्म पूर्वक पालन करे ॥ २ ॥ कुसुम वाटिका से मालाकार एक-एक पुष्प को चुनता है और मूल का कभी अरण्य में अङ्गार कारक की भाँति उच्छेद नहीं करता है ॥ ३ ॥ दोग्धागण जो क्षीर का उपभोग करते हैं वे बिकृत को

कभी नहीं भोगते हैं। महीपालों के द्वारा भी पराये राष्ट्र का उपभोग करना चाहिए किन्तु उसको कभी दूषित नहीं करना चाहिए ।।४।। जो धेनु के ऊध (ऐन) को नहीं छेदताहै वही क्षीर के चाहने वाला दूध को प्राप्त किया करता है। इसी प्रकार से पीड्यमान राष्ट्र को प्रयोग से वर्जित न करे ।। ५ ।। इस कारण से अपने समस्त प्रयत्नोंके द्वारा पृथिवी का अनुपालन राजाको करना उचित है। पालन करने वाले की भूमि होती है और साथ ही कीर्त्ति–आयु–यश और बल भी हुआ करते हैं ।।६।। धर्मात्मा को भगवान् विष्णु की अभ्यर्चना करके गौ और ब्राह्मणों के हित-सम्पादन में सर्वदा रति रखने वाला होना चाहिए। अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाला राजा ही प्रजा के पालन करने में समर्थ हुआ करता है ।।७।।

ऐश्वर्य्यमध्रुवं प्राप्य राजा धर्मे मतिश्चरेत् ।
क्षणेन विभवो नश्येन्नात्मायत्त धनादिकम् ।।८
सत्यं मनोरमाः कामाः सत्यं रम्या विभूतयः ।
किन्तु वै वनितापाङ्गभङ्गीलोलं हि जीवितम् ।।६
व्याघ्रीव तिष्ठति जरा अपि तर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रभवन्ति गात्रे ।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो
लोका न चात्महितमाचरतीह कश्चित् ।।१०
निःशङ्कं किं मनुष्याः कुरुत परहिते युक्तमग्रे हितं
यम्मोदध्व कामिनीभिमदनशरहता मन्दमन्दातिहृष्टचा ।
मा पापं संकुरुध्वं द्विजहरिपरमाः संभजध्व सदैव
आयुर्नि शेषमेति स्खलति जलघटीभूतमृत्युच्छलेन ।।११
मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ।।१२
एतदर्थं हि विप्रेन्द्रा राज्यमिच्छन्ति भूभृतः ।
यदेषां सर्वकार्य्येषु वचो न प्रतिहन्यते ।।१३

एतदर्थं हि कुर्वन्ति राजानो धनसञ्चयम् ।
रक्षयित्वा तु चात्मानं यद्धनं तद् द्विजातये ॥१४

यह सांसारिक ऐश्वर्य अध्रुव (अनिश्चित) हुआ करता है। इसको प्राप्त करके राजा को धर्म में अपनी मति लगानी चाहिए। जो अपने अधीनता में रहने वाला धनादिक वैभव है वह जब समय आ जाता है तो एक ही क्षण में नष्ट हो जाता है ॥८॥ ये मन को रमण कराने वाले काम सत्य हैं और ये सुरम्य विभूतियाँ भी सत्य हैं किन्तु यह माननीय जीवन वनिता के अपाङ्ग (कटाक्ष) की भङ्गी (वैचित्र्य)की भाँति अत्यन्त चञ्चल है ॥९॥ यह जरा (वृद्धावस्था) एक व्याघ्री की भाँति तर्जना करती हुई सामने स्थित रहा करती है और अनेक प्रकार के रोग इस मानव शरीर में शत्रुओं की तरह समुत्पन्न हो जाया करते हैं। यह मनुष्य की आयु प्रतिक्षण फूटे हुए घड़े से जल की भाँति परिस्राव करती चली जाया करती है किन्तु बड़ा ही आश्चर्य का विषय है कि लोगों में कोई भी अपने आत्मा के हित का कुछ भी सम्पादन नहीं किया करता है।१०। हे मानवो ! आप लोग कैसे निःशङ्क की भाँति हो रहे हो ? दूसरों की भलाई का कार्य अवश्य करो और सबसे पहिले अपना आत्म-हित करना चाहिए। तुम लोग जो कामिनियों के द्वारा कामदेव के बाणों से हत होते हुए मन्द से भी मन्द दृष्टि से मोद प्राप्त करते हो-यह पाप मत करो। सर्वदा ब्राह्मणऔर हरि भगवान्में परायण होते हुए उनका भजन करो। यह आयु निःशेष हो रही है और जल घटी भूत मृत्यु के बहाने से स्खलित हो रही है ॥११॥ सर्वदा पराई स्त्रियों को अपनी माता के समान देखना चाहिए और दूसरे के धन को एक मिट्टीके ढेले के समान ही समझना चाहिए। समस्त प्राणिमात्र को अपनी माता के समान जो देखता है वही वास्तव में सच्चा पण्डित है ॥१२॥ हे विप्रेन्द्रो ! राजा लोग इसीलिये राज्यकी कामना किया करते हैं कि समस्त कार्यों में इनके वचन का प्रतिघात न होवे।१३। इसीलिये राजा लोग इस विशाल धन की राशि का सञ्चय किया करते हैं कि अपनी आत्मा की रक्षा करके वह सम्पूर्ण धन द्विजातियों के हित में लगे ॥१४॥

ओंकारशब्दो विप्राणां येन राष्ट्रं प्रवर्द्धते ।
स राजा वर्द्धते योगाद्व्याधिभिश्च न बध्यते ॥१५
असमर्थाश्च कुर्वन्ति मुनयो द्रव्यसञ्चयम् ।
किं पुनस्तु महीपालः पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥१६
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमान्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥१७
त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च ।
ते चार्थवन्त पुनराश्रयन्ति अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥१८
अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जितः ।
अन्धः पश्यति चारेण शास्त्रहीनो न पश्यति ॥१९
यस्य पुत्राश्च भृत्याश्च मन्त्रिणश्च पुरोहिताः ।
इन्द्रियाणि प्रसुप्तानि तस्य राज्यं चिरं न हि ॥२०
येनार्जितास्त्रयोऽप्येते पुत्रा भृत्याश्च बान्धवाः ।
जिता तेन समं भूपैश्चतुरब्धिर्वसुन्धरा ॥२१

विप्रों का ओंकार शब्द है जिसके द्वारा राष्ट्र की प्रवृद्धि हुआ करती है। वह राजा योग से वृद्धिशील होता है और व्याधियों से भी कभी बद्ध नहीं होता है ॥ १५ ॥ असमर्थ मुनिगण ही द्रव्य का सञ्चय किया करते हैं। राजा फिर किस लिये होता है जोकि अपनी प्रजा को पुत्र की भाँति पालन करता है ॥१६॥ इस संसार में धन का बड़ा ही महत्त्व लोग माना करते हैं जिसके पास धन होता है उसी के लोग मित्र हुआ करते हैं और जिसके अधीन धन है उसी के बान्धव गण साथी रहा करते हैं। जिसके पास धन है वह ही इस लोक में एक सम्भ्रान्त पुरुष माना जाता है और धनी पुरुष को महा पण्डित अर्थात् ज्ञाता समझा करते हैं ॥१७॥ जो धन से विहीन हो जाते हैं उन्हें सांसारिक मित्र छोड़ दिया करते हैं मित्र ही नहीं धनहीन व्यक्ति को उसके पुत्र—दारा और सुहृज्जन भी त्याग दिया करते हैं और वे सब फिर अर्थ सम्पन्न का आश्रय ले लिया करते हैं। इस लोक में एक मात्र अर्थ ही पुरुष का बन्धु और सभी कुछ है ॥ १८ ॥ जो शास्त्रीय ज्ञान से रहित है वह राजा वास्तव

में आधा ही होता है। अन्धा तो चार के द्वारा ही देखा करता है क्योंकि जो शास्त्र से हीन होता है वह कभी देखा नहीं करता है ।। १९ ।। जिस राजा के पुत्र-भृत्य—मन्त्रिगण—पुरोहित और इन्द्रियाँ प्रसुप्त हैं उसका राज्य अधिक समय तक नहीं टिकता है ।।२०।। जिसने पुत्र—भृत्य और बान्धव इन तीनों को अर्जित कर लिया है उसने समस्त राजाओं सहित चारों समुद्रों से युक्त सम्पूर्ण वसुन्धरा को ही जीत लिया है अर्थात् वह समस्त भूमण्डल का अधीश्वर होता है ।।२१।।

लङ्घयेच्छास्त्रयुक्तानि हेतुयुक्तानि यानि च ।
स हि नश्यति वै राजा इह लोके परत्र च ।।२२
मनस्तापं न कुर्वीत आपदं प्राप्य पार्थिवः ।
समबुद्धिः प्रसन्नात्मा सुखदुःखे समो भवेत् ।।२३
धीराः कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिनः ।
प्रविश्य वदनं राहोः किं नोदेति पुनः शशी ।।२४
धिग्धिक्शरीरसुखलालितमानवेषु
मा खेदयेद्धनकृशं हि शरीरमेव ।
सद्दारका ह्यधनपाण्डुसुताः श्रुताः हि
दुःखं विहाय पुनरेव सुखं प्रपन्नाः ।।२५
गन्धर्वविद्यामालोक्य वाद्यं च गणिकागणाः ।
धनुर्वेदार्थशास्त्राणि लोके रक्षेच्च भूपतिः ।।२६
कारणेन विना भृत्ये यस्तु कुप्यति पार्थिवः ।
स गृह्णाति विषोन्मादं कृष्णसर्पविसर्जितम् ।।२७
चापलाद्वारयेद् दृष्टिं मिथ्यावाक्यञ्च वारयेत् ।
मानवे श्रोत्रिये चैव भृत्यवर्गे सदैव हि ।।२८

जो हेतुओं से युक्त और शास्त्रों के समस्त विषयों का लङ्घन किया करता है वह राजा इस लोक और परलोक दोनों से नष्ट हो जाया करता है ।।२२।। राजा को आपत्ति आजाने पर मन में ताप नहीं करना चाहिए। राजा को तो सुख-दुःख में समान-सम बुद्धि वाला और प्रसन्न आत्मा वाला

रहना चाहिए ।।२३।। धीर पुरुष कष्ट प्राप्त करके भी कभी विषाद से युक्त नहीं हुआ करते हैं। क्या चन्द्रमा राहु के मुख में प्रवेश करके भी पुनः समुदित नहीं हुआ करता है ? ।।२४।। शारीरिक सुख से लालित मनुष्यों के लिये पुनः पुनः धिक्कार है। धन से कृश शरीर पर कभी भी खेद मत करो। आपने भली भाँति श्रवण किया है कि पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर आदि स्त्री के सहित बिना धन वाले होकर वनों में रहे थे और फिर उस सम्पूर्ण दुःख का त्याग कर सुख से सम्पन्न हो गये थे ।।२५।। गणिकाओं का गण गन्धर्व विद्या और वाद्य शास्त्र देखता है और उनकी रक्षा करता है। राजा को लोक में धनु वेद और अर्थ शास्त्र की रक्षा करनी चाहिए ।।२६।। जो राजा बिना ही किसी कारण के अपने भृत्य पर कुपित होता है वह कृष्ण सूर्य के द्वारा विसर्जित विषोन्माद को ग्रहण करता है।।२७।। अपनी दृष्टि को चपलता से वारित करना चाहिए अर्थात् चञ्चल दृष्टि कभी न करे। मिथ्या से युक्त वाद्य को भी वारित करे। मानव मात्र में—श्रोत्रिय में और सदा ही भृत्य वर्ग में चपल-दृष्टि और मिथ्या वचन का प्रयोग नहीं करे ।।२८।।

लीलां करोति यो राजा भृत्यस्वजनगर्वितः।
शासने सर्वदा क्षिप्रं रिपुभिः परिभूयते ।।२९
हुँकारं भृकुटीं नैव सदा कुर्वीत पार्थिवः।
बिना दोषेण यो भृत्यान्राजाऽधर्मेण शास्ति च ॥
लीलासुखानि भोग्यानि त्यजेदिह महीपतिः ।।३०
सुखप्रवृत्तैः साध्यन्ते शत्रवो विग्रहे स्थितैः ॥३१
उद्योगः साहसं धैर्य्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षड् विधेयस्य उत्साहस्तस्य देवोऽपि शङ्कते ।।३२
उद्योगेन कृते कार्य्ये सिद्धिर्यस्य न विद्यते।
दैवं तस्य प्रमाणं हि कर्त्तव्यं पौरुषं सदा ॥३३

जो राजा अपने जन और भृत्यों के समुदाय पर अत्यन्त गर्वित होकर लीला किया करता है अर्थात् उपभोगों की क्रीड़ा में फँसा रहता है वह राजा

शीघ्र ही अपने शासन में सर्वदा शत्रुओं के द्वारा परिभूत हो जाया करता है ॥२६॥ जो पार्थिव सदा हुङ्कार और भृकुटि टेढ़ी नहीं करता है। दोष के बिना भृत्यों पर धर्म से शासन किया करता है। लीला के सुख और भोग यहाँ त्याग देने चाहिए ॥३०॥ सुख-प्रवृत्त विग्रह में स्थितों के द्वारा शत्रुगण साध्य हुआ करते हैं ॥३१॥ उद्योग—साहस - धैर्य्य - बुद्धि—शक्ति—पराक्रम—इन छै का विधेय जो होता है उसको उत्साह होता है और उससे देव भी शङ्कित रहा करते हैं ॥३२॥ उद्योग के द्वारा कार्य्य के करने पर जिसकी सिद्धि नहीं होवे। इसका प्रमाण दैव होता है। अतएव निश्चय रूप से सदा पौरुष करना चाहिए ॥३३॥

६८—राजा और भृत्य लक्षण (२)

भृत्या बहुविधा ज्ञेया उत्तमाधममध्यमाः।
नियोक्तव्या यथार्हेषु त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥१
भृत्ये परीक्षणं वक्ष्ये यस्य यस्य हि ये गुणाः।
तमिमं संप्रवक्ष्यामि यद्यदा कथितानि च ॥२
यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताड़नैः।
तथा चतुर्भिर्भृतकं परीक्षयेद् व्रतेन शीलेन कुलेन कर्मणा ॥३
कुलशीलगुणोपेतः सत्यधर्मपरायणः।
रूपवान्सुप्रसन्नश्च कोषाध्यक्षो विधीयते ॥४
मूल्यरूपपरीक्षाकृद्भवेद्रत्नपरीक्षकः।
बलाबलपरिज्ञाता सेनाध्यक्षो विधीयते ॥५
इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शनः।
अप्रमादी प्रमाथी च प्रतीहारः स उच्यते ॥६
मेधावी वाक्पटुः प्राज्ञः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
सर्वशास्त्रसमालोकी ह्येष साधुः स लेखकः ॥७

सूतजी ने कहा—भृत्य भी बहुत प्रकार के होते हैं उन्हें जान लेना चाहिए। भृत्य उत्तम-मध्यम और अधम होते हैं। इसलिये इनको तीन तरह के

कर्मों में जो जिस कर्म के योग्य हो उसे वहीं पर नियुक्त करना चाहिए ।।१।। अब मैं भृत्य के विषयमें उसका परीक्षण बतलाऊँगा । जिस-जिस भृत्यके जो गुण होते हैं । उसको मैं अब बताताहूँ जो जब-तब कहे गये हैं।।२।।जिस तरह से सुवर्ण की चार प्रकार से परीक्षा की जातीहै । सुवर्ण का निघर्षण छेदन-तापन और ताड़न ये चार परीक्षणके प्रकार हुआ करतेहैं । इसी प्रकार भृत्य की भी व्रत शील-कुल और कर्म इन चार रीतियों से परीक्षा करनी चाहिए ।।३।।जो भृत्य कुल और शील के गुणोंसे युक्त हो तथा सत्य एवं धर्ममें परायण हो-रूप वाला और सुप्रसन्न हो ऐसे भृत्य को कोष का अध्यक्ष बनाना चाहिए ।।४।। मूल्य और रूप की परीक्षा करने वाला तथा रत्नों की परीक्षा करने वाला और बल तथा अबल के परिज्ञाता को सेनाध्यक्ष किया जाता है ।।५।। इङ्गित और आकृति के तत्त्व का ज्ञान रखने वाला-बल वाला-देखने में प्रिय लगने वाला-प्रमाद न करने वाला और प्रमथनशील व्यक्तिको प्रतीहार के पद पर नियुक्त करना कहा जाता है ।।६।। मेधावी-बोलने में पटु-प्राज्ञ-सत्य बोलने वाला-जितेन्द्रिय और समस्त शास्त्रों को देख लेने वाला एवं साधु वृत्ति वाले पुरुष को लेखक के पद पर नियुक्त करे ।।७।।

बुद्धिमान्मतिमांश्चैव परचित्तोपलक्षकः ।
क्रूरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते ।।८
समस्तस्मृतिशास्त्रज्ञः पण्डितोऽथ जितेन्द्रियः ।
शौर्य्यवीर्य्यगुणोपेतो धर्माध्यक्षो विधीयते ।।९
पितृपैतामहो दक्षः शास्त्रज्ञः सत्यवाचकः ।
शुचिश्च कठिनश्चैव सूपकारः स उच्यते ।।१०
आयुर्वेदकृताभ्यासः सर्वेषां प्रियदर्शनः ।
आयुःशीलगुणोपेतो वैद्य एष विधीयते ।।११
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जपहोमपरायणः ।
आशीर्वादपरो नित्यमेष राजपुरोहितः ।।१२
लेखकः पाठकश्चैव गणकः प्रतिबोधकः ।
आलस्ययुक्तश्चेद्राजा कर्मणो वर्जयेत्सदा ।।१३

द्विजिह्वमुद्वेगकरं क्रूरमेकान्तदारुणम् ।
खलस्याहेश्च वदनमपकाराय केवलम् ॥१४

बुद्धिमान् और मति—सम्पन्न—दूसरे के चित्त का अभिप्राय जान लेने वाला—क्रूर तथा जो भी कहा जावे उसे ठीक वैसा ही कह देने वाला जो भृत्य हो उसे दूत के कर्म में नियुक्त करना चाहिये ॥८॥ समस्त शास्त्र और स्मृतियों का ज्ञाता-पण्डित इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाला—शूरता तथा बहादुरी के गुणों से युक्त धर्माध्यक्ष नियुक्त करना चाहिए ॥६॥ बाप दादाओं से चले आने वाला—परम दक्ष—शास्त्र का ज्ञाता—सत्य बोलने वाला—परम पवित्र—कठिन जो भृत्य हो उसे सूपकार अर्थात् रसोइया के पद पर नियुक्त करना चाहिए ॥१०॥ आयुर्वेद शास्त्र में अभ्यास करने वाला—सबको देखने में परम प्रिय लगने वाला और जो आयु एवं शील के गुणों से युक्त हो उसे वैद्य नियुक्त करे ॥११॥ वेदों तथा वेदों के सम्पूर्ण अङ्ग शास्त्रों के तत्वों का ज्ञाता—जप एवं होम में परायण रहने वाला और आशीर्वाद देने में नित्य तत्पर हो उसे राजा का पुरोहित नियुक्त करे। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के गुण राज—पुरोहित में होने चाहिये ॥१२॥ लेखक पाठक—गणक और प्रतिवोधक यदि आलस्य से युक्त हों तो राजा को चाहिये उसे कर्म से सदा वर्जित कर देवे ॥१३॥ दो जिह्वा वाला—हृदय में उद्वेग उत्पन्न कर देने वाला-क्रूर-पूर्ण दारुण खल तथा सर्प का मुख जैसा होता है जोकि सर्वदा केवल अपकार के ही लिए हुआ करता है ॥१४॥

दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥ १५

अकारणाविष्कृतकोपधारिणः खलाद्भयं कस्य न नाम जायते ।
विषं महाहेर्विषमस्य दुर्वचः सुदुःसहं सन्निपतेत्सदा मुखे ॥१६

तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम् ।
अर्द्ध राज्यहरं भृत्यं यो हन्यात्स न हन्यते ॥१७

शूरत्वयुक्ता मृदुमन्दवाक्या जितेन्द्रियाः सत्यपराक्रमाश्च ।
प्रागेव पश्चाद्विपरीतरूपा ये ते तु भृत्या न हिता भवन्ति ॥१८

निरालस्याः सुसन्तुष्टाः सुस्वप्नाः प्रतिबोधकाः ।
सुखदुःखसमा धीरा भृत्या लोकेषु दुर्लभाः ॥१६
क्षान्तिसत्यविहीनश्च क्रूरबुद्धिश्च निन्दकः ।
दाम्भिकः पेटुकश्चैव शठश्च स्पृहयाऽन्वितः ॥
अशक्तो भयभीतश्च राज्ञा त्यक्तव्य एव सः ॥२०
सुसन्धानानि चास्त्राणि शस्त्राणि विविधानि च ।
दुर्गे प्रवेशितव्यानि ततः शत्रुं निपातयेत् ॥२१

जो दुर्जन है वह चाहे कितना ही विद्वान् हो उसका तो परिहार ही कर देना चाहिए । मणि से विभूषित रहने वाला सर्प क्या भयङ्कर नहीं होता है ? दुर्जन तो विद्यालंकृत होकर भी परम भयानक ही हुआ करता है ॥१५॥ बिना ही किसी उचित कारण के कोप को प्रकट करके उसे धारण करने वाले खल पुरुष से किस को भय उत्पन्न नहीं होता है ? अर्थात् ऐसे खल से भी सभी भयभीत होते हैं । महा सर्प बड़ा विषम होता है जिसका विष भी परम उग्र होता है और खल के मुख से सदा ऐसे बुरे वचन निकला करते जो सुदुःसह होते हैं अर्थात् मर्म भेदी और हृदय विदारक होते हैं ॥ १६ ॥ तुल्य अर्थ वाले–समान सामर्थ्य वाले–मर्म (रहस्य) के ज्ञाता–व्यवसायी तथा आधे राज्य का हरण करने वाले भृत्य को जो हनन कर देता है वह फिर नहीं मारा जाता है ॥ १७ ॥ शूरत्वसे युक्त-मृदु और मन्द वचन बोलने वाले-जितेन्द्रिय-सत्य पराक्रम वाले प्रथम ही और पीछेसे विपरीत स्वरूप वाले जो भृत्य होतेहैं वे हित करनेवाले नहीं हुआ करते हैं ॥१८॥ बिना आलस्य वाले–परम सन्तोषी–सुन्दर निद्रा लेने वाले–प्रतिबोधक-सुख और दुःख के समय में समान रूप से रहने वाले तथा धैर्यशाली भृत्य संसार में बहुत दुर्लभ हुआ करते हैं ॥१९॥ क्षान्ति और सत्य से रहित क्रूर बुद्धि वाला निन्दा करने वाला–दम्भ रखने वाला–पेटुक अर्थात् केवल अपने उदर के भरते रहने की चिन्ता करने वाला शठ–स्पृहा से समन्वित-शक्ति हीन और भय से सर्वदा डरा हुआ जो भृत्य हो उसे राजा को त्याग देना चाहिए ॥२०॥ भली भाँति सन्धान किये हुए अस्त्र और

अनेक प्रकार के शस्त्र अपने दुर्ग में प्रविष्ट करके रखने चाहिए। इसके अनन्तर शत्रु का निपातन करे ॥२१॥

षण्मासमथ वर्षं वा सन्धि कुर्य्यान्नराधिपः।
पश्यन्सञ्चितमात्मान पुनः शत्रुं निपातयेत् ॥२२
मूर्खान्नियोजयेद्यस्तु त्रयोऽप्येते महीपतेः।
अयशश्चार्थनाशश्च नरके चैव पातनम् ॥२३
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
तेन संवर्द्धते राजा सूक्ष्मतो भृत्यकार्य्यतः ॥२४
तस्माद् भूमीश्वरः प्राज्ञं धर्मकामार्थसाधने।
नियोजयेद्धि सततं गोब्राह्मणहिताय वा ॥२५

छै मास अथवा एक वर्ष तक राजा की सन्धि करनी चाहिए। जब यह देख लेवे कि अब अपने आपको पूर्णतया सुसज्जित कर लियाहै तथा शत्रु का निपातन करना चाहिए ॥२२॥ जो राजा मूर्खों की अनुचित रीति से विभिन्न पदों पर नियुक्तियाँ कर देताहै उस राजाको अयश-अर्थनाश और नरक-पतन ये तीनों परिणाम अवश्य ही हुआ करते हैं॥२३॥ राजा जो भी कुछ शुभ या अशुभ कर्म करता है उसमें भृत्योंके ही कार्य से सूक्ष्मतया राजा बढ़ा करता है इस कारण से भूमीश्वर को धर्म काम और अर्थ के साधनमें प्राज्ञ-पुरुषों की ही नियुक्तियाँ करनी चाहिए और निरन्तर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि गौ तथा ब्राह्मणों का हित होता रहे ॥२४।२५॥

६९—नीति शास्त्र कथन (१)

गुणवन्तं नियुञ्जीत गुणहीनं विवर्जयेत्।
पण्डितस्य गुणाः सर्वे मूर्खे दोषाश्च केवलाः ॥१
सद्भिरासीत सततं सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रीञ्च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत् ॥२
पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञैः सत्यवादिभिः।
बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेत न तु राज्ये खलैः सह ॥३

सावशेषाणि कार्य्याणि कुर्वन्नर्थैश्च युज्यते ।
तस्मात्सर्वाणि कार्य्याणि सावशेषाणि कारयेत् ॥४
मधुहेव दुहेद्राष्ट्रं कुसुमञ्च न पातयेत् ।
वत्सापेक्षी दुहेत्क्षीरं भूमिं गाश्चैव पार्थिवः ॥५
यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्चिनुते मधु षट्पदः ।
तथा वित्तमुपादाय राजा कुर्वीत संचयम् ॥६
वल्मीकं मधुजालञ्च शुक्लपक्षे तु चन्द्रमाः ।
राजद्रव्यञ्च भैक्ष्यञ्च स्तोकस्तोकेन वर्द्धते ।'७

सूतजी बोले—राजा को सर्वदा गुणवान् का ही नियोजन करना उचित है। जो गुणों से (जो कि अभी ऊपर बताये गये हैं) रहित पुरुष है उसका वर्जन कर देना चाहिए ! सद्-असत् के विवेक की बुद्धि रखने वाले पण्डित में सभी गुण हुआ करते हैं और मूर्ख में केवल दोष ही रहते हैं ॥१॥ निरन्तर सत्पुरुषों के साथ सङ्गति करे और सत्पुरुषों के साथ अपनी उठक-बैठक भी रक्खे। सत्पुरुषों के साथ विवाद और मैत्री भी करनी चाहिये। जो असत्पुरुष हैं उनके साथ तो उपर्युक्त कुछ भी कार्य न करे ॥२॥ पण्डित वृन्द-विनीतजन धर्म के ज्ञाता और सत्यवादी पुरुषों के साथ बन्धन में स्थित होकर भी अवस्थित रहे और खलों के साथ राज्य में भी कभी नहीं रहना चाहिये क्योंकि खल सङ्ग का परिणाम सर्वदा बुरा ही होता है ॥३॥ समस्त कार्यों को सावशेष करके भी मनुष्य अर्थों से युक्त हुआ करता है। इस कारण से समस्त कार्यों को सावशेष ही करना चाहिये ॥४॥ मधुहा (भौंरा) की तरह राष्ट्र का दोहन करे और कुसुम का पातन कभी न करे। अर्थात् राष्ट्र से करों के स्वरूप में इस प्रकार से धन का सञ्चय करे जो उसके स्वरूप को कोई दोष न लगे और वह ज्यों का त्यों सुन्दर कुसुम की भाँति सुखी सुशोभित बना रहे। जो वत्स की अपेक्षा रखने वाला है गौ से क्षीर का जिस तरह दोहन किया करता है वैसे ही भूमि का दोहन राजा को करना चाहिये ॥५॥ जिस क्रम से भ्रमर पुष्पों से मधु को चुरा करता है उसी भाँति राजा भी प्रजा से वित्त ग्रहण कर सञ्चय

करे ॥६॥ बल्मीक—मधु का जाल और शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा तथा राजा का द्रव्य और भैक्ष्य थोड़ा २ करके ही बढ़ा करते हैं ॥७॥

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु सञ्चयम् ।
अवन्ध्य दिवसं कुर्य्याद्दानाध्ययनकर्मसु ॥८
वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पंचेन्द्रियनिग्रहस्तपः ॥
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥९
सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते पात्र कुलं शीलेन रक्ष्यते ॥१०
वरं विन्ध्याटव्यां निवसनमभुक्तस्य मरणं
वरं सर्पाकीर्णे शयनमथ कूपे निपतनम् ।
वरं भ्रान्तावर्त्ते सभयजलमध्ये प्रविशनं
न तु स्वीये पक्षे तु धनमणु देहीति कथनम् ॥११
भाग्यक्षयेषु क्षीयन्ते नोपभोगेन सम्पदः ।
पूर्वार्जिते हि सुकृते न नश्यन्ति कदाचन ॥१२
विप्राणां भूषणं विद्या पृथिव्या भूषणं नृपः ।
नभसो भूषणं चन्द्रः शीलं सर्वस्य भूषणम् ॥१३
एते ते चन्द्रतुल्याः क्षितिपतितनया भीमसेनार्जुनाद्याः
शूरा सत्यप्रतिज्ञा दिनकरवपुषः केशवेनोपगूढ़ाः ।
ते वै दुष्टग्रहस्थाः कृपणवशगता भैक्ष्यचर्य्यां प्रयाताः ।
को वा कस्मिन्समर्थो भवति विधिवशाद् भ्रामयेत्कर्मरेखा ॥१४

अञ्जन का क्षय और वल्मीक का सञ्चय देखकर—दान और अध्ययन कर्मों में दिवस को अबन्ध्य करे ॥ ८ ॥ जो राग से युक्त चित्त वाले पुरुष हैं वे चाहे वन में भी जाकर निवास क्यों न करें वहाँ पर भी उनको दोष उत्पन्न हो जाया करते हैं और राग से निवृत्ति करके पाँचों इन्द्रियों का निग्रह रूपी तप करते हुये घर में रहते हैं—यह भी एक महती उनकी तपश्चर्या ही है । जो सर्वदा अकुत्सित अर्थात् परम प्रशस्त कर्म में प्रवृत्ति रखता है ऐसे निवृत्त राग

वाले पुरुष के लिए गृह ही तपोवन के तुल्य होता है। राग से निवृत्ति और सत्कर्म ही मुख्यतया लक्ष्य है ॥९॥ सत्य से धर्म की रक्षा की जाती है और योग से विद्या की सुरक्षा होती है। मार्जन करने से पात्र की रक्षा तथा शील वृत्ति से कुल की सुरक्षा हुआ करती है ॥ १० ॥ विन्ध्य के जंगल में निवास करना—भोजन न प्राप्त होने पर भूख से मृत्यु का ग्रास बन जाना सर्पों से घिरे हुए स्थल में शयन करना तथा कूप में निपात करना—भ्रान्त आवर्त्तों से युक्त भय सहित जल के मध्य में प्रवेश कर जाना अधिक श्रेष्ठ है किन्तु अपने पक्ष वाले लोगों के समक्ष में जाकर थोड़ा-सा धन मुझे दो—इस तरह याचना करके अपना अपमानित बान्धवों के मध्य में जीवन रखना अच्छा नहीं है ॥११॥ भाग्य के नाश होने से ही सम्पदाओं का क्षय हुआ करता है उपभोग करने से कभी भी सम्पत्ति का नाश नहीं होता है। यदि पूर्व जन्म का अर्जित सुकृत विद्यमान है तो सम्पत्ति का कभी भी नाश नहीं होता है ॥ १२ ॥ विप्रों का भूषण केवल एक विद्या ही होती है—पृथिवी का भूषण नृप है-आकाश का आभरण चन्द्रमा है और शील सबका भूषण हुआ करता है अतएव शील वृत्ति का सबसे अधिक महत्त्व होता है ॥१३॥ ये सब चन्द्रमा के समान परमोच्च एवं सुन्दर राजा के पुत्र भीमसेन और अर्जुन आदि अत्यधिक शूरवीर-सत्य प्रतिज्ञा वाले-दिनकर के वपु वाले और साक्षात् केशव भगवान् के द्वारा उपगूढ़ भी थे किन्तु दुष्ट ग्रहों के फेर में अवस्थित होकर ऐसे कार्पण्य के वश में स्थित होगये थे भिक्षा वृत्ति भी उन्हें करनी पड़ी थी। इसलिये यही ज्ञात होता है कि किस दशा में कौन समर्थ हो सकता है। यह कर्मों की रेखा विधि के वश मे अच्छे-अच्छों को भी भ्रमित करा दिया करती है भाग्य सर्वोपरि और सबसे प्रबल हुआ करता है। इसके आगे किसी का भी कुछ वश नहीं चलता है-यह परम सिद्धान्त है ॥१४॥

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो यन कपालपाणिरमरो भिक्षाटनं कारितः
सूर्य्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥१५

दाता बलिर्याचनको मुरारिर्दानं मही विप्रमुखस्य मध्ये ।
दत्त्वा फलं बन्धनमेव लब्धं नमोऽस्तु ते दैव यथेष्टकारिणे ॥१६

माता यदि भवेल्लक्ष्मीः पिता साक्षाज्जनार्दनः ।
कुबुद्धिप्रतिपत्तिश्चेत्तद्दण्डं विधृतं सदा ॥१७

येन येन यथा यद्वत्पुरा कर्म सुनिश्चितम् ।
तत्तदेवान्तरा भुङ्क्ते स्वयमाहितमात्मनः ॥१८

आत्मना विहितं दुःखमात्मना विहितं सुखम् ।
गर्भशय्यामुपादाय भुङ्क्ते वै पौर्वदेहिकम् ॥१९

न चान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये न पर्वतानां विविधप्रदेशे ।
न मातृमूर्ध्नि प्रधृतस्तथाङ्के त्यक्तुं क्षमः कर्मकृतं नरो हि ॥
न मातृमूर्ध्नि प्रधृतस्तथाङ्के त्यक्तुं क्षमः कर्मकृतं नरो हि ॥२०

दुर्गस्त्रिकूटः परिखा समुद्रो रक्षांसि योधाः परमा च वृत्तिः ।
शास्त्रञ्च वै तूशनसा प्रदिष्टं स रावणः कालवशाद्विनष्टः ॥२१

जिस महामहिम कर्म ने ब्रह्मा को भी इस ब्रह्माण्ड रूपी भाण्ड के उदर में एक कुम्हार की भाँति नियमित कर दिया है - जिस कर्म ने साक्षात् विष्णु भगवान् को भी दश अवतार धारण करने जङ्गल में महान् सङ्कट में डाल दिया है - जिस कर्म ने महान् देव रुद्र को कपाल हाथ में लेकर भिक्षाटन करने वाला बना दिया है और जिस कर्म की गति के वश में ही सूर्यदेव नित्य-प्रति गगन में भ्रमण किया करते हैं उस परम प्रबल कर्म के लिये हमारा बारम्बार नमस्कार है। कर्म ही सबसे प्रधान एवं प्रमुख होता है जो बड़े-बड़ों को भी अपने अधीन करके घुमाता रहता है ॥ १५ ॥ राजा बलि के समान महान् श्रेष्ठ दान देने वाला-साक्षात् विष्णु वामन रूप धारण करने वाले याचक-भूमि जैसा परमोत्तम दान और विप्र के मुख में फल देकर भी राजा बलि ने इसके परिणाम में बन्धन ही प्राप्त किया था। हे दैव ! यथेष्ट फल देने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है। दैवकी प्रबलता सबसे अधिक होतीहै।१६। यदि माता साक्षात् स्वयं महालक्ष्मीहो और पिता साक्षात्भगवान् जनार्दनही हों तो भी यदि बुरी बुद्धिकी प्रतिपत्ति हो तो उसका सदा दण्ड धारण करना

ही पड़ता है। बुद्धि की शुद्धता का परम महत्व जीवन में होता है ॥१७॥ जिस–जिस ने जैसा जो पहिले कर्म किया है यह अनिश्चित है कि वह वैसा ही स्वयं अपने आपके द्वारा कृत कर्म का फल अवश्य ही भोगा करता है। इस कर्मों के फल को कोई शक्ति मिटाने वाली नहीं है ॥१८॥ अपने ही द्वारा दुःख प्राप्त करने के कर्म किये जाते हैं और अपनी आत्मा से सुख भी किया जाता है अर्थात् सुख और दुःखों का प्रदान करने वाला यह प्राणी स्वयं ही होता है अन्य कोई नहीं होता। गर्भ की शय्या को प्राप्त कर यह पूर्व जन्म के किये हुओं को भोगा करता है ॥१९॥ किये हुये कर्म को मनुष्य आकाश में—समुद्र के मध्य में—पर्वतों के विभिन्न प्रदेश में—माता के मूर्द्धा में तथा अङ्क में रहकर भी त्याग करने में समर्थ नहीं होता है। माता के मस्तक पर या उसके अङ्क में रहकर भी कृत कर्म का त्याग नहीं कर सकता है अर्थात् किये हुये कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। इससे बचाव कहीं भी नहीं हो सकता है ॥२०॥ जिसका दुर्ग त्रिकूट था और उस दुर्ग की परिखा (खाई) समुद्र जैसी अथाह एवं सुविस्तीर्ण थी—राक्षस महाबली जिसके युद्ध करने वाले योधा और परमा जिसकी वृत्ति थी। असुर गुरु उशना के द्वारा जिसने सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन किया था वह राक्षस राजा रावण भी काल के वश में आकर नष्ट होगया था ॥२१॥

यस्मिन्वयसि यत्काले यद्दिवा यच्च वा निशि।
यन्मुहूर्त्ते क्षणे वापि तत्तथा न तदन्यथा ॥२२
गच्छन्ति चान्तरिक्षे वा प्रविशन्ति महीतले।
धारयन्ति दिशः सर्वा नादत्तमुपलभ्यते ॥२३
पुराधीता च या विद्या पुरा दत्तञ्च यद्धनम्।
पुरा कृतानि कर्माणि अग्रे धावन्ति धावतः ॥२४
कर्माण्यत्र प्रधानानि सम्यगृक्षे शुभग्रहे।
वसिष्ठकृतलग्नेऽपि जानकी दुःखभाजनम् ॥२५
स्थूलजङ्घो यदा रामः शब्दगामी चलक्ष्मणः।
घनकेशी यथा सीता त्रयस्ते दुःखभाजनम् ॥२६

नि पिण्डकर्मणा पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा ।
कर्मजन्यशरीरेषु रोगाः शरीरमानसाः ॥२७
शरा इव पतन्तीह विमुक्ता दृढधन्विनः ।
अतो गे शास्त्रगर्भिण्या धिया धीरोऽर्थमीहते ॥२८

जिस अवस्था में-जिस समय में जिस दिन में जिस रात्रि में—जिस मुहूर्त्त में और जिस क्षण में जो भी जैसा होने वाला होता है वही होकर रहा करता है । इससे अन्यथा कभी नहीं होता है ॥ २२ ॥ चाहे अन्तरिक्ष में चले जावें या मही के तल में प्रवेश करें अथवा सभी दिशाओं में कहीं भी चले जावें जो नहीं दिया है वह कहीं भी नहीं मिल सकता है ॥२३॥ पहले जन्म में जो विद्या का अध्ययन किया है और पहिले जो धन का दान दिया है तथा पहिले जन्म में जो भी कर्म किये हैं वे सभी आगे दौड़कर चला करते हैं ॥२४॥ सम्यक् अच्छे नक्षत्र और शुभ ग्रह होने पर भी इस संसार में कर्मों की ही प्रधानता होती है । महर्षि वशिष्ठ मनीषी के द्वारा लग्न का शोधन कर निश्चित करने पर भी जानकी को दुःखों का भोग करना ही पड़ा था ॥२५॥ स्थूल जंघा वाले राम शब्दगामी लक्ष्मण और धनकेशी सीता ये तीनों ही दुखों के भाजन हुये थे ॥२६॥ पिंड कर्म से पुत्र और पुत्र कर्म में पिता नहीं होते हैं । शारीरिक और मानसिक रोग कर्म जन्य शरीरों में हुआ करते हैं ॥२७॥ दृढ़ धनुष धारी पुरुष के द्वारा छोड़े हुये शरों की भाँति यहाँ आकर ये निपतित होते हैं । इसलिये शास्त्रों के गर्भ वाली बुद्धि से धीर पुरुष अर्थ की चाह किया करता है ॥२८॥

बालो युवा च वृद्धश्च यः करोति शुभाशुभम् ।
तस्यां तस्यामवस्थायां भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि ॥२९
अनिच्छमानोऽपि नरो विदेशस्थोऽपि मानवः ।
स्वकर्मपोतवातेन नीयते यत्र तत् फलम् ॥३०
प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपि तं वारयितुं न शक्तः ।
अतो न शोचामि न विस्मयो मे ललाटलेखा न पुनः प्रयाति
(यदस्मदीयं न तु तत् परेषाम्) ॥३१

सर्पः कूपे गजः स्कन्धे आखुर्बिले च धावति ।
नरः शीघ्रतरादेव कर्मणः कः पलायति ॥३२
नाल्पायति हि सद्विद्या दीयमानापि बर्द्धते ।
कूपस्थमिव पानीयं भवत्येव बहूदकम् ॥३३
येऽर्था धर्मेण ते सत्या ये धर्मेण गताः श्रियः ।
धर्मार्थी च महान्लोके तत्स्मृत्वा ह्यर्थकारणात् ॥३४
अन्नार्थी यानि दुःखानि करोति कृपणो जनः ।
तान्येव यदि धर्मार्थी न भूयः क्लेशभाजनम् ॥३५

बालक–युवा और वृद्ध जो भी शुभ तथा अशुभ कर्म करता है उस–उस अवस्था में उनका फल जन्म–जन्मान्तर में भोगता है ॥२९॥ इच्छा न करता हुआ भी और विदेश में स्थित होने वाला भी मानव अपने कर्म रूपी पोत के बात द्वारा उसका फल वहाँ पहुँचा दिया जाया करता है ॥३०॥ जो प्राप्त होने के योग्य अर्थ होता है उसे मनुष्य अवश्य ही प्राप्त कर लेता है । देव भी उसको रोकने में समर्थ नहीं होता है । इसलिये मैं इसके लिये कोई भी चिन्ता या शोच नहीं करता हूँ । मुझे विस्मय भी नहीं होता है क्योंकि ललाट में लिखी हुई लेखा को कोई भी बदल नहीं सकता है अर्थात् वह अन्यथा नहीं होती है । जो हमारे भाग्य में बदा है अर्थात् हमारे कर्मों के अनुसार जो भी हमारा प्राप्त होने वाला है वह हमको अवश्य ही मिलेगा किसी अन्य को नहीं मिल सकता है ॥ ३१॥ सर्प कूप में–गज स्कन्ध में और चूहा बिल में दौड़ लगाता है । कौन से मनुष्य शीघ्रतर कर्म से पलायन करता है ? ॥ ३२ ॥ दूसरों की प्रदान की हुई विद्या कभी भी कम नहीं होती है प्रत्युत वह दूसरों के देने पर अधिक बढ़ती है । कूप में रहने वाले पानी की तरह वह बहूदक होती है ॥ ३३ ॥ जो अर्थ धर्म के द्वारा होते हैं वे ही सत्य हुआ करते हैं और धर्म पूर्वक प्राप्त की गई है वह ही वास्तविक श्री है । इस लोक में धर्म का ही अर्थी पुरुष महान् होता है । अतएव अर्थ के कारण से उसका ही स्मरण रखना चाहिए ॥ ३४ ॥ अन्न के चाहने वाला पुरुष अत्यन्त कृपण होता हुआ जिन दुःखों को भोगता है

उन्हीं दुःखों यदि धर्म का अर्थी करे तो फिर किसी भी क्लेश का वह पात्र ही नहीं हो सकता है ॥३५॥

सर्वेषामेव शौचानामन्नशौचं विशिष्यते ।
योऽन्न र्थैरशुचिः शौचान्न मृदा वारिणा शुचिः ॥३६
सत्यशौचं मनःशौचं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूते दया शौच चलशौचञ्च पञ्चमम् ॥३७
यस्य सत्यञ्च शौचञ्च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः ।
सत्यं हि वचनं यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते ॥३८
मृत्तिकानां स स्रे ण उदकानां शतेन च ।
न शुद्धयति दुराचारो भावोपहतचेतनः ॥३९
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥४०
न प्रहृष्यति सम्माने नावमानेन कुप्यति ।
न क्रुद्धः परुषं ब्रूयादेतत् साधोस्तु लक्षणम् ॥४१
दरिद्रस्य मनुष्यस्य प्राज्ञस्य मधुरस्य च ।
काले श्रुत्वा हितं वाक्यं न कश्चित्परितुष्यते ॥४२

समस्त प्रकार के शौचों में अन्न की शुचिता का एक अत्यन्त विशेष स्थान होता है । जो अन्न का अर्थी अशुचि हो जावे अर्थात् अनुचित अन्न के सेवन से जो अशुचिता होती है वह जल और मिट्टी से कभी दूर नहीं हो सकती है ॥ ३६ ॥ सत्यता के पालन करने से शुचिता होती है—शुद्ध मन के होने से भी शुचिता हुआ करती है और अपनी समस्त इन्द्रियों पर निग्रह एवं नियन्त्रण रखने से भी शौच होता है । समस्त प्राणियों पर हृदय में दया का भाव रखने से शुचिता होती है । पाँचवाँ शौच जो होता है वह अस्थिर हुआ करता है ॥ ३७ ॥ जिस मानव को सत्य और शौच होता है उसको स्वर्ग का प्राप्त करना कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है । जिसके वचन में सर्वदा सत्य विराजमान रहता है उसका पुण्य-फल अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक होता है ॥ ३८ ॥

भावनाओं से उपहत चेतना वाला दुराचार ऐसा प्रबल होता है कि उसकी अशुचिता सहस्रों बार मृत्तिका से तथा सैकड़ों बार जल से धोने पर भी नष्ट नहीं होती है ॥३६॥ जिसके हाथ-पैर और मन सुसंयत होते हैं उसको विद्या-तप और कीर्त्ति की प्राप्ति होती है और वह तीर्थ के फल को प्राप्त किया करता है ॥४०॥ जो पुरुष सम्मान के पाने पर प्रसन्न नहीं होता है और अपमान हो जाने पर कभी कोप नहीं किया करता है। जो क्रोध में भरकर कभी अपने मुख से कठोर वचन नहीं बोलता है-यह एक महान् साधु पुरुष के लक्षण होते हैं ॥४१॥ दरिद्र मनुष्य के और मधुर प्राज्ञ के समय पर हित वाक्य श्रवण करके कोई परितुष्ट नहीं हुआ करता है ॥४२॥

न मन्त्रबलवीर्य्येण प्रज्ञया पौरुषेण च ।
अलभ्यं लभ्यते मर्त्यस्तत्र का परिवेदना ॥४३
अयाचितो मया लब्धो मत्प्रेषितः पुनर्गतः ।
यत्रागतस्तत्र गतस्तत्र का परिवेदना ॥४४
एकवृक्षे सदा रात्रौ नानापक्षिसमागमः ।
प्रभातेऽन्यदिशं यान्ति का तत्र परिवेदना ॥४५
एकस्वार्थप्रयातानां सर्वेषान्तत्र गामिनाम् ।
यस्त्वेकस्त्वरितो याति का तत्र परिवेदना ॥४६
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि शौनक ।
अव्यक्तनिधनान्येव का तत्र परिवेदना ॥४७
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि ।
कुशाग्रेण तु संस्पृष्ट प्राप्तकालो न जीवति ॥४८
लब्धव्यान्येव लभते गतव्यान्येव गच्छति ।
प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति दुःखानि च सुखानि च ॥४९

मन्त्र-बल-वीर्य-प्रज्ञा और पौरुषसे मनुष्य आलस्य पदार्थों की प्राप्ति नहीं किया करते हैं। इसलिये इस अप्राप्तिके विषयमें कुछ भी दुःख नहीं मानना चाहिये।॥४३॥जिसकी मैंने कभी याचना नहींकी थी उसेमैंने प्राप्त करलियाथा और मेरा भेजाहुआ वह फिर मुझसे चलागया है।जहाँसे वह

आया था वहीं पर चला गया है अर्थात् जिस प्रदाता ने मुझे दिया था उसी ने उसे पुन: ले लिया है तो इसके लिये दु:ख मानने की कोई आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिए ।।४४।। एक ही वृक्ष पर रात्रि के समय में इधर–उधर से अनेक पक्षियों का समागम हो जाया करता है । प्रात:काल के होने पर वे सभी जो एक साथ रहे थे विभिन्न दिशाओं में उड़कर चले जाया करते हैं तो इसके लिए कुछ भी परिवेदना नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह समागम तो अस्थायी था और उसका वियोग भी होना ही है। तात्पर्य यह है कि यह सांसारिक संयोग पिता–पुत्र और भाई भतीजे आदि का भी ऐसा ही है। अत: इस विछोह से कभी भी कोई दु:ख नहीं मानना चाहिए ।।४५।। किसी एक ही स्वार्थ के सम्पादन करने के लिये प्रमाण करने वाले सब में जोकि गमन कर रहे हैं उनमें कोई एक शीघ्रता से चलकर आगे निकल जाया करता है तो इसमें क्या दु:ख की बात है ? संसार में भी यही आगे–पीछे संसार त्याग करने का क्रम रहा करता है ।।४६।। हे शौनक ! ये समस्त भूतों का आदि कारण अव्यक्त है–मध्यम में ये सब व्यक्त स्वरूप वाले होतेहैं । इन सबका निधन भी अव्यक्त ही है । इसलिए इस विषय में दुख मानने की क्या बात है ।। ४७ ।। जिसका समय नहीं आया है सैकड़ों शरों से विद्ध होकर भी कभी नहीं मरा करता है और जिसकी मृत्यु का समय ही उपस्थित हो गया है वह एक कुशा के अग्र भाग से भी मर जाता है और किसी भी उपाय से वह जीवित नहीं रहा करता है । मृत्यु का एक नियतसमय होताहै शेष सबतो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं ।।४८।। जो प्राप्त होने वाले होते हैं उन्हीं को मानव प्राप्त किया करता है और जहाँ पर जाना सुनिश्चित होता है वहीं पर वह जाया करता है जिनके प्राप्त होने का योग भाग्य में वदा है उन्हीं पदार्थों को मानव प्राप्त किया करता है । दु:ख और सुख भी इसी प्रकार से हुआ करते हैं ।।४९।।

ततः प्राप्नोति पुरुषः किं प्रलापं करिष्यति ।
आचोद्यमानानि तथा पुष्पाणि च फलानि च ।।
स्वकालं नातिवर्त्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ।।५०

शीलं कुलं नैव न चैव विद्या ज्ञानं गुणा नैव न बीजशुद्धिः ।
भाग्यानि पूर्वं तपसार्जितानि काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः॥

तत्र मृत्युर्यत्र हन्ता तत्र श्रीर्यत्र सम्पदः ।
तत्र तत्र स्वयं याति प्रेष्यमाणः स्वकर्मभिः ॥५२
भूतपूर्वं कृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ॥५३
एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
सुकृतं भुङ्क्ष्व चात्मीयं मूढ़ किं परितप्यसे ॥५४
यथा पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति ।
एवं पूर्वकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥५५
नीचः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥५६

उसी भाग्य के अनुसार पुरुष प्राप्त किया करता है अतएव प्रलाप करना व्यर्थ ही होताहै जैसे पूर्व से ही प्रेरित हुए फल और पुष्प स्वतः ही समय पर प्राप्त हुआ करतेहैं । इसी भाँति पूर्वकृत कर्म कभी अपने समय का अतिवर्त्तन नहीं किया करते हैं । समय पर पूर्वकृत कर्मों का फल अवश्य ही प्राप्त होताहै ॥५०॥ पूर्व जन्म में तपश्चर्या के द्वारा जो भाग्य का निर्माण किया है वह समय आजाने पर फल दिया ही करता है जैसे अपना काल उपस्थित होजाने पर वृक्ष फलों की उपज किया करते हैं । भाग्योदय में शील — कुल- विद्या– ज्ञान–गुण और बीज की शुद्धि कारण नहीं बनते हैं । इन सबसे रहित पुरुष भी पूर्व सुकृत् के कारण महान् भाग्यशाली होता है।५१।जहांपर हनन करने वाला है वहां पर मृत्यु भी है और जहाँ सम्पदाऐं हैं वहाँ श्री विद्यमान रहा करती है । वहाँ-वहाँ पर वह स्वयं ही अपने कर्मों के द्वारा प्रेष्यमाण होकर पहुँच जाता है ॥५२॥ पहिले किया हुआ कर्म उसके करने वाले के साथ ही रहता है जिस तरह सहस्रों धेनुओं में बछड़ा अपनी माता के ही पास पहुंचा करता है ॥५३॥ इसी प्रकार से पूर्व में किया हुआ कर्म उसके करने वाले के समीप में पहुंचता है और वह कहता है कि हे मूढ़ ! अपने सुकृत् फल भोगले,

व्यर्थ में ही क्यों परिताप कर रहा है ॥५४॥ पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म च हे वह शुभ हो या अशुभ हो सर्वदा उसके करने वाले के साथ ही रहा करता है ॥५५॥ नीच पुरुष दूसरों के सरसों के बराबर छिद्रों को भी देखा करता है और अपने दोषों के फल के बराबर भी अर्थात् बड़े-बड़े दोषों को भी देखते हुए भी नहीं देखता है ॥५६॥

रागद्वेषादियुक्तानां न सुखं कुत्रचिद् द्विज ।
विचार्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निवृत्तिः ॥५७
यत्र स्नेहो भयं तत्र स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानि दुःखानि तस्मिंस्त्यक्ते महत्सुखम् ॥५८
शरीरमेवायतनं दुःखस्य च सुखस्य च ।
जीवितञ्च शरीरञ्च जात्यैव सह जायते ॥५९
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयो ॥६०
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्त्तते ॥६१
यद्गतं तदतिक्रान्तं यदि स्यात्तच्चदूरतः ।
वर्त्तमानेन वर्त्तेत न स शोकेन वाध्यते ॥६२

हे द्विज ! जो पुरुष राग और द्वेष से युक्त होते हैं उनको कहीं भी सुख प्राप्त नहीं हुआ करता है । विचार कर मैं भली भाँति देख रहा हूँ कि सुख वस्तुतः वहीं पर होता है जहाँ निवृत्ति होती है ॥५७॥ जहाँ पर स्नेह होता है वहां पर भय भी रहता है क्योंकि स्नेह दुःख का आधार हुआ करता है । दुःखों का मूल स्नेह ही होता है अतएव उस स्नेह के त्याग कर देने पर महान् सुख हो जाता है ॥५८॥ यह शरीर ही दुःख और सुख का आयतन होता है । जीवित और शरीर जाति से ही साथ उत्पन्न होता है ॥५९॥ पराये अधीन सभी कुछ का रहना दुःख होता हैं और सबका अपने अधीनता में रहना सुख होता है । संक्षेप स्वरूप से सुख और दुःख का यही लक्षण होता है । इस संसार में मनुष्यों को सुख और दुःख एक चक्र की भाँति परिवर्त्तित हुआ करते हैं अर्थात् सुख के बाद दुःख और दुःख के पश्चात् सुख आया ही करता है ॥६०॥

सुख के अनन्तर दुःख और दुःख के अनन्तर सुख आता है । चक्र का परिवर्त्तन भी इसी तरह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे हुआ करता है ॥६१॥ जो हो गया वह अति क्रान्त है । जो होने वाला है वह दूर है जो वर्त्तमान से वरतता है वह शोक से बाधित नहीं होता है ॥६२॥

७०—नीतिशास्त्र कथन (२)

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः ॥
कारणादेव जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ॥१
शोकत्राणं भयत्राणं प्रीतिविश्वासभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥२
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥३
न मातरि न दारेषु न सोदर्य्ये न चात्मजे ।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ मित्रे स्वभाजने ॥४
यदीच्छेत्शाश्वतीं प्रीतिं त्रीणि दोषाणि वर्जयेत् ।
द्यूतमर्थप्रयोगञ्च परोक्षे दारदर्शनम् ॥५
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विवक्तासने वसेत् ।
बलबानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।६
विपरीतरतिः कामः स्वायत्तेषु न विद्यते ।
यत्रापायो बधो दण्डस्तथैव ह्यनुवर्त्तते ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इस संसार में कोई भी किसी का मित्र नहीं है और न कोई किसी का शत्रु ही है । यहाँ पर तो कारण के वश होकर ही मित्र तथा शत्रु बना करते हैं ॥१॥ शोक से त्राण करने वाला-भय से सुरक्षा का सम्पादक तथा प्रीति एवं विश्वास का पात्र 'मित्र' यह दो अक्षरों वाला उत्तम रत्न किसने सृसित किया है? ॥२॥ जिसने केवल एक ही बार परमप्रीति एवं भक्ति के भावसे 'हरि'-यह भगवान्के दोअक्षर का पुनीत नाम का उच्चारण किया है उसने मोक्ष की प्राप्ति को गमन

करने के लिये अपने परिकर को बद्ध कर लिया है ॥ ३ ॥ स्वभाव से समुत्पन्न मित्र में मनुष्य का जैसा परम सुदृढ़ विश्वास होता है वैसा विश्वास अपनी माता–पत्नी सहोदर भाई—और पुत्र में भी नहीं हुआ करता है ॥४॥ यदि सर्वदा बनी रहने वाली प्रीति को स्थिर रखने की इच्छा है तो वहां पर तीन दोषों का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये—द्यूत क्रीड़ा करना धन के लेने-देने का प्रयोग और परोक्ष में स्त्रियों को देखना या उनसे सम्भाषण करने का काम ॥५॥ अपनी माता—भगिनी-पुत्री इनके साथ विविक्त आसन पर कभी निवास नहीं करना चाहिये क्योंकि इन्द्रियों का समुदाय अत्यन्त बलवान् होता है और यह महान् विद्वान् को भी कर्षित कर लेता है अर्थात् महान् पाप कर्म करने की ओर खींच लिया करता है ॥६॥ अपने अधीन रहने वालों में विपरीत रति वाला काम नहीं होता है। जहाँ अपाय वध दण्ड है वैसा ही अनुवर्त्तन होता है ॥७॥

अपि कल्पानिलस्यैव तुरगस्य महोदधेः।
शक्यते प्रसरो बोद्धुं नह्यरक्तस्यचेतसः ॥८

क्षणं नास्ति रहो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता जनः।
तेन शौनक नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥९

एकं वै सेवते नित्यमन्यं चेतसि रोचते।
पुरुषाणामलाभेन नारी चैव पतिव्रता ॥१०

जननी यानि कुरुते रहस्यं मदनातुरा।
सुतैस्तानि न चिन्त्यानि शीलविप्रतिपत्तिभिः ॥११

पराधीना निद्रा परहृदयकृत्यानुसरणं
सदा हेलाहास्यं नियतमपि शोकेन रहितम्।
परो न्यस्तः कायः विटजनखुरैर्दारितगलो
बहूत्कण्ठाबृत्तिर्जगति गणिकाया बहुमतः ॥१२

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खाः सर्पा राजकुलानि च।
नित्यं परोपसेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट् ॥१३

किं चित्रं यदि शब्दशास्त्रकुशलो विप्रो भवेत्पण्डितः

किं चित्रं यदि दण्डनीतिकुशलो विप्रो भवेद्धार्मिकः ।
किं चित्रं यदि रूपयौवनवती योषिन्न साध्वी भवेत्
किं चित्रं यदि निर्धनोऽपि पुरुषः पापं न कुर्यात्क्वचित्॥१४

वल्पानिल का-तुरग और महोदधि का प्रसर जाना जा सकता है किन्तु अरक्त चित्त का नहीं जान सकते हैं ।।८।। हे शौनक ! क्षण मात्र का समय नहीं प्राप्त होता है—एकान्त स्थल भी कभी नहीं मिलता है और कभी प्रार्थना करने वाला पुरुष भी नहीं प्राप्त हुआ करता है ऐसे ही तीन कारण रहा करते हैं जिसके कारण से नारियों के सतीत्व रक्षा हो जाया करती है अन्यथा उक्त कारण यदि हों तो फिर नारियों के सतीत्व का वचन महान् कठिन ही होता है ।।९।। एक पुरुष को तो वह नित्यप्रति सेवन किया करती है तो भी उसके चित्त में अन्य पुरुष के सेवन करने की रुचि बनी रहा करती है । पुरुषों की प्राप्ति न होने से ही नारी पतिव्रता रहा करती है ।।१०।। माता मदन से आतुर होकर जिन कर्म कलापों को रहस्य में किया करती है पुत्रों को उन पर चिन्तन नहीं करना चाहिये क्योंकि वे शील की विप्रतिपत्ति करने वाले होते हैं ।।११।। निद्रा पराधीन होती है—पराये हृदय के कृत्यों का अनुसरण-सदा हेला हास्य शोक से भी रहित होताहै । संसार में गणिका का जीवन ऐसा होता है कि उसका शरीर पैसे के प्राप्त करने के लिये सदा निरत रहता है और विद्वजनों के द्वारा उसका गला सदा विदारित रहा करता है वह बहुतों की उत्कण्ठाको संतृप्त की वृत्ति वाली और बहुत से लोगों की इच्छा पूर्ण करने वाली मानी गई है ।। १२ ।। अग्नि—जल—स्त्रीगण – सर्प और राजकुल ये नित्य परोपसेव्य अर्थात् दूसरों के सेवन करने के योग्य होते हैं और ये छै सद्य प्राणों के हरण करने वाले भी हैं ।।१३।। इसमें कौन-सी आश्चर्य की बात है कि यदि शब्द शास्त्र में कुशलप्रिय पण्डित होताहै । यह भी कोई विचित्र बात नहीं है कि दण्ड नीति में कुशल विप्र धार्मिक है। इसमें भी कुछ विचित्रता नहीं है कि रूप-लावण्य से सम्पन्न स्त्री सती-साध्वी न रहे और यह भी कुछ अद्‌भुत बात नहीं है कि कोई निर्धन पुरुष कहीं भी कोई पाप कर्म नहीं करता है ।।१४।।

नात्मच्छिद्रं परे दद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य च।
गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि परभावञ्च लक्षयेत् ॥१५
पातालतलवासिन्य उच्चप्राकारछादिताः।
यदि नो चिकुरोद्भेदः स्त्रियाः केनोपलभ्यते ॥१६
समधर्मा हि मर्मज्ञस्तीक्ष्णः स्वजनकण्टकः।
न तथा बाधते शत्रुः कृतवैरो बहिःस्थितः ॥१७
स पण्डितो यो ह्यनुरञ्जयेद्वै मिष्टेन बालं विनयेन् शिष्टम्।
अर्थेन नारीं तपसा हि देवान्सर्वांश्च लोकांश्च सुसंग्रहेण॥१८
छलेन मित्रं कलुषेण धर्मं परोपतापेन समृद्धिभावम्।
सुखेन विद्यां परुषेण नारीं वांछति वै ये न च पण्डितास्ते।१९
फलार्थी फलिनं वृक्षं यश्छिन्द्याद् दुर्मतिर्नरः।
निष्फलं तस्य वै कार्य्यं तन्मूल दोषमाप्नुयात् ॥२०
साधनो हि तपस्वी च दूरतो वै कृतश्रमः।
मद्यपा स्त्री सतीत्येवं विप्र न श्रद्दधाम्यहम् ॥२१

कभी भी अपने छिद्र अर्थात् अपने आपके दोष या त्रुटि को दूसरों को नहीं देना चाहिये और दूसरे के छिद्र को भी न देवे। घर में कछुए के अङ्गों की भाँति परभाव को देखना चाहिए ॥१५॥ पाताल तल की निवास करने वाली और उच्च प्रकार से छादित स्त्रियों का यदि चिकुरोद्भेद न हो तो वे किसके द्वारा प्राप्त की जाया करती है ?॥१६॥ वैर करनेवाला और बाहिर रहनेवाला शत्रु उसप्रकारकी वाधानहीं किया करता है जैसी वाधा करने वाला समान धर्म वाला-मर्म का ज्ञाता-तीक्ष्ण अपना जनकष्टक होताहै॥१७॥वही पुरुष वास्तवमें पण्डितहै जो अपनेमीठे भाषण से बालकों का अनुरञ्जन किया करता है और विनय के भाव से शिष्ट पुरुषों को प्रसन्न किया करता है— धन से नारी को तपश्चर्या से देवों को— समस्त लोगों को सुसंग्रह से अनुरंजन करते हैं उनको ही पण्डित कहते हैं। जो छल से मित्र को—कलुष से धर्म को— परोपताप से समृद्धि के भाव को-सुख से विद्या को और कठोरता

से नारी को जो चाहते हैं वे पण्डित पुरुष नहीं कहे जा सकते हैं ॥१८॥ ॥१६॥ फलों की इच्छा रखने वाला मनुष्य यदि फलों से युक्त वृक्षों का छेदन करता है तो वह मनुष्य दुर्मति ही होता है। ऐसे पुरुष का कार्य निष्फल ही होता है और उसका मूल दोष को प्राप्त होता है। हे विप्र! साधन सम्पन्न तपस्वी हो-दूर से श्रम करने वाला-मद्यपान करने वाली स्त्री सती है—यह मैं कभी भी श्रद्धा के साथ विश्वास नहीं करता हूँ ॥२०॥२१॥

न विश्वसेदविश्वस्ते मित्रस्यापि न विश्वसेत्।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥२२
सर्वभूतेषु विश्वासः सर्वभूतेषु सात्त्विकः।
स्वभावमात्मना गुह्यमेतत्साधोर्हि लक्षणम् ॥२३
यस्मिन्कस्मिन्कृते कार्ये कर्त्तारमनुवर्त्तते।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि धैर्य्यबुद्धिं तु कारयेत् ॥२४
वृद्धाः स्त्रियो नवं मद्यं शुष्कमांसं त्रिमूलकम्।
रात्रौ दधि दिवा स्वप्नं विद्वान्षट् परिवर्जयेत् ॥२५
विषं गोष्ठी दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम्।
विषं कुशिक्षिता विद्या अजीर्णे भोजनं विषम् ॥२६
प्रियं दानमकुण्ठस्य नीचस्योच्छासनं प्रियम्।
प्रियं दानं दरिद्रस्य यूनश्च तरुणी प्रिया ॥२७

अत्यम्बुपानं कठिनाशनञ्च धातुक्षयो वेगविधारणञ्च।
दिवाशयो जागरणञ्च रात्रौ षड्भिर्नराणां निवसन्ति रोगाः॥२८

जो विश्वास का पात्र नहीं है उसमें कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये और जो मित्र है उसको विश्वास का पात्र रहते हुये भी उसका भी पूर्णतया विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि, किसी समय में वह विश्वस्त मित्र कुपित हो जाता है तो फिर सभी कुछ गोपनीय बातों को प्रकाशित कर दिया करता है ॥२२॥ समस्त प्राणियों में विश्वास रखना और सब प्राणियों में सात्त्विक भाव का रखने वाला होना और अपने भाव को अपने आपके ही द्वारा गोपनीय रखना—ये एक साधु पुरुष का लक्षण होता है ॥ २३ ॥ जिस किसी कार्य के

करने पर कर्त्ता का अनुवर्त्तन करता है सर्वथा वर्त्तमान भी धैर्य, बुद्धि को करे ।।२४।। वृद्धा स्त्री-नवीन मद्य—शुष्क आमिष-त्रिमूलक-रात्रि में दधि और दिन में सोना ये छै कार्य विद्वान् पुरुष को वर्जित कर देने चाहिये ।।२५।। दरिद्र पुरुष को गोष्ठी करना विष के तुल्य है और वृद्ध पुरुष को तरुणी विष के समान होती है। कुत्सित सीखी हुई विद्या विषवत् है और पहिला किया हुआ भोजन जब तक जीर्ण न हो जावे ऐसी दशा में और भोजन का कर लेना भी विष के समान होता है ।।२६।। कुण्ठा रहित को दान प्रिय होता है और नीच को उच्छ्वास लेना प्रिय होता है। दरिद्र को दान प्रिय लगता है और युवा पुरुष को तरुणी परम प्रिय प्रतीत हुआ करती है ॥२७।। अत्यन्त अधिक जल का पान करना—कठिन वस्तुओं का खाना-धातु का क्षय होना और वेगों का रोक लेना अर्थात् मल मूत्रादि के त्याग करने के वेग को रोकना-दिन में शयन करना-रात्रि में जागरण करना-इन छै कारणों से मनुष्य के शरीर में रोग निवास किया करते हैं ।।२८।।

बालातपश्चाप्यतिमैथुनञ्च श्मशानधूमः करतापनञ्च ।
रजस्वलावक्त्रनिरीक्षणञ्च सुदीर्घमायुस्त्वपि कर्षयेच्च ।।२९
शुष्कं मांस स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि ।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ॥३०
सद्य; पक्वघृतं द्राक्षा बाला स्त्री क्षीरभोजनम् ।
उष्णोदकं तरुच्छाया सद्यः प्राणकराणि षट् ।।३१
कूपोदकं वटच्छाया नारीणाञ्च पयोधरः ।
शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम् ।।३२
सद्योबलकरास्त्रीणि बालाभ्यङ्गसुभोजनम् ।
सद्योबलहरास्त्रीणि अध्वा च मैथुनं ज्वरः ।।३३
शुष्कं मांस पयो नित्यं भार्य्यामित्रैः सहैव तु ।
न भोक्तव्यं नृपैः सार्द्धं वियोगं कुरुते क्षणात् ।।३४
कुचेलियं दन्तमलापधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम् ।
सूर्य्योदये ह्यस्तमयेऽपि शायिनं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणि म्३५

प्रातःकालीन सूर्य का आतप अत्यन्त मैथुन–श्मशान भूमि की धूँआ हाथों का तपाना–रजस्वला स्त्री के मुख को देखना ये कार्य सुदीर्घ आयु का भी कर्षण किया करते हैं ॥२९॥ शुष्क माँस–वृद्धा स्त्री–बाल सूर्य तरुण (हाल का ही जमा हुआ) दधि–प्रभात काल में मैथुन और निद्रा ये कार्य सद्यः प्राणों के हरण करने वाले हुआ करते हैं ॥३०॥ ताजा पकाया हुआ घृत–दाख–बाला स्त्री–क्षीर का भोजन–उष्ण जल–वृक्ष की छाया—ये छै पदार्थ तुरन्त ही प्राणों का प्रदान करने वाले होते हैं ॥३१॥ कुए का जल–वट वृक्ष की छाया–नारियों का पयोधर–ये वस्तुयें शीतकाल में तो उष्ण होते हैं और उष्ण काल में शीतल रहा करते हैं ॥ ३२ ॥ तुरन्त ही बल को प्रदान करने वाली तीन वस्तुयें हुआ करती हैं–बाला स्त्री-अभ्यङ्ग (तैल का मालिश और उबटन) और सुन्दर सुस्वादु भोजन तुरन्त ही बल के हरण करने वाली तीन वस्तुयें होती हैं—मार्ग का चलना–मैथुन और ज्वर का शरीर में प्रवेश करना ॥३३॥ शुष्क माँस–पय और नित्य भार्या, मित्रों के साथ भोजन कभी न करे और राजाओं के साथ भोजन करना क्षणमात्र में वियोग किया करता है ॥३४॥ बुरे अर्थात् फटे– पुराने एव मैले वस्त्र धारण करने वाले पुरुष को–दाँतों में मैल के धारण करने वाले मानव को–बहुत अधिक भोजन करने वाले मनुष्य को–निष्ठुर वाक्य बोलने वाले नर को और सूर्य के उदय और अस्त के समय में शयन करने वाले व्यक्ति को च है साक्षात् चक्रपाणि ही क्यों न हों श्री छोड़कर चली जाया करती है ॥३५॥

नित्यं छेदस्तृणानां धरणिविलिखनं पादयोश्चापमार्ष्टिः ।
दन्तानामप्यशौच मलिनवसनता रूक्षता मूर्द्धजानाम् ।
द्वे सन्ध्ये चापि निद्रा विवसनशयन ग्रासहास तिरेकः
स्वाङ्गे पीठे च वाद्यं निधनमुपनयेत्केशवस्यापि लक्ष्मीम् ॥३६
शिरः सुधौतं चरणौ सुमार्जितौ वराङ्गनासेवनमल्पभोजनम् ।
अनग्नशायित्वमपर्वमैथुनं चिरप्रनष्टां श्रियमानयन्ति षट् ॥३७
यस्य तस्य तु पुष्पस्य पाण्डरस्य विशेषतः ।
शिरसा धार्य्यमाणस्य अलक्ष्मीः प्रतिहन्यते ॥३८

दीपस्य पश्चिमा छाया छाया शय्यासनस्य च ।
रजकस्य तु यत्तीर्थमलक्ष्मीस्तत्र तिष्ठति ॥३६
बालातपः प्रेतधूमः स्त्री वृद्धा तरुणं दधि ।
आयुष्कामो न सेवेत तथा सम्मार्जनीरजः ॥४०
गजाश्वरथधान्यानां गवाश्चैव रजः शुभम् ।
अशुभश्च विजानीयात्खरोष्ट्रांजाविकेषु च ॥४१
गवां रजो धान्यरजः पुत्रस्याङ्गभवं रजः ।
एतद्रजो महाशस्तं महापातकनाशनम् ॥४२

नित्यप्रति तिनकों का तोड़ना—भूमि पर लिखना—पादों की अपमार्ष्टि—दाँतों की अशुचिता-मलिन वस्त्रों का धारण करना-केशों को रूखा रखना-दोनों सन्धि कालों के समय में निद्रा करना-बिना वस्त्र के नग्न होकर शयन करना-बड़े२ग्रास लेना तथा अत्यन्तहास्य का करना अपने अङ्ग पर और पीठ पर वाद्य का रखना-ये कार्य भगवान् केशव की भी लक्ष्मी का निधन कर दिया करते हैं ॥३६॥ भली भाँति धोया हुआ शिर और भली विधि से धोये हुये अर्थात् स्वच्छ किये हुए पैर-वराङ्गना का सेवन-अल्प भोजन-नग्न न होकर शयन करना पर्व दिवसों को छोड़कर मैथुन करना-ये छै कार्य ऐसे हैं जो कि चिरकाल से नष्ट हुई लक्ष्मी को भी पुनः प्राप्त करा दिया करते हैं ॥३७॥ जिस किसी के पुष्प को विशेष कर पाण्डर के पुष्प को शिर पर धारण करने वाले को अलक्ष्मी का प्रतिहनन हो जाता है ॥ ३८ ॥ दीपक की पश्चिम छाया-शय्या आसन की छाया और रजक का तीर्थ वहाँ पर सर्वदा अलक्ष्मी निवास किया करती है ॥३९॥ बालातप-प्रेत धूम वृद्धा स्त्री-तरुण दधि और सम्मार्जनी की धूल इन वस्तुओं का सेवन आयु की कामना रखने वाले पुरुष को कभी नहीं करना चाहिये ॥४०॥ हाथी, अश्व-रथ और धान्यों की रज तथा गौओं के पद से उठी हुई रज शुभ होती है । गधा—ऊंट-बकरी और भेड़ों के द्वारा उत्थित रज अशुभ जाननी चाहिये ।४१। गौओं की रज और पुत्र के अङ्ग से उठी हुई रज महान् प्रशस्त होती है तथा महान् पातकों का नाश करने वाली हुआ करती है ॥४२॥

अजारजः खररजो यत्तु सम्मार्जनीरजः ।
एतद्रजो महापाप महाकिल्विषकारकम् ॥४३
शूर्पवातो नखाग्राम्बु स्नानवस्त्रमृजोदकम् ।
मार्जनीरेणुः केशाम्बु हन्ति पुण्य पुराकृतम् ॥४४
विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिनोस्तथा ।
अन्तरेण न गन्तव्यं हयस्य वृषभस्य च ॥४५
स्त्रीषु राजाग्निसर्पेषु स्वाध्याये शत्रुसेवने ।
भोगास्वादेषु विश्वासं कः प्राज्ञः कर्त्तुमर्हति ॥४६
न विश्वसेदविश्वस्तं विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति ॥४७
वैरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति ।
स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतितः प्रतिबुध्यते ॥४८
नात्यन्तं मृदुना भाव्यं नात्यन्तं क्रूरकर्मणा ।
मृदुनैव मृदुं हन्ति दारुणेनैव दारुणम् ॥४९

बकरी के पैरों से उठी हुई रज—गधे के द्वारा उत्थित रज और बुहारी से उठी हुई रज—ये तीनों रज महा पाप मय होती हैं और महान् किल्विषों के करने वाली हुआ करती हैं ॥४३॥ सूप की हवा-नखों के अग्र भाग का जल—स्नान वस्त्र की मृजा का जल-मार्जनी की रेणु और केशों का जल-ये पूर्व जन्म के किये हुये कर्म का भी हनन कर देते हैं ॥४४॥ दो विप्रों के मध्य से—विप्र और वह्नि के बीच से—दम्पत्ति के मध्य से—स्वामियों के मध्य से और हय तथा वृषभ के अन्तर से कभी नहीं जाना चाहिये ॥४५॥ स्त्रियों में-राजा-अग्नि-सर्प में—स्वाध्याय में-शत्रु के सेवन में-भोगों के आस्वादों में कौन प्राज्ञ पुरुष विश्वास करने के योग्य होता है अर्थात् कोई भी समझदार व्यक्ति इन उपयुक्तों में विश्वास नहीं करता है ॥४६॥ जो विश्वास का पात्र व्यक्ति नहीं है उसका तो विश्वास कभी करना ही नहीं चाहिये किन्तु जिसे अपना विश्वस्त समझा जाता है, उसमें भी अत्यन्त विश्वास नहीं करना चाहिये । विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है वह मूल से भी निकृन्तन

कर दिया करता है ॥ ४७ ॥ वैरी के साथ सन्धि करके यदि विश्वस्त होकर अवस्थित रहा करता है तो निश्चय ही वह वृक्ष के अग्र भाग पर सोया हुआ होता है जो पतित होकर ही प्रति बुद्ध हुआ करता है ॥४८॥ मानव को इस संसार में अत्यन्त मृदु नहीं होना चाहिये और इस लोक में अत्यधिक क्रूर कर्म करने वाला भी कभी नहीं होना चाहिये। जो मृदु है उसका मृदु होकर ही हनन करे और जो दारुण प्रकृति का हो उसका हनन दारुण होकर ही करे॥४९॥

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं नात्यन्तं मृदुना तथा।
सरलास्तत्र छिद्यन्ते कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥५०
नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जनाः।
शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च ॥५१
अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति यान्ति च।
मार्जार इव लम्फेत तथा प्रार्थयते नरः ॥५२
पूर्वं पश्चाच्चरन्त्यार्य्ये सदैव बहुसम्पदः।
विपरीतमनार्य्ये यथेच्छसि तथा चर ॥५३
षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुःकर्णश्च धार्य्यते।
द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्येको न बुध्यते ॥५४
तया गवा किं क्रियते या न दोग्ध्री न गर्भिणी।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः ॥५५
एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन धीमता।
कुलं पुरुषसिंहेन चन्द्रेण गगनं यथा ॥५६

इस जगतीतल में अत्यन्त सरल अर्थात् सीधा भी न रहे और न बहुत अधिक कोमल स्वभाव वाला ही होकर व्यवहार करे क्योंकि अति सीधे और मृदु सर्वदा हानि ही उठाया करते हैं। वन में जाकर देखो जो सीधे वृक्ष होते हैं उनको लोग काम में लाने के लिये काट लिया करते हैं और टेढ़े-मेढ़े वृक्ष वहाँ पर ही खड़े रहते हैं क्योंकि वे किसी के उपयोग के नहीं होते हैं ॥ ५० ॥ जो फलों से लदे-फदे वृक्ष होते हैं उनकी शाखाऐं नीचे को झुक जाया करती हैं अर्थात् नमनशील होती हैं। इसी प्रकार से गुणों से सम्पन्न पुरुष भी परम

जो सूखे हुए वृक्ष होतेहैं वे और महा मूर्ख न विनम्र हुआ करते हैं। जो सूखे हुए वृक्ष होतेहैं वे और महा मूर्ख न तो भेदन ही किये जाते हैं और न कभी नवा ही करते हैं ।।५१।। दुःखों के प्राप्त करने में कभी कोई प्रार्थना नहीं किया करता किन्तु वे बिना बुलाये ही जिस तरह आया करते हैं और चले जाते हैं उसी तरह प्रार्थना करने वाला मनुष्य मार्जार की भाँति लम्फन किया करता है ।।५२।। जो आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष होते हैं उनमें सदैव आगे और पीछे सम्पदायें अत्यधिक मात्रा में विचरण किया करती हैं। जो अनार्य हैं उनसे इसके विपरीत होता है। अब तुमको जो भी आगे अच्छा लगे वही अपनाना चाहिये ।।५३।। छै कानों में पहुंचने वाली गुप्त बात भिद्यमान हो जाया करती है अर्थात् फैल जाया करती है और उसकी गोपनीयता नहीं रहती है। जो बात केवल दो ही आदमियों में चार कानों तक रहतीहै उसमें गोपनीयता रहा करतीहै। जोकेवल दोही कानों तक अर्थात् एक ही आदमी तक रहती है वह तो ऐसी ही परम गुप्त एवं गोपनीय रहा करती है कि उसे मनुष्य तो क्या ब्रह्मा भी नहीं जान सकता है ।।५४।। उस गो से क्या लाभ है जो न तो दूध ही देती है और न कभी गर्भिणी ही होती है उसी भाँति ऐसे पुत्र से भी क्या फल होता है जो न तो विद्वान् हो और न धार्मिक ही हो। ऐसे पुत्र का तो उत्पन्न होना बिल्कुल व्यर्थ ही होता है ।।५५।। चाहे केवल एकही पुत्र उत्पन्न हो किन्तु वह एक ही यदि सुपुत्र है और धीमान् तथा विद्या से युक्त है तो उस सिंह के समान पुरुष से समस्त कुल चन्द्रमा के द्वारा आकाश की भाँति सुशोभित हो जाता है ।।५६।।

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।
वनं सुवासितं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ।।५७
एको हि गुणवान्पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम्।
चन्द्रो हन्ति तमांस्येको न च ज्योतिः सहस्रशः ।।५८
शरीरमेवायतनं दुःखस्य च सुखस्य च।
प्राप्ते तु षोड़शे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।।५९
जायमानो हरेद्दारान्वर्द्धमानो हरेद्धनम्।
म्रियमाणो हरेत्प्राणान्नास्ति पुत्रसमो रिपुः ।।६०

केचिन्मृगमुखा व्याघ्राः केचिद् व्याघ्रमुखा मृगाः ।
तत्स्वरूपपारज्ञाने ह्यविश्वासः पदे पदे ॥६१
एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥६२
एतदेवानुमन्येन भोगा हि क्षणभङ्गिनः ।
स्निग्धेषु च विदग्धस्य मतयो वै ह्यनाकुलाः । ६३

वन में कोई एक ही वृक्ष हो जो सुगन्ध युक्त पुष्पों से परिपूर्ण हो तो उस एक सुवृक्ष से ही सम्पूर्ण वन सुवासित हो जाया करता है जैसे एक सुपुत्र से सम्पूर्ण कुल प्रख्यात हो जाया करता है ।५७। गुणों से सम्पन्न एक ही पुत्र सबसे श्रेष्ठ है गुण हीन सैकड़ों पुत्रों से भी क्या लाभ है । एक ही चन्द्रमा पूरे व्यापक अन्धकार का नाश कर दिया करता है जिसे सहस्राधिक तारागण रहते हुए भी नष्ट करने की क्षमता नहीं रखते हैं ॥५८॥ पुत्र का लालन पांच वर्ष की अवस्था तक करना चाहिये अर्थात् पाँच वर्ष तक वह कुछ अनुचित मार्ग भी अपनाये तो लाड़ से ही उसे वर्जित कर देवे । इसके पश्चात् जब उसे कुछ बुरे भले का थोड़ा-सा ज्ञान हो जाता है तो छै वर्ष से दस वर्ष तक अर्थात् पन्द्रह की आयु तक बालक को ताड़ना देनी चाहिए डाट-फटकार से उसे सुमार्ग पर लावे । जब सोलहवें वर्ष में वह पदार्पण करे तो फिर उसके साथ एक मित्र की भाँति व्यवहार करे ॥ ५९ ॥ पुत्र उतपन्न होता हुआ भी पत्नी का हरण किया करता है अर्थात् स्त्री के यौवन की आभा का नाश कर पति-मिलन के अयोग्य बना देता है। जब वह बड़ा होजाता है तो धन का हरण किया करता है अर्थात् पिता की समस्त सम्पदा का पूरा अधिकारी बनकर उसको अपने हाथ में ले लिया करता है । यदि पुत्र पिता के सामने ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो पिता को महान् वेदना होती है मानों उसके प्राण ही निकल जाया करते हैं । ऐसा पुत्र के समान अन्य कोई भी शत्रु नहीं है जिसके लिये लोग अत्यन्त लालायित रहते हैं ॥६०॥ कुछ मृग अर्थात् पशु व्याघ्र के समान मुख वाले हुआ करते हैं और कुछ व्याघ्र मृग के तुल्य मुख वाले होते हैं उनके यथार्थ स्वरूप के परिज्ञान प्राप्त करने में पद-पद पर अविश्वास हुआ करता है ॥६१॥ क्षमा

धारण करने वाले पुरुष सब प्रकार से अच्छे माने जाते हैं किन्तु उनमें एक ही बड़ा भारी दोष होता है कि जो क्षमा से युक्त पुरुष होता है उसे लोग शक्ति से हीन समझने लग जाया करते हैं।। ६२ ।। यही माना जाता है कि सांसारिक समस्त भोग क्षणभंगुर होते हैं तो भी स्निग्धों में विदग्ध पुरुष की बुद्धि अनाकुल होती है ।।६३।।

ज्येष्ठः पितृसमो भ्राता मृते पितरि शौनक ।
सर्वेषां स पिता हि स्यात्सर्वेषामनुपालकः ।।६४
कनिष्ठेषु च सर्वेषु समत्वेनानुवर्त्तते ।
समोपभोगजीवेषु यथैव तनयेषु च ।।६५
बहूनामल्पसाराणां समुदायो हि दारुणः ।
तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते । ६६
अपहृत्य परस्वं हि यस्तु दानं प्रयच्छति ।
स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ।।६७
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ।।६८
ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतः ।।६९
नाश्नन्ति पितरो देवाः क्षुद्रस्य वृषलीपतेः ।
भार्य्याजितस्य नाश्नन्ति यस्याश्चोपपतिर्गृहे ।।७०

हे शौनक ! पिता के मृत हो जाने पर ज्येष्ठ भाई पिता के ही तुल्य होता है। वह सबका अनुपालन करने वाला हुआ करता है और सबका इसीलिये पिता होता है ।।६४।। जो भी उससे छोटे होते हैं उन सबके साथ उसका व्यवहार समान होता है जिस प्रकार से तुल्य उपभोग करने वाले और जीवन बिताने वाले पुत्रों में हुआ करता है ।। ६५ ।। अत्यल्प शक्ति वाले भी यदि बहुत से एकत्रित होकर एक समुदाय में संघटित हो जाते हैं तो महान् दारुण शक्तिशाली हो जाया करते हैं जैसे एक-एक तिनके से बनी हुई मोटी रस्सी इतनी मजबूत हो जाया

करती है कि उसमें फिर हाथी जैसे महान् बलवान् पशु को भी बाँध लेने की शक्ति हो जाया करती है ।।६६।। दूसरे का धन अपहरण कर जो फिर उसका दान दिया करता है उसका दान देने वाला पुरुष नरक का गामी होता है और वास्तव में उस दान का यही फल भी होता है ।।६७।। देवोत्तर सम्पत्ति का अपहरण या विनाश करने से-ब्राह्मण का धन अपहरण करने से और ब्राह्मणों का अतिक्रमण करने से कुलों की अकुलता हो जाती है अर्थात् समस्त कुलों का नाश हो जाया करता है ।।६८।। ब्राह्मण का हनन करने वाले-सुरा का पान करने वाले-चोरी करने वाले और व्रत को भग्न करने वाले पुरुष की सत्पुरुषों ने निष्कृति अर्थात् प्रायश्चित बताया है किन्तु जो कृतघ्न होता है। उसका कोई भी प्रायश्चित नहीं होता है। किये हुये उपकार को न मानने वाला पुरुष कृतघ्न कहा जाता है ।।६९।। क्षुद्र और वृषली (शूद्रा) के स्वामी के यहाँ देवगण और पितरगण भोजन नहीं किया करते हैं। जो भार्या के द्वारा जीता हुआ हो अर्थात् भार्या का ही जिस पर पूर्ण प्रभाव हो और जिसकी भार्या का कोई उपपति घर में रहता हो उसके यहाँ भी देव-पितर असन्तुष्ट होते हुए भोजन नहीं किया करते हैं।।७०।।

अकृतज्ञमनार्य्यञ्च दीर्घरोषमनार्जवम् ।
चतुरो विद्धि चाण्डालान्जात्या जायेत पञ्चमः ।।७१
नोपेक्षितव्यो दुर्बुद्धिः शत्रुरल्पोऽप्यवज्ञया ।
वह्निरल्पोऽप्यसंग्राह्यः कुरुते भस्मसाज्जगत् ।।७२
नवे वयसि यः शान्त स शान्त इति मे मतिः ः
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ।।७३
पन्थान इव विप्रेन्द्र सर्वसाधारणः श्रियः ।
मदीया इति मत्वा वै न हि हर्षयुतो भव ।।७४
चित्तायत्तं धातुवश्यं शरीरं चित्ते नष्टे धातवो यान्तिनाशनम् ।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते धातवःसम्भवन्ति ७५

ये चार पुरुष स्वभाव और कर्म के कारण ही चाण्डाल हुआ करते हैं

एक वह जो किये हुए उपकार को नहीं माना करता है। दूसरा वह जो अनार्य होना है अर्थात् जिसमें आर्य होने की श्रेष्ठता का पूर्णतया अभाव होता है। तीसरा वह जिसमें बहुत ही लम्बे समय तक रोष विद्यमान रहता है अर्थात् जिसका क्रोध हृदय में घर बना कर किसी भी प्रकार से निकलता ही नहीं है और चौथा वह है जो सरलता से रहित अर्थात् सदा कुटिल वृत्ति वाला होता है। पाँचवाँ चाण्डाल तो वही है जो उस चाण्डाल जाति से समुत्पन्न होता है ॥७१॥ दुष्ट बुद्धि वाला साधारण शत्रु भी अवज्ञा से अर्थात् इस भावना से कि यह मामूली शत्रु हमारा क्या बिगाड़ सकता है कभी भी उपेक्षा करने के योग्य नहीं होता है अग्नि का छोटा-सा कण भी संग्रह नहीं करने के योग्य ही होता है क्योंकि वह सम्पूर्ण जगत् को ही भस्मसात् कर दिया करता है अर्थात् उस सामान्य-सी अग्नि में भी सब कुछ जला कर राख बना देने की क्षमता विद्यमान रहा करती है ॥७२॥ नई उठती हुई अवस्था में जिसमें स्वाभाविक रूप से कभी शान्ति हुआ ही नहीं करती है जो पुरुष शान्ति से युक्त रहा करता है वही वास्तव में शान्ति प्रकृति वाला पुरुष होता है—ऐसा मेरा विचार है जब उम्र ढल जाती है तो सम्पूर्ण शरीर की धातु क्षीण हो जाया करती हैं उस समय में तो सभी को शान्ति आ जाया करती है क्योंकि किसी भी तरह की शक्ति रहा ही नहीं करती है ॥७३॥ हे विप्रेन्द्र ! मार्गों की भांति श्रियों का उपभोग सबके लिये साधारण होता है अर्थात् जिस तरह मार्गों में सभी के चलने का अधिकार होता है वैसे ही श्री के भोगने का भी सबको हक हुआ करता है। यह श्री मेरी ही है ऐसा मानकर कभी भी प्रसन्नता से युक्त मत होओ। ऐसा मान लेना उचित नहीं है क्योंकि श्री में सभी का अधिकार रहा करता है ॥७४॥ यह शरीर धातुओं के वश में रहने वाला और चित्त के अधीन ही हुआ करना है। जब चित्त ही नष्ट हो जाता है तो सम्पूर्ण धातुयें भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये चित्त की सर्वदा रक्षा करनी चाहिये। जब चित्त स्वस्थ रहता है तो धातुयें भी शरीर में उत्पन्न होकर सबल एवं समर्थ होती हैं। शरीर में चित्त की ही प्रधानता होती है ॥७५॥

७१-नीतिशास्त्र कथन (३)

कुभार्याञ्च कुमित्रञ्च कुराजानं कुपुत्रकम् ।
कुकन्याञ्च कुदेशञ्च दूरतः परिवर्जयेत् ॥१
धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यञ्च दूरङ्गतं
पृथ्वी वन्ध्यफला जनाः कपटिनो लौल्ये स्थिता ब्राह्मणाः ।
मर्त्याः स्त्रीवशगाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नताः
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः ॥२
धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम् ।
परचित्तगतान्दारान्पुत्रं कुव्यसने स्थितम् ॥३
कुपुत्रे निर्वृतिर्नास्ति कुभार्यायां कुतो रतिः ।
कुमित्रे नास्ति विश्वासः कुराज्ये नास्ति जीवितम् ॥४
परान्नञ्च परस्वञ्च परशय्याः परस्त्रियः ।
परवेश्मनि वासश्च शक्रादपि श्रियं हरेत् ॥५
आलापाद् गात्रसंस्पर्शात्संसर्गात्सह भोजनात् ।
आसनाच्छयनाद्यानात्पापं संक्रमते नृणाम् ॥६
स्त्रियो नश्यन्ति रूपेण तपः क्रोधेन नश्यति ।
मार्गो दूर प्रचारेण शूद्रान्नेन द्विजोत्तमः ॥७

सूतजी ने कहा-दुष्ट स्वभाव वाली भार्या और कुत्सित मित्र तथा बुरा राजा एवं कुपुत्र बुरी कन्या और बुरे देश को दूर से ही त्याग देना चाहिए ॥१॥ अब वर्त्तमान कलियुग का प्रभाव बताते हैं-यह युग ऐसा है कि इसमें धर्म तो ऐसा चला गया है कि कहीं भी नाम को भी दिखलाई नहीं देता है —तप भी इस समय में चला गया है अर्थात् तपस्या किसे कहते हैं-यह भी कोई नहीं जानता है। सत्य तो नाम मात्र को भी कलियुग में कहीं है ही नहीं —सत्यता कोई वस्तु है इसकी सत्ता एवं महत्ता को कोई जानता ही नहीं है। समस्त भूमि का भाग ऐसा है कि इसमें जैसी उपज होनी चाहिये वह कहीं भी नहीं होती है। मनुष्य प्रायः सभी कपटका व्यवहार रखने वाले हैं और जो ब्राह्मण

लोग हैं वे बहुत अधिक बतवने होगये हैं अर्थात् चंचलता से पूर्ण है। कलियुग में मनुष्य स्त्रियों के बश में रहा करते हैं। स्त्रियाँ अधिक चंचल हैं। नीच जाति के मनुष्य उन्नतिशील हो गये हैं। इस कलिकाल में जीवन बहुत ही कष्टमय है। वे मनुष्य परम धन्य एवं भाग्यशाली हैं जो अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुके और मर गये हैं॥ २॥ इस घोर कलियुग के समय में उन मृत्यु को प्राप्त होने वाले मनुष्यों को इसी-लिये परम धन्य कहते हैं कि वे न तो इस समय में होने वाले देश के टुकड़ों में बट जाने वाली भगता को देख रहे हैं और न कुलों के क्षय को ही देखते हैं। दूसरों में अपने चित्त को रमाने वाली दाराओं को और बुरे व्यसनों में फँसे हुए पुत्रों को भी वे मर जाने के कारण नहीं देख रहे हैं॥३॥ कुपुत्र में निर्वृति नहीं होती है और जो कुभार्या है उसमें रति भी कैसे हो सकती है। कुमित्र में विश्वास नहीं होता है और बुरे राज्य में जीवन कैसे रह सकता है॥ ४॥ पराया अन्न—पराया धन—दूसरे की शय्या-पराई स्त्री पराये घर में निवाभ ये इन्द्र की भी श्री का हरण करने वाले कार्य होते हैं॥ ५॥ बात-चीत करने से-गात्र (शरीर) के स्पर्श से-सङ्गति से—साथ में बैठ कर भोजन करने से-आसन पर स्थित होने से-साथ में शयन से और साथ में गान करने से मनुष्यों के पाप का संक्रमण हुआ करता है अर्थात् दूसरे का पाप लग जाया करता है॥६॥ स्त्री अधिक रूप-लावण्य के होने से नष्ट हो जाया करती हैं—क्रोध से तपस्या का नाश होता है-दूर प्रचार से मार्ग और शूद्र के अन्न से श्रेष्ठ द्विज का नाश हो जाता है॥७॥

आसनादेकशय्याया भोजनात्पङ्क्तिसङ्करात्।
ततः संक्रमते पापं घटाद्घट इवोदकम्॥८
लालने बहवो दोपास्ताड़ने बहवो गुणाः।
तस्माच्छिष्यञ्च पुत्रञ्च ताडयेन्न तु लालयेत्॥९
अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असंभोगश्च नारीणां वस्त्राणामातपो जरा॥१०
अधमाः कलिमिच्छन्ति सन्धिमिच्छन्ति मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥११

मानो हि मूलमर्थस्य माने सति धनेन किम् ।
प्रभ्रष्टमानदर्पस्य किं धनेन किमायुषा ॥१२

अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ हि मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥१३

वनेऽपि सिंहा न नमन्ति कर्णं बुभूक्षिता नांगनिरीक्षणञ्च ।
धनैर्विहीनाः सुकुलेषु जाता न नीचकर्माणि समारभन्ति ॥१४

एक ही आसन पर स्थिति करने से-एक ही शय्या पर शयन करने से-एक साथ ही बैठ कर भोजन करने से और पक्ति के सांकर्य होने से अर्थात् मिल जाने से घट से दूसरे घट में जल लाने की भाँति एक से दूसरेमें पाप का संक्रमण हुआ करता है॥८॥ लाड़-प्यार करने में बहुत से दोष समुत्पन्न हो जाया करतेहैं और ताड़ना करनेमें अधिक गुण होतेहैं। इसलिये अपने शिष्य और पुत्र को सर्वदा ताड़ना ही देनी चाहिए केवल लालन नहीं करे॥९॥देह-धारियों के लिये मार्ग का गमन करना जरा अर्थात् वार्धक्य है-पर्वतों के लिये जल ही जरा है अर्थात् उनको क्षीणता पहुँचाने वाला होता है—नारियों के साथ सम्भोग न करना ही उनकी वृद्धता के करने वाली जरा है और वस्त्रों को आतप में रखना जरा है॥१०॥ जो अधम श्रेणीके मानव होते हैं वे सदा कलह ही चाहा करते हैं-मध्यम श्रेणीके पुरुष सन्धि की इच्छा रखते हैं तथा उत्तम कोटिके मनुष्य मान के इच्छुक होतेहैं क्योंकि महान् पुरुषों का एकपात्र धन मान ही हुआ करता है॥११॥ मान ही अर्थ का मूल है क्योंकि मान की प्राप्ति के लिये ही अर्थ की इच्छा की जाया करती है । यदि मान है तो फिर उसके होने पर अर्थ से क्या प्रयोजन है । जिसके मान का दर्प ही भ्रष्ट होगया है उसको धन और आयु से भी क्या लाभहै अर्थात् फिर तो उसका धन और जीवन दोनों ही इस संसार में व्यर्थ हैं ॥१२॥ अधम पुरुष ही धन की इच्छा किया करते हैं जो मध्य श्रेणी के लोग हैं वे धन और मान दोनों ही की अभिलाषा रखा करतेहैं। उत्तम श्रेणी पुरुष केवल मान ही चाहते हैं क्योंकि महान् पुरुषों का धन तो मान ही हुआ करता है ॥१३॥ वन में भूखे भी सिंह कर्ण का नमन नहीं किया करते हैं और न कभी अंश का ही निरीक्षण करते

हैं। इसी प्रकार से धन से हीन पुरुष भी जो अच्छे कुलों में उत्पन्न हुए हैं कभी भी नीच कर्मों का आरम्भ नहीं किया करते हैं अर्थात् धन की प्राप्ति के लिये बुरे काम कभी नहीं करते हैं ॥१४॥

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने।
नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥१५
बणिक्प्रमादी भृतकश्च मानी भिक्षुर्विलासी ह्यधनश्चकामी।
वराङ्गना चाप्रियवादिनी च न तेच कर्माणि समारभन्ति॥१६
दाता दरिद्रः कृपणोऽर्थयुक्तः पुत्रोऽविधेयः कुजनस्य सेवा।
परोपकारेषु नरस्य मृत्युः प्रजायते दुश्चरितानि पंच॥१७
कान्तावियोगः स्वजनापमानं ऋणस्य शेषः कुजनस्य सेवा।
दारिद्रचभावाद्विमुखाश्चमित्रा विनाग्निनापंच दहन्तितीव्राः१८
चिन्तासहस्रेषु च तेषु मध्ये चिन्ताश्चतस्रोऽप्यसिधारतुल्याः।
नीचापमानं क्षुधित कलत्रं भार्य्या विरक्ता सहजोपरोधः १९
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या अरोगिता सज्जनसङ्गतिश्च।
इष्टा च भार्य्या वशवर्त्तिनी च दुःखस्यमूलोद्धरणानि पंच॥२०
कुरङ्गमातङ्गपतंगभृंगा मीना हताः पंचभिरेव पंच।
एकः प्रमाथीस कथं न घात्यो यः सेवते पंचभिरेव पञ्च॥२१

वन में सिंह का कभी किसी ने अभिषेक नहीं किया है अर्थात् उसे किसी ने वन के राज्य का राजा नहीं बनाया है और न कोई संस्कार ही ऐसा किया गया है किन्तु वह नित्य अपने ही अत्यूर्जित साव वाला होने के कारण से ही वहाँ समस्त वन के जीवों का राजा बन गया है ॥ १५॥ प्रमाद (लापरवाही) शील वैश्य अर्थात् व्यापार व्यवसाय करने वाला—मान रखने वाला-भृतक अर्थात् सेवा वृत्ति करने वाला मानव-विलासशील भिक्षु और बिना धन वाला कामी तथा अप्रिय बोलने वाली वराङ्गना कभी अपने कर्मों का आरम्भ नहीं किया करते हैं अर्थात् ये लोग अपने कर्मों में कभी सफल नहीं हो सकते हैं ॥१६॥ दानशील पुरुष का दरिद्री होना—अर्थ सम्पन्न पुरुष का कृपण होना-पुत्र आज्ञाकारी न होना-

दुष्ट पुरुष की सेवा करना और पर के अपकार करने में मृत्यु का हो जाना ये पाँच दुश्चरित्र हुआ करते हैं ॥१७॥ अपनी कान्ता से बिछोह का हो जाना—अपने जनों के द्वारा या अपने ही जनों के मध्य में अपमान का होना—ऋण का शेष बना रहना—बुरे पुरुष की सेवा का करना और दारिद्र्य के होने के कारण मित्रों का विमुख हो जाना ये पाँच कार्य ऐसे हैं जो बिना ही अग्नि के बहुत तीव्र दाह किया करते हैं अर्थात् रात-दिन हृदय को बुरी तरह से जलाते रहते हैं ॥१८॥ यों तो मनुष्यों को सहस्रों प्रकार की चिन्तायें इस साँसारिक जीवन में रहा करती हैं किन्तु उन सबमें चार चिन्तायें खांड़े की धार के समान अति दुःखदायिनी होती है, वे ये हैं-नीच पुरुष के द्वारा अपमान का होना-भार्या का भूखा रहना-पत्नी का अपने विषय में विरक्त रहना और सहज उपरोध का होना ॥१९॥ पुत्र का वंशगत होना—अर्थोपार्जन करने वाली विद्या का अपने पास रहना—रोगों का न होना—सज्जन पुरुषों की सङ्गति का रहना—भार्या का प्यार और अपने वश में रहना ये पाँच कारण ऐसे हैं जो दुःख के मूल का उद्धरण करने वाले होते हैं ॥२०॥ कुरङ्ग हरिण)-मातङ्ग हाथी)-पतङ्ग-भृङ्ग (भौंरा) और मीन (मछली) ये पाँच पाँचों से ही हत होते हैं। हरिण श्रवणेन्द्रिय के अधीन होकर वाद्य सुनने में ऐसा खो-सा जाता है कि शिकारी उसे मार देता है—मातङ्ग मदोन्मत्तता से—पतङ्ग दीपक की लौ पर प्रेम करने से-भृङ्ग पुष्पराग के आस्वादन से और मीन गन्धाकर्षण से मृत्यु का ग्रास होता है। इन सब में एक-एक इन्द्रिय का ही आकर्षण मौत के मुँह में डाल दिया करता है तो जो मानव अपनी सभी इन्द्रियों के अर्थात् पाँचों के अधीन होता है वह क्यों नहीं घात के योग्य होवे अर्थात् अवश्य ही होना चाहिये ॥२१॥

अधीरः कर्कशः स्तब्धः कुचैलः स्वयमागतः।
पञ्च विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि ॥२२

आयुः कर्म चरित्रञ्च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि विविच्यन्ते जायमानस्य देहिनः ॥२३

पर्वतारोहणे तोये गोकुले दुष्टनिग्रहे ।
पतितस्य समुत्थाने शस्ताः ह्येते गुणाः स्मृताः ॥२४
अभ्रच्छाया खले प्रीतिः परनारीषु सङ्गतिः ।
पञ्चैते ह्यस्थिरा भावा यौवनानि धनानि च ॥२५
अस्थिरं जीवितं लोके ह्यस्थिरं धनयौवनम् ।
अस्थिरं पुत्रदाराद्यं धर्मः कीर्त्तियशः स्थिरम् ॥२६
शतं जीवितमत्यल्पं रात्रिस्तद्धहारिणी ।
व्याधिशोकजरायासैरर्द्धं तदपि निष्फलम् ॥२७
आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्द्धं हृत
तस्यार्द्धं स्थितकिञ्चिदर्द्धमधिकं बालस्य काले हृतम् ।
किञ्चिद्बन्धुवियोगदुःखमरणैर्भूपालसेवागतं
शेषं वारितरङ्गगर्भचपलं मानेन किं मानिनाम् ॥२८

जो विप्र धैर्य हीन—कर्कश (कठोर)—स्तब्ध—बुरे तथा मलिन वस्त्रों वाला और अपने आप ही बिना आह्वान के आया हुआ हो—ये पाँच प्रकार के ब्राह्मण चाहे बृहस्पति के समान ही विद्वान् क्यों न हों कभी पूज के योग्य नहीं हुआ करते हैं ॥ २२ ॥ आयु—कर्म—चरित्र—विद्या और मृत्यु ये पाँच बातें देहधारी के जन्म के साथ ही निश्चित हो जाया करती हैं ॥२३॥ पर्वत के आरोहण में—जल में—गायों के कुल में और दुष्ट पुरुषों के विग्रह में पड़े हुए मानव या प्राणी के समुत्थान करने में जो प्रयत्न किया करते हैं उनके गुण बहुत ही प्रशंसा माने गये हैं ॥२४॥ मेघों की छाया—खल पुरुष में प्रीति करना—पराई नारी के साथ सङ्गति यौवन और धन का होना—ये पाँच भाव स्थिर नहीं होते हैं ॥२५॥ इस लोक में जीवन का रहना अस्थिर है और धन तथा यौवन भी स्थिर नहीं रहने वाला होता है । पुत्र एवं दारा आदि का सुख भी अस्थिर होता है । केवल इस लोक में किया हुआ धर्म—कीर्त्ति और यश ही स्थिर होता है ॥२६॥ सौ वर्ष की मानव की परमायु बताई जाती है किन्तु वह भी विचार किया जावे तो बहुत ही अल्प होती है क्योंकि उस आयु का आधा भाग तो रात्रियों में केवल शयन करने में ही नष्ट

हो जाया करता है। बची हुई आधी आयुमें व्याधि-शोक-वार्धक्य के आयास हुआ करते हैं। इन सबके होने के कारण वह भी फल रहित हो जाया करती हैं।।२७।।मानवों की परिमित सौ वर्ष की उम्र में आधी रात्रियोंमें समाप्त हो जाती है। उस शेष आधी का आधा भाग बाल्यकाल में अज्ञानावस्था में ही नष्ट हो जाया करता है। बचा हुआ चौथाई भाग रहा उसमें बन्धुवियोग का दुःख राजा की सेवा आदि में समय नष्ट हो जाता है अब बहुत ही थोड़ा सा भाग रह जाता है जो कि जल की तरङ्ग के गर्भ के समान चञ्चल होता है। इस में भी मानी लोग मान जो किया करते हैं वह निष्फल ही होता है। अर्थात् इस बहुत ही स्वल्प जीवन में मान करने से क्या लाभ है ।।२८।।

अहोरात्रोमयो लोके जरारूपेण सञ्चरेत् ।
मृत्युर्ग्रसति भूतानि पवनं पन्नगो यथा ।।२९
गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतो न चेत् ।
सर्वसत्त्वहितार्थाय पशोरिव विचेष्टितम् ।।३०
अहितहितविचारशून्यबुद्धेः श्रुतिसमये बहुभिर्वितर्कितस्य ।
उदरभरणमात्रतुष्टबुद्धेः पुरुषपशोः पशोश्च को विशेषः।।३१।।
शौर्य्ये तपसि दाने च यस्य न प्रथितं यशः ।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ।।३२
सज्जीवितं क्षणमपि प्रथितं मनुष्यैर्विज्ञानविक्रमयशोभिरभग्नमानैः।
तन्नामजीवितमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः काकोऽपि
जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ।।३३

किं जीवितेन धनमानविवर्जितेन
मित्रेण किं भवतीति सशङ्कितेन च ।
सिंहव्रतश्चरत गच्छत मा विषादं काकोऽपि
जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ।।३४
यो वात्मनीह न गुरौ न च भृत्यवर्गे
दीने दयां न कुरुते न च मित्रकार्य्ये ।

किं तस्य जीवितफलेन मनुष्यलोके ।
काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिंच भुङ्क्ते ॥३५

इस लोक में दिन और रात्रि के स्वरूप में समय निकल कर जरा के रूप में मानव को लाकर डाल दिया करता है अर्थात् रात दिन व्यतीत होते होते मनुष्य को बुढ़ापा आ जाता है और मृत्यु उपस्थित होकर सर्प के द्वारा पवन की भाँति प्राणियों को ग्रस लिया करता है ॥२६॥ यदि चलते ठहरते, जागते-सोते हुए भी समस्त जीवों के हित के लिए कुछ भी नहीं किया जाता है तो फिर यों ही सम्पूर्ण जीवन का बिता देना एक पशु के ही समान हुआ करता है ॥ ३० ॥ अपने हित और अहित के विचार से शून्य बुद्धि वाले और श्रुति के समय में बहुतों के द्वारा वितर्कित तथा केवल अपने ही उदर के भरण से तुष्ट बुद्धि वाले पुरुष का जो एक पशु के ही समान होता है और पशु में क्या अन्तर रहता है ? ॥३१॥ जिस पुरुष का शूरता-तपश्चर्या-दान-विद्या और अर्थ के लाभ करने में संसार में यश प्रथित नहीं हुआ है उसका जन्म तो केवल अपनी माता के यौवन की छटा को नाश करने के लिये होता है ॥३२॥ सत् जीवन एक क्षण का भी प्रथित होता है जोकि मानव अभग्नमान विज्ञान विक्रम और यश के द्वारा जीवित रहा करते हैं । ज्ञाता पुरुष ऐसे ही जीवन को वास्तविक जीवित कहते हैं और यों तो एक कौआ भी बलि को खाकर बहुत समय तक जीवित रहा करता है । इसी की भाँति जीवन से क्या लाभ है ॥ ३३ ॥ जो जीवन धन और मान से रहित होता है उससे क्या लाभ है और जो सर्वदा सशङ्कित रहने वाला हो ऐसे मित्र से भी क्या प्रयोजन है । हे मानव ! तू सिंह के समान वन में रत रह और कभी भी विषाद मत करे । कौए की तरह बलि खाकर जीवन चिरकाल तक रखना किसी भी काम का जीवन नहीं होता है ॥३४॥ जो मनुष्य अपने लिये-गुरु, भृत्य वर्ग-दीन-दुखिया पर दया नहीं करता है और न कभी मित्र के भी किसी कार्य में आता है ऐसे मनुष्य के जीवन से इस मनुष्य लोक में क्या फल है अर्थात् ऐसे मानव का जीवन सर्वथा निष्फल ही होता है । यों तो अधिक समय तक एक कौआ भी बलि खाकर अपना जीवन जिया करताहै जिसका जीवन किसीभी काम नहीं आता है।३५।

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यागित यान्ति च ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥३६
स्वाधीनवृत्तेः साफल्य न पराधीनवृतिता ।
ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि च ते मृताः ॥३७
स्वपुरो वै कापुरुषः स्वपुरो मूषिकाञ्जलिः ।
असन्तुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति ॥२८
अभ्रच्छाया तृणादग्निर्नीचसेवा पथे जलम् ।
वेश्याराग: खले प्रीतिः षडेते बुद्बुदोपमाः ॥३९
वाचा विहितसार्थेन लोको न च सुखायते ।
जीवितं मानमूलं हि माने म्लाने कुतः सुखम् ॥४०
अबलस्य बलं राजा बालस्य रुदित बलम् ।
बलं मूर्खस्य मौनत्वं तस्करस्यानृतं बलम ॥४१
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथाऽस्यमेधा स्याद्विज्ञानंचास्य रोचते ॥४२

जिसके त्रिवर्ग से शून्य दिवस आते हैं और यों ही चले जाया करते हैं वह मानव लुहार की धौंकनी की भाँति केवल श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं माना जाता है अर्थात् उसका जीवन निष्प्रयोजन ही होता है ।।३६।। स्वाधीन वृत्ति वाले ही का जीवन सर्वदा सफल होता है । जो पराधीन वृत्ति वाला होता है और पराये अधीन कर्मों वाला होना है वह जीवित रहता हुआ भी मृत के ही समान होता है।।३७।। अपने पुर वाले कायर पुरुष होते हैं, अपने पुर वाली मूषिकाँजलि है । असन्तुष्ट का पुरुष थोड़े से ही सन्तोष कर लिया करता है ।।२८।। मेघों की छाया तृणों से अग्नि का बनाना—नीच पुरुषों की सेवा—मार्ग में जल—वेश्या काराग(स्नेह) और खल पुरुष में प्रीति—ये छै काम बुलबुले के ही तुल्य क्षण स्थायी हुआ करते हैं ।।३९।। केवल वाणी से सार्थ अर्थात् सहयोग से लोगों को सुख नहीं हुआ करता है ।यह जीवन तो मान के मूल वाला होता है । जब वह मान ही म्लान होजाता है तो फिर जीवन में सुख कैसे हो सकता है ।।४०।। जो बलहीन कमजोर

पुरुष होतेहैं उनका बल तो राजा ही होता है वे राजाके पास न्याय की पुकार किया करतेहैं—बालकोंका जब वश नहीं चलताहै तो उन्हें रोदेना होता है यहीउनका बल है— मूर्ख का बल मौन होजाना है और तस्कर आदमीकाबल मिथ्याभाषण एवं झूठा व्यवहार हुआकरताहै।।४१।। जैसे-जैसे पुरुष को शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त होता है वैसे-वैसे ही इसकी मेधाकी वृद्धि होती है और इसकी विज्ञान की रुचि बढ़ती जाया करती है ।।४२

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मतिम् ।
तथा तथा हि सर्वत्र श्लिष्यते लोकसुप्रियः ।।४३
लोभप्रमादविश्वासैः पुरुषो नश्यति त्रिभिः ।
तस्माल्लोभो न कर्त्तव्यः प्रमादो नो न विश्वसेत् ।।४४
तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।
उत्पन्ने तु भये तीव्रे स्थातव्यं वै ह्यभीतवत् ।।४५
ऋणशेषश्चाग्निशेष व्याधिशेषं तथैव च ।
पुनः पुनः प्रवर्द्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत् ।।४६
कृते प्रतिकृतं कुर्य्याद्धिंसिते प्रतिहिंसितम् ।
न तत्र दोषं पश्यामि दुष्टे दोषं समाचरेत् । ४७
परोक्षे कार्य्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं मायामयमरिन्तथा ।।४८
दुर्जनस्य हि सङ्गेन सुजनोऽपि विनश्यति ।
प्रसन्नमपि पानीयं कर्दमैः कलुषीकृतम् ।।४९

जैसे-जैसे मनुष्य कल्याण में अपनी वृद्धि किया करता है वैसे-वैसे ही वह सब जगह लोक का परम प्रिय होकर सम्बन्ध किया करता है ।।४३।। इस जगती तल में मनुष्य लोभ—प्रमाद और विश्वास—इन तीनों से नाश को प्राप्त होता है । इसलिये लोभ नहीं करना चाहिए—प्रमाद (लापरवाही) न करे और हर एक का विश्वास भी नहीं करना चाहिये ।। ४४ ।। भय से तभी तक डरना चाहिए । जब तक वह भय अपने से दूर रहता है और आता नहीं है। जब भय निकट आ ही जाताहै और तीव्र रूप धारण करलेताहै तो फिर

एकदम निडर होकर उसके समक्ष में स्थित होकर उसकी प्रतिक्रिया करनी चाहिये ॥४५॥ ऋण का बाकी रह जाना–रोग का कुछ अंश बच जाना और अग्नि का कुछ, भी थोड़ा-सा भाग रह जाना फिर बार–बार बढ़ कर उग्र रूप धारण कर लिया करता है । इसलिए इन तीन चीजों को तो बिल्कुल निःशेष ही करके रहना चाहिए ॥४६॥ जो जैसा भी व्यवहार बुरा-भला करता है उसका जबाव भी वैसे ही व्यवहार से देना चाहिये । यदि कोई हिंसा पूर्ण व्यवहार करे तो उसके साथ प्रतिहिंसा ही करे—इसमें कोई भी दोष नहीं दिखाई देता है-दुष्ट पुरुष के साथ दोष ही करना उचित होताहै ॥४७॥ जो समक्षमें तो परम प्रिय भाषण करने वाला हो और पीठ पीछे कार्य को नष्ट कर देने वाला रहा करता हो ऐसे माया से परिपूर्ण शत्रु की भाँति मित्र का त्याग ही कर देवे ॥४ ॥ दुर्जन पुरुष के सङ्ग से सज्जन पुरुष भी विनष्ट हो जाया करते हैं जिस तरह स्वच्छ जल को भी कीचड़ से मैला कर दिया जाया करता है ॥४९॥

सम्यग्भुङ्क्ते जनः सो हि द्विजायार्था हि यस्य वै ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्विजः पूज्यः प्रयत्नतः ॥५०

तद् भुज्यते यद् द्विजभुक्यशेषं स बुद्धिमान्यो न करोति पापम्।
तत्सौहृद यत्क्रियते परोक्षे दम्भैर्विना यः क्रियते स धर्मः ॥५१

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति नैतत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम्। ५२

ब्राह्मणोऽपि मनुष्याणामादित्यश्चैव तेजसाम् ।
शिरोऽपि सर्वगात्राणां व्रतानां सत्यमुत्तमम् ॥५३

तन्मंगलं यत्र मनः प्रसन्नं तज्जीवनं यन्न परस्य सेवा ।
तदर्जितं यत्स्वजनेन भुक्तं तद् गर्जितं यत्समरेरिपूणाम्॥५४

सा स्त्री या न मद कुर्य्यात्स सुखी तृष्णयोज्झितः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः पुरुषः स जितेन्द्रियः ॥५५

तत्र मुक्तादरस्नेहो विलुप्तं यत्र सौहृदम् ।
तदेव केवलं श्लाघ्यं यस्यात्मा क्रियते स्तुतोः ॥५६

जिसका धन द्विजों के लिये होता है अर्थात् जिस धनी के धन से विप्र लाभान्वित हुआ करते हैं वह ही भली भाँति भोग करने का सुख प्राप्त करता है। अतएव सभी प्रकार के प्रयत्नों से सर्वदा द्विज की पूजा करनी चाहिए ॥५०॥ जो द्विजों के उपभोग से शेष रहता है वही भोग की वस्तु हुआ करती है। बुद्धिमान् वही पुरुष है जो कभी पाप कर्म नहीं करता है—सौहृद वास्तव में वही है जो पीठ पीछे किया जावे और धर्म वही है जो बिना किसी दम्भ (कपट या दिखावा) के किया जाया करता है ॥५१॥ उसे सभा या समिति नहीं कहा जा सकता है जिसमें वृद्ध अर्थात् अनुभवशील पुरुष न हों—वृद्ध भी उन्हें नहीं कहना चाहिए जो न्याय सङ्गत धर्म की बातें नहीं कहते हैं। धर्म भी वही होता है जिसमें सत्यता विद्यमान है और सत्य वही है जो छल-कपट से अनुविद्ध न हो ॥५२॥ मनुष्यों में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है—तेजों में सर्वाधिक सूर्य नेत्र है—शरीर के सम्पूर्ण अङ्गों में शिर सर्वोत्तम अङ्ग होता है और व्रतों में सत्य का व्रत ही सबसे उत्तम व्रत है ॥५३॥ मङ्गल कार्य वही है जिसमें मानव का मन प्रसन्नता का अनुभव किया करता है। जीवन वही सार्थक एवं सफल होता है जिसमें दूसरों की सेवा का कार्य किया जावे। कमाई वही है जिसका उपभोग अपने मनुष्यों के द्वारा किया जावे और गर्जना करना वही सफल है जो संग्राम में शत्रुओं के समक्ष में की जाती है ॥५४॥ स्त्री वह ही सुख प्रदान करने वाली है जो कभी मद नहीं किया करती है। सच्चा सुखी वही मनुष्य होता है जिसे तृष्णा नहीं होती है। मित्र वही होता है जिसमें पूर्ण विश्वास किया जा सकता है और वास्तव में प्रशस्त पुरुष वह ही होता है जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत रक्खा है ॥ ५५ ॥ जिसमें सौहृद विलुप्त हो जाता है अर्थात् सौहार्द का भाव ही नहीं रहा करता है वहाँ स्नेह और आदर भी छूट जाता है। प्रशंसा के योग्य वही है जिसकी स्तुति आत्मा के द्वारा की जाया करती है ॥५६।

नदीनामग्निहोत्रणां भारतस्य कुलस्य च।
मूलान्वेषो न कर्त्तव्यो मूलाद्दोषेण हीयते ॥५७

लवणजलान्ता नद्यः स्त्रीभेदान्तश्च मैथुनम् ।
पैशुन्यं जनवार्त्तान्तं वित्तं दुःखकृतान्तकम् ।।५८
राज्यश्रीर्ब्रह्मशापान्ता पापान्तं ब्रह्मवर्चसम् ।
आचार घोषवासान्तं कुलस्यान्तं स्त्रियः प्रभोः ।।५९
सर्वे क्षयान्ता निलयाः पतनान्ताः समुच्छ्रिताः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ।।६०
यदीच्छेत्पुनरागन्तुं नातिदूरमनुव्रजेत् ।
उदकान्तान्निवर्त्तेत स्निग्धवर्णाच्च पादपात् ।।६१
अनायके न वस्तव्यं न वा च बहुनायके ।
स्त्रीनायके न वस्तव्यं तथा च बालनायके ।।६२
पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रस्तु स्थविरे काले न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।।६३

नदियों का—अग्निहोत्रों का और भारत के कुल का-मूल का—अन्वेषण नहीं करे क्योंकि मूल से वे सब दोष से हीन होते हैं।। ५७ ।। नदियों का अन्त खारी पानी में होता है अर्थात् समुद्र के पानी में ही जाकर समस्त नदियाँ गिरा करती हैं। मैथुन वही है जिसमें स्त्री का भेदन करके समाप्त हो जाता है । पिशुनता का अन्त वहीं हो जाता है जबकि लोगों तक वह बात पहुंचा दी जाती है और वित्त का अन्त दुःख करने वाला ही होता है ।।५८।। ब्राह्मणों के शाप से राज्य श्री का अन्त हो जाया करता है । पाप कर्म से ब्रह्मवर्चस का अन्त या नाश हो जाता है। गाँव में वास करने से आचार की समाप्ति हो जाती है और स्त्री की प्रभुता जहाँ पर होती है वहाँ कुल का अन्त ही समझ लेना चाहिये ।।५९।। जितने भी आवास गृह हैं उन सबका एक दिन क्षय हो कर अन्त होगा । जो जितना भी ऊपर को उठा है उसका अन्त में पतन अवश्य ही होना है । संसार में जिनसे संयोग हुआ है उसका अन्त वियोग में अवश्य ही होगा और जो यह जीवन है जिस पर मनुष्य क्या-क्या कर डाला करता है उसका अन्त मरण से ही होगा ।।६०।। यदि पुनः आगमन करने की इच्छा रक्खे तो किसी की विदाई करने के लिये अधिक दूर तक पीछे या साथ नहीं जाना चाहिये। जहाँ भी कोई

जलाशय हो वहीं से पहुँचा कर वापिस लौट आना चाहिये अथवा स्निग्ध वर्ण वाले वृक्ष से वापिस लौट आवे ।। ६१ ।। जिस स्थल—ग्राम या नगर देश में कोई नायक न हो वहाँ निवास नहीं करे और जहाँ बहुत से नायक हों वहाँ पर भी निवास नहीं करना चाहिए । स्त्री जहाँ की प्रमुख नायक हो वहाँ और बालक जिसका नायक हो वहाँ पर भी निवास करना उचित नहीं है ।।६२।। स्त्री की रक्षा एवं पोषण बचपन में पिता किया करता है—यौवन की दशा में स्त्री का पालक एवं रक्षक पति होता है । वृद्धावस्था में स्त्री की सुरक्षा पुत्र किया करता है । स्त्रियों के जीवन में स्वतन्त्र रहकर अपने निर्वाह का कभी कोई अवसर ही नहीं होता है ।।६३।।

त्यजेद्वन्ध्यामष्टमेऽब्दे नवमे तु मृतप्रजाम् ।
एकादशे स्त्रीजननीं सद्यश्चाप्रियवादिनीम् ।।६४
अनर्थित्वान्मनुष्याणां भिया परिजनस्य च ।
अर्थादपेतमर्यादास्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ।।६५
अश्वं श्रान्तं गजं मत्तं गावः प्रथमसूतिकाः ।
अनूदके च मण्डूकान्प्राज्ञो दूरेण वर्जयेत् ।।६६
अर्थातुराणां न सुहृन्न बन्धुःकामातुराणां न भयं लज्जा ।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा क्षुधातुराणां लवणं न तेजः६७
कुतो निद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्यचरस्य च ।
परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च ।।६८
सुखं स्वपित्यनृणवान्व्याधिमुक्तश्च यो नरः ।
सावकाशस्तु वै भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न सङ्गतः ।।६९
अम्भसः परिमाणेन उन्नतं कमलं भवेत् ।
स्वस्वामिना बलवता भृत्यो भवति गर्वितः ।।७०

जो पत्नी वन्ध्या हो उसकी प्रतीक्षा सात वर्ष तक करे और यदि उसका वन्ध्यात्व स्थिर रहता है तो आठवें वर्ष में उसका त्याग कर दूसरी पत्नी लानीचाहिए । जिसके सन्तान उत्पन्न तो होतीहै वन्ध्या नहींहै किन्तु उत्पन्न होकर मर जाया करती हों तो उस पत्नी को नवम वर्ष में

त्याग देवे। सन्ततिभी हों और जीवितभी रहे किन्तुकेवल कन्याही उत्पन्न होतीहों उसकात्याग ग्यारहवें वर्षमें कर दूसरी पत्नीलावे और जो कभीभी प्रिय भाषण न कर सर्वदा अप्रिय बोलने वाली स्त्री हो तो उसका त्याग तुरन्त ही कर देना चाहिये ॥६४॥ स्त्रियों के पातिव्रत धर्म बने रहने के तीन कारण होते हैं जिससे वे अपने पतियों के साथ रहा करती हैं। एक तो यह कि उनको ऐसे पुरुषों का सम्पर्क प्राप्त नहीं होता है कि उनसे वे रमणेच्छा की प्रार्थना करें—दूसरा यह कारण होता है कि परिजन के लोगों का भय उनके हृदय में रहा करता है कि कोई जान या देख लेगा तो अपयश हो जावेगा। तीसरा यह है कि स्त्रियाँ अर्थ से अपेत मर्यादा वाली हुआ करती हैं अर्थात् धन से मर्यादा का त्याग कर देने वाली होती हैं जब धन उन्हें मिलता रहता है वे मर्यादा को किसी प्रकार से कायम बनाये रहा करती हैं। धर्म समझ कर पातिव्रत का पालन करने वाली तो विरल ही होती हैं ॥६५॥ थके हुए अश्व को—मदोन्मत्त हाथी को और पहिली बार व्याई हुई गौ को तथा बिना जल के रहने वाले मण्डूकों को मनुष्य को दूर से ही परिवर्जित कर देना चाहिए ॥ ६६ ॥ जो अर्थ के आतुर होते हैं अर्थात् धन के लालची मनुष्य होते हैं उनका न तो कोई बन्धु होता है और न कोई मित्र ही होता है क्योंकि उनके लिए धन ही परम प्रिय वस्तु होती है। जो काम के वशीभूत मनुष्य हैं उन्हें कोई भी भय और लोक-लज्जा नहीं हुआ करतेहैं वे तो एकदम अन्धे-से होकर कामवासना की पूर्त्ति करना ठीक समझते हैं। जो चिन्ता से आतुर होते हैं उनको कभी भी सुख और निद्रा नहीं हुआ करते हैं और भूख से पीड़ित मनुष्यों को लवण और तेज नहीं रहता है ॥ ६७ ॥ जो विचारा दरिद्र है उसे सुख की निद्रा कैसे हो सकती है ? दूसरे के द्वारा भेजे हुए दूत और पराई स्त्री में आशक्ति रखने वाले पुरुष तथा दूसरे के धन को हरण करने वाले पुरुष को भी नींद नहीं आया करती है ॥६८॥ जो ऋण से मुक्त होताहै और व्याधियों से रहित होता हैं वह मनुष्य सुख पूर्वक निद्राका आनन्द प्राप्त कियाकरताहै। जो दाराओंकी सङ्गतिसे रहित होताहै वह सावकाश होताहुआ भोगकरताहै॥६९॥जलके परिमाणसेकमल उन्नत होजाया करता है अर्थात् जल यदि बढ़ता है तो कमल भी उतना

ही बढ़ जाया करता है। अपने बलवान् स्वामी के द्वारा भृत्य गर्व से युक्त हुआ करता है ।।७०।।

स्थानस्थितस्य पद्मस्य मित्रौ वरुणभास्करौ।
स्थानच्युतस्य तस्यैव क्लेशशोषणकारकौ ।७१
पदे स्थितस्य मित्रा ये ते तस्य रिपुतां गताः ।
भानो पद्मे जले प्रीतिः स्थलोद्धरणशोषणः ।।७२
स्थानस्थितानि पूज्यन्ते च पदे स्थिताः ।
स्थानभ्रष्टा न पूज्यन्ते केशा दन्ता नखा नराः ।।७३
आचार कुलमाख्याति वपुराख्याति भाषितम् ।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ।।७४
वृथा वृष्टिः समुद्रस्य तृप्तस्य भोजनं वृथा ।
वृथा दानं समृद्धस्य नीचस्य सुकृतं यथा ।।७५
दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य हृदये स्थितः ।
हृदयादपि निष्क्रान्तः समीपस्थोऽपि दूरतः ।।७६
मुखभङ्गः स्वरो दीनो गात्रस्वेदो महद्भयम् ।
मरणे यानि चिह्नानि तानि चिन्हानि याचतः ।।७७

अपनी उत्पत्ति के स्थान पर स्थित रहने वाले कमल के वरुण और भास्कर दोनों ही मित्र होते हैं अर्थात् उसके विकास करने वाले हुआ करते हैं। जब कमल अपने स्थान से च्युत हो जाता है तो ये वरुण-भास्कर दोनों ही उसके क्लेश एवं शोषण करने वाले हो जाया करते हैं ।।७१।। पद पर स्थित के जो मित्र होते हैं वे ही पदच्युत होने पर शत्रु का स्वरूप धारण करलिया करतेहैं। भानु की जलमें रहने पर तो कमल से प्रीति होती है और स्थल पर उसका उद्धरण होते ही वही भानु उस कमल को शोषण करने वाला हो जाया करता है ।। ७२ ।। जो अपने समुचित स्थान पर स्थित रहा करते हैं वे पूजा के योग्य होते हैं और जो पद पर अवस्थित रहते हैं वे भी पूजे जाया करते हैं। स्थान से भ्रष्ट हो जाने पर केश—दांत और नख कभी भी पूजित एवं शोभा सम्पन्न नहीं हुआ करते हैं ।। ७३ ।। आचार मानव के कुल को प्रकट

कर दिया करता कि यह कैसे कुल में उत्पन्न हुआ है। भाषित शरीर को प्रकट करता अर्थात् भाषण से उसके शरीर के ज्ञान का परिचय हो जाता है। सम्भ्रम स्नेह को व्यक्त कर देता है और शरीर से उसके भोजन का ज्ञान हो जाता है कि कैसा भोजन इसे मिलता है क्योंकि शारीरिक पुष्टि भोजन से ही हुआ करती है ॥७४॥ समुद्रो भाग में वृष्टि का होना निष्फल होता है और जो पहिले से ही तृप्त है उसको भोजन खिलाना व्यर्थ है। समृद्धि से सम्पन्न पुरुष को दान देना बेकार है जैसे नीच का सुकृत व्यर्थ होता है ॥७५॥ चाहे कोई कितने ही दूरस्थ देश में क्यों न हो यदि हृदय में उसके लिये स्थान है तो वह समीप में ही रहा करता है। जो हृदय से निकल जाता है वह चाहे समीप में ही क्यों न स्थित हो वह दूर ही रहता है ॥७६॥ मुख का भंग करना—दीनता से भरा हुआ स्वर—शरीर में पसीने का होना—और बड़ा भारी भय का रहना—ये सब बातें याचना करने वाले पुरुष को होती हैं। ये ही मरणासन्न व्यक्ति के भी लक्षण होते हैं। तात्पर्य यह है कि याचना का काम मृत्यु के समान ही होता है ॥७७॥

कुब्जस्य कीटघातस्य वातान्निष्कासितस्य च ।
शिखरे वसतस्तस्य वरं जन्म न याचितम् ॥७८
जगत्पतिर्हि याचित्वा विष्णुर्वामनताङ्गतः ।
कोऽन्योऽधिकतरस्तस्य योऽर्थी याति न लाघवम् ॥७९
माता शत्रुः पिता वैरी बाला येन न पाठिताः ।
सभामध्ये न शोभन्ते हंसमध्ये वका यथा ॥८०
विद्या नाम कुरूपरूपमधिकं विद्यातिगुप्तं धनं ।
विद्या साधुकरी जनप्रियकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्या बन्धुजनार्त्तिनाशनकरी विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूजिता हि मनुजो विद्याविहीनः पशुः ॥८१
गृहे चाभ्यन्तरे द्रव्यं लग्नश्चैव तु दृश्यते ।
अशेषं हरणीयश्च विद्या न ह्रियते परैः ॥८२
शौनकाय नीतिसारं विष्णुः सर्वव्रतानि च ।

कथयामास वै पूर्वं तत्र शुश्राव शङ्करः ॥
शङ्कराच्च श्रुतो व्यासो व्यासादस्माभिरेव च ॥८३

कुबड़ा-कीटघात-वात से निष्कासित और शिखर पर निवास करने वाले का जन्म याचना करने वाले के जन्म से कहीं अच्छा होता है। याचना वृत्ति बहुत ही गर्हित होती है ॥७८॥ अखिल ब्रह्माण्डों के स्वामी भगवान् विष्णु को भी जब याचना करने के कर्म में प्रवृत्त हुए तो उनको भी बौना बनना पड़ा था। भगवान् से अधिक अन्य कौन हो सकता है। जो कोई भी हो जब याचना करता है तो सबको ही छोटापन धारण करना ही पड़ता है ॥ ७९ ॥ वह माता शत्रु है और वह पिता बैरी है जिसने अपने बालक को लिखा-पढ़ाकर सुशिक्षित नहीं बनाया है। जो अशिक्षित होते हैं वे सभा के मध्य में हसों में बगुलों की भाँति शोभा नहीं दिया करते हैं ॥८०॥ विद्या कुरूप पुरुष का भी एक विशेष रूप सौन्दर्य होती है। विद्या अत्यन्त ही गुप्त धन है। विद्या मानव को साधु बना देने वाली-समस्तजनों के प्रिय के करने वाली और विद्या गुरुओं की भी गुरु होती है। विद्या एक बन्धुजन के तुल्य होती है। विद्या आर्त्ति (पीड़ा) के नाश करने वाली होती है। विद्या परम देवता है। विद्या की पूजा राजाओं के यहां होती है अर्थात् विद्या से युक्त विद्वान् मनुष्य का समादर राजा लोग भी किया करते हैं। जो ऐसे अनेक अद्भुत चमत्कारों से परिपूर्ण विद्या से हीन होता है वह मनुष्य पशु के ही समान होता है ॥८१॥ घर के अन्दर छिपा कर रक्खा हुआ भी धन दिखलाई दे जाता है। घर का सब धन हरण करने के योग्य होता है अर्थात् लोग ले लिया करते हैं किन्तु विद्या रूपी धन ही ऐसा धन है जिसको दूसरे लोग नहीं ले सकते हैं ॥८२॥ भगवान् विष्णु ने शौनक के लिए यह नीति का सार और समस्त व्रत कहे थे। वहाँ पर शङ्कर ने इनका श्रवण किया था। भगवान् शङ्कर से वेद व्यास महर्षि ने सुना था और व्यास से हम लोगों ने श्रवण किया था ॥८३॥

९२—तिथियों के व्रत

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि हरिर्यैः सर्वदो भवेत् ।
सर्वमासर्क्षतिथिषु वारेषु हरिरर्च्चितः ॥१

एकभक्तेन नक्तेन उपवासफलादिना ।
ददातिधनधान्यादि पुत्रराज्यजयाशया ॥२
वैश्वानरः प्रतिपदि कुबेरः पूजितोऽर्थदः ।
उपोष्य ब्रह्मा प्रतिपद्यर्च्चितः श्रीस्तथाश्विनीम् ॥३
द्वितीयायां यमो लक्ष्मीर्नारायण इहार्थदः ।
तृतीयायां त्रिदेवांश्च गौरीविघ्नेशशङ्करान् ॥४.
चतुर्थ्याञ्च चतुर्व्यूहः पंचम्यामर्चितो हरिः ।
कार्त्तिकेयो रविः षष्ठ्यां सप्तम्यां भास्करोऽर्थदः ॥५
दुर्गाष्टम्यां नवम्याञ्च मातरोऽथ दिशोऽर्थदाः ।
दशम्याञ्च यमश्चन्द्र एकादश्यामृषीन्यजेत् ॥६
द्वादश्यांच हरिः कामं त्रयोदश्यां महेश्वरः ।
चतुर्दश्यां पंचदश्यां ब्रह्मा च पितरोऽर्थदाः ॥७
अमावस्यां पूजनीयाश्च वारा वो भास्करादयः ।
नक्षत्राणि च योगाश्च पूजिताः सर्वदायकाः ॥८

ब्रह्माजी ने कहा–हे व्यास ! अब मैं उन व्रतों के विषय में तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ जिन वृतों के द्वारा भगवान् हरि समस्त पदार्थ प्रदान करने वाले हो जाते हैं अर्थात् सभी कुछ दे दिया करते हैं। भगवान् हरि सभी मास-नक्षत्र-तिथि और वारों में समर्चित होते हैं ॥१॥ एक ही समय में रात्रि में उपवास फल आदि के द्वारा पुत्र–राज्य और जय की आशा से धन-धान्यादि देता है उसको अभीष्ट की सिद्धि होती है ॥२॥ वैश्वानर और कुवेर प्रतिपदा के दिन पूजित होने पर अर्थ के दाता होते हैं। उपवास करके प्रतिपदा में ब्रह्मा—श्री और अश्विनी को अर्चित करे ॥३॥ द्वितीया (दोज) तिथि में यम–लक्ष्मी और नारायण की अर्चा करे तो ये अर्थ प्रदान करते हैं। तृतीया तिथि में गौरी-विघ्नेश्वर गणपति और शङ्कर इन तीनों देवों की अर्चा करे ॥४॥ चतुर्थी तिथिमें चतुर्व्यूहका यजन करे और पंचमी तिथिमें भगवान् हरिका समर्चन करना चाहिये। स्वामी कार्त्तिकेय और भास्कर देवका पूजन षष्ठी तिथिमें करे। सप्तमी तिथिमें सूर्यदेव की पूजाकरनेसे वहअर्थ प्रदानकिया

करते हैं ॥५॥ दुर्गाष्टमी और नवमी तिथि में माताओं का और दिशाओं का पूजन करने से अर्थ प्रदान करने वाली होती हैं। दशमी तिथि में यम तथा चन्द्रमा का एवं एकादशी तिथियों का यजन करना चाहिये ॥६॥ द्वादशी तिथि के दिन भगवान् हरि यजन करने से कामनाओं की पूर्ति किया करते हैं और त्रयोदशी (तेरस) तिथि में भगवान् महेश्वर का पूजन करना चाहिये। चतुर्दशी और एकादशी तिथियों में ब्रह्मा का तथा पितरों का पूजन करने से ये अर्थ का प्रदान करते हैं ॥७॥ अमावस्या तिथि में वार और भास्कर आदि—नक्षत्र तथा योग पूजित होकर सब कुछ प्रदान करने वाले हैं ॥८॥

७३–अनङ्ग त्रयोदशी व्रत

मार्गशीर्षे सिते पक्षे व्यासानं गत्रयोदशी।
मल्लिकाजं दन्तकाष्ठं धत्तूर पूजयेच्छिवम् ॥१
अनगायेति नैवेद्यमधु प्राश्याथ पौषके।
योगेश्वरं पूजयेच्च बिल्वपत्रैः कदम्बजम्।
दन्तकाष्ठश्चन्दनादि नैवेद्यं शष्कुलीं ददेत् ॥२
माघे नटेश्वरायार्च्य कुन्दैमौक्तिकमालया।
प्लक्षेण दन्तकाष्ठञ्च नैवेद्यं पूरिका मुने ॥३
वीरेश्वरं फाल्गुने तु पूजयेत्तु मरूवकैः।
शर्कराशाकमण्डांश्च चूतजं दन्तधावनम् ।४
चैत्रे यजेत्सुरूपाय कपूरं प्राशये दति।
दन्तधावनं वटजं नैवेद्यं शष्कुलीं ददेत् ॥५
पूजा च मोदकैः शम्भोवैशाखेऽशोकपुष्पकैः।
महारूपाय नैवेद्यं गुड़भक्तं ह्यु दुम्बरम् ॥६
दन्तकाष्ठं प्राशयेच्च ददेज्जातीफल तथा।
प्रद्युम्नं पूजयेज्ज्येष्ठे चम्पकैर्बिल्वजं ददेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा–हे व्यास! मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में अनङ्ग त्रयोदशीके दिन मल्लिकाके पुष्प-दन्त काष्ठ और धतूराके पुष्पोंसे

भगवान् शिव का पूजन करना चाहिए ॥१॥ 'अनङ्गाय' इत्यादि मन्त्रके द्वारा नैवेद्यों से मधु का प्राशन करावे। इसके अनन्तर पौष मास में विल्व पत्रों के द्वारा कदम्बज से पूजन करे और दन्त काष्ठ एवं चन्दन आदि नैवेद्य और शष्कुली (पूड़ी) समर्पित करे॥ २ ॥ माघ के महीना में नरेश्वर के लिए कुन्द तथा मौतिक की माला से अभ्यर्चना करे। हे मुने! प्लक्ष से दन्तकाष्ठ -नैवेद्य एवं पूरिका समर्पित करे ॥३॥ फाल्गुन मास में वीरेश्वर का मरूवक के पुष्पों से अर्चना करे और शर्करा—शाक तथा मण्ड एवं आम्र की दन्त धावन समर्पित करना चाहिये॥ ४ ॥ चैत्र मास में सुरूप के लिए यजन करे और कर्पूर का प्राशन करावे। बड़ के वृक्ष की दन्तधावन-नैवेद्य तथा शष्कुली समर्पित करना चाहिये॥ ५ ॥ वैशाख के महीना में भगवान् शम्भु का अर्चन मोदकों (लड्डुओं) के द्वारा तथा अशोक के पुष्पों से करे। महारूप के लिये नैवेद्य—गुड़-भक्त और गूलर की दन्त धावन का प्राशन करावे और जाती फल समर्पित करना चाहिए। ज्येष्ठ मास में प्रद्युम्न की पूजा करे तथा चम्पक के पुष्पों से अर्चना करे और विल्व वृक्ष की दन्तधावन तथा लवङ्गाशन निवेदित करे॥६।७॥

लवङ्गाशनमाषाढ़े उमाभद्रेतिशासनः।
अगुरुं दन्तकाष्ठञ्च तमपामार्गकैर्यजेत्॥८
श्रावणे करवीरञ्च शम्भवे शूलपाणये।
गन्धासनो घृताद्यैश्च करवीरजशोधनम्॥९
सद्योजातं भाद्रपदे वकुलैः पूपकैर्यजेत्।
गन्धर्वाशो मदनजमाश्विने च सुराधिपम्॥१०
चम्पकैः स्वर्णवाय्यादौ यजेन्मोदकसंप्रदः।
खादिरं दन्तकाष्ठञ्च कार्त्तिके रुद्रमर्चयेत्॥११
वदरं दन्तकाष्ठञ्च दशनो दशमाशनः।
क्षीरशाकप्रदः पद्मैः रब्दान्ते शिवमर्चयेत्॥१२
र तियुक्तमनङ्गञ्च स्वर्णमण्डलसंस्थितम्।
गन्धाद्यैर्दशसाहस्रं तिलव्रीह्यादि होमयेत्॥१३

जागरं गीतवादित्रं प्रभातेऽभ्यर्च्य वेदयेत् ।
द्विजाय शय्यां पात्रञ्चछत्रं वस्त्रमुपानहौ ॥१४
गान्द्विजं भोजयेद्भक्त्या कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
एतदुद्यापनं सर्वं व्रतेषु ध्येयमीदृशम् ।
फलञ्च श्रीयुतारोग्यसौभाग्यसर्वंभाग्भवेत् ॥१५

आषाढ़ मास में 'उमाभद्र'—इसकेद्वारा शिव का अर्चन करे और अगुरु अपामार्ग दन्तकाष्ठसे यजनकरनाचाहिये ।।८॥श्रावणमासमेंशूलपाणि शम्भु के लिये करवीर–गन्धासन–घृत आदि के द्वारा यजन करे तथा करवीर की दाँतुन समर्पित करे ॥६।। भाद्रपद मास में सद्योजात का वकुल के पुष्प और पूप (पूआ) से यजन करना चाहिये । यह गन्धवाशि है ।मदनज सुराधिप का अर्चन आश्विन में करे ।स्वर्ण वायु आदिमें चम्पक के पुष्पों के द्वारा मोदकों का सम्प्रदान करते हुए पूजन करे तथा खदिरकी दाँतुन समर्पित करे । कार्तिक मासमें रुद्र का अर्चन करे ॥१० १। ।। बदरी वृक्षकी दन्तकाष्ठ देवे । दशमाशनदशन और क्षीरतथा शाक का प्रदान करने वाले को वर्ष के अन्त में पद्मों के द्वारा शिव का पूजन करना चाहिये ।।१२।। स्वर्ण मंडल में संस्थित रति से युक्त अनङ्ग का गन्धाक्षत आदि के द्वारा यजन करे और दश सहस्र तिल तथा व्रीहि आदि की सामग्री से होम करना चाहिये ।।१३।। रात्रि में जागरण और गीत वादित्र करके प्रातःकालमें अभ्यर्चना करना चाहिए । ब्राह्मण के लिये शय्या—पात्र—छत्र–वस्त्र और जूते आदि समर्पित करे तथा गौ द्विज को भोजन करावे तो मनुष्य सफलता की प्राप्ति किया करता है । समस्त व्रतों का यह इस प्रकार का उद्यापन होता है । इसका फल-श्री से युक्त आरोग्य-सौभाग्य और सम्पूर्ण पदार्थों का लाभ होता है ।।१४।१५ ।।

७४–अखंड द्वादशी,अगस्त्यार्घ्य और रम्भातृतीया

व्रतं कैवल्यशमनमखण्डद्वादशीं वदे ।
मार्गशीर्षे सिते पक्षे गव्याशी समुपोषितः ॥१

द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं दद्यान्मासचतुष्टयम् ।
पंचव्रीहियुतं पात्रं विप्रायेदमुदाहरेत् ॥२
सप्तजन्मनि यत्किंचिन्मयाऽखण्डव्रतं कृतम् ।
भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे ॥३
यथाऽखण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तमः ।
तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्त्युत ॥४
सक्तुपात्राणि चैत्रादौ श्रावणादौ घृतान्वितान् ।
व्रतकृद् व्रतपूर्णन्तु स्त्रीपुत्रस्वर्गभाग्भवेत् ॥५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अबमैं कैवल्य के शमन करने वाला अखण्ड द्वादसी का व्रत बतलाता हूँ—मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में गव्य का अशन करके समुपोषित रहे ॥१॥ द्वादशी के दिन में भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिये । चार मास तक विप्र को पाँच व्रीहियोंसे युक्त पात्र देवे और यह कहे कि सात जन्मोंमें जो मैंनेअखण्ड व्रतकिया है, हेभगवन्! वह आपके प्रसाद से यहाँ अब अखण्ड होजावे ॥२।३॥ जिस तरह से यह समस्त जगत् अखण्ड है और पुरुषों में उत्तम आप भी अखण्ड हैं वैसे ही ये सम्पूर्ण व्रत भी अखण्ड मेरे होते हैं ॥ ४ ॥ चैत्र आदि मासों में सतुआसे पूर्ण पात्र और श्रावण आदि महीनं में घृत से युक्त व्रत के करने वाले को देने चाहिए तभी व्रत पूर्ण होता है और वह फिर स्त्री-पुत्र और स्वर्गके भोग प्राप्त करने वालाहोजाताहै ॥५॥

अगस्त्याघ्यंव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
अप्राप्ते भास्करे कन्यां सति भागे त्रिभिर्दिनैः ॥६
अर्घ्यं दद्यादगत्याय मूर्त्तिं संपूज्य वै मुने ।
काशपुष्पमयीं कुम्भे प्रदोषे कृतजागरः ।७
दध्यक्षताद्यैः सपूज्य उपोष्य फलपुष्पाकैः ।
पंचवर्णसमायुक्तं हेमरौप्यसमन्वितम् ॥८
सप्तधान्ययुतं पात्रं दधिचन्दनचर्चितम् ।
अगस्त्यः खलमानेति मन्त्रेणाघ्यं प्रदापयेत् ॥९

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ।।१०
शूद्रस्त्र्यादिरनेनैव त्यजेद्धान्यं फलं रसम् ।
दद्याद् द्विजातये कुम्भं सहिरण्यं सदक्षिणम् ।
भोजयेच्च द्विजान्सप्त वर्षान्कृत्वा तु सर्वभाक् ।।११

श्रीब्रह्माजी ने कहा—अब हम अगस्त्यार्घ्य व्रत के विषय में बतलाते हैं। यह व्रत भुक्ति अर्थात् सम्पूर्ण सांसारिक सुखों का उपभोग और मुक्ति अर्थात् बारम्बार संसार में जन्म और मरण के आवागमन से छुटकारा पाना—ये दोनों ही प्रदान किया करता है। कन्या पर भास्कर के अप्राप्त होने पर तीन दिन तक अगस्त्य के लिये अर्घ्य देना चाहिये। हे मुने ! प्रदोष कृत जागरण वाला होकर कुम्भ में काश पुष्पमयी मूर्त्ति का भलीभाँति पूजन करके अर्थात् दधि-अक्षत आदि से पूजन कर और फल पुष्पों से उपोषित होकर पाँच वर्णों से समायुक्त-हेम एवं रौप्य से समन्वित-सात धान्यों से युक्त दधि एवं चन्दन से चर्चित पात्र को 'अगस्त्य खलमान'—इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य देवे ।।६।७।८।६।। हे काश के पुष्प के प्रतीकाश ! हे अग्नि और मारुत से जन्म ग्रहण करने वाले ! मित्रावरुण के पुत्र ! हे कुम्भयोने ! आपके लिये मेरा नमस्कार है।।१०।। इसके द्वारा शूद्र स्त्री आदि का त्याग कर देना चाहिये। द्विजाति के लिए धान्य-फल रस-दक्षिणा के सहित कुम्भ और वे हिरण्य के सहित भी हों, प्रदान करना चाहिये। ब्राह्मणों को भोजन करावे। इस प्रकार से सात वर्ष तक करने पर समस्त पदार्थों की प्राप्ति करने वाला मनुष्य होता है ।।११।।

रम्भातृतीयां वक्ष्ये च सौभाग्यश्रीसुतादिदाम् ।
मार्गशीर्षे सिते पक्षे तृतीयायामुपोषितः ।।१२
गौरीं यजेद्बिल्वपत्रैः कुशोदककरस्ततः ।
कादम्बदो गिरिसुतां पौषे मरुवकैर्यजेत् ।।१३
कर्पूरादः कृशरदो मल्लिकादन्तकाष्ठकृत् ।
माघे सुभद्रां कह्लारैर्घृताशो मण्डकप्रदः ।।१४

गीतीमय दन्तकाष्ठं फाल्गुने गोमतीं यजेत् ।
कुन्दैः कृत्वा दन्तकाष्ठं जीवाशः शष्कुलीप्रदः ॥१५
विशालाक्षीं मदनकैश्चैत्रे कृशरसम्प्रदः ।
दधिप्राशो दन्तकाष्ठं तगरं श्रीमुखीं यजेत् ॥
वैशाखे कर्णिकारैश्च अशोकाशा रदप्रदः ॥१६

ब्रह्माजी बोले—अब हम रम्भा तृतीया के विषय में बतलाते हैं जो परम सौभाग्य-श्री और सुत आदि के प्रदान करने वाली है। मार्ग शीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में तृतीया में उपोषित रहे ॥ १२ ॥ कुशा और जल हाथ में लेकर विल्व के दलों के द्वारा गौरी का यजन करे। कदम्ब के दलों एवं पुष्पों से गिरि सुता का यजन करना चाहिए। पौष मास में मरुवकों के द्वारा अभ्यर्चना करे ॥ १३ ॥ कर्पूर और कृशर का अदन एवं दान करने वाला होवे तथा मंजु मल्लिका की उत्तम लता लेकर दाँतुन करे। माघ मास में कह्लार के पुष्पों से सुभद्रा का यजन करे। घृत का अशन करने वाला तथा मण्डकों का प्रदाता होवे ॥१४॥ फाल्गुन मास में गीतीमय दन्त काष्ठ हो और गोमती का यजन करे। जीवाशी होकर शष्कुली का प्रदान करे और कुन्द से दन्त धावन करे ॥१५॥ चैत्र मास में विशालाक्षी का मदनकों से कृशर सम्पत्ति वाला होकर यजन करे और दधि का प्राशन करे तथा तगर की दन्तधावन रक्खे-इस रीति से श्रीमुखी का अर्चन करना चाहिए। वैशाख में कर्णिकारों से अशोकाशन वाला रदप्रद होकर यजन करे ॥१६॥

ज्येष्ठे नारायणीमर्चेच्छतपत्रैश्च खण्डदः ।
लवङ्गाशो भवेदेव आषाढ़े माधवीं यजेत् ॥१७
तिलाशो बिल्वपत्रैश्च क्षीरान्नवटकप्रदः ।
औदुम्बरं दन्तकाष्ठं तगर्या श्रावणे श्रियम् ॥१८
दन्तकाष्ठं मल्लिकाया क्षीरदो ह्युत्तमां यजेत् ।
पद्मैर्यजेद्भाद्रपदे शृङ्गदाशो गुड़ादिदः ॥१९
रात्रपुत्रीश्च श्वयुजे जवापुष्पैश्च जीरकम् ।
प्राशयेन्निशि नैवेद्यैः कृशरैः कार्त्तिके यजेत् ॥२०

जातीपुष्पैः पद्मजाञ्च पञ्चगव्याशनो यजेत् ॥
घृतोदनञ्च वर्षान्ते सपत्नाकान्द्विजाभ्यजेत् ॥२१
उमामहेश्वरं पूज्य प्रदद्याच्च गुडादिकम् ।
वस्त्रच्छत्रसुवर्णाद्यै रात्रौ च कृतजागरः ।
गीतावाद्यैर्ददेत्प्रातर्गवाद्यं सर्वमाप्नुयात् ॥२२

ज्येष्ठ मास में नारायणी देवी का शत पत्रों के द्वारा खाँड़ का दान करते हुए लवङ्ग का अशन करकेयजन करना चाहिए। आषाढ़ मासमें माधवीदेवी का यजन करे॥१७॥ तिलों का अशन करें क्षीरान्न वटक का प्रदान करेऔर विल्व पत्रों से पूजन करे–गूलर की दन्त धावन करे। श्रावण में तगरी से श्री का यजन करना चाहिए–मल्लिका की दन्त धावन–क्षीर का दान करे और उत्तमा का पूजनकरे। भाद्रपद मासमें पद्म पुष्पोंके द्वारा यजन करे। शृङ्गद का अशन करे और गुड़ आदि का दान करना चाहिए।१८।१९।आश्विन मास में राजपुत्री का जवा के पुष्पों से यजन करे-रात्रि में जीरकों का अशन करे। नैवेद्य कृशर से कार्त्तिकमें जाती के पुष्पों के द्वारा पद्मजा का यजन करे-पञ्चगव्य का अशन करे। वर्षा के अन्तमें घृतोदन का सपत्नीक द्विजों को भोजन करावे। उमा महेश्वर का पूजन कर गुड़ादि का दान करे तथा वस्त्र-छत्र और सुवर्णादि से रात्रिमें जागरण करे-गीत वाद्यादि करे और प्रातःकाल के समय में गौ आदि का दान करे तो समस्त कामनाओं की पूर्त्ति होती है।२०।२१।२२

७५––चातुर्मास्य, मासोपवास व्रत

चातुर्मास्यव्रतान्यूचे एकादश्यां समाचरेत् ।
आषाढ्यां पौर्णमास्यां वा सर्वेण हरिमर्च्य च ॥१
इदं व्रतं मया देव गृहीत पुरतस्तव ।
निर्विघ्नं सिद्धिमाप्नोतु प्रसन्ने त्वयि केशव ॥२
गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव यद्यपूर्णे म्रियाम्यहम् ।
तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥३
एवमभ्यर्च्य गृह्णीयाद्व्रतार्चनजपादिकम् ।
सर्वाघञ्च क्षय याति चिकीर्षेद्यो हरेर्व्रतम् ॥४

स्नात्वा यश्चतुरो मासानेकभक्तेन पूजयेत् ।
विष्णुं स याति विष्णोर्वै लोकं मलविवर्जितम् ॥५
मद्यमांससुरात्यागी वेदविद्धरिपूजनात् ।
तैलवर्जी विष्णुलोकं विष्णुभाक्कृच्छ्रपादकृत् ॥६
एकरात्रोपवासाच्च देवो वैमानिको भवेत् ।
श्वेतद्वीपं त्रिरात्रात्तु व्रजेत्षष्ठान्नकृन्नरः ॥७
चान्द्रायणाद्धरेर्धाम लभेन्मुक्तिमयाचिताम् ।
प्राजापत्यं विष्णुलोकं पराकव्रतकृद्धरिम् ॥८
सक्तुयावकभिक्षाशी पयोदधिघृताशनः ।
गोमूत्रयावकाहारः पञ्चगव्यकृताशनः ॥
शाकमूलफलत्यागी रसवर्जी च विष्णुभाक् ॥९

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब मैं चातुर्मास्य व्रतों को बतलाता हूँ। इनको एकादशी में अथवा आषाढ़ी पूर्णिमा में समस्त उपचारों के द्वारा समर्चन कर करना चाहिए। भगवान् हरि से प्रार्थना करे कि हे देव ! मैंने यह व्रत आपके समक्ष में ग्रहण किया है। हे केशव ! आपके प्रसन्न होने पर मेरा यह व्रत निर्विघ्न सिद्धि को प्राप्त हो जावे ॥१।२॥ हे देव ! इस व्रत के ग्रहण करने पर यदि यह व्रत अपूर्ण रहे और मैं मर जाऊँ तो हे जनार्दन ! आपके प्रसाद से यह व्रत सम्पूर्ण हो जावे ॥ ३ ॥ इस प्रकार से प्रार्थना करते हुए भगवान् का अभ्यर्चन कर व्रतार्चन और जप आदि को ग्रहण करना चाहिए। जो इस विधि से हरि के व्रत की करने की इच्छा करे तो समस्त अघों का क्षय हो जाता है ॥४॥ जो चार मास तक स्नान करके एक वक्त पूजन करे वह विष्णु की सान्निधि एवं विष्णु-लोक की प्राप्ति करे जो कि मल से रहित होता है ॥ ५ ॥ वेदों का वेत्ता पुरुष मद्य-मांस और सुरा का त्याग करने वाला हरि का पूजन करे—तैल का त्याग कर देवे और विष्णु के पूजनमें कृच्छ्र पाद करे तो वह विष्णु-लोक में विष्णु की प्राप्ति किया करता है ॥६॥ एक रात्रि के उपवास से देवों के विमानमें गमन करने वाला होता है। तीन रात्रिके उपवास से षष्ठान्न कृत् मानव श्वेत द्वीप को प्राप्त करता है ॥७॥ चान्द्रायण व्रत से हरि के धाम की

प्राप्ति किया करता है और अप्रार्थित मुक्ति को प्राप्त करता है । प्राजापत्य व्रत से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । पराक व्रत करने वाला हरि को प्राप्त करता है ।।८।। सक्तु (सतुआ) और यावक का भिक्षाशन करने वाला-पय, दधि तथा घृत का अशन करने वाला-गोमूत्र और यावक का आहार करने वाला तथा पञ्चगव्य का अशन करने वाला-शाक— मूल और फलों का त्याग करने वाला और रसों को वर्जित रखने वाला व्रती विष्णु के सान्निध्य को प्राप्त किया करता है ।। ६ ।।

व्रतं मासोपवासाख्यं सर्वोत्कृष्टं वदामि ते ।
वानप्रस्थो यतिर्नारी कुर्यान्मासोपवासकम् ॥१०
आश्विनस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ।।११
अद्य प्रभृत्यहं विष्णोर्यावदुत्थानकं तव ।
अर्चये त्वामनश्नंस्तु दिनानि त्रिंशदेव तु ।।१२
कार्त्तिकाश्विनयोर्विष्णो द्वादश्योः शुक्लयोरहम् ।
म्रिये यद्यन्तराले तु व्रतभङ्गो न मे भवेत् ॥१३
हरिं यजेत्त्रिषवणस्नायी गन्धादिभिर्व्रती ।
गात्राभ्यङ्गं गन्धलेपं देवतायतने त्यजेत् ।।१४
द्वादश्यामथ संपूज्य प्रदद्याद् द्विजभोजनम् ।
ततश्च पारणं कुर्याद्धरेर्मासोपवासकृत् ।।१५
दुग्धादिप्राशनं कुर्याद् व्रतस्थो मूर्च्छितोऽन्तरा ।
दुग्धाद्यैर्न व्रतं नश्येद्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।।१६

श्री ब्रह्माजी बोले—अब मैं समस्त व्रतों से भी परम उत्कृष्ट व्रत जिसको मासोपवास नाम से कहा जाता है तुम्हें बतलाता हूँ । इस मासोपवास नामक व्रत को वानप्रस्थ—यति और नारी का करना चाहिए ।। १० ।। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी के दिन उपोषित होकर इस व्रत को तीस दिन के लिये ग्रहण करना चाहिए ।।११।। भगवान् से व्रतारम्भा करने के पूर्व प्रार्थना करे-हे भगवन् ! मैं आज से लेकर जब तक आपका उत्थापन हो तब तक के लिये

इस व्रत को ग्रहण करता हूँ। बिना खाये हुए तीस दिन तक मैं आपकी अर्चना करूँगा ॥ १२ ॥ हे विष्णो ! कार्त्तिक और आश्विन मासों के मध्य में शुक्ल पक्षों की द्वादशियों के अन्तराल में यदि मेरी मृत्यु हो जावे तो मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मेरे इस व्रत का उस विघ्न से भंग नहीं होना चाहिए ॥१३॥ त्रिकाल में सन्ध्या और स्नान करने वाले व्रती को गन्धाक्षत के द्वारा भगवान् श्री हरि का यजन करना चाहिए। व्रती पुरुष को देव के आयतन में गात्रों का अभ्यङ्ग और गन्ध का लेपन नहीं करना चाहिए ॥१४॥ द्वादशी के दिन में भली भाँति पूजन करके इसके अनन्तर द्विजों को भोजन समर्पित करे। इसके पश्चात् स्वयं पारण करे जिसने कि हरि के मास का उपवास किया है ॥१५॥ व्रत में स्थित रहने वाला पुरुष यदि व्रत के कारण अशक्त होकर मध्य में मूर्च्छित हो जावे तो उसको दुग्ध आदि का प्राशन कर लेना चाहिए। दुग्ध आदि कतिपय पदार्थ ऐसे हैं उनके सेवन करने पर व्रत का नाश नहीं हुआ करता है और वह दुग्धादि के सेवन करने वाला भी व्रती भुक्ति एवं मोक्ष दोनों ही के प्राप्त कर लेने का पूर्ण अधिकारी होता है ॥१६॥

७६--भीष्मपञ्चक व्रत

व्रतानि कार्त्तिके वक्ष्ये स्नात्वा विष्णुं प्रपूजयेत् ।
एकभक्तेन नक्तेन मासं वायाचितेन वा ॥१
दुग्धशाकफलाद्यैर्वा उपवासेन वा पुनः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्तकामो हरिं व्रजेत् ॥२
सदा हरेर्व्रतं श्रेष्ठं ततः स्याद्दक्षिणायने ।
चातुर्मास्ये ततस्तस्मात्कार्त्तिके भीष्मपञ्चकम् ॥३
ततः श्रेष्ठव्रतं शुक्लस्यैकादश्यां समाचरेत् ।
स्नायात्त्रिकालं पित्रादीन्यवाद्यैरर्चयेद्धरिम् ॥४
यजेन्मौनी घृताद्यैश्च पञ्चगव्येन वारिभिः ।
स्नापयित्वाऽथ कर्पूरमुखैश्चैवानुलेपयेत् ॥५
घृताक्तगुग्गुलैर्धूपं द्विजः पञ्चदिनं दहेत् ।
नैवेद्यं परमान्नन्तु जपदष्टोत्तरं शतम् ॥६

ॐ नमो वासुदेवाय घृतव्रीहितिलादिकम् ।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण स्वाहान्तेन तु होमयेत् ।।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब मैं कार्त्तिक मास में होने वाले व्रतों को बतलाता हूँ । सर्वप्रथम स्नान कर भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए । मास पर्यन्त एक समय रात्रि में अथवा अयाचित भोजन करे । अथवा दुग्ध-शाक और फलादि का सेवन करे या उपवास करे। ऐसी विधि से व्रत करने वाला पुरुष सब तरह के पापों से छुटकारा पाकर और समस्त कामनाओंकी प्राप्ति कर अन्त में भगवान् हरि के सान्निध्य में पहुँच जाया करता है ।।१।२।। हरि का यह व्रत सदा ही श्रेष्ठ होता है। दक्षिणायनमें सूर्य होने पर उससेभी अधिक उत्तम होता है । चातुर्मास्य में इससे भी अधिक श्रेष्ठ होता है । और इसमें भी कार्त्तिक मास भीष्म पञ्चक में उत्ताम होता है । इससे भी श्रेष्ठ व्रत कार्त्तिक शुक्लपक्ष की एकादशीमें होता है । त्रिकालमें स्नान करे और पितृ-गण आदि का यवादि के द्वारा यजन करे और श्री हरि की अर्चना करनी चाहिए॥३।४।।मौन व्रत धारणकर घृत आदि-पञ्चगव्य-जल से स्नान करावे और कर्पूर आदि प्रमुख सुगन्धित पदार्थों के द्वारा अनुलेपन करे ।। ५ ।। द्विज को घृत से अक्त गुग्गुलु के द्वारा पाँच दिन तक धूप का दाह करना चाहिए । परमान्न का नैवेद्य समर्पित करे और अष्टोत्तर शत जाप करे ।।६।। जाप का मन्त्र जपने के पश्चात् "ॐ नमो वासुदेवाय"—इस आठ अक्षरों वाले मन्त्र से 'स्वाहा' यह अन्त में लगा कर घृन—व्रीहि और तिल आदि की सामग्री से होम करना चाहिए ।।७।।

प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ यजेत्पद्मैर्द्वितीयके ।
बिल्वपत्रैर्जानुदेशं नाभिं गन्धेन चापरे ।।८
स्कन्धौ बिल्वजवाभिश्च पञ्चमेऽह्नि शिरोऽर्चयेत् ।
मालत्या भूमिशायी स्याद् गोमयं प्राशयेत्क्रमात् ।।९
गोमूत्रं क्षीरदधि च पञ्चमे पञ्चगव्यकम् ।
नक्तं कुर्य्यात्पञ्चदश्यां व्रती स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥१०

एकादशीव्रतं नित्यं तत्कुर्य्यात्पक्षयो र्द्वयोः ।
अघौघनरकं हन्यात्सर्वदं विष्णुलोकदम् ॥११
एकादशी द्वादशी च निशान्ते च त्रयोदशी ।
नित्यमेकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥१२
दशम्येकादशी यत्र तत्रस्थाश्चासुरादयः ।
द्वादश्यां पारणां कुर्य्यात्सूतके मृतके चरेत्॥१३
चतुर्दशी प्रतिपदि पूर्वमिश्रामुपावसेत् ।
पौर्णमास्याममावास्यां प्रतिपन्मिश्रितां मुने ॥१४
द्वितीयां तृतीयामिश्रां तृतीयाञ्चाप्युपावसेत् ।
चतुर्थ्या सङ्गतां नित्यं चतुर्थीञ्चानया युताम् ।
पञ्चमीं षष्ठीसंयुक्तां षष्ठ्या युक्ताञ्च पंचमीम् ॥१५

प्रथम दिन में हरि के चरणों का पद्मों के द्वारा यजन करे द्वितीय दिन में विल्व पत्रों के द्वारा जानु भाग का यजन करे। तीसरे दिन गन्ध के द्वारा भगवान् की नाभि का समर्चन करे ॥८॥ चतुर्थ दिन में विल्व दल और जल से स्कन्धों का यजन करे और पाँचवें दिन में मालती से शिर का अर्चन करना चाहिये। भूमि में शयन करने वाला होवे और क्रमसे गोमय का प्राशन करे। गोमूत्र-क्षीर-दधि औरपञ्चम में पंचगव्य करे। पञ्चदशी में रात्रि को करे। इस प्रकार से करने पर व्रत करने वाला भुक्ति एवं मुक्ति दोनों को प्राप्त करने वाला होताहै ॥६।१०॥ दोनों पक्षों में नियम से नित्य ही एकादशी का व्रत करना चाहिये अघों के समूह वाले नरकसे निवृत्ति होती है। यह व्रत समस्त पदार्थोंका प्रदान करने वाला और विष्णुलोकके प्रदान करनेवाला होताहै॥११॥ एकादशी द्वादशी तथा निशान्तमें त्रयोदशी करे। जहाँ पर नित्य हीएकादशी होती है वहाँपर साक्षात्भगवान् हरि सन्निहित रहा करतेहैं॥१२॥ जहाँपरदशमी और एकादशी हो अर्थात् दशमी विद्धा एकादशी से वहाँपर असुर स्थित रहा करते हैं द्वादशी तिथि में पारण करना चाहिये। सूतक और मृतक में करे॥१३॥प्रतिपदामें पूर्व मिश्रा चतुर्दशी का उपवास करे। हेमुने ! पूर्णमासी में अमावस्या में पूर्व मिश्रिता करे॥१४॥ तृतीया

मिश्रा द्वितीया का और तृतीया का उपवास करे। चतुर्थी से सङ्गता का नित्य और इससे युत चतुर्थी का उपवास करे। षष्ठी से संयुक्त पञ्चमी और षष्ठी से युक्त पंचमी का उपवास करे ॥ ५॥

७७-शिवरात्रि व्रत

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये कथाञ्च सर्वकामदम् ।
यथा च गौरी भूतेशं पृच्छति स्म परं व्रतम् ॥१
माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ।
तस्यां जागरणाद्रुद्रः पूजितो भुक्तिमुक्तिदः ॥२
कामयुक्तो हरिः पूज्यो द्वादश्यामिव केशवः ।
उपोषितः पूजितः सन्नरकात्तारयेत्तथा ॥३
निषादश्चाम्बुदे राजा पापी सुन्दरसेनकः ।
स कुक्कुरैः समायुक्तो मृगान्हन्तुं वनं गतः ॥४
मृगादिकमसंप्राप्य क्षुत्पिपासार्दितो गिरौ ।
रात्रौ तड़ागतीरेषु निकुञ्जे जाग्रदास्थितः ॥५
तत्रास्ति लिङ्गं संरक्षञ्छरीरञ्चाक्षिपत्ततः ।
पर्णानि चापतन्मूर्ध्नि लिङ्गस्यैव न जानतः ॥६
तेन धूलिनिरोधाय क्षिप्तं नीरञ्च लिङ्गके ।
शरः प्रमादेनैकस्तु प्रच्युतः करपल्लवात् ॥७
जानुभ्यामवनीं गत्वा लिङ्गं स्पृष्ट्वा गृहीतवान् ।
एवं स्नानं स्पर्शनं च पूजनं जागरोऽभवत् ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा-अब हम शिवरात्रि के व्रत के विषयमें वर्णन करतेहैं। उसकी कथाभी कहते हैं। यह व्रत समस्त कामोंके प्रदान करने वाला है। भगवती गौरी ने इस परम व्रत के विषय में भूतेश भगवान् से पूछा था॥१॥ ईश्वरने कहा-माघ और फाल्गुन मासोंके मध्यमें कृष्णपक्ष में चतुर्दशीतिथिमें होताहै। उस चतुर्दशीकी रात्रिमें जागरण करके भगवान्की पूजाकरनेपर रुद्रदेवपरमप्रसन्न होतेहैं और भुक्तितथामुक्तिदोनोंको

प्रदान किया करते हैं ।।२।। काम युक्त केशव श्री हरि द्वादशी की भाँति पूजा के योग्य होते हैं । उपोषित होकर मानवों के द्वारा पूजित हरि नरक से तारण किया करते हैं ।।३।। अम्बुद में निषाद राजा पापी और सुन्दर सेना वाला था । वह कूकरों से युक्त होकर मृगों का हनन करने के लिये वन में गया था ।।४।। उसे वहां वन में मृग आदि का कोई भी शिकार नहीं मिला तो वह भूख और प्यास से पीड़ित होकर पर्वत में रात्रि के समय में तालाब के किनारे पर निकुंज में जागरण करता हुआ ही स्थित रहा था ।।५।। वहाँ पर एक शिव की लिंग मूर्त्ति थी । वहाँ पर शरीर की रक्षा करता क्षिप्त होगया था । लिंग का ज्ञान न करते हुए ही मस्तक पर पत्ते गिर गये थे ।।६।। उसने धूलि के हटाने के लिये लिंग पर जल डाल दिया था । प्रमाद के कारण ही उसके हाथ से एक शर च्युत होगया । उसने घुटनों के बल भूमि पर स्थित होकर लिंग का स्पर्श करके उसे ग्रहण कर लियाथा । इस प्रकार से स्नान-स्पर्शन— पूजन और उसका जागरण होगया ।।७।।८।।

प्रातर्गृहागतो भार्य्यादत्तान्नं भुक्तवान्स च ।
काले मृतो यमभटैः प्राशैर्बद्ध्वा तु नीयते ।।९
तदा मम गणैर्युद्धे जित्वा मुक्तीकृतः स च ।
कुक्कुरेण सहैवाभूद् गणो मत्पार्श्वगोऽमलः ।।१०
एवमज्ञानतः पुण्य ज्ञानात्पुण्यमथाक्षयम् ।
त्रयोदश्यां शिवं पूज्य कुर्य्यात्तु नियमं व्रती ।।११
प्रातर्देव चतुर्दश्यां जागरिष्याम्यहं निशि ।
पूजां दानं तपो होमं करिष्याम्यात्मशक्तितः ।।१२
चतुर्दश्यां निराहारी भूत्वा शम्भो परेऽहनि ।
भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे भवेश्वर।।१३
पञ्चगव्यामृतैः स्नाप्य अन्तकाले गुरुं श्रितः ।
ओं नमो नमः शिवाय गन्धाद्यैः पूजयेद्धरम् ।।१४

जब प्रातःकाल हुआ तो वहाँ से घर आ गया था और भार्या के द्वारा दिया हुआ अन्न उसने खाया था । जब उसके मृत्यु का समय

आया तो यमदूतों के द्वारा पाशों से बाँध कर वह लेजाया गया था ॥९॥ तब हे पार्वति ! मेरे गणों ने मार्ग में ही यम के दूतों से युद्धकरके उन्हें परास्त कर दिया था और उस निषाद राजा को यमदूतों से मुक्त कर दिया था। वह फिर अपने कुत्तों के साथ हो सर्वदा मेरे ही पास में निवास करने वाला परम शुद्ध गण हो गया था ॥१०॥ इस प्रकार से अज्ञान से किये हुये पुण्य का ऐसा अद्भुत पुण्य होता है और यदि ज्ञान पूर्वक इस चतुर्दशी का व्रत एवं पूजन तथा जागरण करे तो उसका तो अक्षय पुण्य होता है। त्रयोदशी के दिन भगवान् शिव का पूजन करके व्रती को नियम ग्रहण करना चाहिए ॥११॥ व्रती को भगवान् शिव से प्रार्थना करनी चाहिए-हे देव ! मैंचतुर्दशीमें रात्रिके समय में जागरण करूँगा—यह प्रार्थना प्रातःकाल में चतुर्दशी के दिन करे। और यह भी निवेदन करे कि मैं अपनी शक्ति के अनुसार—पूजा—दान-तप और होम भी करूँगा ॥१२॥ चतुर्दशी के दिन निराहार रहूँगा और हे शम्भो ! मैं फिर दूसरे दिन भोजन करूँगा। हे भवेश्वर ! भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति के लिए आप मेरे शरण (रक्षक होवें ॥१३॥ पञ्चगव्य और पञ्चामृत से स्नान करा कर अन्तकाल में गुरु का आश्रय ग्रहण करे। 'ॐ नमो नमः शिवायः'-इस मन्त्र से गन्धाक्षतादि पूजोपचारों के द्वारा हर का पूजन करना चाहिए ॥१४॥

तिलतण्डुलब्रीहींश्च जुहुयात्सघृतं चरुम् ।
हुत्वा पूर्णाहुतिं दत्वा शृणुयाद् गीतसंकथाम् ॥१५
अर्द्धरात्रे त्रियामे च चतुर्थे च पुनर्यजेत् ।
मूलमन्त्रं तथा जप्त्वा प्रभाते तु समापयेत् ॥१६
अविघ्नेन व्रतं देव त्वत्प्रसादान्मयार्चितम् ।
क्षमस्व जगतां नाथ त्रैलोक्याधिपते हर ॥१७
यन्मयाद्य कृतं पुण्यं यद्रुद्रस्य निवेदितम् ।
त्वत्प्रसादान्मया देव व्रतमद्य समापितम् ॥१८
प्रसन्नो भव मे श्रीमन्गृहं प्रति च गम्यताम् ।
त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः ॥
भोजयेद्ध्याननिष्ठांश्च वस्त्रछत्रादिकं ददेत् ॥१९

देवादिदेव भूतेश लोकानुग्रहकारक ।
यन्मया श्रद्धया दत्तं प्रीयतां तेन मे प्रभुः ॥२०
इति समाप्य च व्रती कुर्याद् द्वादशवार्षिकम् ।
कीर्त्तिश्रीपुत्रराज्यादि प्राप्य शिव पुरं व्रजेत् ॥२१
द्वादशेष्वपि मासेषु प्रकुर्य्यादिह जागरम् ।
व्रती द्वादश सभोज्य दीपदः स्वर्गमाप्नुयात् ॥२२

तिल–तण्डुल–व्रीहि को घृत के सहित चरु बनाकर हवन करे और पूर्णाहुति देकर गीत तथा कथा का श्रवण करे ॥१५॥ अर्ध रात्रि में—तीन प्रहर समाप्त होने पर और चतुर्थ प्रहर में फिर उस महारात्रि में पूजन करना चाहिए। मूल मन्त्र का जाप करता रहे और प्रातःकाल में उसे समाप्त करना चाहिए ॥१६॥ शिव से प्रार्थना करे—हे देव ! आपके ही प्रसाद से मैंने यह व्रत बिना किसी विघ्न वाधा के अर्चित किया है। हे समस्त जगतों के स्वामिन् ! आप तो इस त्रिलोकी के अधिपति हैं हे हर ! मेरी त्रुटियों को क्षमा कर दीजिए ॥१७॥ हे देव ! मैंने जो आज यह पुण्य कार्य किया है और जो कुछ भी मैंने भगवान् रुद्र को अर्पित किया है। यह सभी कुछ आपकी ही कृपा से मैंने साङ्ग समाप्त किया है ॥१८॥ हे श्रीमन् ! आप मुझ पर प्रसन्न होइगे और अब आप गृह के प्रति गमन करिए। आपके दर्शन मात्र से ही मैं परम पवित्र होगया हूँ-इसमें तनिक भी संशय नहीं है। इसके पश्चात् जो शिव के ध्यान में एक निष्ठ हों उनको भोजन करावे और वस्त्र एवं छत्र आदि का दान करे ॥१९॥ हे देवों के भी आदि देव ! आप भूतों के ईश हैं और लोकों के ऊपर अनुग्रह करने वाले हैं। मैंने जो कुछ भी श्रद्धा से समर्पित किया है। उससे प्रभु आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥२०॥ इस प्रकार से इसे समाप्त करे और व्रती को चाहिए कि इस व्रत को बराबर निरन्तर बारह वर्ष तक करे। इसका यह फल होता है कि इस संसार में अतुल कीर्त्ति-श्री–पुत्र और राज्य--वैभव प्राप्त करके अन्त समय में शिव के पुर में वह गमन किया करता है ॥२१॥ यह बारहों मासों में जागरण करे। व्रत करने वाला पुरुष बारह को भोजन कराकर दीपदान करने वाला स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥२२॥

७८—एकादशी माहात्म्य

मान्धाता चक्रवर्त्यासीदुपोष्यैकादशीं नृपः।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥१
दशम्येकादशीमिश्रा गान्धार्य्या समुपोषिता।
तस्याः पुत्रशत नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥२
दशम्येकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः।
बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा ॥३
द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यान्तु पारणम्।
एकादशो कलापि स्यादुपोष्या द्वादशी तथा ॥४
एकादशी द्वादशी च विशेषेण त्रयोदशी।
त्रिमिश्रा सा तिथिर्ग्राह्या सर्वपापहरा शुभा ॥५
एकादशी मुपोष्यैव द्वादशीमथवा द्विज।
त्रिमिश्राञ्चैव कुर्वीत न दशम्या युतां क्वचित् ॥६
रात्रौ जागरण कुर्वन्पुराणश्रवण नृपः।
गदाधरं पूजयश्च उपोष्यैकादशीद्वयम्।
रुक्माङ्गदो ययौ मोक्षमन्ये चैकादशीव्रतम् ॥७

पितामह ने कहा—मान्धाता नाम वाला एक चक्रवर्त्ती राजा था। वह एकादशी के दिन उपवास किया करता था। दोनों पक्षों की एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिये ॥१॥ गान्धारी ने दशमी से मिश्रित एकादशी का उपवास किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके पुत्र नष्ट होगये थे। इसलिये ऐसी एकादशी का वर्जन कर देना चाहिए ॥२॥ दशमी और एकादशी जहाँ पर होती है वहाँ पर हरि सन्निहित होते हैं। जब बहुत से वाक्यों के विरोध से सन्देह हो तो वहाँ पर द्वादशी का ही ग्रहण करना चाहिये अर्थात् द्वादशी के दिन ही उपवास करे और त्रयोदशीमें पारण करे अर्थात् व्रतको खोले। एकादशी की एक कला भी हो तो भी द्वादशी का व्रत करे ॥३।४॥ एकादशी—द्वादशी और विशेष रूप से त्रयोदशी इस प्रकारसे त्रिमिश्रा तिथि यदिहो तो उसका ग्रहण करना चाहिए। यह सम्पूर्ण पापों के हरण करनेवाली

परम शुभ तिथि हुआ करती है ॥५॥ हे द्विज ! अथवा एकादशी का उपवास करे या द्वादशी करे। किम्वा त्रिमिश्रित (एकादशी—द्वादशी और त्रयोदशी) तिथि का उपवास करे किन्तु दशमी से युक्त एकादशी का उपवास कभीभी नहीं करना चाहिए ॥६॥ एकादशी के उपवासको कर रात्रि में जागरण करे और पुराणों का श्रवण करे। इस प्रकार से भगवान् गदाधर का पूजन करते हुए मास के दोनों पक्षों की एकादशी का उपवास करना चाहिए ॥७॥

७६–भुक्ति-मुक्तिकर पूजा विधि

येनार्चनेन वै लोको जगाम परमां गतिम् ।
तमर्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ॥१
सामान्यमण्डलं न्यस्य धातारं द्वारदेशतः ।
विधातारं तथा गङ्गां यमुनाञ्च महानदीम् ॥२
द्वारश्रियञ्च दण्डञ्च प्रचण्डं वास्तुपूरुषम् ।
मध्ये चाधारशक्तिञ्च कूर्मञ्चानन्तमर्चयेत् ॥३
भूमिं धर्मं तथा ज्ञानं वैराग्येश्वर्य्यमेव च ।
अधर्मादींश्च चतुरः कन्दनालञ्च पङ्कजम् ॥४
कर्णिकां केशरं सत्त्वं राजसन्तामसं गुणम् ।
सूर्य्यादिमण्डलान्येत्र विमलाद्याश्चा शक्तयः ॥५
दुर्गां गणं सरस्वतीं क्षेत्रपालञ्च कोणके ।
आसनं मूर्तिमभ्यर्च्य वासुदेवं बलं स्मरम्॥६
अनिरुद्धं महात्मानं नारायणमथार्चयेत् ।
हृदयादीनि चाङ्गानि शङ्खादीन्यायुधानि च ॥७
श्रियं पुष्टिञ्च गरुड़ं गुरुं परगुरुं यजेत् ।
इन्द्रादीन्दिक्ष्वधोनागमूर्ध्वं ब्रह्माणमर्चयेत् ॥८
विश्वक्सेनमथैशान्यां प्रोक्तं पूजनमागमे ।
सकृदभ्यर्चितो देवो येनैवं विधिपूर्वकम् ॥९
न तस्यसम्भवो भूयः संसारेऽस्मिन्महात्मनः ।
पुण्डरीकाय संपूज्य ब्रह्माणञ्च गदाधरम् ॥१०

श्री ब्रह्माजी ने कहा–यह लोक जसअर्चा के द्वारा परम गति को प्राप्त हुआ था। अब मैं उसी अर्चन के विषय में बतलाता हूँ। यह अर्चन परम भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला है ॥१॥ सामान्य मण्डल का न्यास करके द्वार देश पर—धाता-विधाता-गङ्गा और महा नदी यमुना का अर्चन करे द्वार श्री—दण्ड——प्रचण्ड——वास्तु पुरुष——मध्य में आधार शक्ति——कूर्म और अनन्त की अर्चना करे ॥ २ ॥ ३ ॥ भूमि-धर्म-ज्ञान-वैराग्य—ऐश्वर्य——चार अधर्म आदि-कन्दनाल-पङ्कज-कर्णिका-केशर-सत्त्व-राजस एवं तामस मुष्ट-सूर्यादि मण्डल-विमला आदि शक्तियां-दुर्गा-गण और सरस्वती का अर्चन करे। कोण में क्षेत्रपाल आसन मूर्त्ति का अभ्यर्चन करके वासुदेव—वल-स्मर—महान् आत्मा वाले अनिरुद्ध और इसके अनन्तर नारायण का अर्चन करना चाहिए। हृष्टा आदि अङ्गों का तथा शङ्ख आदि आयुधों का यजन करे ॥४॥५॥६॥७॥ श्री पुष्टि—गरुड़-गुरु और पर गुरु की अर्चना करे। दिशाओं में इन्द्र आदि दिक्पालों का—नीचे के भाग में नाग का और ऊर्ध्व भाग में ब्रह्मा का अर्चन करे ॥८॥ ऐशानी दिशा में विश्वक्सेन का पूजन आगम में बताया गया है। जिसके द्वारा विधि पूर्वक एक बार समभ्यर्चित देव इस प्रकार से किये गये हों उस पूजा करने वाले महात्मा का जन्म इस संसार में नहीं होता है। पुण्डरीक के लिए ब्रह्मा का और गदाधार का पूजन करना चाहिए ॥६॥ ०॥

८०–एकादशी व्रत विधान

माघमासे शुक्लपक्षे सूर्यर्क्षेण युता पुरा।
एकादशी तथा चैका भीमेन समुपोषिता ॥१

आश्चर्यन्तु व्रतं कृत्वा पितृणामनृणोऽभवत्।
भीमद्वादशी विख्याता प्राणिनां पुण्यवर्द्धिनी ॥२

नक्षत्रेण विनाऽप्येषा ब्रह्महत्यादि नाशयेत्।
विनिहन्ति महापापं कुनृपो विषयं यथा ॥३
कुपुत्रस्तु कुलं यद्वत्कुभार्य्या च पतिं यथा।
अधर्मश्च यथा धर्मः कुमन्त्री च यथा नृपम् ॥४

अज्ञानेन यथा ज्ञानं शौचताशौचतां यथा ।
अश्रद्धया यथा श्राद्धं सत्यञ्चैवानृतैर्यथा ॥५
हिमं यथोष्णमाहन्यादनर्थं चार्थसञ्चयः ।
यथा प्रकीर्त्तनाद्दान तपो वै विस्मयाद्यथा ॥६
अशिक्षया यथा पुत्रो गावो दूरगतैर्यथा ।
क्रोधेन च यथा शान्तिर्यथा वित्तमवर्द्धनात् ॥७
ज्ञानेनैव यथा विद्या निष्कामेन यथा फलम् ।
तथैव पापनाशाय प्रोक्तेयं द्वादशी शुभा ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा--माघ मास में शुक्ल पक्ष में सूर्य ऋक्ष (नक्षत्र) से समन्वित एकादशी पहिले समय में एक भीम ने समुपोषित की थी। अर्थात् एक एकादशी का उपवास किया था ॥१॥ बड़ा ही आश्चर्य है कि इस व्रत को वह करके अपने पितृगण के ऋण से छुटकारा पा गया था। तभी से वह भीम द्वादशी--इस नाम से संसार में प्रसिद्ध हो गई है। यह प्राणियों के पुण्य की वृद्धि करने वाली है ॥२॥ नक्षत्र के विना भी यह ब्रह्म हत्या आदि महापातकों का नाश कर दिया करती है। जैसे कोई कुत्सित राजा से देश का नाश हो जाता है वैसे ही यह महा पापों का नाश कर दिया करती है ॥३॥ कुपुत्र जिस तरह कुल का नाशक होता है और कुभार्या पति का नाश कर देने वाली होती है तथा अधर्म धर्म का और कुमन्त्री नृप का नाश कर दिया करते हैं ॥४॥ अज्ञान से जैसे ज्ञान का नाश होता है -शौचता अशुचिता को नष्ट कर देती है--अश्रद्धा से श्राद्ध का विनाश होता है और मिथ्या से सत्य नष्ट हो जाया करता है ॥५॥ हिम उष्णता का नाशक होता है--अर्थ का सञ्चय अनर्थता का नाशक है—प्रकीर्त्तन करने से दान का नाश हो जाता है और विस्मय से तप नष्ट हो जाया करता है ॥६॥ अशिक्षा से पुत्र का नाश होता है। दूर गमन से गौ का नाश होता है—क्रोध से शान्ति का भंग हो जाता है--वृद्धि न करने से वित्त का नाश हो जाता है ॥७॥ ज्ञान से जैसे विद्या और निष्काम से जैसे फल नष्ट होता है वैसे ही यह शुभ द्वादशी पापों के नाश करने के लिये कही गई है ॥८॥

न चापि नैमिषं क्षेत्रं कुरुक्षेत्रं प्रभासकम् ।
कालिन्दी यमुना गङ्गा न चैव न सरस्वती ॥९
न चैव सर्वतीर्थानि एकादश्याः समो न हि ।
न दानं न जपो होमो न चान्यं सुकृतं क्वचित् ॥१०
एकतः पृथिवीदानमेकतो हरिवासरः ।
ततोऽप्येका महापुण्या इयमेकादशी वरा ॥११
अस्मिन्वराहपुरुषं कृत्वा देवन्तु हाटकम् ।
घटोपरि नवे पात्रे कृत्वा वै ताम्रभाजने ॥१२
सर्वबीजभृतोविन्व : सितवस्त्रावगुण्ठिते ।
सहिरण्यप्रदीपाद्यैः कृत्वा पूजां प्रयत्नतः ॥१३

नैमिषारण्य का परम पावन क्षेत्र–कुरुक्षेत्र का पवित्र धाम—प्रभास क्षेत्र—कालिन्दी–यमुना–गङ्गा और सरस्वती जैसे अत्यन्त पावन तीर्थ एव अन्य भी समस्त तीर्थ मिलकर भी इस एकादशी के समान नहीं हैं। इस एकादशी की समता रखने वाले जप—दान–तप होम और अन्य कोई भी कहीं सुकृत ऐसा नहीं है ॥९॥१०॥११॥ एक ओर तो इस सम्पूर्ण मही मण्डल के दान का पुण्य-फल और एक ओर हरिवासा है। इनसे महान् पुण्य वाली यह परम श्रेष्ठ एक इकादशी होती है ॥१२॥ इस घट के ऊपर नवीन ताम्र के पात्र में वराह पुरुष देव की स्वर्ग की मूर्त्ति बना कर रक्खे ॥१३॥ समस्त बीजों के धारण करने वाले और सित वस्त्र मे अवगुण्ठित करे। हिरण्य प्रदीप आदि के सहित प्रयत्नपूर्वक पूजा करे ॥१४॥

वराहाय नमः पादौ क्रीडाकृति नमः कटिम् ।
नाभिं गभीरघोषाय उरः श्रीवत्सधारिणे ॥१४
बाहुं सहस्रशिरसे ग्रीवाँ सर्वेश्वराय च ।
मुखं सर्वात्मने पूज्यं ललाटं प्रभवाय च ॥१५
केशाः शतमयूखाय पूज्या देवस्य चक्रिणः ।
विधिना पूजयित्वा तु कृत्वा जागरणं निशि ॥१६

श्रुत्वा पुराणं देवस्य माहात्म्यप्रतिपादकम् ।
प्रातर्विप्राय दत्त्वा च याचकाय शुभाय तत् ॥१७
कनकक्रोड़सहितं सन्निवेद्य परिच्छदम् ।
पश्चात्तु पारणं कुर्य्यान्नातितृप्तः सकृद्व्रती ॥१८
एव कृत्वा नरो विद्वान्न भूयः स्तनपो भवेत् ।
उपोष्यैकादशीं पुण्यां मुच्यते वै ऋणत्रयात् ।
मनोऽभिलषितावाप्तिः कृत्वा सर्वव्रतादिकम् ॥१९

'वराहाय नमः'–इससे चरणों का पूजन करे–'क्रोडाकृति नमः'–इससे कटि का यजन करे–'गभीर धोषाय नमः'-इसे नाभिका–श्री वत्स धारिणे नम.'—इमसे उर का यजन करे ॥१४॥ 'सहस्र शिरसे नमः'–इससे बाहु की—'सर्वेश्वराय नमः'-इस मन्त्र से ग्रीवा की–'सर्वात्मने नमः'-मन्त्र से मुख की–'प्रभवाय नमः'—इससे ललाट की पूजा करनी चाहिए ॥१५॥ 'शतमयूखाय नमः'–इस मन्त्र से चक्री देव के केशों का यजन करे। इस प्रकार से विधि पूर्वक अर्चना करके रात्रि में जागरण करे ॥१६॥ देव के माहात्म्य का प्रतिपादन करने वाले पुराण का श्रवण करे। प्रातःकाल के होने पर किसी याचना करने वाले परम शुभ विप्र के लिये कनक की क्रोड़ के सहित परिच्छद युक्त उसको सन्निवेदित कर दान करे। इसके पीछे पारण करे किन्तु सकृत व्रत करने वाला अत्यन्त तृप्ति पूर्वक पारण नहीं करे ॥१७।१८॥ इस प्रकार से इस व्रत को साङ्ग सम्पन्न करने वाला पुरुष पुनः शरीर को धारण करने वाला नहीं होता है। इस परम पुण्यमयी एकादशी का उपवास करके मनुष्य तीनों ऋणों से छुटकारा पा जाया करता है। इस सम्पूर्ण व्रत आदि को करके मनुष्य समस्त अभिलषितों की प्राप्ति कियाकरताहै।॥१९॥

८१—विविध व्रत कथन

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि यैस्तुष्टः सर्वदो हरिः ।
शास्त्रोदितो हि नियमो व्रत तच्च तपो मतम् ॥१
नियमास्तु विशेषाः स्युर्व्रतस्यास्य यमादयः ।
नित्यं त्रिषवणं स्नायाद्धशायी जितेन्द्रियः ॥२

स्त्रीशूद्रपतितानां तु वर्जयेदभिभाषणम् ।
पवित्राणि च पञ्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥३
कृच्छ्राण्येतानि सर्वाणि चरेत्सुकृतवान्नरः ।
केशानां रक्षणार्थन्तु द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥४
कांस्यं माषं मसूरञ्च चणक कोरदूषकम् ।
शाकं मधु परान्नञ्च वर्जयेदुपवासवान् ॥५
पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् ।
उपवासेन दुष्येत्तु दन्तधावनमञ्जनम् ॥६
दन्तकाष्ठं पञ्चगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतञ्चरेत् ।
असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् ॥
उपवासः प्रदुष्येत दिवास्वप्नाक्षमैथुनात् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा हे व्यास देव ! अब हम उन व्रतों के विषय में वर्णन करेंगे जिनके करने से भगवान् हरि पूर्णतया सन्तुष्ट होकर सभी कुछ प्रदान किया करते हैं। यह शास्त्रोंमें बताया हुआ नियम है और यह व्रत एक प्रकार का परम तप माना गया है ॥१॥ व्रत करने के पूरे वर्ष के लिये यमादि कुछ विशेष नियम होते हैं। इसमें नित्य ही तीनबार दिनमें स्नान कर संध्या वन्दना त्रिकाल किया करे-भूमिमें शयन करेऔर समस्त इन्द्रियोंको जीतकर अपने वश में करे ॥२॥ स्त्री-शूद्र और पतित पुरुषों के साथ अभिभाषण नहीं करे। पाँचों पवित्रों को अपनी शक्ति के अनुसार हवन करे॥३॥सुकृती पुरुष को इन सम्पूर्ण कृच्छ्रों का समाचरण करना चाहिए। केशों की रक्षाके लिये द्विगुण व्रत करना चाहिए॥४॥उपवास करने वाले पुरुषको कांस्य पात्र-माष (उर्द)-मसूर-चना-कोर दूषक-शाक-मधु-पराया अन्न इन सबका त्यागकर देना चाहिए ॥५॥ पुष्प-अलङ्कार-नवीन वस्त्र-धूप-गन्ध—अनुलेपन-दन्त धावन और अञ्जन ये समस्त पदार्थ उपवास में दूषित करने वाले हैं ॥६॥ दन्तकाष्ठ और पञ्चगव्य करके प्रातःकाल में व्रत का चरण करे। बार-बार जल-पान करने से और एकवार ताम्बूल के भक्षण करने से-दिन में सोने से

और अक्ष मैथुन से उपवास दूषित हो जाया करता है। अतः ये सभी काम नहीं करे ॥७॥

क्षमा सत्य दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहवने सन्तोषास्तेयमेव च ॥८
सर्वव्रतेष्वय धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः।
नक्षत्रदर्शनान्नक्तमनक्तं निशि भोजनम् ॥९
गोमूत्रञ्च पलं दद्यादर्द्धाङ्गुष्ठन्तु गोमयम्।
क्षीर सप्तपलं दद्याद्दध्नश्चैव पलत्रयम् ॥१०
घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम्।
गायत्र्या चैव गन्धेति आप्यायस्व दधिग्रहः॥
तेजोऽसीति च देवस्य ब्रह्मकृच्छ्रव्रतं चरेत् ॥११
अग्न्याधानं प्रतिष्ठान्तु यज्ञदानव्रतानि च।
वेदव्रतवृषोत्सर्गचूड़ाकरणमेखलाः॥
माङ्गल्यमभिषेकञ्च मलमासे विवर्जयेत् ॥१२

क्षमा—सत्य—दया—दान—शौच-इन्द्रियों का निग्रह-देव पूजा-अग्नि में हवन—सन्तोष और अस्तेय—इन समस्त व्रतों में सामान्य धर्म दश प्रकार का होता है। नक्षत्रों के दर्शन से नक्त होता है। रात्रि में अनक्त भोजन करे ॥८।९॥ गोमूत्र एक पल देवे और आधा अँगूठा के बराबर गोमय देवे—सात पल क्षीर और तीन पल दधि देना चाहिए ॥१०॥ घृत एक पल-एक पल कुशोदक देवे। गायत्री से और 'गन्ध'—इत्यादि मन्त्र से दधि ग्रह को आप्यायित करे। 'तेजोऽसि'-इस मन्त्र से देव का ब्रह्म कृच्छ्र व्रत का चरण करना चाहिए ॥११॥ अग्न्याधान—प्रतिष्ठा—यज्ञ—दान-व्रत वेद व्रत—वृषोत्सर्ग—चूड़ाकरण-मेखला—माङ्गल्य और अभिषेक ये कार्य मलमास में वर्जित कर देने चाहिए॥१२॥

दर्शादर्शस्य चान्तः स्यात्त्रिशाहोभिस्तु सावनः।
रविसंक्रमणात्सौरो नाक्षत्रः सप्तविंशतिः ॥१३
सौरो मासो विवाहाय यज्ञादौ सावनस्थितिः।

युग्माग्निकृतभूतानि षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः ॥
रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्याथ पूर्णिमा ॥१४
प्रतिपदाप्यमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम् ।
एतद्वास्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥१५
प्रारब्धतपसां स्त्रीणां रजो हन्याद् व्रतं न हि ।
अन्यैर्दानादिकं कुर्य्यात्कायिकं स्वयमेव च ॥१६
क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि ।
दिनत्रयं न भुञ्जीत शिरसो मुण्डन भवेत् ॥१७
असामर्थ्ये शरीरस्य पुत्रादीन्कारयेद् व्रतम् ।
व्रतस्थ मूर्च्छितं विप्र जलानि चानुमाययेत् ॥१८

दर्शादर्श का अन्त सावन तीस दिन में होता है । रवि के सङ्क्रमण से सौर मास होता है और नक्षत्रों का सत्ताईश दिन का होता है ॥१३॥ विवाह के लिये सौर मास होता है और यज्ञादि में सावन की स्थिति होती है । छै-सात-आठ और रन्ध्र में युग्माग्नि कृत भूत होते हैं । रुद्र से अर्थात् एकादशी से युक्त द्वादशी और चतुर्दशी से युक्त पूर्णिमा तथा प्रतिपदा से युक्त अमावस्या-इन तिथियों का युग्म महान् फल वाला होता है । इसका अस्त होना पुरा कृत महान् पुण्य का हनन कर देता है ॥१४।१५॥ पहिले जिन स्त्रियों ने इस व्रत का आरंभ कर दिया है उनको बाद में जो रजो दर्शन होता है वह व्रन का हनन नहीं किया करता है । अन्यों के द्वारा और स्वयंमेव ही कायिक दानादिक करना चाहिए ॥१६॥ क्रोध से प्रमाद से अथवा लोभ से यदि व्रत का भङ्ग हो जाता है तो तीन दिन तक भोजन नहीं करना चाहिए और शिर का मुण्डन भी करे ॥१७॥ यदि स्वयं के शरीर की सामर्थ्य न हो तो अपने पुत्र आदि के द्वारा इस व्रत को कराना चाहिए । व्रत में अवस्थित विप्र यदि मूर्च्छित हो जावे तो उसे जल पिला देना चाहिए । ऐसी दशा में जलपान से व्रत की भग्नता नहीं हुआ करती है ॥१८॥

८२–दष्टोद्धरण पञ्चमी व्रत

वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतानि व्यास श्रृणवथ ।
वैश्वानरपदं याति शिखिव्रतमिदं स्मृतम् ॥
प्रतिपद्येकभक्ताशी समाप्ते कपिलाप्रदः ॥१
चैत्रादौ कारयेच्चैव ब्रह्मपूजां यथाविधि ।
गन्धपुष्पार्चनैर्दानैर्माल्यादिभिर्ममनोरमैः ॥
सहोमैः पूजयेद्देवं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२
कार्त्तिके तु सितेऽष्टम्यां पुजपहारेण वत्सरम् ।
पुष्पादिदाता रूपेप्सू रूपभागी भवेन्नरः ॥३
कृष्णपक्षो तृतीयायां श्रावणे श्रीधरं श्रिया ।
व्रती सवस्त्रां शय्याञ्च फलं दद्याद् द्विजातये ॥४
शय्यां दत्त्वां प्रार्थयेच्च श्रीधराय नमः श्रिये ।
उमां शिवं हुताशञ्च तृतीयायांव पूजयेत् ॥५
हविष्यमन्नं नैवेद्यं देयं मदनकं तथा ।
चैत्रादौ फलमाप्नोति उमया मे प्रभाषितम् ॥६
फाल्गुनादितृतीयांतां लवणं यस्तु वर्जयेत् ।
समाप्ते शयनं दद्याद् गृहञ्चोपस्करान्वितम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा–हे व्यास देव ! अब मैं प्रतिपदा आदि के व्रतों को बतलाता हूँ । तुम इनका श्रवण करो । यह शिखि व्रत इस नाम से कहा गया है । इसके करने से वैश्वानर के पद को प्राप्त होता है । प्रतिपदा तिथि में एक वक्त अशन करने वाला होवे । व्रत के समाप्त होने पर कपिला गो का दान करे ॥१॥ चैत्र आदि मास में विधि पूर्वक ब्रह्म पूजा करावे । गन्ध–पुष्प आदि के द्वारा अर्चना से—दान से–परम सुन्दर माल्यादि से और होम के द्वारा देव का यजन करे । इससे मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त किया करता है ॥२॥ कार्त्तिकमासमें सितपक्ष में अष्टमी तिथि के दिन पुष्पों के हार से यजन करे और वत्सर पर्यन्त पुष्प आदि का दान करने वाला पुरुष रूप

लावण्य की इच्छा रखने वाला मनुष्य रूप को प्राप्त किया करता है ।।३।। कृष्ण पक्ष में श्रावण मास की तृतीया में श्री से युक्त भगवान् श्रीधर का अर्चन करे और व्रती को वस्त्रों से समन्वित शय्या तथा फल ब्राह्मण को दान देवे ।।४।। शय्या का दान करके प्रार्थना करे—श्रीधर श्री क लिये नमस्कार है । और तृतीया में उमा-शिव और हुताश की पूजा करनी चाहिए ।।५।। चैत्रादि में हविष्य अन्न नैवेद्य और मदनक का दान करना चाहिए । इसका करने वाला फल की प्राप्ति करता है । यह उमा से मेरा प्रभाषित है ।।६।। फाल्गुन से आदि लेकर तृतीया के अन्त तक जो लवण को वर्जित कर देता है और इस व्रत की समाप्ति होने पर शय्या का दान करे तथा समस्त सामान से समन्वित गृह का दान करे ।।७।।

संपूज्य विप्रमिथुनं भवानि प्रीयतामिति ।
गौरी लोके वसेन्नित्यं सौभाग्यकरमुत्तमम् ।।८
गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्तिः सरस्वती ।
मङ्गला वैष्णवी लक्ष्मीः शिवा नारायणी क्रमात् ।।
मार्गतृतीयामारभ्य अवियोगादि चाप्नुयात् ।।९
चतुर्थ्यां सितमाघादौ निराहारो व्रतान्वितः ।
दत्त्वा तिलांस्तु विप्राय स्वयं भुङ्क्ते तिलदोकम् ।।
वर्षद्वये समाप्तिश्च निर्विघ्नादि समाप्नुयात् ।।१०
गः स्वाहा मूलमन्त्रोऽय प्रणवेन समन्वितः ।
ग्लौं ग्लां हृदये गां गीं गूं हूं ह्रीं ह्रीं शिरःशिखा ।।
गूं वर्म गोञ्च गौं नेत्रं गोञ्च आवाहनादिषु ।।११
आगच्छोल्काय गन्धोल्कः पुष्पोल्कधूपकोल्कका ।
दीपोल्काय महोल्काय बलिञ्चाथ विसर्जनम् ।।१२
सिद्धोल्काय च गायत्री न्यासोऽङ्गुष्ठादिरीरितः ।
ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय
धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ।।१३
पजयेत्तिलहोमैश्च एते पूज्या गणास्तथा ।

गणाय गणपतये स्वाहा कूष्माण्डकाय च ।।
अमोघोल्कायैकदन्ताय त्रिपुरान्तकरूपिणे ।।१४

विप्र के जोड़े का भली भाँति पूजन कर प्रार्थना करे–हे भवानि ! आप प्रसन्न होइये । इससे गौरी के लोक में नित्य ही वह निवास किया करता है और यह उत्तम सौभाग्य के करने वाला होता है ।।८।। गौरी–काली–उमा–भद्रा दुर्गा–कान्ति–सरस्वती—मङ्गला–-वैष्णवी–लक्ष्मी—शिवा और नारायणी—इनका क्रम से अर्चन करे । मार्ग शीर्ष की तृतीया से इसका आरम्भ करे । इससे अवियोग आदि की प्राप्ति करता है ।।९।। माघादि में सित पक्ष में चतुर्थी तिथि के दिन व्रत से युक्त होकर निराहार रहे । विप्र को तिलों का दान करके स्वयं तिलोदक का भोजन करे । इस व्रत की समाप्ति दो वर्ष में होती है । इसे निर्विघ्न होकर समाप्त करे ।।१०।। प्रणव से युक्त 'ग-स्वाहा'-यह इसका मूल मन्त्र होता है । ग्लौं – ग्लां—इसका हृदय में न्यास करे । गां – गीं – गूं—इसका शिर में न्यास करे । ह्रूं-ह्रीं-ह्रीं—इसका शिखा में न्यास करे । गूं वर्म है, गौं और गी नेत्र हैं और गों–यह आवाहन आदि में है ।।११।। उल्कलिये गन्धोल्क पुष्पोल्क धूपकोल्क आओ, दीपोल्क महोल्क के लिये इसके अनन्तर बलि का विसर्जन करे । सिद्धोल्क लिये गायत्री तथा अगुष्ठादि ईरित न्यास है । मन्त्र यह है–'ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्र तुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्' ।।१२।१३।। ये गण तिल होमों के द्वारा पूजे जाने चाहिए । 'गणाय गणपतये–कूष्माण्डकाय च स्वाहा—अमोघोल्काय, एकदन्ताय, त्रिपुरान्तकारिणे स्वाहा'—इस मन्त्र से होम करे ।।१४।।

ॐ श्यामदन्तविकरालास्याहवेशाय वै नमः ।
पद्मदंष्ट्राय स्वाहान्तमुद्रा वै नर्त्तन गणे ॥
हस्ततालश्च हसनं सौभाग्यादिफलं भवेत् ।।१५
मार्गशीर्षे तथा शुक्लचतुर्थ्यां पूजयेद् गणम् ।
अब्दं प्राप्नोति विद्यां श्रीकीर्त्यायुःपुत्रसन्ततिम् ।।१६
सोमवारे चतुर्थ्याञ्च समुपोष्यार्चयेद् गणम् ।
जपञ्जुह्वत्स्मरन्नित्यं स्वर्गं निर्विघ्नतां व्रजेत् ।।१७

यजेच्छुक्लचतुर्थ्यां यः खण्डलड्डुकमोदकैः ।
विघ्नार्चनेन सर्वान्वै कामान् सौभाग्यमाप्नुयात् ।।
पुत्रादिकं मदनकैर्मदनाख्या चतुर्थ्यपि ।।१८
ॐ गणपतये नमः चतुर्थ्यन्त यजेद् गणम् ।
मासे तु यस्मिन्कस्मिंश्चिज्जुहुयाद् वा जपेत्स्मरेत् ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वविघ्नविनाशनम् ।।१९
विनायकं मूर्त्तिकाद्यं यजेदेभिश्च नामभिः ।
सोऽपि सद् गतिमाप्नोति स्वर्गमोक्षसुखानि च ।।२०
गणपूज्य एकदन्ती वक्रतुण्डश्च त्र्यम्बकः ।
नीलग्रीवो लम्बोदरो विकटो विघ्नराजकः ।।
धूम्रवर्णो बालचन्द्रो दशमस्तु विनायकः ।।२१
गणपतिर्हस्तिमुखो द्वादश वै यजेद् गणम् ।
पृथक्समस्तं मेधावी सर्वान्कमानवाप्नुयात् ।।२२

'ॐ श्याम दन्तं विकरालास्या हवेशाय वै नमः'–'पद्मदंष्ट्राय स्वाहा'-इन मन्त्रों से अन्त मुद्रा कर गण में नर्त्तन करे । हाथों से ताली बजाकर हास्य करे तो सौभाग्य आदि के फल का भागी होता है ।।१५॥ मार्ग शीर्ष मास में शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि में गण की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार से एक वर्ष पर्यन्त करे तो विद्या—श्री—कीर्त्ति – आयु और पुत्र सन्तति को मनुष्य प्राप्त किया करता है ।। १६ ।। सोमवार के दिन चतुर्थी तिथि में उपवास करके गण का अर्चन करे । जप—हवन—स्मरण नित्य करता हुआ पुरुष बिना किसी विघ्न – वाधा के स्वर्ग की प्राप्ति करता है ।। १७ ।। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन यजन करना चाहिए और वह खांड़ के लड्डू तथा मोदकों से करे। विघ्नार्चन से मनुष्य समस्त कामों को और सौभाग्य को प्राप्त करता है । मदनकों से यजन करे तो पुत्र आदि को प्राप्त करता है । अतएव इस चतुर्थी का नाम मदनाख्या है ।।१८।। 'ॐ गणपतये नमः'–इस मन्त्र से चतुर्थ्यन्त गण का यजन करे । जिस किसी भी मास में हवन करे–जप करे तथा इसका स्मरण करे । ऐसा करनेसे सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंके फलप्राप्त होतेहैं और सब विघ्नोंका

नाश हो जाता है ॥१९॥ सम्पूर्ण मूर्त्तियों में आद्य भगवान् बिनायक था इन उक्त नामोंके द्वारा यजन करना चाहिए। वह पुरुषभी सद्गतिको प्राप्त करता है और स्वर्ग-निवासके समस्त सुखों का उपभोग करताहै तथा मोक्षकी प्राप्ति किया करता है ॥२०॥ वे दश नाम ये हैं—गणों के परम पूज्य-एकदन्ती-वक्र तुण्ड-त्र्यम्बक नील ग्रीव-लम्बोदर-विकर-विघ्न राजक-धूम्र वर्ण-भाल चन्द्र-और दशवाँ नाम इनका विनायक होता है। गणपति--हस्ति मुख ये दो नाम औरहैं। इनसे द्वादश गण का यजन करे। चाहे पृथक्-पृथक् इनका यजनकरे या समस्तों का एक साथही पूजन करे तो मेधावी पुरुष समस्त अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति किया करता है ॥२१।२२॥

श्रावणे चाश्विने भाद्रे पञ्चम्यां कार्त्तिके शुभे।
वासुकिस्तक्षकश्चैव कालीयो मणिभद्रकः ॥२३
ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयौ।
घृताद्यः स्नापिता ह्येते आयुरारोग्यस्वर्गदाः ॥२४
अनन्त वासुकिं शङ्खं पद्मं कम्बलमेव च।
तथा कर्कोटकं नागं धृतराष्ट्रञ्च शङ्खकम् ॥२५
कालीय तक्षकञ्चापि पिङ्गलं मासि मासि च।
यजेद्भाद्रसिते नागानष्टौ मुक्त्वा दिवं व्रजेत् ॥२६
द्वारस्योभयतो लेख्या श्रावणे तु सिते यजेत्।
पञ्चम्यां पूजयेन्नागानन्ताद्यान्महो गान् ॥२७
क्षीरं सर्पिश्च नैवेद्यं देय सर्वविषापहम्।
नागा अभयहस्ताश्च दष्टोद्धरणपञ्चमी ॥२८

श्रावण मास में—आश्विन की महीने में—भादों में या शुभ कार्तिक मास में पञ्चमी तिथि के दिन वासुकि—तक्षक—कालीय-मणि भद्रक-ऐरावत धृत-राष्ट्र—कर्कोटक और धनञ्जय इनको घृत आदि से स्नापित करके यजन करे तो आयु—आरोग्य और स्वर्ग के प्रदान करने वाले हुआ करते हैं ॥२३।२४॥ अनन्त-बासुकि-शङ्ख-पद्म--कम्बल-कर्कोटक-धृतराष्ट्र--शङ्खक-कालीय-तक्षक और पिंगल नाग का भाद्रपद के सित पक्ष में और प्रत्येक मास-मास में यजन

करे तो आठ नागों का मोचन कर मनुष्य दिवलोक का गमन करता है ॥२५।२६॥ गृह के द्वार के दोनों ओर इनका आलेखन करे और श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में यजन करे। अनन्त आदि नागों तथा महान् उरगों का पञ्चमी तिथि में पूजन करना चाहिए ॥२७॥ समस्त प्रकार के विषों के अपहरण करने वाले क्षीर—घृत और नैवेद्य का समर्पण करे। समस्त नाग अभय हस्त वाले होते हैं। यह दष्ट किये हुओं के उद्धरण करने वाली पञ्चमी होती है ॥२८॥

८३—सप्तमी आदि के व्रत

एवं भाद्रपदे मासि कार्त्तिकेयं प्रपूजयेत् ।
स्नानदानादिकं सर्वमस्यामक्षय्यमुच्यते ॥
सप्तम्यां प्राशयेच्चापि भोज्यं विप्रान् रविं यजेत् ॥१
ॐ खखोल्कायमृतत्व प्रियसङ्गमो भव सदा स्वाहा ।
अष्टम्यां पारणं कुर्य्यान्मरिच प्राश्य स्वर्गभाक् ॥२
सप्तम्यां नियतः स्नात्वा पूजयित्वा दिवाकरम् ।
दद्यात्फलानि विप्रेभ्यो मार्तण्डः प्रीयतामिति ॥३
खर्जूरं नारिकेल वा प्राशयेन्मातुलुङ्गकम् ।
सर्वे भवन्तु सफला मम कामाः समन्ततः ॥४
संपूज्य देवं सप्तम्यां पायसेनाथ भोजयेत् ।
विप्रांश्च दक्षिणां दत्त्वा स्वयञ्चाथ पयः पिबेत् ॥५
भक्ष्यं चोष्यं तथा लेह्यं ओदनेति प्रकीर्त्तितम् ।
धनपुत्रादिकामस्तु त्यजेदेतदनोदनः ॥६
वाय्वाशी विजयेच्छुश्च कुर्य्याद्विजयसप्तमीम् ।
अद्यादर्कञ्च कामेच्छुरुपवासेत कामदम् ॥७
गोधूममाषयवषष्टिककांस्यपात्रं पाषाणपिष्टमधुमैथुनमद्यमांसम् ।
अभ्यञ्जनाञ्जनतिलांश्च विवर्जयेद्यः
तस्योषितं भवति सप्तसु सप्तमीषु ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसी प्रकार से भाद्र पद मास में स्वामि कार्त्तिकय का पूजन करना चाहिए। स्नान-दान आदि सब इसमें अक्षय्य हो जाता है। सप्तमी में परमोत्तम भोज्य पदार्थ ब्राह्मणों को खिलावे और रवि का यजन करे ॥ १ ॥ इसके यजन करने का मन्त्र 'ॐ खखोल्कायामृतत्वं प्रियसङ्गमो भव सदा स्वाहा'—यह होता है। फिर अष्टमी के दिन पारणा करे अर्थात् उपवास के व्रत को खोले। मरिच का प्राशन करके स्वर्ग के निवास का फल प्राप्त करता है। इतिमरिच सप्तमी ॥२॥ सप्तमी तिथि में नियत रूप से स्नान करके भगवान् दिवाकर का पूजन करे और इसके अनन्तर भगवान् मार्त्तण्ड मुझ पर प्रसन्न हों यह कहकर विप्रों को फल देवे। खर्जूर अथवा नारियल या मातुलुङ्ग का प्राशन करावे और यह प्रार्थना करे कि मेरे समस्त काम सभी ओर से सफल होवें ॥३।४॥ इति फल सप्तमी विधानम्। सप्तमी के दिन देव का भलीभाँति पूजन करके विप्रों को पायस (खीर) से भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा समर्पित करे। इसके पश्चात् स्वय भी पय का पान करे ॥ ५ ॥ भक्ष्य-चोष्य और लेह्य ओदन-यह कहा गया है। धन और पुत्र आदि की कामना रखने वाला इसका त्याग कर देवे और अनोदन रहे ॥ ६ ॥ इति अनोदन सप्तमी विधानम्। जो विजय की इच्छा रखने वाला हो वह वायु का अशन करता हुआ विजय सप्तमी को करे और अर्क का अदन करे। कामेच्छु कामद का उपवास करे ॥७॥ गोधूम (गैहूं -माष (उर्द -यव (जौ -षष्टिक और काँसे के पात्र-पाषाण पिष्ट मधु-मैथुन-मदिरा-माँस-अभ्यञ्जन ·अञ्जन और तिल इन सबका त्याग कर देवे तो उसका उपवास सात सप्तमियों में होता है ॥८॥

८४—रोहिणी अष्टमी व्रत

ब्रह्मन् भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यामुपोषितः।
दूर्वां गौरीं गणेशञ्च फलपुष्पैः शिवं यजेत् ॥१
फलव्रीह्यादिकरणैः शम्भवे नमः शिवाय च।
त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि ह्यष्टमी सर्वकामभाक् ॥
अनग्निपक्वमश्नीयान्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२

कृष्णाष्टम्याञ्च रोहिण्यामर्द्धरात्रेऽर्चनं हरेः ।
कार्य्या विद्धापि सप्तम्या हन्ति पाप त्रिजन्मकम् ॥३
उपोषितोऽर्चयेन्मन्त्रैस्तिथिभान्ते च पारणम् ।
योगाय योगपतये गोविन्दाय नमो नमः ॥४
स्नानमन्त्रः । यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये
यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ।
अर्चतमन्त्रः । विश्वाय विश्वेश्वराय
विश्वपतये गोविन्दाय नमो नमः ॥५
शयनमन्त्रः । सर्वाय सर्वेश्वराय पर्वताय
सर्वसम्भवाम गोविन्दाय नमो नमः ।
स्थण्डिले पूजयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीन्तथा ॥६
शङ्खे तोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम् ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा--हे ब्रह्मन् ! भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी में उपवास करके दूर्वा-गौरी--गणेश और शिव का फल तथा पुष्पों से यजन करे ॥१॥ फल और व्रीहि आदि उपकरणों के द्वारा शम्भु के लिये और शिव के लिये नमस्कार है । हे दूर्वे! तुम अमृत जन्मा हो । यह अष्टमी समस्त कामनाओं के फल देने वाली है । जो अग्नि में पक्व न हो उसका अशन करे तो ब्रह्महत्या से भी मोचन हो जाया करता है ॥२॥ इति दूर्वाष्टमी विधानम् । कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि में जबकि रोहिणी नक्षत्र हो,अर्धरात्रि के समयमें भगवान् हरिका अर्चन करे । सप्तमी तिथिसे विद्धा अष्टमी तिथिको यजन करे तो तीन जन्मों के पापों का हनन होता है ॥३॥ उपोषित होकर तिथि तथा नक्षत्र के अन्तमें मन्त्रोंसे अर्चना करनी चाहिए और फिर पारणा करे । योग के लिये-योग पति के लिये और गोविन्द के लिये बारम्बार नमस्कार है ॥४॥ ।५।स्नानका मंत्र यहहै-'यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञ सम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः' । अर्चना का मन्त्र यह है-'विश्वाय विश्वेश्वराय विश्व पतये गोविन्दाय नमो नमः' । शयन का मन्त्र यह है--"सर्वाय सर्वेश्वराय पर्वताय सर्व

सम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः" । स्थण्डिल में देव का पूजन करे तथा चन्द्र सहित रोहिणी का पूजन करे।।६।। शङ्खमें जल भरकर पुष्प फल और चन्दन उसमें मिलावे । घुटनों के बल भूमि पर बैठ कर चन्द्रदेव के लिये अर्घ्यं निवेदित करे ।। ७ ।।

क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केम रोहिण्या सहितो मम ।।८
श्रियै च वसुदेवाय नन्दाय च वलाय च ।
यशोदायै ततो दद्यादर्घ्यं फलसमन्वितम् ।।६
अनवं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ।
वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ।।१०
वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंह दैत्यसूदनम् ।
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुड़ध्वजम् ।।११
गोविन्दमच्युतं देवमनन्तमपराजितम् ।
अधोक्षजं जगद्बीजं स्वर्गस्थित्यन्तकारणम् ।।१२
अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् ।
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ।।१३
पीताम्बरधरं दिव्यं वनमालाविभूषितम् ।
श्रीवत्साङ्कं जगद्धाम श्रीपतिं श्रीधरं हरिम् ॥१४
यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् ।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ।।
नामान्येतानि संकीर्त्य गत्यर्थं प्रार्थयेत्पुनः ।।१५

चन्द्र देव को अर्घ्य समर्पित करने के समय में प्रार्थना करे—हे क्षीर सागर से जन्म ग्रहण करने वाले देव! आपका समुद्भव अत्रि मुनि के नेत्रोंसे हुआ है । हे शश के अङ्क वाले देव! आप रोहिणी अपनी भार्या के सहित मेरे इस समर्पित अर्घ्य को ग्रहण करें ।।८।। इसके अनन्तर श्री के लिये-वसुदेवको-नन्द को-बलराम को और यशोदा के लिए फलों से समन्वित अर्घ्य समर्पित करना चाहिए ।।९।। अघ से रहित-वामन-शौरि-बैकुण्ठ-पुरुषोत्तम-वासुदेव-

हृषीकेश माधव–मधुसूदन-वराह-पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले–नृसिंह-दैत्य सूदन—दामोदर—पद्मनाभ—केशव—गरुड़ध्वज-गोविन्द-अच्युत--अनन्तदेव-अपराजित—अधोक्षज-जगत् के बीज अर्थात् कारण स्वरूप-इसलोक का सृजन स्थिति और अन्त करने वाले-आदि और निधन से रहित-तीनों लोकों के ईश-त्रिविक्रम—विष्णु—नारायण-चार बाहुओं वाले-शङ्ख-चक्र और गदा के धारण करने वाले-पीत अम्बर के धारण करने वाले-दिव्य वनमाला से विभूषित-श्री वत्स का अङ्क धारण करने वाले—जगत् के धाम-श्री के स्वामी-श्रीधर-हरि और जिस देव को देवी देवकी ने वसुदेव से समुत्पन्न किया था जो भौम ब्रह्म की गुप्ति के लिये स्थित हैं उन ब्रह्मात्मा के लिये मेरा नमस्कार है ॥१० से १५॥

त्राहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो ॥१६
देवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसागरात् ।
दुर्वृत्तांस्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत् ॥
सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मां शोकसागरात् ॥१७
पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं महत्यज्ञानसागरे ।
त्राहि मां देवदेवेश त्वामृतेऽन्यो न रक्षिता ॥१८
स्वजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥
शान्तिरस्तु शिवश्चास्तु धनविख्यातिराज्यभाक् ॥१९
त्राहि मां देवदेवेश हरे संसारसागरात् ।

इन उपर्युक्त शुभ भगवन्नामों का संकीर्त्तन करके फिर सुगति प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करे—हे देवकी के नन्दन आप श्री के स्वामी हैं और समस्त सांसारिक दुःख एवं पापों के हरण करने वाले हैं। हे विष्णो ! जो आपका एक-एक बार भी स्मरण करता है वह चाहे कैसा भी दूषित आचार एवं चरित्र वाला हो उसको प्रभु इस संसार रूपी सागर से तार दिया करते हैं। हे देव ! मैं भी अत्यन्त दुर्वृत्त अर्थात् दुष्ट चरित्र वाला हूँ। आप मुझको शोक के सागर से सुरक्षित करें ॥१६।१७॥ दो पुष्कर (कमल) के समान नेत्रों वाले ! मैं इस

महान् अज्ञान के समुद्र में निमग्न हो रहा हूँ। हे देवों के भी देव स्वामिन्! मेरा त्राण करो। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है ॥१८॥ अपना जन्म धारण करके ही आप वासुदेव हुए हैं—आप सर्वदा गौ और ब्राह्मणों के हित सम्पादन करने वाले हैं। आप इस सम्पूर्ण जगत् के हित करने वाले हैं। ऐसे गोविन्द कृष्ण आपके लिये बारम्बार प्रणाम है। सर्वत्र शान्ति होवे—शिव अर्थात् मङ्गल होवे और धन तथा विशेष ख्याति और राज्य की प्राप्ति करने वाला होवे ॥१९॥

८५—बुधाष्टमी व्रत

नक्ताशी त्वष्टमीं यावद्वर्षान्ते चैव धेनुदः।
पौरन्दरपदं याति सद् गतिश्च व्रतेऽच्युत ॥१
शुक्लाष्टम्यां पौषमासे महारुद्रेति साधु वै।
मत्प्रीतये व्रतकृतं शतसाहस्रिकं फलम् ॥२
अष्टमी बुधवारेण पक्षयोरुभयोर्यदा।
भविष्यति तदा तस्यां व्रतमेतत्कथा पुरा ॥
तस्यां नियमकर्त्तारो न स्युः खण्डितसम्पदः ॥३
तण्डुलस्याष्टमुष्टीनां वर्जयित्वाऽङ्गुलिद्वयम्।
भक्तं सद्भक्तिश्रद्धाभ्यां मुक्तिकामी हि मानवः ॥४
आम्रपत्रपुटे कृत्वा यो भुंक्ते कुशवेष्टिते।
कलम्बिकाम्लिकोपेतं काम्यं तस्य फलं भवेत् ॥५
बुधं पञ्चोपचारेण पूजयित्वा जलाशये।
शक्तितो दक्षिणां दद्यात्कर्करीं तण्डुलान्विताम् ॥६
बुं बुधायेति बीजः स्यात्स्वाहान्तः कमलादिकः।
बाणचापधरं श्यामं दले चाङ्गानि मध्यतः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे अच्युत! वर्ष पर्यन्त अष्टमी के दिन रात्रि में अशन करे और वर्ष के अन्तमें धेनु का दान करे तो इस व्रत से पुरन्दर (इन्द्र) के पदको प्राप्त होता है और उस व्रत करने वाले की सद्गति हो जाया करती

है ॥१॥ पौष मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में महा रुद्र इस साधु व्रत को मेरी प्रीति के लिये करे तो सैंकड़ों-सहस्रों गुना फल प्राप्त होता है ॥२॥ जब दोनों पक्षोंमें अष्टमी तिथि बुधवारसे संयुत होगी उस समयमें उस अष्टमी मे यह व्रत होता है। यह प्राचीन कथा है। उस अष्टमी में नियमों के करने वाले कभी भी खण्डित सम्पदा वाले नहीं हुआ करते हैं अर्थात् उनकी सम्पत्ति कभी नष्ट नहीं होती है ॥३॥ मुक्ति की कामना रखने वाले मनुष्य को आठ मुट्ठियों के चावलों का भक्त (भात) दो अँगुलियाँ छोड़ते हुए सद्भक्ति और श्रद्धा के साथ आम के पत्तों के पुट में (दोना) में करके कुशा से वेष्ठित आसन पर भोजन करना चाहिए। वह कलम्बिकाम्लिकासे युक्तहो तो उसका काम्य फल प्राप्त होता है ॥४।५॥ जलाशयमें पाँच पूजन के प्रमुख उपचारोंके द्वारा बुध का पूजन करे और अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणादेवे जोकि तण्डुलोंसे अन्वित कर्करी हो॥६॥ कमला जिसके आदिमें और स्वाहा जिसके अन्तमें है ऐसा बुं बुधाय'-यह बीज होता है। मध्य में बाण और चाप को धारण करने वाला श्याम रूप और दलों में अङ्ग होने चाहिए ॥७॥

बुधाष्टमीकथा पुण्या श्रोतव्या कृतिभिर्ध्रुवम् ।
पुरे पाटलिपुत्राख्ये वीरो नाम द्विजोत्तमः ॥८
रम्भा भार्या तस्य चासीत्कौशिकः पुत्र उत्तमः ।
दुहिता विजयानाम्नी धनपालो वृषऽभवत् ॥९
गृहीत्वा कौशिकस्तश्च ग्रीष्मे गङ्गां गताऽरमत् ।
गोपालकैर्वृषश्चौरैः क्वाड़न्नपहृतो बलात् ॥१०
गङ्गातः स च उत्थाय वनं बभ्राम दुःखितः ।
जलार्थं विजया चागाद् भ्रात्रा सार्द्धञ्च साप्यगात् ॥११
पिपासितो मृणालार्थी आगतोऽथ सरोवरम् ।
दिव्यस्त्रीणाञ्च पूजादीन्दृष्ट्वा चाप्यथ विस्मितः ॥१२
स ता गत्वा ययाचेऽन्नं सानुजोऽहं बुभुक्षितः ।
स्त्रियोऽब्रुवन्व्रतं कर्त्तुं दास्यामश्च कुरु व्रतम् ॥१३

पत्यर्थं धनपालार्थं पूजयामासतुर्बुधम् ।
पुटद्वयं गृहीत्वाऽन्न बुभुजाते प्रदत्तकम् ॥१४

परम पुण्य स्वरूपा बुधाष्टमी की कथा कृतिजनों को श्रवण करनी चाहिए। पाटिल पुत्र (पटना) नाम वाले नगर में वीर नाम धारी एक द्विज था ॥८॥ उसकी पत्नी का नाम राम था और उसका कौशिक नाम वाला एक उत्तम पुत्र था। विजया नाम वाली उसकी पुत्री थी और धनपाल वृष था ॥९॥ कौशिक उस धनपाल को लेकर ग्रीष्म ऋतु में गङ्गा नदी पर चला गया था और वहाँ क्रीड़ासक्त होगया था। वहाँ पर गोपालक चोरों के द्वारा वह वृष बल पूर्वक अपहरण कर लिया गया था ॥१०॥ वह कौशिक गङ्गा में जो जल क्रीड़ा कर रहा था वहाँ से उठकर परम दुःखित होता हुआ वन में भ्रमण करने लगा था जल लाने के लिये वहाँ बिजया आगई थी और भाई के साथ वह भी चली गई ॥११॥वह प्यासा और मृणालका इच्छुक वह इसके अनन्तर सरोवर पर आ गया था। वहाँपर उसने दिव्य (देवों की स्त्रियों की पूजार्चना आदि को देखकर अत्यन्त विस्मय किया था। उसने उन स्त्रियों के पास में पहुँच कर कुछ अन्न की याचना की थी और उनसे निवेदन किया था कि मैं अपनी अनुजाके साथ अत्यन्त भूखा हूँ। उन अर्चना करने वाली स्त्रियों ने उससे कहा था कि तुम भी इस व्रत को करो। हम तुमको अन्नादि देवेंगी ॥१२।१३॥ कन्या ने पति की प्राप्ति के लिये और कौशिक ने धनपाल वृष को प्राप्त करने के लिये बुध की पूजा की थी। इसके उपरान्त दो पुट में दिये हुए अन्न को उन दोनों ने खाया था ॥१४॥

स्त्रियो गतौ च धनदौ धनपालमपश्ययाम् ।
चौरैर्दत्तं गृहीत्वाथ प्रदोषे प्राप्तवान् गृहम् ॥१५
वीरञ्च दुःखित नत्वा रात्रौ सुप्तो यथासुखम् ।
कन्याञ्च युवतीं दृष्ट्वा कस्मै देया सुता मया ॥१६
यमायेत्यब्रवीद् दुःखात्साचाराद व्रतसत्फलात्
स्वर्गं गतौ च पितरौ व्रतं राज्याय कौशिकः ॥१७

चक्रेऽयोध्यामहाराज्यं दत्त्वा च भगिनीं यमे ।
यमोऽपि विजयामाह गृहस्था भव मे पुरे ॥१८
अपश्यन्मातरं स्वां सा पाशयातनया स्थिताम् ।
अथोद्विग्ना च विजया ज्ञात्वा विमुक्तिदं व्रतम् ॥१९
चक्रे च सा ततो मुक्ता माता तस्याः कृतव्रता ।
व्रतपुण्यप्रभावेण स्वर्गं गत्वावसत्सुखम् ॥२०

इसके पश्चात् स्त्रियाँ और धनद चले गये । उन दोनों ने धनपाल को वहाँ देखा था । चोरों के द्वारा प्रदत्त धनपाल को लेकर वह प्रदोष के समय में अपने घर में प्राप्त हो गया था ॥ १५ ॥ परम दुःखित वीर को प्रणाम करके रात्रि में सुख पूर्वक सो गया था । कन्या को यौवन की अवस्था में देखकर उसे बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई कि मैं इस कन्या को किसे समर्पित करूँ ॥ १६ ॥ आचार से समन्वित इस व्रत के सत्फल से वह दुःख से यम से यह बोला—मेरे माता-पिता दोनों स्वर्गवासी होगये और कौशिक ने राज्य की प्राप्ति के लिये व्रत किया था । अयोध्या के महान् राज्य को देकर भगिनी को यम को दे दिया था । वह यम भी विजया से बोला—अब तुम मेरे पुर में गृहस्थ धर्म पालन करने वाली हो जाओ ॥१७।१८॥ फिर उस पाशाया तनया ने अपनी माता को वहाँ पर अवस्थित देखा था । इसके अनन्तर उस विजया ने विमुक्ति के प्रदान करने वाले इस व्रत का ज्ञान प्राप्त करके बहुत ही उद्वेग किया था । इसके पश्चात् उसने भी इस व्रत को किया था और इससे उसकी माता मुक्त हो गई थी । इस व्रत के परम पुण्य के प्रभाव से वह स्वर्ग लोक में पहुँच कर वहाँ सुख पूर्वक निवास करने लगी थी ॥१९।२०॥

८६—महानवमी व्रत

अशोककलिका ह्यष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां क ते शोकमवाप्नुयुः ॥१
त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु ॥२

शुक्लाष्टम्यामश्वयुजे उत्तराषाढ़या युता ।
सा महानवमींत्युक्ता स्नानदानादि चाक्षयम् ॥३
नवमी केवला चापि दुर्गाश्चैव तु पूजयेत् ।
महाव्रतं महापुण्यं शङ्कराद्यैरनुष्ठितम् ॥४
अयाचितादि षष्ठ्यादौ राजा शत्रुजयाय च ।
जपहोमसमायुक्तः कन्यां वा भोजयेत्सदा ॥५
दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा मन्त्रोऽयं पूजनादिषु ।
दीर्घाकाराभिर्मात्राभिर्नवदेव्यो नमोऽन्तिका ॥६
पड्भिः पदैर्नमः स्वाहा वषडादि हृदादिकम् ।
अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्तं विन्यस्य पूजयेच्छिवाम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में जबकि पुनर्वसू नक्षत्र हो अशोक वृक्ष की आठ कलिकाओं का जो पुरुष उस दिन पान किया करते हैं वे कभी भी शोक की प्राप्ति नहीं करते हैं अर्थात् उन्हें कभी कोई शोक होता ही नहीं है ॥१॥ पान करने के समय में यह प्रार्थना करे कि हे अशोक ! आप भगवान् हर के परम अभीष्टतम हो और आपका उद्भव मधु मास में होता है । मैं शोक से अतीव सन्तप्त होकर तुम्हारा पान करता हूँ । अतएव कृपया मुझे सदा शोक से रहित कर दो ॥ २ ॥ इति अशोकाष्टमी विधानम् ब्रह्माजी ने कहा—आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में जो कि उत्तराषाढ़ा नक्षत्र से युक्त हो । वह महा नवमी इस नाम से कही गई है । इस दिन में जो स्नान एवं दान आदि किये जाते हैं वे सब अक्षय हो जाते हैं ॥ ॥ यदि केवल नवमी हो तो भगवती दुर्गा की उस दिन पूजार्चना करनी चाहिए । यह महा व्रत महान् पुण्य प्रद होता है । इसको शङ्कर आदि ने किया है॥४॥ षष्ठी आदि में अयाचित आदि का ग्रहण करे । राजा को अपने शत्रु पर जय प्राप्त करनेके लिये इसे करना चाहिए । जप-होम से समायुक्त होकर सदा कन्याओं को भोजन करावे ॥५॥ पूजन आदि कर्मों में 'दुर्गे ! दुर्गे ! रक्षिणी स्वाहा'—इस मन्त्र का प्रयोग करे । दीर्घ आकार वाली मात्राओं से नौ देवियोंके अन्त में नमः—इस शब्द का प्रयोग करे । छै पदों के द्वारा नमः—स्वाहा-वषट् आदि

लेकर तथा अंगुष्ठ से आदि लेकर कनिष्ठा के अन्त तक विन्यास करे और शिवा का पूजन करे ।।६।७।।

अष्टम्यां नवगेहानि दारुजान्येकमेव वा ।
तस्मिन्देवी प्रकर्त्तव्या हैमा वा राजतापि वा ।।८
शूले खङ्गे पुस्तके वा पटे वा मण्डले यजेत् ।
कपालं खेटकं घण्टां दर्पणं तर्जनीं धनुः ।।९
ध्वजं डमरुकं पाशं वामहस्तेषु बिभ्रती ।
शक्तिञ्च मुद्गरं शूलं वज्रं खङ्गं तथाङ्कुशम् ।।१०
शरं चक्रं शलाकाञ्च दुर्गामायुधसंयुताम् ।
शेषाः षोडशहस्ता स्युरञ्जनं डमरुं विना ।।११
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ।।१२
नवमी चोग्रचण्डा च मध्यस्थाग्निप्रभाकृतिः ।
रोचना अरुणा कृष्णा नीला धूम्रा च शुक्लका ।।
पीता च पाण्डरा प्रोक्ता आलोढ़ेन हरिस्थिताः ।।१३

अष्टमी तिथि के दिन काष्ठ के विनिर्मित नौ गृह तथा एक ही गृह में एक देवी की प्रतिमा का निर्माण करावे वह चाहे सुवर्णमयी हो या चाँदी की होवे ।।८।। शूल-खङ्ग-पुस्तक में अथवा पट या मण्डल में उसका यजन करे । वह प्रतिमा कपाल—खेटक—घण्टा—दर्पण - तर्जनी-धनु-ध्वज-डमरु-पाश अपने वाम भाग के हस्तों में धारण करने वाली होवे । शक्ति- मुद्गर—शूल—वज्र—खङ्ग तथा अंकुश-शर-चक्र—शलाका ये दक्षिण हस्तों में धारण करने वाली समस्त अपने आयुधों से समन्वित दुर्गा का यजनार्चन करना चाहिए । शेष सोलह हस्त अञ्जन और डमरु के बिना ही होने चाहिए ।।९।१०।११।। उग्र चण्डा-प्रचण्डा चण्डोग्रा—चण्डनायिका-चण्डा चण्डवती-चण्डरूपाति चण्डिका और नवमी उग्र चण्डा हो तथा मध्य में स्थित अग्नि की प्रभा जैसी आकृति वाली होवे । रोचना-अरुणा – कृष्णा—नीला—धूम्रा-शुक्लका-पीता और पाण्डरा कही गई हैं जो कि आलीढ़ से हरि स्थित होती है ।।१२।१३।।

माहिषोऽथ सखड्गाग्रे प्रकचग्रहमुष्टिका ।
जप्त्वा दशाक्षरीं विद्यां त्रिशूलञ्च ततो यजेत् ॥१४
लिङ्गस्थां पूजयेद्वापि पादुकेऽत्र जलेऽपि वा ।
विचित्रां रचयेत्पूजामष्टम्यामुपवासयेत् ॥१५
पञ्चाब्दं माहिषं शस्तं रात्रिशेषञ्च घातयेत् ।
विधिवत्कालिकी नीतिः तदुत्थरुधिरादिकम् ॥१६
नैर्ऋत्यां पूतनाञ्चैव वायव्यां पापराक्षसीम् ।
चण्डिकाञ्च तथैशान्यामाग्नेय्याञ्च विदारिकाम् ॥१७

आगे में माहिष है और खड्ग के सहित उसके केश अपनी मुट्ठी में ग्रहण करने वाली है । इसकी दश अक्षर वाली विद्या (मन्त्र) का जाप करके इसके अनन्तर उसके त्रिशूल का यजन करना चाहिए॥१४॥ अथवा लिंगस्था का पूजन करे, पादुका में अथवा जल में विचित्रा का पूजन करे और अष्टमी में उपवास करना चाहिए ॥ १५ ॥ पाँच वर्ष वाले माहिष प्रशस्त करे । रात्रि के शेष में लाकर उसका घात करावे । यह विधि-पूर्वक कालिकी नीति है । उससे निकले हुए रुधिर आदि का नैर्ऋत्य में और पाप राक्षसी पूतना को वायव्य में तथा चण्डिका को आग्नेयी दिशा में और ऐशानी में विदारिका को करे ॥१६।१७॥

८७—श्रावणद्वादशी व्रत

श्रवणद्वादशीं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ।
एकादशी द्वादशी च श्रवणेन च संयुता ॥
विजया सा तिथिः प्रोक्ता हरिपूजादि चाक्षयम् ॥१
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन भैक्ष्येण नैवाद्वादशिको भवेत् ॥२
कांस्यं मांसं तथा क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम् ।
व्यायामञ्च व्यवायञ्च दिवास्वप्नमथाञ्जनम् ॥
शिलापिष्टं मसूरञ्च द्वादश्यां वर्जयेन्नरः ॥३
मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादशी श्रवणान्विता ।

महती द्वादशी ज्ञेया उपवासे महाफला ॥
सङ्गमे सरितां स्नानं बुधयुक्ता महाफला ॥४
कुम्भे सरत्ने सजले यजेत्स्वर्णं तु वामनम् ।
सितवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम् ॥५
ॐ नमो वासुदेवाय शिरः सम्पूजयेत्ततः ।
श्रीधराय मुखं तद्वत्कण्ठं कृष्णाय वै नमः ॥६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम श्रावण की द्वादशी के विषय में वर्णन करते हैं जो भुक्ति और मुक्ति दोनों का प्रदान करने वाली होती है। एकादशी हो अथवा द्वादशी तिथि हो किन्तु श्रवण नक्षत्र से संयुत होनी चाहिए। वह तिथि विजया कही गई है। इसमें हरि की पूजा अक्षय पुण्य-फल वाली होती है ॥ १ ॥ एक वक्त अर्थात् एकबार रात्रि के भोजन से—तथा अयाचित भोजन से उपवास से और भिक्षा द्वारा प्राप्त भोजन से अद्वादशिक नहीं होता है। अर्थात् द्वादशी व्रत का नाश करने वाला नहीं होता है ॥२॥ कांसे का पात्र—माँस—क्षौद्र (मधु)—लोभ—मिथ्या भाषण—व्यायाम—व्यवाय (मैथुन)—दिन में शयन (निद्रा) करना—अञ्जन—शिलापिष्ट (पत्थर से या पाषाण पर पिसे हुए पदार्थ) और मसूर इन सबका द्वादशी में वर्जन कर देना चाहिए ॥३॥ भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की द्वादशी जो श्रवण नक्षत्र से अन्वित हो उसे एक सबसे बड़ी द्वादशी समझना चाहिए। इसके उपवास का महान् फल होता है। सगम मे सरिताओं का स्नान बुध से युक्ता हो तो महान् फल वाली होती है ॥४॥ रत्नों से परिपूर्ण एवं जल से भरे हुए कुम्भ में स्वर्ण में वामनदेव का यजन करे जो दो श्वेत वस्त्रों से समाच्छन्न हों और छत्र और उपानत् के युग से समन्वित होवें ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर "ॐ नमो वासुदेवाय"—इस मन्त्र का उच्चारण करके शिर का यजन करे। "ॐ नमः श्रीधराय"- इससे मुख का और "ॐ नमः कृष्णाय"—इससे कण्ठ की अर्चना करनी चाहिए ॥६॥

नमः श्रीपतये वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे ।
व्यापकाय नमः कुक्षौ केशवायोदरं बुधः ॥७
त्रैलोक्यपतये मेढ्रं जङ्घे सर्वपतये नमः ।
सर्वात्मने नमः पादौ नैवेद्यं घृतपायसम् ॥८

कुम्भांश्च मोदकान्दद्याज्जागरं कारयेन्निशि ।
स्नात्वा पीत्वाऽर्चयित्वा तु कृतपुष्पाञ्जलिर्वदेत् ॥९
नमो नमस्ते गोविन्द बुध श्रवणसंज्ञक ।
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥१०
प्रीयतां देवदेवेशो विप्रेभ्यः कलशान्ददेत् ।
नद्यास्तीरेऽथवा कुर्य्यात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥११

"ॐ नमः श्रीपतये"—इससे वक्षः स्थलका और "ॐ नमः सर्वास्त्र-धारिणे"—इससे भुजाओं का यजन करे। "ॐ नमो व्यापकाय"—यह मन्त्र कह कर कुक्षियों का और "ॐ नमः केशवाय"–इससे बुध को उदर का यजनार्चन करना चाहिए ॥ ७ ॥ "ॐ नमः त्रैलोक्य पतये"–इससे मेढ्रका—"ॐ नमः सर्व पतये"—इससे दोनों जाँघों का तथा "ओं नमः सर्वात्मने"—इससे चरणों का यजन करे। इसके पश्चात् नैवेद्य घृत पायस—कुम्भों को और मोदकों को समर्पित करे। रात्रि में जागरण करे। स्नान करके–पान करके और अर्चना करके अञ्जलियों में पुष्प लेकर प्रार्थना करे ॥८।९॥ हे श्रवण संज्ञा वाले बुध ! हे गोविन्द ! आपको बारम्बार प्रणाम है। आप मेरे अघों के समूह का क्षय करके समस्त प्रकार के सुखों के प्रदान करने वाले होवें ॥१०॥ हे देवों के देवों के भी स्वामिन् ! आप मुझ पर प्रसन्नता करें। फिर उन कलशों को विप्रों के लिये दान कर देवे। इस कार्य क्रम का अनुष्ठान किसी नदी के तट पर करे तो सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति होती है ॥११॥

८८—मदनत्रयोदशी आदि के व्रत

कामदेवत्रयोदश्यां पूजा दमनकादिभिः ।
रतिप्रीतिसमायुक्तो ह्यशोको मानभूषितः ॥१
चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
योऽब्दमेकं न भुञ्जीत भुक्तिभाक् शिवपूजनात् ॥२
त्रिरात्रोपोषिता दद्यात्कार्त्तिक्यां भवनं शुभम् ।
सूर्य्यलोकमवाप्नोति धामव्रतमिदं शुभम् ॥३

अमावस्यां पितृणाञ्च दत्तं जलादि चाक्षयम् ।
नक्ताभ्याशी वारनाम्ना यजन्वारिणि सर्वभाक् ॥४
द्वादशर्क्षाणि विप्रर्षे प्रतिमासन्तु यानि वै ।
तन्नाम्ना तेऽच्युतं तेषु सम्यक्संपूजयेन्नरः ॥५
केशवं मार्गशीर्षे तु इत्यादौ कृत्तिकादिका ।
घृतहोमश्चतुर्मासं कृसरञ्च निवेदयेत् ॥६
आषाढ़ादौ पायसन्तु विप्रांस्तेनैव भोजयेत् ।
पञ्चगव्यजले स्नानं नैवेद्यैर्नक्तमाचरेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—कामदेव त्रयोदशी के दिन दमनक आदि के द्वारा रति और प्रीति से समायुक्त होकर करे तो शोक से रहित और महा सम्मान से विभूषित हो जाता है ॥१॥ इति मदन त्रयोदशी पूजा विधानम् । शुक्ल और कृष्ण पक्षों की चतुर्दशी तिथि में तथा अष्टमी तिथि के दिन में जो एक वर्ष पर्यन्त भोजन न करे अर्थात् उपवास करे एवं भगवान् महेश्वर शिव का पूजन करे तो उसे समस्त भोगों की प्राप्ति हुआ करती है । इति चतुर्दश्यष्टमी व्रत विधानम् ॥२॥ कार्त्तिकी में तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करके शुभ भवन का दान करे तो वह सूर्यलोक को जाया करता है । यह परम शुभ धाम व्रत कहलाता है ॥३॥ अमावस्या तिथि के दिन पितृगणेश्वरों को दिया हुआ जल अर्थात् किया हुआ तर्पण अक्षय होता है । नक्त अर्थात् रात्रि के अभ्यास वाला वार के नाम से वारि में (जल में) यजन करता हुआ सभी कुछ की प्राप्ति करने का श्रेय लाभ किया करता है । इति वार व्रतानि ॥४॥ हे विप्रर्षे ! प्रतिमास में जो बारह नक्षत्र होते हैं उनके नामों से उनमें मनुष्य को भगवान् अच्युत का भली भाँति पूजन करना चाहिए ॥ ५ ॥ मार्ग शीर्ष में कृत्तिका आदि में केशव का यजन करे । चार मास तक घृत को होमैं और कृसर को निवेदित करे ॥६॥ आषाढ़ादि में पायस का होम करे, इसे ही समर्पित करे और पायस (खीर) से ही विप्रों को भोजन करावे । पञ्चगव्य के जल से स्नान करे और नैवेद्यों से रात्रि में समाचरण करना चाहिए ॥७॥

अर्वाग्विसर्जनाद् द्रव्य नैवेद्यं सर्वमुच्यते ।
विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ॥८

पञ्चरात्रविदो मुख्या नैवेद्यं भुञ्जते स्वयम् ।
एवं संवत्सरस्यान्ते विशेषेण प्रपूजयेत् ॥९
नमो नमस्तेऽच्युत संक्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैति पुण्यम् ।
ऐश्वर्य्यवित्ता द सदाऽक्षयं मे तथास्तु मे सन्ततिरक्षयैव ॥१०
यथाच्युत त्वं परतः परस्मात्स ब्रह्मभूतः परतः परस्मात् ।
तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं सदा मया कृतं पापहराप्रमेय ॥११
अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् ।
तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१२

विसर्जन करने के पूर्व में सब द्रव्य नैवेद्य कहा जाया करता है। जगत् के नाथ भगवान् के विसर्जित कर देने पर एक ही क्षण में वह सब निर्माल्य हो जाता है ॥८॥ पञ्चरात्र के ज्ञाता मुख्य नैवेद्य को स्वयं खाते हैं। इस प्रकार से संवत्सर के अन्त में विशेष रूप से पूजन करना चाहिए ॥९॥ प्रार्थना इस तरह करे—हे अच्युत ! आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है। मेरे सम्पूर्ण पापों का संक्षय हो जावे और मेरे पुण्य की वृद्धि होवे। मेरा ऐश्वर्य और वित्त आदि सदा अक्षय हो जावे और इसी भाँति मेरी सन्तति भी अक्षय हो जावे ॥ ०॥ हे अच्युत देव ! जिस प्रकार से आप पर से भी पर हैं और पर से पर में अवस्थित आप ब्रह्म भूत हैं वैसे ही हे अच्युत ! आप सदा मेरे वांच्छित को भी कर देवें। हे अप्रमेय देव ! आप सदा किये हुए पापों को हरण कर देवें ॥ ११ ॥ हे अच्युतानन्द ! हे गोविन्द ! आप प्रसन्न हूजिए। हे अमेयात्मन् ! जो भी कुछ मेरा अभीष्ट मनोरथ हो वह अक्षय हो जावे। हे पुरुषोत्तम ! आप मुझ पर ऐसी ही कृपा कर देवें ॥१२॥

कुर्याद्वै सप्तवर्षाणि आयुःश्रीसद् गतिं नरः ।
उपोष्यैकादशीमब्दमष्टमीञ्च चतुर्दशीम् ॥१३
सप्तमीं पूजयेद्विष्णुं दुर्गां शम्भुं रविं क्रमात् ।
तेषां लोकं समाप्नोति सर्वकामांश्च निर्मलः ॥१४
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन शाकाद्यैः पूजयन्सर्वदेवताः ॥
सर्वैः सर्वासु तिथिषु भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१५

धनदोऽग्निः प्रतिपदि नासत्यो दस्र अर्चितः ।
श्रीर्यमश्च द्वितीयायां पञ्चम्यां पार्वतीं श्रिया ॥१६
नागाः षष्ठ्यां कार्त्तिकेयः सप्तम्यां भास्करोऽर्थदः ।
दुर्गाष्टम्यां मातरश्च नवम्यामथ तक्षकः ॥१७
दशम्यामिन्द्रो धनद एकादश्यां मुनीश्वराः ।
द्वादश्याञ्च हरिः कामस्त्रयोदश्यां महेश्वरः ॥
चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां ब्रह्मा च पितरोऽपरे ॥१८

इस व्रत को सात वर्ष तक जो मनुष्य करता है वह आयु श्री और सद्गति को प्राप्त किया करता है । एकादशी-अष्टमी और चतुर्दशी का एक वर्ष तक उपवास करे ॥१३॥ सप्तमी का—दुर्गा शम्भु और क्रम से रवि का पूजन करे । इसका यह फल होता है कि वह मनुष्य मल रहित परम शुद्ध होकर उन्हीं के लोक को पहुँच जाता है और उसके सम्पूर्ण काम पूर्ण हो जाते हैं ॥ १४ ॥ एक वक्त भोजन से जोकि रात्रि में ही किया जावे तथा अयाचित भोजन से जो बिना माँगे ही प्राप्त हो जावे-शाकादि के द्वारा रहकर उपवास करके सब देवताओं का पूजन करने वाले सब सभी तिथियों में इस व्रत का पालन करें तो वे भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्त किया कर करते हैं ॥ १५ ॥ प्रतिपदा तिथि में अग्नि का अर्चन धन प्रदान करने वाला होता है । नासत्य—शस्र—श्री और यम की अर्चना द्वितीया में करे और पञ्चमी तिथि में श्री से युक्त पार्वती एवं नागों का यजन करना चाहिए । षष्ठी तिथि में स्वामि कार्त्तिकेय का पूजन करे । सप्तमी में भगवान् भुवन भास्कर का अर्चन धन प्रदान करने वाला होता है । दुर्गाष्टमी में मातृगण का यजन करे । नवमी में तक्षक का पूजन करे । दशमी तिथि में इन्द्र की अर्चना धन देने वाली है । एकादशी में मुनीश्वरों का यजन करे । द्वादशी में हरि भगवान् का पूजन करना चाहिए । त्रयोदशी में कामदेव का और चतुर्दशी में महेश्वर का एवं पञ्चदशी में ब्रह्मा एवं दूसरे पितरों का यजन करना चाहिए ॥१६॥ ॥१७॥१८॥

८६—सूर्य वंश कीर्तन

राज्ञां वंशान्प्रवक्ष्यामि वंशानुचरितानि च ।
विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा दक्षोऽङ्गुष्ठाच्च तस्य वै ॥१

ततोऽदितिर्विवस्वांश्च ततो विवस्वतः सुतः ।
मनुरिक्ष्वाकुः शर्यातिर्मृगो धृष्टः पृषध्रकः ॥
नरिष्यन्तश्च नाभागो दिष्टः शशक एव च ॥२
मनोरासीदिला कन्या सुद्युम्नोऽस्य सुतोऽभवत् ।
इलायां तु बुधाज्जातो रजोरुद्रपुरूरवाः ।
सुतत्रयश्च सुद्युम्नादुत्कलो विनतो गयः ॥३
अभूच्छूद्रो गोवधात्तु पृषध्रस्तु मनोः सुतः ।
करूषात्क्षत्रिया जाता कारूषा इति विश्रुताः ॥४
दिष्टपुत्रस्तु नाभागो वैश्यतामगमत्स च ।
तस्माद्भनन्दनः पुत्रो वत्सप्रीतिर्भनन्दनात् ॥५
ततः पांशुः खनित्रोऽभूद् भूपस्तस्मात्ततः क्षुपः ।
क्षुपाद्विंशोऽभवत्पुत्रो विंशाज्जातो विविंशकः ॥६
विविंशाच्च खनीनेत्रो विभूतिस्तत्सुतः स्मृतः ।
करन्धमो विभूतेस्तु ततो जातोऽव्यविक्षितः ॥७

श्री हरि ने कहा—अब हम राजाओं के वंशों का तथा वंशों के अनुचरितों का वर्णन करते हैं। भगवान् विष्णु की नाभि में समुत्पन्न कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई थी। उन ब्रह्मा के अंगुष्ठ से दक्ष प्रजापति ने जन्म ग्रहण किया था। इसके पश्चात् अदिति समुत्पन्न हुई और उस अदिति से विवस्वान् उत्पन्न हुए थे। विवस्वान् के पुत्र मनु हुए। इक्ष्वाकु—शर्याति-मृग-धृष्ट—पृष्धक नरिष्यन्त—नाभाग—दिष्ट और शशक समुत्पन्न हुए थे ॥१।२॥ मनु की इला नाम धारिणी कन्या हुई और सुद्युम्न नाम वाला इसका पुत्र उत्पन्न हुआ था। इला में बुध से रजो रुद्र पुरूरवा उत्पन्न हुए। सुद्युम्न से तीन पुत्र समुत्पन्न हुए थे जिनके नाम उत्कल-विनत और गय ये हुए थे ॥३॥ गोवध से शूद्र हुआ था पृषध्र मनुका पुत्र था। करूष से कारूष नामसे विख्यात होने वाले क्षत्रिय समुत्पन्न हुए थे ॥४॥ दिष्ट का पुत्र नाभाग था जोकि वैश्यताको प्राप्त होगया था। उससे अर्थात् नाभाग से भनन्दन नामक आत्मजने जन्म ग्रहण कियाथा और भनन्दन का पुत्र वत्स प्रीति नाम वाला उत्पन्न हुआ था ।५।इससे पांशु खनित्र भूप हुआ और इसका पुत्रक्षुप नामधारीहुआ। क्षुप का पुत्र विंशहुआ

और विंश से विविंशक की उत्पत्ति हुई थी ॥ ६ ॥ विविंश से खनीनेत्र नामक पुत्र पैदा हुआ तथा खनीनेत्र का पुत्र विभूति नाम वाला समुत्पन्न हुआ था । विभूति का पुत्र करन्धम और करन्धम से अविविक्षित नाम वाले आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥

मरुत्तोऽविक्षितस्यापि नरिष्यन्तस्ततः स्मृतः ।
नरिष्यन्तात्तमो जातस्ततोऽभूद्राजवर्द्धनः ॥८
राजवर्द्धात्सुधृतिश्च नरोऽभूत्सुधृतेः सुतः ।
नराच्च केवलः पुत्रः केवलाद् धुन्धुमानपि ॥६
धुन्धुमतो वेगवांश्च बुधो वेगवनः सुतः ।
तृणबिन्दुर्बुधाज्जातः कन्या चैलविला तथा ॥१०
विशालं जनयामास तृणबिन्दोस्त्वलम्बुषा ।
विशालाद्धेमचन्द्रोऽभूद्धेमचन्द्राच्च चन्द्रकः ॥११
धूम्राश्वश्चैव चन्द्रात्तु धूम्राश्वात्सृञ्जयस्तथा ।
सृञ्जयात्सहदेवोऽभूत्कृशाश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥१२
कृशाश्वात्सोमदत्तस्तु ततोऽभूज्जनमेजयः ।
तत्पुत्रश्च सुमन्त्रिश्च एते वैशालका नृपाः ॥१३
शर्यातिस्तु सुकन्याऽभूत् सा भार्य्या च्यवनस्य तु ।
अनन्तो नाम शर्यातिरनन्ताद्द्वकोऽभवत् ॥
रैवतो रेवतस्यापि रेवताद्रेवती सुता ॥१४

अविविक्षित का सुत मरुत् हुआ और फिर उस मरुत् से नरिष्यन्त नाम वाला पुत्र हुआ था । नरिष्यन्त से तम और तम का पुत्र राज वर्द्धन समुत्पन्न हुआ था । इस राज वर्द्धन से धृति और सुधृति का सुत नर नामधारी उत्पन्न हुआ था । नर का पुत्र केवल और इसका पुत्र धुन्धुमान् हुआ था ॥८।६॥ धुन्धुमान् का वेगवान् और वेगवान् का बुध तथा बुध का पुत्र तृणविन्दु और एक ऐलविला नाम धारिणी कन्या हुई थी ॥ १० ॥ तृण विन्दु से अलम्बुषा ने विशाल को उत्पन्न किया था । विशाल से हेमचन्द्र ने जन्म लिया था और हेमचन्द्र से चन्द्रक नाम वाला आत्मज समुत्पन्न हुआ था ॥ ११ ॥ चन्द्र से धूम्राश्व

सृञ्जय, सृञ्जय से सहदेव और सहदेव से कृशाश्व नामक सुत ने जन्म लिया था ॥१२॥ कृशाश्व का पुत्र सोमदत्त और सोमदत्त से जनमेजय ने उत्पत्ति प्राप्त की थी। इसका पुत्र सुमन्त्रि हुआ था। ये सब वैशालक नाम से विख्यात होने वाले नृप हुए थे ॥ १३ ॥ शर्याति राजा के एक कन्या हुई थी जो कि च्यवन महर्षि की भार्या हुई थी। शर्याति के एक अनन्त नामक पुत्र हुआ और अनन्त का सुत देवक उत्पन्न हुआ था। रैवत रेवत का पुत्र हुआ था और रेवत से रेवती नाम वाली एक पुत्री भी पैदा हुई थी ॥१४॥

धृष्टस्य धार्ष्टकं क्षत्रं वैश्यकं तद्बभूव ह।
नाभागपुत्रो नेदिष्टो ह्यम्बरीषोऽपि तत्सुतः ॥१५
अम्बरीषाद्विरूपोऽभूत्पृषदश्वो विरूपतः।
रथीनरश्च तत्पुत्रो वासुदेवपरायणः ॥१६
इक्ष्वाकोस्तु त्रयः पुत्रा विकुक्षिनिमिदण्डकाः।
इक्ष्वाकुजो विकुक्षिस्तु शशादः शशभक्षणात् ॥१७
पुरञ्जयः शशादाच्च ककुत्स्थाख्योऽभवत्सुतः।
अनेनास्तु ककुत्स्थाच्च पृथुः पुत्रस्त्वनेनसः ॥१८
विश्वरातः पृथोः पुत्र आर्द्रोऽभूद्विश्वराततः।
युवनाश्वोऽभवच्चार्द्रात् श्रावस्तो युवनाश्वतः ॥१९
बृहदश्वस्तु श्रावस्तात्तत्पुत्रः कुबलाश्वकः।
धुन्धुमारो हि विख्यातो दृढाश्वश्च ततोऽभवत् ॥२०
चन्द्राश्वः कपिलाश्वश्च हर्य्यश्वश्च दृढाश्वतः।
हर्य्यश्वाच्च निकुम्भोऽभूद्धिताश्वश्च निकुम्भतः ॥२१

धृष्ट का धार्ष्टक क्षत्रिय हुआ था जो कि वैश्यक होगया था। नाभाग का पुत्र नेदिष्ट हुआ और नेदिष्ट का पुत्र अम्बरीष हुआ था ॥ १५ ॥ राजा अम्बरीष से विरूप उत्पन्न हुआ और विरूप से वृषदश्व की समुत्पत्ति हुई थी। उसका पुत्र रथीनर नामक हुआ जो सर्वदा भगवान् वासुदेव की भक्ति में परायण रहा करता था ॥ १६ ॥ इक्ष्वाकु राजा के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम विकुक्षि निमि और दण्डक थे। इक्ष्वाकु से समुत्पन्न विकुक्षि शश के भक्षण करने से

शशाद कहलाया गया था ॥१७॥ शशाद से पुरञ्जय उत्पन्न हुआ था और इसका पुत्र ककुत्स्थ नाम वाला हुआ था। ककुत्स्थ से अनेना और इसका पुत्र पृथु नामधारी उत्पन्न हुआ था॥१८॥पृथुका विश्वरात हुआ और विश्वरातसे आर्द्र पुत्रकी उत्पत्ति हुईथी। आर्द्र से युवनाश्व और युवनाश्वका पुत्र श्रावस्त नाम वाला था ॥१९॥ श्रावस्त का पुत्र वृहदश्व और इसका पुत्र कुवलाश्वक हुआ। धुन्धुमार परम विख्यात हुआ था और इसके उपरान्त दृढाश्व से चन्द्राश्व कपिलाश्व और हर्यश्व उत्पन्न हुए थे। हर्यश्व से निकुम्भ और निकुम्भ से हिताश्व समुत्पन्न हुआ था ॥२०।२१॥

पूजाश्वश्च हिताश्वाच्च तत्सुतो युवनाश्वकः।
युवनाश्वाच्च मान्धाता बिन्दुमह्यस्ततोऽभवत् ॥२२
मुचुकुन्दोऽम्बरीषश्च पुरुकुत्सस्त्रयः सुताः।
पञ्चाशत्कन्यकाश्चैव भार्यास्ताः सौभरेर्मुनेः ॥२३
युवनाश्वोऽम्बरीषाच्च हरितो युवनाश्वतः।
पुरुकुत्सान्नर्मदायां त्रसद्दस्युरभूत्सुतः ॥२४
अनरण्यस्ततो जातो हर्यश्वोऽप्यनरण्यतः।
तत्पुत्रोऽभूद् वसुमनास्त्रिधन्वा तस्य चात्मजः ॥२५
त्रय्यारुणस्तस्य पुत्रस्तस्य सत्यरतः सुतः।
यस्त्रिशङ्कुः समाख्यातो हरिश्चन्द्रोऽभवत्ततः ॥२६
हरिश्चन्द्राद्रोहिताश्वो हरितो रोहिताश्वतः।
हरितस्य सुतश्चञ्चुश्चञ्चोश्च विजयः सुतः ॥२७
विजयाद्रुरुको जज्ञे रुरुकात्तु वृकः सुतः।
वृकाद्बाहुर्नृपोऽभूच्च बाहोस्तु सगरः स्मृतः ॥२८

हिताश्व का पुत्र पूजाश्व और पूजाश्व का पुत्र युवनाश्वक हुआ था। युवनाश्वसे मान्धाता की समुत्पत्ति हुईऔर मान्धाता का पुत्र बिन्दुमह्य हुआ था। इसके मुचुकुन्द-अम्बरीष और पुरुकुत्स ये तीन पुत्र उत्पन्न हुएथे और पचास कन्याएँ हुईं थी जो सौभरि मुनिकी भार्याऐं हुईं थीं॥२२।२३॥अम्ब-रीष से युवनाश्व और युवनाश्व से हरित पुत्र हुआ था। पुरुकुत्स से नर्मदामें

त्रसद्दस्यु नामक आत्मज की उत्पत्ति हुईथी।।२४।।उससे अनरण्य हुआ और अनरण्यसे हर्यश्व समुत्पन्न हुआ। इसकापुत्र वसुमना पैदाहुआ और वसुमना से त्रिधन्वा पुत्र की उत्पत्ति हुई थी॥२५।।इसके यहाँ त्रय्यारुण नामधारीपुत्र ने जन्म ग्रहण किया था और इसकापुत्र सत्यरत हुआ था जोकि त्रिशंकु-इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। इसका पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ ।।२६।। हरिश्चन्द्र नृपति का पुत्र रोहिताश्व हुआ थाऔर रोहिताश्वसे हरितनामक सुत का जन्महुआ था। हरित के पुत्र का नाम चञ्चु था और चञ्चुके पुत्र विजयने जन्मधारण किया था ।।२७।।विजय से रुद्रक पुत्र पैदा हुआ और रुद्रकसे वृक नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। वृक से बाहुनृप अवतीर्ण हुआ और बाहु का पुत्र सगर नामक हुआ था ।।२८।।

षष्टिपुत्रसहस्राणि सुमत्यां सगरोद्भवः ।
केशिन्यामेक एवासौ असमञ्जससंज्ञकः ।।२९
तस्यांशुमान्सुतो विद्वान्दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ।
भगीरथो दिलीपाच्च यो गङ्गामानयद्भुवम् ।।३०
श्रुतो भगीरथसुतो नाभागश्च श्रुतात्किल ।
नाभागादम्बरीषोऽभूत्सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषतः ।।३१
सिन्धुद्वीपस्यायुतायुः ऋतुपर्णस्तदात्मजः ।
ऋतुपर्णात्सर्वकामः सुदासोऽभूत्तदात्मजः ।।३२
सुदासस्य च सौदासो नाम्ना मित्रसहः स्मृतः ।
कल्माषपादसंज्ञश्च दमयन्त्यां तदात्मजः ।।३३
अश्वकाख्योऽभवत्पुत्रो ह्यश्वकान्मूलकोऽभवत् ।
ततो दशरथो राजा तस्य चैलविलः सुतः ।।३४
तस्य विश्वसहः पुत्रः खट्वाङ्गश्च तदात्मजः ।
खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च दीर्घबाहोर्ह्यजः सुतः ।।३५

राजा सगर से सुमति नाम धारिणी भार्या में साठ हजार पुत्र समुत्पन्न हुए थे। केशिनी नामक पत्नीमें एक ही असमञ्जस नाम वाले पुत्रकी उत्पत्ति हुई थी।।२९।।इसका अंशुमान् हुआथा। अंशुमान्का सुत परमविद्वान् दिलीप

हुआ था और इस राजा दिलीपका पुत्र भगीरथ नाम वाला समुत्पन्न हुआ था जिसने अपनी अत्यन्त उग्र तपस्यासे गङ्गा का यहाँ भूलोकमें आगमन कराया था।।३०।।भगीरथ के पुत्रका नाम श्रुत हुआ और श्रुत का पुत्र नाभाग हुआ था। नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुआ था। अम्बरीष का पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ था ।।३१।। सिन्धु द्वीप का सुत अयुतायु हुआ और इसका पुत्र ऋतुपर्ण नाम वाला हुआ। ऋतुपर्णसे सर्वकाम समुत्पन्न हुआ और इसका पुत्र सुदास हुआ था।।३२।।सुदास का सुत सौदास समुत्पन्न हुआ जो नामसे मित्रसह कहलाता था। उसका पुत्र दमयन्ती में कल्माष पाद नाम वाला पैदा हुआ था ।।३३।। इसकापुत्र अश्मक नामधारीथा और अश्मकसे मूलक समुत्पन्न हुआ इसके पुत्र का नाम राजा दशरथ था। इसकापुत्र ऐलबिल हुआ था।।३४।।ऐलविल का आत्मज विश्वमह हुआ और विश्वमह का पुत्र खट्वाङ्ग उत्पन्न हुआ था। खट्वाङ्ग से दीर्घ वाहु सुत की समुत्पत्ति हुई तथा दीर्घ वाहु से अज नृपति ने पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया था ।।३५।।

तस्य पुत्रो दशरथश्चत्वारस्तत्सुताः स्मृताः ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरताश्च महाबलाः ॥३६
रामात्कुशलवौ जातौ भरतात्तार्क्ष्यपुष्करौ ।
चित्राङ्गदश्चन्द्रकेतू लक्ष्मणात्संबभूवतुः ॥३७
सुबाहुशूरसेनौ च शत्रुघ्नात्संबभूवतुः ।
कुशस्य चातिथिः पुत्रो निषधो ह्यतिथेः सुतः ॥३८
निषधस्य नलः पुत्रो नलस्य च नभाः स्मृतः ।
नभसः पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा तदात्मजः ॥३९
देवानीकस्तस्य पुत्रो देवानाकादहीनकः ।
अहीनकाद्रुरुजज्ञ पारियात्रो रुरोः सुतः ॥४०
पारियात्राद्दलो जज्ञ दलपुत्रश्छलः स्मृतः ।
छलादुक्थस्ततो वुक्थाद्वज्रनाभस्ततो गणः ॥४१
उषिताश्वो गणाज्जज्ञे ततो विश्वसहोऽभवत् ।
हिरण्यनाभस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रः पुष्पकः स्मृतः ॥४२

इन्हीं महाराज अज के प्रतापी दशरथ नृप का जन्म हुआ था जिनके चार पुत्र बताये जाते हैं जिनके नाम श्रीराम—लक्ष्मण—भरत और शत्रुघ्न ये थे। ये चारों महान् बलवान् हुए थे।।३६।। श्रीरामचन्द्र महाराज से कुश और लव ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। भरत के तार्क्ष और पुष्कर—लक्ष्मण के चित्राङ्गद और चन्द्र केतु नामधारी दो-दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे।।३७।।शत्रुघ्न के सुबाहु और शूरसेन नाम वाले दो सुतों की उत्पत्ति हुई थी। कुश के पुत्र का नाम अतिथि था और अतिथि का पुत्र निषध हुआ।।३८।। निषध का नल—नल का नभा नामक पुत्र हुआ। नभा से पुण्डरीक तथा इसका पुत्र क्षेमधन्वा हुआ था।।३९।।क्षेमधन्वा का देवानीक और इसका सुत अहीनक नाम वाला था। अहीनकसे रुरू ने जन्मलिया थाऔर रुरू का पुत्र पारिपात्र नाम वाला हुआ था।।४०।।पारिपात्र का पुत्र दल हुआ तथा दल का पुत्र छल नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। छल से वुक्थ और इसका सुत वज्रनाभ हुआ। तथा वज्रनाभ से गण नामक पुत्र ने जन्म धारण किया था।।४१।। गण से उषिताश्व हुआ फिर इसका पुत्र विश्वसह उत्पन्न हुआ था। इसके पुत्र का नाम हिरण्य नाभ और हिरण्य नाभ का आत्मज पुष्पक नाम वाला हुआ था।।४२।।

ध्रुवसन्धिरभत्पुष्पाद् ध्रुवसन्धेः सुदर्शनः।
सुदर्शनादग्निवर्णः पद्मवर्णोऽग्निवर्णतः।।४३
शीघ्रस्तु पद्मवर्णात्तु शीघ्रात्पुत्रो मरुस्त्वभूत्।
मरोः प्रसुश्रुतः पुत्रस्तस्य चोदावसुः सुतः।।४४
उदावसोर्नन्दिवर्द्धनः सुकेतुर्नन्दिवर्द्धनात्।
सुकेतोर्देवरातोऽभूद् बृहदुक्थस्ततः सुतः।।४५
बृहदुक्थान्महावीर्य्यः सुधृतिस्तस्य चात्मजः।
सुधृतेर्धृष्टकेतुश्च हर्य्यश्वो धृष्टकेतुतः।।४६
हर्य्यश्वात्तु मरुर्जातो मरोः प्रतीन्धकोऽभवत्।
प्रतीन्धकात्कृतिरथो देवमीढ़स्तदात्मजः।।४७
विबुधो देवमीढात्तु विबुधात्तु महाधृतिः।
महाधृतेः कृतिरातो महारोमा तदात्मजः।।४८

महारोम्णः स्वर्णरोमा ह्रस्वरोमा तदात्मजः ।
सीरध्वजो ह्रस्वरोम्णः तस्य सीताभवत्सुता ॥४६

पुष्पक के पुत्र का नाम ध्रुव सन्धि और इसके पुत्र का नाम सुदर्शन हुआ था । सुदर्शन से अग्नि वर्ण और इससे पद्म वर्ण हुआ ॥४३॥ पद्म वर्ण पुत्र शीघ्र तथा इसका सुत मरु नामधारी हुआ । मरु से प्रसश्रुत और इससे उदावसु पुत्र हुआ था ॥४४॥ उदावसु के यहाँ नन्हि वर्द्धन ने जन्मलिया तथा इसका पुत्र सुकेतु और सुकेतु के पुत्र का नाम देवरात एवं इसके यहाँ वृहदुक्थ उत्पन्न हुआ था ॥४५॥ वृहदुक्थ के पुत्र का नाम महावीर्य्य था तथा इसका पुत्र सुधृति हुआ था । सुधृति के सुत का नाम धृष्टकेतुऔर इसकेयहाँ हर्यश्वने पुत्र रूप में जन्म धारण किया था ॥४६॥ हर्यश्व से मरु हुआ तथा इसकेपुत्र का नाम प्रतीन्धक था । प्रतीन्धक से कृति और इसके आत्मज का नाम देव-मीढ़ था ॥४७॥ देवमीढ़ से विबुध उत्पन्न हुआ—विबुध से महाधृति—इसके पुत्र का नाम कृतिरात तथा इसके पुत्र का नाम महारोमा हुआ था ॥४८॥ महारोमके स्वर्ण रोमा और इसके सुत का नाम ह्रस्वरोमा हुआथा । ह्रस्व-रोमा से सीरध्वज नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । इसी सीरध्वज की पुत्री का नाम सीता था ॥४६॥

भ्राता कुशध्वजस्तस्य सीरध्वजात्तु भानुमान् ।
शतद्युम्नो भानुमतः शतद्युम्नाच्छुचिः स्मृतः ॥५०
ऊर्जनामा शुचेः पुत्रः सनद्वाजस्तदात्मजः ।
सनद्वाजात्कुलिर्जातोऽनञ्जनस्तु कुलेः सुतः ॥५१
अनञ्जनाच्च कुलजित्तस्यापि चाधिनेमिकः ।
श्रुतायुस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुपार्श्वश्च तदात्मजः ॥५२
सुपार्श्वात्सृञ्जयो जातः क्षेमारिः सृञ्जयात्स्मृतः ।
क्षेमारितस्त्वनेनाश्च तस्य रामरथः स्मृतः ॥५३
सत्यरथो रामरथात्तस्मादुपगुरुः स्मृतः ।
उपगुरोरुपगुप्तः स्वागतश्चोपगुप्ततः ॥५४
स्वनरः स्वागताज्जज्ञे सुवर्चास्तस्य चात्मजः ।
सुवर्चसः सुपार्श्वस्तु सुश्रुतश्च सुपार्श्वतः ॥५५

जयस्तु सुश्रुताज्जज्ञे जयात्तु विजयोऽभवत् ।
विजयस्य ऋतः पुत्रः ऋतस्य सुनयः सुतः ।।५६
सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्याद्धृतिः स्मृतः ।
बहुलाश्वो धृतेः पुत्रो बहुलाश्वात्कृतिः स्मृतः ।।५७
जनकस्य द्वयं वंश उक्तो योगसमाश्रयः ।।५८

सीता के भाई का शुभ नाम कुशध्वज था । सीरध्वज से भानुमान् हुआ भानुमान्के पुत्रका नाम शतद्युम्न था । शतद्युम्नसे शुचि की उत्पत्ति हुईथी ।।५०।।शुचिका पुत्र अज नाम था और इसके पुत्र सनद्वाज था । सनद्वाज से कुलि उत्पन्न हुआ इसके अनञ्जन सुत हुआ था ।।५१।। अनञ्जन से कुलजित् उत्पन्नहुआ तथा इसके पुत्रका नाम अधिनेमिक था । इसकेश्रुतायु हुआ और श्रुतायु का पुत्र सुपार्श्व नामधारी पैदा हुआ था।।५२।।सुपार्श्वसे सृञ्जय हुआ सृञ्जय से क्षेमारि पुत्र हुआ । क्षेमारि के पुत्र का नाम अनेना था तथा इसके रामरथ नामक सुतने जन्म लिया था।।५३।।रामरथ के पुत्र का नाम सत्यरथ था और इसके सुत उपगुरु नाम वाला हुआ था । उपगुरुके उपगुप्त हुआ तथा उपगुप्त के स्वागत नामधारी पुत्र हुआ था।।५४।।स्वागत से स्वनर हुआ तथा इस स्वनर से सुवर्चा का जन्म हुआ सुवर्चाके सुपार्श्व हुआ इसके पुत्रका नाम सुश्रुत हुआ था ।।५५।।सुश्रुत से जय नामक सुत ने जन्मलिया-जय से विजय के पुत्र का नाम ऋत था—ऋत का पुत्र सुनय था ।।५६।। सुनय से वीतहव्य नामक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था । वीतहव्य से धृति हुआ । धृति का पुत्र बहुलाश्व था । बहुलाश्व से कृति ने जन्म धारण किया था ।।५७।। यह जनक का वंश योग समाश्रय कहा गया है ।।५८।।

६०--चन्द्रवंश कीर्तन (१)

सूर्य्यस्य कथितो वंश सोमवंशं शृणुष्व मे ।
नारायणसुतो ब्रह्मा ब्रह्मणोऽत्रेः समुद्भवः ।।
अत्रेः सोमस्तस्य भार्य्या तारा सुरगुरोः प्रिया ।।१
सोमात्तारा बुधं जज्ञे बुधपुत्रः पुरूरवाः ।
बुधपुत्रादथोर्वश्यां षट् पुत्रास्तु श्रुतात्मकः ।।
विश्वावसुः शतायुश्च आयुर्धीमानमावसुः ।।२

अमावसोर्भीमनामा भीमपुत्रश्च काञ्चनः ।
काञ्चनस्य सुहोत्रोऽभूज्जह्नुश्चाभूत्सुहोत्रतः ॥३
जह्नोः सुमन्तुरभवत्सुमन्तोरपजापकः ।
बलाकाश्वस्तस्य पुत्रो बलाकाश्वात्कुशः स्मृतः ॥४
कुशाश्वः कुशनाभश्चामूर्त्तरथो वसुः कुशात् ।
गाधिः कुशाश्वात्संजज्ञे विश्वामित्रस्तदात्मजः ॥५
कन्या सत्यवती दत्ता ऋचीकाय द्विजाय सा ।
ऋचीकाज्जमदग्निश्च रामस्तस्याभवत्सुतः ॥६
विश्वामित्राद्देवरातमधुच्छन्दादयः सुताः ।
आयुषो नहुषस्तस्मादनेका रजिरम्भकौ ॥७

श्री हरि भगवान् ने कहा—आपने कहे हुए सूर्य वंश का तो भली भाँति श्रवणकर लियाहै अब मुझसे सोम वंश का श्रवणकरो। भगवान्आदि पुरुष नारायण का पुत्र ब्रह्मा हुए थे और फिर उन परमपितामह ब्रह्माजी से अत्रि का समुद्भव हुआ था। अत्रिसे सोम की उत्पत्ति हुई। उसकी भार्या ताराहुई थी जोकि सुरों के गुरु की प्रिया थी ॥१॥ सोम से तारा ने बुध को समुत्पन्न किया था। इस बुध के पुत्र का नाम पुरूरवा था। इस बुध के पुत्रसे उर्वशीमें छै पुत्र हुए थे। उनके नाम—श्रुतात्मक-विश्वावसु-शतायु-आयु-धीमान् और अमावसु ये थे ॥२॥ अमावसु से भीम नाम वाला पुत्र हुआ था। भीम से काञ्चन—काञ्चन से सुहोत्र और सुहोत्र से जह्नु की उत्पत्ति हुई थी ॥३॥ इसका पुत्र सुमन्तु और सुमन्तु का सुत अपजापक हुआ। इसकापुत्र बलाकाश्व और बलाकाश्वसे कुश पैदाहुआ था॥४॥ कुशसे कुशाश्व-कुशनाभ-अमूर्त्तरथ और वसु हुए थे। कुशाश्वसे गाधि की उत्पत्ति हुई। गाधि नृपके पुत्र विश्वा-मित्र हुए ॥५॥ एक कन्या सत्यवती नाम वाली थी जिसको ऋचीक द्विज के लिये देदिया था। ऋचीकसे जमदग्नि उत्पन्न हुए और जमदग्निसे परशुराम का जन्म हुआ था ॥६॥ विश्वामित्र से देवरात मधुच्छन्द आदि पुत्र समुत्पन्न हुए थे। आयु का पुत्र नहुष राजा हुआ। इसके पुत्रों का नाम अनेका और रजिजम्भक थे ॥७॥

क्षत्रवृद्धः क्षत्रवृद्धात्सुहोत्रश्चाभवन्नृपः ।
काश्यकाशगृत्समदाः सुहोत्रादभवंस्त्रयः ।।८
गृत्समदाच्छौनकोऽभूत्काश्याद्दीर्घतमास्तथा ।
वैद्यो धन्वन्तरिस्तस्मात्केतुमांश्च तदात्मजः ।।६
भीमरथः केतुमतो दिवोदासस्तदात्मजः ।
दिवोदासात्प्रतर्दनः शत्रुजित्सोऽत्र विश्रुतः ।।१०
ऋतध्वजस्तस्य पुत्रो ह्यलर्कश्च ऋतध्वजात् ।
अलर्कात्सन्नतिर्जज्ञे सुनीतः सन्नतेः सुतः ।।११
सत्यकेतुः सुनीतस्य सत्यकेतोर्विभुः सुतः ।
विभोस्तु सुविभुः पुत्रः सुविभोः सुकुमारकः ।।१२
सुकुमाराद्धृष्टकेतुर्वीतिहोत्रस्तदात्मजः ।
वीतिहोत्रस्य भर्गोऽभद्भर्गभूमिस्तदात्मजः ।।१३
वैष्णवाः स्युर्महात्मान इत्येते काशयो नृपाः ।
पञ्चपुत्रशतान्यासन्रजेः शक्रेण संहृताः ।।१४

क्षत्र वृद्ध से सुहोत्र नृप हुआ । सुहोत्र के काश्य—काशगृत और समद ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे ।।८।। गृत्समद से शौनक हुआ—काश्य से दीर्घतमा हुआ । उससे वैद्य धन्वन्तरि हुआ और इसका पुत्र केतुमान् हुआ था ।।६।। केतुमान् का पुत्र भीमरथ हुआ और इसका पुत्र दिवोदास नाम वाला हुआ था । दिवोदास से प्रतर्दन हुआ जो कि इस मही मण्डल में शत्रुजित्—इस नास से प्रसिद्ध था ।।१०।। इसका पुत्र ऋतध्वज हुआ और इसका आत्मज अलर्क हुआ था । अलर्क से सन्नति ने जन्म प्राप्त किया और सन्नति का सुत सुनीत नामधारी हुआ था ।।११।। सुनीत का पुत्र सत्यकेतु हुआ और इसका पुत्र विभु नामधारी हुआ था । विभु के सुविभु और सुविभुका सुत सुकुमारक हुआ था ।।१२।। सुकुमार से धृष्ट-केतु तथा धृष्टकेतु का पुत्र बीतिहोत्र उत्पन्न हुआ । वीतिहोत्र का सुतभर्ग और इसके भर्गभूमि ने जन्म लिया था ।।१३।। ये काशय समस्त नृप वैष्णव हुए थे और महान् आत्मा वाले थे । रजि के पाँच सो पुत्र थे जो कि इन्द्र के द्वारा संहृत किये गये थे ।। १४ ।।

प्रतिक्षत्रः क्षत्रवृद्धात्सञ्जयश्च तदात्मजः ।
विजयः सञ्जयस्यापि विजयस्य कृतः सुतः ॥१५
कृताद् वृषधनश्चाभूत्सहदेवस्तदात्मजः ।
सहदेवाददीनोऽभूज्जयत्सेनोऽप्यदीनतः ॥१६
जयत्सेनात्संकृतिश्च क्षत्रधर्मा च सकृतेः ।
यतिर्ययातिः संयातिरयातिर्वै कृतिः क्रमात् ॥
नहुषस्य सुताः ख्याता ययातेर्नृपतेस्तथा ॥१७
यदुश्च तुर्वसुश्चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्यु श्चानुश्च पूरुश्च शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी ॥१८
सहस्रजित्क्रोष्टुमना रघुश्चैव यदोः सुतः ।
सहस्रजितः शतजित्तस्माद् वै हयहैहयौ ॥१६
अनरण्यो हयात्पुत्रो धर्मो हैहयतोऽभवत् ।
धर्मस्य धर्मनेत्रोऽभूत्कुन्तिर्वै धर्मनेत्रतः ॥२०
कुन्तेर्बभूव साहञ्जिर्महिष्मांश्च तदात्मजः ।
भद्रश्रेण्यस्तस्य पुत्रो भद्रश्रेण्यस्य दुर्दमः ॥२१

क्षत्र वृद्ध से प्रतिक्षत्र उत्पन्न हुआ था और इसका पुत्र संजय उत्पन्न हुआ। संजय का पुत्र विजय हुआ और विजय का कृत नामक सुत समुत्पन्न हुआ था ॥१५॥ कृत से वृषधन हुआ और इसका पुत्र सहदेव नाम वाला उत्पन्न हुआ था। सहदेवसे अदीन की उत्पत्ति हुईऔर अदीनसे जयत्सेन नामक पुत्र हुआ था ॥१६॥ जयत्सेन से संकृति नाम वाले सुत की उत्पत्ति हुईऔर इसकापुत्र क्षत्रधर्मा नामधारी समुत्पन्न हुआ था। कृति के क्रम से यति-ययाति-संयाति और अयाति उत्पन्न हुए थे। राजा नहुष के पुत्र तथा ययाति नृपके पुत्र परम प्रसिद्ध हुए थे ॥१७॥ देवयानी ने यदु और तुर्वसु को जन्म दिया था। वार्षपार्वणी शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु-अनु और पूरु को जन्म ग्रहण कराया था ॥१८॥ यदु के सहस्रजित्-क्रोष्टुमना और रघु ये पुत्र उत्पन्न हुए थे। सहस्रजित् के शतजित् पैदा हुआ और शतजित् के हय तथा हैहय नामक दो पुत्र पैदा हुएथे ॥१६॥हय से अनरण्य हुआ और हैहय से धर्म नाम वाला सुत हुआ। धर्मका पुत्र धर्मनेत्र और इसका सुत कुन्ति नाम वाला पैदा हुआ था ॥२०॥ कुन्ति

का साहञ्जि हुआ और साहञ्जि का पुत्र महिष्मान् हुआ था। इसके पुत्र का नाम भद्रश्रेण्य था और भद्रश्रेण्य के—दुर्दम हुआ ।।२१।।

घनको दुर्दमाच्चैव कृतवीर्य्यश्च धातकिः ।
कृताग्निः कृतकर्मा च कृतोगः सुमहाबलाः ॥२२
कृतवीर्य्यादर्जुनोऽभूदर्जुनाच्छूरसेनकः ।
जयध्वजो मधुः शूरो वृषणः पञ्च सुव्रताः ॥२३
जयध्वजात्तालजङ्घो भरतस्तालजङ्घतः ।
वृषणस्य मधुः पुत्रो मधोर्वृष्ण्यादिवंशकः ॥२४
क्रोष्टेर्निजनिवान्पुत्रः आहिस्तस्य महात्मनः ।
आहेरुशङ्कुः संजज्ञे तस्य चित्ररथ सुतः ॥२५
शशबिन्दुश्चित्ररथात्पत्न्योर्लक्षश्च तस्य ह ।
दशलक्षच्च पुत्राणां पृथुकीत्यादयो वराः ॥२६
पृथुकीर्त्तिः पृथुजयः पृथुदानः पृथुश्रवाः ।
पृथुश्रवसोऽभूत्ताम उशनास्तमसोऽभवत् ॥२७
तत्पुत्रः शितगुर्नाम श्रीरुक्मकवचस्ततः ।
रुक्मश्च पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पालितो हरिः ॥२८

दुर्दम के घनक—कृतवीर्य—धातकि—कृताग्नि—कृतकर्मा और कृतोग ये महान् बलवान् पुत्र हुए थे ।। २२ ।। कृतवीर्य से अर्जुन हुआ और अर्जुन से शूर सेनक पुत्र हुआ तथा अन्य जयध्वज-मधु-शूर—वृषण ये चार भी हुए थे। ये पाँचों पुत्र बड़े सुन्दर व्रत वाले थे ।।२३।। जयध्वज से तालजघ और तालजंघ से भरत की उत्पत्ति हुई। वृषण के पुत्र का नाम मधु था और मधु से वृष्णि आदि वंश करने वाला हुआ ।।२४।। क्रोष्टुका निजनिवान् पुत्र हुआ और इस महान् आत्मा वाले के पुत्र का नाम आहि था। आहि का सुत उशङ्कु था और उशकु का सुत चित्ररथ हुआ था ।।२५।। चित्ररथ से शशबिन्दु ने जन्म धारण किया था। इसके लक्ष पत्नियाँ थीं तथा दश लाख पुत्र हुए थे जोकि पृथुकीर्त्ति आदि परम श्रेष्ठ हुएथे।।२६।।उनमें पृथुकीर्त्ति-पृथुजय-पृथुदान और पृथुश्रवा ये मुख्यतम एवं उत्तम थे। पृथुश्रवाके तम नामक सुतने जन्म लिया था और

तम से उशना उत्पन्न हुआ ।। २७ ।। उशना का पुत्र शितगु और इससे फिर श्री रुक्म कवच पैदा हुआ था । श्रीरुक्म कवच के रुक्म–पृथुरुक्म–ज्यामघ-पालित और हरि हुए ॥२८॥

श्रीरुक्मकवचस्यैते विदर्भो ज्यामघात्तथा ।
भार्य्यायाश्चैव शैव्यायां बिदर्भात्क्रथकौशिकौ ।।२९
रोमपादो रोमपादाद्बभ्रु र्बभ्रोर्धृतिस्तथा ।
कौशिकस्य ऋचिः पुत्रः ततश्चैद्यो नृपः किल ।।३०
कुन्तिः किलास्य पुत्रोऽभूत्कुन्तेर्वृष्णिः सुतः स्मृतः ।
वृष्णेश्च निवृतिः पुत्रो दशार्हो निवृतेस्तथा ॥३१
दशार्हस्य सुतो व्योमा जीमूतश्च तदात्मजः ।
जीमूताद्विकृतिर्जज्ञे ततो भीमरथोऽभवत् ।।३२
ततो मधुरथो जज्ञे शकुनिस्तस्य चात्मजः ।
करम्भिकः शकुनेः पुत्रस्तस्य देवमतः स्मृतः ।।३३
देवक्षत्रो देवमतो देवक्षत्रान्मधुः स्मृतः ।
कुरुवंशो मधोः पुत्रो ह्यनुश्च कुरुवंशतः ।।३४
पुरुहोत्रो ह्यनोः पुत्रो ह्य शुश्च पुरुहोत्रतः ।
सत्वश्रुतः सुतश्चांशोस्ततो वैं सात्वतो नृपः ।।३५

ये उपर्युक्त सभी पुत्र रुक्म कवच के हुए थे । ज्यामघ का पुत्र विदर्भ हुआ और विदर्भ से शैव्या नाम वाली भार्या में क्रथ और कौशिक दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे ।। २९ ।। रोमपाद वभ्रु हुआ और वभ्रु से धृति उत्पन्न हुआ । कौशिक के पुत्र का नाम ऋचि था और इसके बाद चैद्य नृपति हुआ था ।। ३० ।। इसके पुत्र का नाम कुन्ति था तथा कुन्ति के वृष्णि नामक पुत्र ने जन्म लिया था । वृष्णि से निवृति की उत्पत्ति हुई तथा निवृति के पुत्र का नाम दशार्ह हुआ था ।। ३१ ।। दशार्ह के व्योमा नामधारी सुत ने जन्म लिया था और व्योमा का आत्मज जीमूत पैदा हुआ था । जीमूत से विकृति ने जन्म ग्रहण किया था और इसके भीमरथ सुत समुत्पन्न हुआ ।।३२।। इसके पश्चात् मधुरथ पैदा हुआ और मधुरथ का पुत्र शकुनि हुआ । शकुनि का सुन करम्भि था और इसका पुत्र

देवमत कहा गया है ॥ ३३ ॥ देवमत से देवक्षत्र और देवक्षत्र से मधु उत्पन्न हुआ। कुरुवंश मधु का पुत्र था और कुरुवंश से अनु की उत्पत्ति हुई थी ॥३४॥ अनु का पुत्र पुरुहोत्र था और पुरुहोत्र से अंशु पैदा हुआ था। अंशु का सुत सत्वश्रुत नाम वाला हुआ और उस सत्वश्रुत से सम्बत नृप की उत्पत्ति हुई थी ॥३५॥

भजिनो भजमानश्च सात्वतादन्धकः सुतः।
महाभोजो वृष्णिर्दिव्यावन्यो देवावृधोऽभवत् ॥३६
निमिवृष्णी भजमानादयुताजित्तथैव च।
शताजिच्च सहस्राजिद्बभ्रुर्देवो बृहस्पतिः ॥३७
महाभोजात्तु भोजोऽभूद्वृष्णेश्चैव सुमित्रकः।
स्वधाजित्संज्ञकस्तस्मादनमित्रशिनी तथा ॥३८
अनमित्रस्य निघ्नोऽभून्निघ्नाच्छत्राजितोऽभवत्।
प्रसेनश्चापरः ख्यातो ह्यनमित्राच्छिविस्तथा ॥३९
शिवेस्तु सत्यकः पुत्रः सत्यकात्सात्यकिस्तथा।
सात्यकेः सञ्जयः पुत्रः कुलिश्चैव तदात्मजः ॥
कुलेर्युगन्तरः पुत्रस्ते शैवेयाः प्रकीर्त्तिताः ॥४०
अनमित्रान्वये वृष्णिः श्वफल्कश्चित्रकः सुतः।
श्वफल्काच्चैव गान्दिन्यामक्रूरो वैष्णवोऽभवत् ॥४१
उपमद्गुरथाक्रूराद्देवद्योतस्ततः सुतः।
देववानुपदेवश्च अक्रूरस्य सुतौ स्मृतौ ॥४२

सात्वत नृपति के भजिन—भजमान और अन्धक ये पुत्र हुए थे। इसके अतिरिक्त महाभोज—वृष्णि—दिव्य और अन्य देवावृध, भजमान के निमि—वृष्णि—अयुताजित्—शतजित्—सहस्राजित्—बभ्रु—देव और बृहस्पति हुए थे ॥३६।३७॥ महाभोज नाम वाले से भोज, वृष्णि से सुमित्रक, फिर इससे स्वधाजित् नाम वाला और अनमित्र शिनी पैदा हुआ था ॥ ३८ ॥ अनमित्र का पुत्र निघ्न हुआ और निघ्न से शत्राजित्। दूसरा प्रसेन—इस नाम से ख्यात था। अनमित्र से शिवि की उत्पत्ति हुई थी। शिवि को पुत्र सत्यक-सत्यक से सात्यकि

उससे सञ्जय और सञ्जय के पुत्र का नाम कुलि था। कुलिका सुत युगन्तर नाम वाला था। ये सब शैवेय नाम से कहे गये थे ॥३९॥४०॥ अनमित्र के वंश में वृष्णि श्वफलक और चित्रक सुत थे। श्वफलक से उसकी भार्या गान्दिनी में अक्रूर ने जन्म धारण किया था जोकि परम विष्णु के भक्त थे ॥४१॥ अक्रूर के पुत्र का नाम उपमद्‌गु था और उपमद्‌गु के पुत्र का नाम देवद्योत था। अक्रूर के देववान् और उपदेव दो पुत्र कहे गये हैं ।४२॥

पृथुर्विपृथुश्चित्रस्य अन्तकस्य शुचिः स्मृतः ।
कुकुरो भजमानस्य तथा कम्बलबर्हिषः ॥४३
धृष्टस्तु कुकुराज्जज्ञे तस्मात्कापोतरोमकः ।
तदात्मजा विलोमा च विलोम्नस्तुम्बुरुः सुतः ॥४४
तस्माच्च दुन्दुभिर्जज्ञे पुनर्वसुरतः स्मृतः ।
तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकस्य तु ॥४५
देवकश्चोग्रसेनश्च देवकाद्देवकी त्वभूत् ।
वृकदेवोपदेवा च सहदेवा सुरक्षिता ॥४६
श्रीदेवी शान्तिदेवी च वसुदेव उवाह ताः ।
देवश्चानुपदेवश्च सहदेवासुतौ स्मृतौ ॥४७
उग्रसेनस्य कंसोऽभूत्सुनामा च वटादयः ।
विदूरथो भजमानाच्छूरश्चाभूद्विदूरथात् ॥४८
विदूरथसुतस्याथ शूरस्यापि समी सुतः ।
प्रतिक्षत्रश्च समिनः स्वयम्भोजस्तदात्मजः ॥४९

चित्र के पृथु और विपृथु दो पुत्र थे। अन्तक के पुत्र का नाम शुचि बताया गया है। भजमान के पुत्र का नाम कुकुर था और कम्बल बर्हिष था ॥४३॥ कुकुर से धृष्ट का और धृष्ट से कापोत रोमक था। इस कापोत रोमक के पुत्र का नाम विलोमा और विलोमा के तुम्बरु साम वाले सुत ने जन्म लिया था ॥ ४४ ॥ इससे फिर दुन्दुभि जो पुनर्वसु में रति करने वाला कहा गया है। इसके आहुक पुत्र और आहुकी नाम वाली कन्या थी। आहुक के देवक पुत्र हुआ और दूसरा पुत्र उग्रसेन था। देवक से देवकी की उत्पत्ति हुई वसुदेव ने वृकदेवा—उपदेवा—

सहदेवा—सुरक्षिता—श्रीदेवी शान्ति देवी इन सभी के साथ विवाह कर लिया था। सहदेवा के देव और अनुपदेव ये दो पुत्र थे ॥४५।४६।४७॥ उग्रसेन नृप के पुत्र का नाम कंस था और भी सुनाम तथा वटादि थे। भजमान से विदूरथ और विदूरथ से शूर हुआ ॥४८॥ विदूरथ के पुत्र शूर के समी नामक सुत था। समी के पुत्र का नाम प्रतिक्षत्र था और प्रतिक्षत्र का पुत्र स्वयम्भोज था ॥४९॥

हृदिकश्च स्वयम्भोजात्कृतवर्मा तदात्मजः।
देवः शतधनुश्चैव शूराद्वै देवमीढुषः ॥५०
दश पुत्रा मारिषायां वसुदेवादयोऽभवन्।
पृथा च श्रुतदेवी च श्रुतकीर्त्तिः श्रुतश्रवाः ॥५१
राजाधिदेवी शूराच्च पृथां कुन्तेः सुतामदात्।
सा दत्ता कुन्तिना पाण्डोस्तस्यां धर्मानिलेन्द्रकैः ॥५२
युधिष्ठिरो भीमपार्थौ नकुलः सहदेवकः।
माद्रयां नासत्यदस्राभ्यां कुन्त्यां कर्ण पुराऽभवत् ॥५३
श्रुतदेव्यां दन्तवक्रो जज्ञे वं युद्धदुर्मदः।
अन्तर्द्धानादयः पञ्च श्रुतकीर्त्यांश्च केकयात् ॥५४
राजाधिदेव्यां बिन्दश्च अनुबिन्दश्च जज्ञिरे।
श्रुतश्रवा दमघोषात्प्रजज्ञे शिशुपालकम् ॥५५
पौरवी रोहिणी भार्या मदिरानकदुन्दुभेः।
देवकीप्रमुखा भद्रा रोहिण्यां वलभद्रकः ॥५६
सारणाद्याः शठश्चैव रेवत्यां बलभद्रतः।
निशठश्चोल्मुको जातो देवक्यां षट् च जज्ञिरे ॥५७

स्वयम्भोज से हृदिक और फिर हृदिक का पुत्र कृतवर्मा समुत्पन्न हुआ था। शूर से देव-शतधनु और देवमीढुष हुए थे ॥५०॥ मरिषा में वसुदेव प्रभृति दश पुत्र थे। पृथा—श्रुतदेवी—श्रुतकीर्त्ति—श्रुतश्रवा के राजाधि देवी शूर से और कुन्ति की पुत्री पृथा को दिया था। कुन्ति के द्वारा दी हुई उसमें पाण्डु से धर्म—वायु और इन्द्र के द्वारा युधिष्ठिर—भीम और अर्जुन तथा नकुल एवं सहदेवक माद्री में नासत्य और दस्र से उत्पन्न थे। पहिले कुन्ती में कर्ण उत्पन्न

हो चुका था ॥५१।५२।५३॥ श्रुत देवी में दन्तवक्र ने जन्म लिया था जोकि युद्ध में दुर्मद था। अन्तर्धान प्रभृति पाँच कैकय से श्रुति कीर्त्ति में थे ॥५४॥ राजाधि देवी में बिन्द और अनुबिन्द ने जन्म ग्रहण किया था। श्रुत श्रवा ने दमघोष से शिशुपाल को जन्म दिया था ॥ ५५ ॥ आनक दुन्दुभि की पौरवी और रोहिणी तथा मदिरा भार्या थीं। देवकी जिनमें प्रमुख थी जोकि भद्रा थी। रोहिणी में बलभद्र हुए ॥५६॥ बलभद्र से रेवती नाम वाली पत्नी में सारण प्रभृति और शठ उत्पन्न हुए। निशठ और उन्मुक आदि छै देवकी से थे ॥५७॥

कीर्त्तिमांश्च सुषेणश्च उदार्य्यो भद्रसेनकः।
ऋजुदासो भद्रदेवः कंस एवावधीच्च तान् ॥५८
संकषणः सप्तमोऽभूदष्टमः कृष्ण एव च।
षोडशस्त्रीसहस्राणि भार्य्याणाश्चाभवन्हरेः ॥५९
रुक्मिणी सत्यभामा च लक्ष्मणा चारुहासिनी।
श्रेष्ठा जाम्बवती चाष्टौ जज्ञिरे ताः सुताम्बहून् ॥६०
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च प्रधानाः साम्ब एव च।
प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूत्ककुद्मिन्यां महाबलः ॥६१
अनिरुद्धात्सुभद्रायां वज्रो नाम नृपोऽभवत्।
प्रतिबाहुर्वज्रसुतश्चारुस्तस्य सुतोऽभवत् ॥६२
वह्निस्तु तुर्वसोर्वंशे वह्नेर्भार्गोऽभवत्सुतः।
भार्गाद्भानुरभूत्पुत्रो भानोः पुत्रः करन्धमः ॥६३

देवकी के प्रथम पुत्र का नाम कीर्त्तिमान् था और फिर सुषेण—उदार्य-भद्र सेनक—ऋजुदास - भद्रदेव थे। इन सबको राजा कंस ने मार दिया था ॥५८॥ सातवाँ पुत्र देवकी के संकर्षण और आठवें पुत्र साक्षात् श्रीकृष्ण ने अवतीर्ण होकर जन्म धारण किया था। हरि के सोलह हजार भार्याऐं थीं। रुक्मिणी—सत्यभामा—लक्ष्मणा—चारु हासिनी श्रेष्ठा जाम्बवती इस तरह ये आठ पटरानियाँ थीं। इन आठों प्रमुख भार्याओं ने बहुत-से पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥५९।६०॥ उनमें प्रद्युम्न—चारुदेष्ण और साम्ब ये प्रधान पुत्र थे। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध महान् बलशाली की उत्पत्ति थी जो कि अनिरुद्ध ने सुभद्रा

में वज्र नाभ नामक नृप को समुत्पन्न किया था। व्रज का पुत्र प्रतिवाह्न हुआ था और इसका सुतचारु नाम वाला हुआ था ॥६१।६२॥ तुर्वसु के वंश में वह्नि और वह्नि का सुत भार्ग हुआ था। भार्ग से भानु की उत्पत्ति तथा भानु के पुत्र के रूप में करन्धम ने जन्म प्राप्त किया था॥६३॥

करन्धमस्य मरुतो द्रुह्योर्वंशं निबोध मे ।
द्रुह्योस्तु तनयः सेतुरारद्धश्च तदात्मजः ॥
आरद्धस्यैव गान्धारो धर्मो गान्धारतोऽभवत् ॥६४
धृतस्तु धर्मपुत्रोऽभूद् दुर्गमश्च धृतस्य तु ।
प्रचेता दुर्गमस्यैव अनोर्वंशं शृणुष्व मे ॥६५
अनोः स्वभानरः पुत्रस्तस्मात्कालञ्जयोऽभवत् ।
कालञ्जयात्सृञ्जयोऽभूत्सृञ्जयात्तु पुरञ्जयः ॥६६
जनमेजयस्तु तत्पुत्रो महाशालस्तदात्मजः ।
महामना महाशालादुशीनर इति स्मृतः ॥६७
उशीनराच्छिविर्जज्ञे वृषदर्भः शिवेः सुतः ।
महामनोजात्तितिक्षोः पुत्रोऽभूच्च रुषद्रथः ॥६८
हेमो रुषद्रथाज्जज्ञे सुतपा हेमतोऽभवत् ।
बलिः सुतपसो जज्ञे अङ्गबङ्गकलिङ्गकाः ॥६९
अन्ध्रः पौण्ड्रश्च बालेया अनपालस्तथाङ्गतः ।
अनपालाद्दिविरथस्ततो धर्मरथोऽभवत् ॥७०

करन्धम का पुत्र मरुत हुआ था। अब मुझसे तुम द्रुह्यु के वंश का परिचय प्राप्त करो। द्रुह्यु का सुतसेतु था और इसका पुत्र आरद्ध हुआ। आरद्ध के तनय का नाम गान्धार था और गान्धार से धर्म नामक आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था ॥६४॥ धर्म का पुत्र धृत और धृत का सुत दुर्गम एवं दुर्गम का तनय प्रचेता था। अब अनु के वंश का श्रवण मुझसे करो ॥ ६५ ॥ अनु का पुत्र स्वभानर-स्वभानर का सुत काल-ञ्जय और कालञ्जय से सृञ्जय एवं सृञ्जय से पुरञ्जय पुत्र था ॥ ६६ ॥ इस पुरञ्जय का सुत जनमेजय था और जनमेजय का तनय महाशाल था। महाशाल से महामना हुआ था जो उशीनर इस नाम

से कहा गया था ॥६७॥ उशीनर से शिवि—शिवि से वृषदर्भ—तितिक्षु महामनोज से रुषद्रथ पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥६८॥ रुषद्रथ से हेम जन्मा और हेम से सुतपा हुआ था। सुतपा से वलि था। अङ्ग-वङ्ग और कलिङ्ग का उत्पन्न हुए। अङ्ग से अन्ध्र—पौण्ड्र—वालेया और अनपाल हुए थे। अनपाल से विदिरथ और इससे धर्मरत सुत पैदा हुआ था। ॥६९।७०॥

रोमपादो धर्मरथाच्चतुरङ्गस्तदात्मजः।
पृथुलाक्षस्तस्य पुत्रश्चम्पोऽभूत्पृथुलाक्षत: ॥७१
चपम्पुत्रश्च हर्य्यङ्गस्तस्य भद्ररथः सुतः।
बृहत्कर्मा सुतस्तस्य बृहद्भानुस्ततोऽभवत् ॥७२
बृहन्मना बृहद्भानोस्तस्य पुत्रो जयद्रथः।
जयद्रथस्य विजयो विजस्य धृति सुतः ॥७३
धृतेर्धृतव्रतः पुत्रः सत्यधर्मा धृतव्रतात्।
तस्य पुत्रस्त्वधिरथः कर्णस्तस्य सुतोऽभवत् ॥
वृषसेनस्तु कर्णस्य पुरुवंशात् शृणुष्व मे ॥७४

धर्मरत से रोमपाद नामधारी पुत्र ने जन्म प्राप्त किया था तथा रोमपाद के पुत्र का नाम चतुरङ्ग था। इसका पुत्र पृथुलाक्ष हुआ और पृथुलाक्ष से चम्प ने जन्म धारण किया था॥ ७१ ॥ चम्प के तनय का नाम हर्यङ्ग था और इसका पुत्र भद्ररथ हुआ था। भद्ररथ के पुत्र का नाम बृहत्कर्मा था फिर इसके बृहद्भानु नामक पुत्र ने जन्म लिया था ॥७२॥ बृहद्भानु के बृहन्मना तथा फिर इसका पुत्र जयद्रथ हुआ था। जयद्रथ के सुत विजय नामधारी था और विजय के यहाँ धृति नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया था ॥७३॥ धृति से धृतव्रत ने जन्म ग्रहण किया और इसके सत्यधर्मा था। सत्यधर्मा का पुत्र अधिरथ और इसके कर्ण नामक पुत्र था। कर्ण के वृषसेन हुआ अब तुम मुझसे पुरु के वंश का श्रवण करो ॥७४॥

९१—चन्द्रवंश कीर्तन (२)

जनमेजय पुरोश्चाभून्मनस्युर्जनमेजयात्।
तस्य पुत्रश्चाभयदः सम्बुश्चाभयदादभूत् ॥१

सम्बोर्बहुगतिः पुत्रः संजातिस्तस्य चात्मजः ।
वत्सजातिश्च संजातेः रौद्राश्वश्च तदात्मजः ॥२
ऋतेयुः स्थण्डिलेयुश्च कक्षेयुश्च कृतेयुकः ।
जलेयुः सन्ततेयुश्च रौद्राश्वस्य सुता वराः ॥३
रतिनारः ऋतेयोश्च तस्य प्रतिरथः सुतः ।
तस्य मेधातिथिः पुत्रस्तत्पुत्रश्चैनिलः स्मृतः ॥४
ऐनिलस्य तु दुष्यन्तो भरतस्तस्य चात्मजः ।
शकुन्तलायां संजज्ञे वितथो भरतादभूत् ॥५
वितथस्य पुत्रो मन्युर्मन्योश्चैव नरः स्मृतः ।
नरस्य संस्कृतिः पुत्रो गर्धो हि संकृतेः सुतः ॥६
गर्धादमन्युः पुत्रो वै शिनिः पुत्रो व्यजायत ।
मन्युपुत्रान्महावीर्य्यादुरुक्षयः सुतोऽभवत् ॥७

श्री हरि भगवान् ने कहा—पुरु का पुत्र जनमेजय था। और जनमेजय से मनस्यु नाम वाला सुत था। इसका पुत्र अभयद और अभयद से सम्बु का जन्म हुआ था ॥१॥ सम्बु का पुत्र वहुगति—वहुगति का तनय संजाति—संजाति का सुत वत्सजाति और इसका पुत्र रौद्राश्व हुआ था ॥२॥ रौद्राश्व के कई पुत्र हुए थे। उनके नाम ऋतेयु—स्थण्डिलेयु—कक्षेयु—कृतेयुक—जलेयु—सन्ततेयु ये हैं। ये सब बहुत श्रेष्ठ थे ॥ ३ ॥ ऋतेयु के पुत्र रतिनार हुआ और इसका पुत्र प्रतिरथ हुआ था। प्रतिरथ का पुत्र मेधातिथि और इसका पुत्र ऐनिल कहा गया था ॥४॥ ऐनिल के पुत्र का नाम दुष्यन्त और दुष्यन्त का सुत भरत था। राजा भरत से शकुन्तला में वितथ का जन्म हुआ था ॥५॥ वितथ का सुत मन्यु—मन्यु का नर-नरका संकृति और संकृति का तनय गर्ध था ॥६॥ गर्ध से अमन्यु अमन्यु से शिनि—मन्यु के पुत्र शिनि से जोकि महान् वीर्य—पराक्रम वाला था ऊरुक्षय नामधारी तनय हुआ था ॥७॥

उरुक्षयात्त्रय्यारुणिर्व्यूहक्षत्राच्च मन्युजात् ।
सुहोत्रस्तस्य हस्ती च अजमीढद्विमीढकौ ॥८
हस्तिनः पुरुमीढश्च कण्वोऽभूदजमीढतः ।
कण्वान्मेधातिथिर्जज्ञे यतः काण्वायना द्विजाः ॥९

अजमीढ़ाद् बृहदिषुस्तत्पुत्रश्च बृहद्धनुः ।
बृहत्कर्मा तस्य पुत्रस्तस्य पुत्रो जयद्रथः ॥१०
जयद्रथाद्विश्वजिच्च सेनजिच्च तदात्मजः ।
रुचिराश्वः सेनजितः पृथुसेनस्तदात्मजः ॥११
पारस्तु पृथुसेनस्य पाराद् द्वीपोऽभवन्नृपः ।
नृपस्य समरः पुत्रः सुकृतश्च पृथोः सुतः ॥१२
विभ्राजः सुकृतेः पुत्रोविभ्राजादश्वहोऽभवत् ।
कृत्यां तस्माद् ब्रह्मदत्तो विष्वक्सेनस्तदात्मजः ॥ १३
यवीनरो द्विमीढ़स्य धृतिमांश्च यवीनरात् ।
धृतिमतः सत्यधृतिर्दृढ़नेमिस्तदात्मजः ॥१४

उरुक्षय से अय्यारुणि तथा मन्यु के पुत्र व्यूहक्षत्र से सुहोत्र हुआ-सुहोत्र का हस्ती और अजमीढ़-द्विमीढ़ पुत्र हुए थे ॥ ८ ॥ हस्ती का पुत्र पुरुमीढ़ और अजमीढ़ का सुत कण्व हुआ था । कण्व से मेधातिथि ने जन्म लिया था । इस कारण से ये काण्वायन द्विज कहे गये थे ॥९॥ अजमीढ़ से वृहदिषु और इसका पुत्र बुहद्धनु हुआ । बृहद्धनु का पुत्र वृहत्कर्मा और इसका सुत जयद्रथ था ॥ १०॥ जयद्रथ से विश्वजित् और सेनजित् पुत्र थे । सेनजित् का आत्मज रुचिराश्व और रुचिराश्व का पुत्र पृथुसेन था ॥ ११ ॥ पृथुसेन से पार—पार से द्वीप—द्वीप से नृप और नृप से समर था । पृथु का पुत्र सुकृति था ॥१२॥ सुकृति वीर्य से विभ्राज ने शरीर धारण किया । विभ्राज से अश्वह था । इससे कृत्या में ब्रह्मदत्त हुआ और इसका आत्मज विष्वक्सेन था ॥ १३ ॥ द्विमीढ़ का सुत यवीनर और यवीनर से धृतिमान् ने जन्म लिया था । धृतिमान् का पुत्र सत्यधृति और इसका पुत्र दृढ़नेमि नामधारी हुआ था ॥१४॥

दृढ़नेमेः सुपार्श्वोऽभूत्सुपार्श्वात्सन्नतिस्तथा ।
कृतस्तु सन्नतेः पुत्रः कृतादुग्रायुधोऽभवत् ॥१५
उग्रायुधाच्च क्षेम्योऽभूत्सुधीरस्तु तदात्मजः ।
पुरञ्जयः सुधीराच्च तस्य पुत्रो विदूरथः ॥१६
अजमीढ़ान्नलिन्याश्च नीलो नाम नृपोऽभवत् ।
नीलाच्छान्तिरभूत्पुत्रः सुशान्तिस्तस्य चात्मजः ॥१७

सुशान्तेश्च पुरुर्जातो ह्यर्कस्तस्य सुतोऽभवत् ॥
अर्कस्य चैव हर्य्यश्वो हर्य्यश्वान्मुकुलोऽभवत् ॥१८
यवीनरो बृहद्भानुः कम्पिल्लः सृञ्जयस्तथा ।
पाञ्चालान्मुकुलाज्जज्ञे शरद्वान् वैष्णवो महान् ॥१९
दिवोदासो द्वितीयोऽस्य अहल्यायां शरद्वतः ।
शतानन्दोऽभवत्पुत्रस्तस्य सत्यधृतिः सुतः ॥२०
कृपः कृपी सत्यधृतेरुर्वश्या वीर्य्यहानितः ।
द्रोणपत्नी कृपो जज्ञे अश्वत्थामानमुत्तमम् ॥२१

दृढ़नेमि का पुत्र सुपार्श्व था । सुपार्श्व से सन्नति ने जन्म प्राप्त किया था । सन्नति का पुत्र कृत हुआ और कृत से उग्रायुध ने जन्म ग्रहण किया था ॥१५॥ उग्रायुध से क्षेम्य का जन्म हुआ और इससे फिर सुधीर की उत्पत्ति हुई थी । सुधीर से पुरञ्जय ने जन्म लिया और इसका सुत विदूरथ था ॥१६॥ अजमीढ़ से नलिनी नाम धारिणी भार्या में नील नाम वाले नृप ने जन्म धारण किया था । नील से शान्ति नामक पुत्र हुआ और इसका पुत्र सुशान्ति नाम वाला था ॥१७॥ सुशान्ति से पुरु—पुरु से अर्क—अर्क से हर्यश्व और हर्यश्व से मुकुल की उत्पत्ति हुई थी ॥१८॥ पाञ्चाल से यवीनर—बृहद्भानु—कम्पिल्ल तथा सृञ्जय हुए थे । मुकुल से महान् विष्णु का भक्त शरद्वान् था ॥ १९ ॥ इस शरद्वान् के द्वितीय दिवोदास ने अहल्या में जन्म लिया था । इसका पुत्र शतानन्द और शतानन्द का पुत्र सत्यधृति था ॥२०॥ सत्यधृति के कृप और कृपी उर्वशी के द्वारा वीर्य की हानि से हुए थे । द्रोण की पत्नी कृपी से अश्वत्थामा ने जन्म ग्रहण किया था जोकि परम उत्तम था ॥२१॥

दिवोदासान्मित्रयुश्च मित्रयोश्चच्यवनोऽभवत् ।
सुदासश्च्यवनाज्जज्ञे सौदासस्तस्य चात्मजः ॥२२
सहदेवस्तस्य पुत्रः सहदेवात्तु सोमकः ।
जन्तुस्तु सोमकाज्जज्ञे पृषतश्चापरो महान् ॥२३
पृषताद् द्रुपदो जज्ञे धृष्टद्युम्नस्ततोऽभवत् ।
धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्ऋक्षोऽभूदजमीढ़तः ॥२४

ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणादभूत् ।
सुधनुश्च परीक्षिच्च जह्नुश्चैव कुरोः सुताः ।।२५
सुधनुषः सुहोत्रोऽभूच्च्यवनोऽभूत्सुहोत्रतः ।
च्यवनात्कृतको जज्ञ अथोपरिचरो वसुः ।।२६
बृहद्रथश्च प्रत्यग्रः सत्याद्याश्च वसोः सुताः ।
बृहद्रथात्कुशाग्रश्च कुशाग्रादृषभोऽभवत् ।।२७
ऋषभात्पुष्पवांस्तस्माज्जज्ञे सत्यहितो नृपः ।
सत्यहितात्सुधन्वाऽभूज्जह्नुश्चैव सुधन्वतः ।।२८

दिवोदास का पुत्र मित्रयु था और मित्रयु का सुत च्यवन पैदा हुआ । च्यवन से सुदास ने जन्म लिया था और इसके पुत्र सौदास था।।२२।।सौदास का पुत्र सहदेव–सहदेव का पुत्र सोमक–सोमक का जन्तु और दूसरा महान् पृषत पुत्र था।।२३।।पृषत से द्रुपद वे जन्म लिया था फिर द्रुपदका पुत्र धृष्ट-द्युम्न था । धृष्टद्युम्नसे धृष्टकेतु और अजमीढ़ से ऋक्षने जन्मलिया था।।२४।। ऋक्ष से सवरण–संवरण से कुरु और कुरुके सुधनु और परीक्षित दोपुत्र हुए थे तीसरा जह्नु भी पुत्र था।।२५।।सुधनु का सुहोत्र और सुहोत्र से च्यवन की उत्पत्ति हुई । च्यवन का पुत्र कृतक और इसके अनन्तर उपरिचर वसु था । वसु के बृहद्रथ-प्रत्यग्र और सत्य आदि वसुके पुत्र थे । बृहद्रथ से कुशाग्र हुआ और कुशाग्रसे ऋषभ था।।२६।२७।।ऋषभ से पुष्पवान् पैदा हुआ और इससे सत्यहित नृप की उत्पत्ति हुई । सत्यहित का पुत्र सुधन्वा हुआ और सुधन्वा से जह्नु ने जन्म ग्रहण किया था ।।२८।।

बृहद्रथाज्जरासन्धः सहदेवस्तदात्मजः ।
सहदेवाच्च सोमापिः सोमापेः श्रुतवान् ततः ।।२९
भीमसेनोग्रसेनौ च श्रुतसेनोऽपराजितः ।
जनमेजयश्चान्योऽभूज्जह्नोस्तु सुरथोऽभवत् ।।३०
विदूरथस्तु सुरथात्सार्वभौमो विदूरथात् ।
जयसेनः सार्वभौमादावाधीतस्तदात्मजः ।।३१
अयुतायुस्तस्य पुत्रस्तस्य चाक्रोधनः सुतः ।
अक्रोधनस्यातिथिश्च ऋक्षोऽभूदतिथेः सुतः ।।३२

बृहद्रथ से जरासन्ध और जरासन्ध से सहदेव का जन्म हुआ। सहदेव का पुत्र सोमापि था और इसके पुत्र का नाम श्रुतवान् था॥२९॥फिर भीमसेन-उग्रसेन-श्रुतसेन अपराजित और जनमेजय पुत्रथा। जह्नुका पुत्र सुरथ था ॥३०॥ सुरथ से विदूरथ–विदूरथ से सार्वभौम–सार्वभौम से जयसेन और जयसेन से आवाधीत तनय था ॥३१॥ इस आवाघीत का पुत्र अयुतायु था और इसका पुत्र अक्रोधन था। अक्रोधन का अतिथि और अतिथि का पुत्र ऋक्ष नाम वाला हुआ था ॥३२॥

ऋक्षाच्च भीमसेनोऽभूद्दिलीपो भीमसेनतः।
प्रतीपोऽभूद्दिलीपाच्च देवापिस्तु प्रतीपतः ॥३३
शन्तनुश्चैव वाह्लीकस्त्रयस्ते भ्रातरो नृपाः।
वाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद् भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥३४
शालश्च शन्तनोर्भीष्मो गङ्गायां धार्मिको महान्।
चित्राङ्गदविचित्रौ तु सत्यवत्यान्तु शन्तनोः ॥३५
विचित्रवीर्य्यस्य भार्य्ये तु अम्बिकाम्बालिके तयोः।
धृतराष्ट्रन्तु पाण्डुञ्च तद्दास्यां विदुरं तथा ॥३६
व्यास उत्पादयामास गान्धारी धृतराष्ट्रतः।
शतं दुर्य्योधनाद्यं च पाण्डोः पञ्च प्रजज्ञिरे ॥३७
प्रतिबिन्ध्यः श्रुतसोमः श्रुतकीर्त्तिश्च चार्जुनात्।
शतानीकः श्रुतकर्मा द्रौपद्यां पञ्च वै क्रमात् ॥३८
यौधेयो च हिड़िम्बा च कौशी चव सुभद्रिका।
विजया वै रेणुमती पञ्चभ्यस्तु सुताः क्रमात् ॥३९
देवको घटोत्कचश्च अभिमन्युश्च सर्वगः।
सुहोत्रो निरमित्रश्च परीक्षिदभिमन्युजः॥
जनमेजयोऽस्य ततो भविष्यांश्च नृपान् शृणु ॥४०

ऋक्षसे भीमसेनका जन्म और भीमसेनसे दिलीपकी उत्पत्ति हुई। दिलीप के पुत्र का नाम प्रतीप था और प्रतीप से देवापि ने जन्म लिया था ॥३३॥ शन्तनु और वाह्लीक इन दोनों के सहित ये तीन भाई नृप थे। वाह्लीक से सोमदत्तऔर भूरि तथा भूरिश्रवा एवं शाल उत्पन्नहुएथे। शन्तनु नृपसे गङ्गा

में महान् धार्मिक भीष्म नृपति, गङ्गा में हुए थे। इसी शन्तनु नृपति से मल्लाह की पुत्री सत्यवती में चित्राङ्गद और विचित्र नाम वाले दो पुत्र थे। विचित्र वीर्य की अम्बा और अम्बालिका दो भार्याएं थी जो कि देवव्रत भीष्म) लाये थे। उन दोनों भार्य्याओं से धृतराष्ट्र और पाण्डु इन दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी उनकी एक दासी से विदुर का जन्म था ॥३४।३५।३६॥ महर्षि व्यासदेव ने नियोग से जोकि केवल दर्शन मात्र के स्वरूप वाला था, गान्धारी से धृतराष्ट्र उत्पन्न था। धृतराष्ट्र से दुर्योधनादि सौ पुत्र कौरव) हुए और पाण्डु से कुन्ती में केवल पाँच पुत्र (पाण्डव नामधारी) थे ॥३७॥ उन पाण्डवों में अर्जुन से प्रतिवन्ध्य—श्रुत सोम और श्रुतकीर्त्ति पुत्र द्रौपदी में शतानीक तथा श्रुतकर्मा क्रम से पाँच थे ॥३८॥ देवक—घटोत्कच और सर्वग अभिमन्यु—सुहोत्र और निरमित्र थे। अभिमन्यु से परीक्षित ने जन्म ग्रहण किया था ॥३९॥ इस परीक्षित के जनमेजय पैदा हुआ। इसके आगे जो भावी पुत्र हुए उनका अब श्रवण करो ॥४०॥

९२—हरि अवतार कथन

वंशादीन्पालयामास अवतीर्णो हरिः प्रभुः।
दैत्यधर्मस्य नाशार्थं वेदधर्मादिगुप्तये ॥१
मत्स्यादिकस्वरूपेण अवतारं करोत्यजः।
मत्स्यो भूत्वा हयग्रीवं दैत्यं हत्वाजिकण्टकम् ॥२
वेदानानीय मन्वादीन्पालयामास केशवः।
मन्दरं धारयामास कूर्मो भूत्वा हिताय च ॥३
क्षीरोदमथने वैद्यो देवो धन्वन्तरिर्ह्यभूत्।
बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः ॥४
आयुर्वेदमथाष्टाङ्गं सुश्रुताय स उक्तवान्।
अमृतं पाययामास स्त्रीरूपी च सुरान् हरिः ॥५
अवतीर्णो वराहोऽथ हिरण्याक्ष जघान ह।
पृथिवीं धारयामास पालयामास देवताः ॥६
नरसिंहोऽवतीर्णोऽथ हिरण्यकशिपु रिपुम्।
दैत्यान्निहतवान्वेदधर्मादीनभ्यपालयत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इन उपर्युक्त नृपादि के वंशों का पालन भगवान् ने अवतीर्ण होकर किया था। इनमें जो आसुरी वृत्ति वाले दैत्य गणथे उनके विये हुए अधर्म का नाश किया था और वेदों के द्वारा प्रतिपादित धर्म की रक्षा के लिये ही भगवान् ने समय-समय पर अवतार ग्रहण किया था ॥१॥ उस अजन्मा प्रभु ने मत्स्य आदि के स्वरूप में अवतार लिया था। भगवान् ने मत्स्य होकर अर्थात् मत्स्यावतार ग्रहण करके धर्म के कण्टक रूपी हयग्रीव दैत्य का हनन किया था और वेदों तथा मनु आदि को यहाँ लाकर केशव भगवान्ने पालन किया था। कूर्म का अवतारलेकर प्रभुने जगत्केहित-सम्पादन करने के लिये मन्दराचलको अपने ऊपर धारण किया था॥२।३॥ क्षीरोदधि के मन्थन के अवसर पर देव धन्वन्तरि वैद्य हो गये थे अर्थात् धन्वन्तरि का अवतार धारण किया। जिस समय समुद्र से उत्थित हुए थे उस समय उनके के हाथ में अमृत से परिपूर्ण एक कमण्डलु था ॥४॥ उन भगवान् धन्वन्तरि ने आठों अङ्गों से पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र को सुश्रुत को बताया था। मोहिनी एक परम सुन्दरी ललना का स्वरूप धारण कर हरि भगवान् ने वह अमृत देवगणों को पिला दिया था॥५॥ एक वराह का अवतार ग्रहण किया था और वराह रूपमें अवतीर्ण होकर महान्बली दुष्ट दैत्य हिरण्याक्षका वध किया था। इस भूमि को धारण किया था और देवोंकी सुरक्षा की थी ॥६॥ इसके अनन्तर फिर नरसिंह अवतार हुआ था और हिरण्यकशिपु शत्रु का विदारण किया था। समस्त दैत्यों का वध किया था और वेदोक्त धर्म आदि का अभिपालन किया था ॥७॥

ततः परशुरामोऽभूज्जमदग्नेर्जगत्प्रभुः।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं चक्रे निःक्षत्रियां हरिः ॥८
कार्त्तवीर्य्यं जघानाजौ कश्यपाय महीं ददौ।
यागं कृत्वा महाबाहुर्महेन्द्रे पर्वते स्थितः ॥९
ततो रामो भविष्णुश्च चतुर्धा दुष्टमर्दनः।
पुत्रो दशरथाज्जज्ञे रामश्च भरतोऽनुजः ॥१०
लक्ष्मणश्चाथ शत्रुघ्नो रामभार्य्या च जानकी ॥११

रामश्च पितृसत्यार्थं मातृभ्यो हितमाचरन् ।
शृङ्गवेरं चित्रकूटं दण्डकारण्यमागतः ॥१२
नासां शूर्पणखायाश्च छित्त्वाथ खरदूषणम् ।
हत्वा स राक्षसं सीतापहारिं रजनीचरम् ॥१३
रावणं चानुज तस्य लङ्कापुर्यां विभीषणम् ।
रक्षोराज्ये च संस्थाप्य सुग्रीवहनुमन्मुखैः ॥१४
आरुह्य पुष्पकं सार्द्धं सीतया पतिभक्तया ।
सुमहापतिव्रतया सोऽयोध्यां स्वपुरीं गतः ॥१५

इसके अनन्तर जगत्के प्रभुने जमदग्नि से परशुराम का अवतार धारण किया था और हरि ने इस भूमि को इक्कीस बार ऋषियों से रहित करदिया था अर्थात् क्षत्रियों का संहार किया था॥८॥ युद्ध में कार्त्त वीर्य का हननकिया था और भूमि को कश्यप ऋषि को दान दिया था। महेन्द्र पर्वत पर स्थित होकर महाबाहु ने याग किया था॥९॥ इसके पश्चात् दुष्टोंके मर्दन करने वाले भविष्णु राम ने चार रूपोंमें दशरथसे पुत्र रूप में जन्मग्रहण किया था। उन चारों के नाम राम-छोटे भाई भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे। श्रीराम की भार्या का नाम जानकी था॥१०।११॥ श्रीरामने पिताके सत्य वचनकी रक्षा करने के लिए और माताओं के हित का आचरण करते हुए वे दण्डकारण्यमें चित्रकूट पर्वत पर शृङ्गवेर पुर में आगये थे॥१२॥ वहाँ वन में रावण की बहिनशूर्पणखाके नासिका का छेदनकराकर खरदूषण तथा सीताके अपहरण करने वाले राक्षसराज रावण का वधकिया था। उसके राज्यासनपर रावण के छोटे भाई विभीषणको लङ्कापुरीमें राज्यदेकर सुग्रीव और हनुमान आदि प्रमुख बन्दरों तथा पतिभक्त सीता के साथ पुष्पक विमान पर समारूढ होकर श्रीराम अपनी महा पतिव्रता पत्नी के सहित पुनः अयोध्यापुरी में आगये थे ॥१३।१४।१५॥

राज्यञ्चकार देवादीन्पालयामास स प्रजाः ।
धर्मसंरक्षणं चक्रे अश्वमेधादिकान्क्रतून् ॥१६
सुमहापतिव्रतया रेमे रामो यथासुखम् ।
रावणस्य गृहे सीता स्थित्वापि न हि रावणम् ॥१७

कर्मणा मनसा वाचा सा गता राघवं विना ।
पतिव्रता तु सा सीता अनसूया यथैव तु ॥१८
पतिव्रतायाः सीताया माहात्म्यं कथयाम्यहम् ।
कौशिको ब्राह्मणः कुष्ठी प्रतिष्ठानेऽभवत्पुरा ॥१६
तं तथा व्याधितं भार्य्या पतिं देवमिवार्चयत् ।
निर्भर्त्सितापि भर्त्तारं तममन्यत दैवतम् ॥२०
भर्त्रोक्ता सानयद्वेश्यां शुल्कमादाय चाधिकम् ।
पथि शूले तदा प्रोतमचौरं चौरशङ्कया ॥ १
माण्डव्यमतिदुःखार्त्तमन्धकारेऽथ स द्विजः ।
पत्नीस्कन्धसमारूढश्चालयामास कौशिकः ॥२२

फिर अयोध्यापुरीमें राज्यासन पर समभिषिक्त होकर उन्होंने राज्य का शासन किया था और उन श्रीरामने देव आदिका तथा अपनी प्रजाका पालन किया था। श्रीराम ने धर्म का पूरी तरह से सरक्षण किया था और अश्वमेध आदि यज्ञों को सविधि किया था॥१६॥परम सुन्दरी एवं महापतिव्रता पत्नी जानकी के साथ राम ने सुख पूर्वक रमण किया था। रावण के घरमें रहकर भी जानकीने रावण को कर्म-मन और वाणीसे भी राघव के बिना स्वीकार नहीं किया था। सीता तो अनुसूयाकी भाँतिही अत्यन्त उत्तमकोटि की महान् पतिव्रत के पालन करने वाली थीं॥१७।१८॥पतिव्रता सीता का माहात्म्य मैं बतलाता हूँ–पुराने समय में प्रतिष्ठान में कौशिक ब्राह्मण कुष्ठीथा॥१६॥उस व्याधि से युक्त पति की सेवा उसकी भार्या ने देवता की भाँति की थी। अपने स्वामीके द्वारा फटकारे जाने पर भी उस स्वामीको वह देवता ही मानतीथी ॥२०॥ स्वामीके द्वारा कहे जानेपर उसने अधिक शुल्क देकर वेश्याको समीप में लाने का काम किया था। उस समय में मार्ग में शूल में प्रोत अचौर को चौर की शङ्कासे अत्यन्त दुःखित माण्डव्य अन्धकारमें था। उस कौशिक द्विज ने अपनी पत्नी के कन्धे पर स्थित होते हुए चालित किया था॥२१।२२॥

पादावमर्षणात्क्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह ।
सूर्य्योदये मृतिस्तस्य येनाहं चालितः पदा ॥२३

तच्छ्रुत्वा प्राह तद्भार्य्या सूर्य्यो नोदयमेष्यति ।
ततः सूर्य्योदयाभावादभवत्सतत निशा ॥२४
बहून्यब्दप्रमाणानि ततो देवा भयं ययुः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुस्तामूचे पद्मसम्भवः ॥२५
प्रशाम्यते तेजसैव तपस्तेजस्त्वनेन वै ।
पतिव्रतायाः माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः ॥२६
तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्यानां भवतां तथा ।
तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम् ॥२७
प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया ।
तैः सा प्रसादिता गत्वा ह्यनसूया पतिव्रता ॥२८
कृत्वादित्योदयं सा च तं भर्त्तारमजीवयत् ।
पतिव्रतानसूयायाः सीताभूदधिका किल ॥२९

पद के अवमर्षण से अत्यन्त क्रुद्ध माण्डव्य ने उस द्विज से कहा था कि जिसने पैरसे मुझे चालितकिया था वह सूर्योदय होनेपर मृत होजायगा ।२३। यह श्रवण करके उसकी भार्या ने कहा- सूर्य्य उदित ही नहीं होगा । इससे सूर्योदय के अभाव होने के कारण निरन्तर रात्रि होगई थी।।२४।।इस प्रकार से बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे । तब तो समस्त देवों को बहुत भय होगया था और सब मिलकर ब्रह्माजी की शरण में पहुँच गये थे । उन देवताओं से ब्रह्माजी ने कहा ।।२५।। तप का तेज इस तेज के द्वारा ही प्रशान्त किया जा रहा है । यह पतिव्रता का माहात्म्य है कि भगवान् भुवन भास्कर देव उदित नहीं हो रहे हैं ।।२६।। सूर्य के उदय न होने से मनुष्यों को बहुत हानि हो रही हैऔर आप लोगोंका भी बड़ानुकशान होताहै । इसलिये परम पतिव्रता अत्रि महर्षि की पत्नी अनसूया तपस्विनीको प्रसन्न करो । भानुदेवके उदय होनेकी कामना तभी पूर्ण हो सकती है । वे सब देवगण पतिव्रता अनसूया के पास पहुंचेऔर उसे प्रसन्न किया था।।२७।२८।।उसने आदित्य का उदय करादिया और द्विज की मृत्यु होने पर उसे भी जीवित कर दिया था । उस पतिव्रता अनसूया से भी अधिक पतिव्रता सीता हुई थी ।।२९।।

॥ इति प्रथमखण्डसमाप्तम् ॥